"यह पुस्तक शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय की विश्वविद्यालय स्तरीय मानक ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित की गई है।"

प्रथम संस्करण—१९७१

मूल्य : १८.००

मुद्रक :
अणिमा प्रिंटर्स,
पुलिस मेमोरियल,
जयपुर–४

प्रस्तावना

भारतीय भाषाओं को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने की राष्ट्रीय नीति को शीघ्र क्रियान्वित करने के लिए सन् 1968 में भारत सरकार ने एक वृहत् योजना का सूत्रपात किया था, जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना कर उनके माध्यम से विश्वविद्यालयीय शिक्षा-स्तर पर विभिन्न विषयों में महत्वपूर्ण एवं उपयोगी पुस्तकों के मौलिक लेखन और अन्य भाषाओं से ग्रन्थानुवाद कराने का कार्यक्रम स्वीकृत हुआ था। भारत सरकार के शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय ने चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इसके लिए शत-प्रतिशत अनुवाद स्वीकार किया। राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना भी इसी उद्देश्य की पूर्ति एवं योजना को क्रियान्वित करने के लिए की गयी थी। प्रस्तुत ग्रन्थ "आधुनिक चित्रकला का इतिहास" का प्रकाशन भी इसी योजना के अन्तर्गत हुआ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ आधुनिक चित्रकला का ऐतिहासिक क्रम और उसकी पद्धतियों का प्रमाणपुष्ट उद्घाटन करता है। इसके लेखक श्री र० वि० साखलकर हैं। अपने प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए लेखक ने लिखा है कि 'आधुनिक कला का इतिहास' मुख्य रूप से आधुनिक कलाकरों के कला-सम्बन्धी दृष्टिकोण में हुए परिवर्तनों का इतिहास है। इस प्रकार जीवन के मूल्यों में परिवर्तन करने के साथ-साथ मनुष्य की कलात्मक और सृजनात्मक प्रकृति में परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है, जिसे लेखक ने "कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति और विशुद्ध सौन्दर्य की खोज का द्वन्द्व कहा है।" परम्परागत प्रतिमानों, मूल्यों और मान्यताओं से भिन्न आधुनिक चित्रकला भी अन्य ललित कलाओं की भांति अपनी पूर्व पीठिका में अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। हिन्दी में इस विषय के प्रामाणिक ग्रन्थों का प्रायः अभाव है। इस दृष्टि से, प्रस्तुत ग्रन्थ इस अभाव की एक प्रामाणिक सम्पूर्ति करता है। श्री साखलकर इस क्षेत्र के लब्धप्रतिष्ठ चित्रकार एवं कलामीमांसक हैं। इसी कारण "आधुनिक चित्रकला का

इतिहास" सृजनात्मक और समीक्षात्मक दोनों पक्षों का सम्यक् उद्घाटन करता है। राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के लिए यह हर्ष का विषय है कि वह ऐसे महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ को प्रकाशित कर रही है। प्रस्तुत ग्रन्थ की समीक्षा राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष और प्रसिद्ध विद्वान डा० गोविन्दचन्द्र पाण्डे ने की है, जिसके लिए अकादमी उनकी कृतज्ञ है।

हमें खेद है कि अनेक कठिनाइयों के कारण हम अपनी भरसक चेष्टा के बावजूद इस पुस्तक में वे समस्त चित्र नहीं दे पा रहे हैं जो लेखक महोदय देना चाहते थे। इनमें अनेक विदेशी चित्र हैं, जिनका प्रकाशन-अधिकार हमें नहीं मिल सका। इस असमर्थता के लिए क्षमा चाहते हुए हम विश्वास करते हैं कि आगामी संस्करण में ये समस्त चित्र अवश्य दिए जायेंगे।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी साहित्य, कला, संस्कृति, संगीत आदि सम्बन्धी ऐसे अनेक ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना में संलग्न है जिससे इनके विविध पक्षों के प्रामाणिक विवेचन के साथ-साथ इन कलाओं का स्वरूप विन्यस्त करते हुए अध्येताओं की सृजनात्मक शक्ति को प्रेरित हो सकेंगे। काल की अव्याहत गति में अखण्डता मानवीय इतिहास की ही नहीं उसकी सांस्कृतिक परम्परा का भी शाश्वत कला की आयाम बन जाती है। आचार्य भर्तृहरि ने कहा है—

"साहित्य-संगीत-कला-विहीनः साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीनः"

हमारा विश्वास है कि आधुनिक चित्रकला से सम्बन्धित इस प्रकाशन को अपनाकर समस्त विद्वन्मंडली हमें उत्साहित और कृत-संकल्प करेगी।

अध्यक्ष
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
एवं शिक्षा मंत्री, राजस्थान सरकार,
जयपुर

निदेशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

समीक्षक

डॉ० गोविन्दचन्द्र पांडे
आचार्य एवं अध्यक्ष, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की

भाषा, साहित्य तथा समालोचना-विषयनामिका

डॉ० सत्येन्द्र (संयोजक)
आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ० नामवर सिंह
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी
आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर

डॉ० आर० के० कौल
आचार्य, अंग्रेज़ी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ० मोतीलाल गुप्त
रीडर, हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

डॉ० आर० पी० भटनागर
रीडर, अंग्रेज़ी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ० आर० एस० जैतली
प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

अनुक्रमणिका एवं विषयसूची

भूमिका

भारतीय कला विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में चित्रकला के अध्ययन में कला का सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करने के विचार से आधुनिक चित्रकला के इतिहास का महत्व बढ़ गया है। आधुनिक चित्रकला के प्रसार के साथ ही उसकी दुर्बोधता के आवरण को हटा कर उसके गूढ़ सौंदर्य का रस ग्रहण करने की कला-प्रेमियों की पिपासा बढ़ गई है। इस विषय पर हिंदी में अब तक ऐसी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है जो इसकी पूर्ति कर कला के विद्यार्थियों एवं जिज्ञासुओं का कुछ मार्ग-दर्शन कर सके। अतः उस दिशा में किया यह अल्प सा प्रयत्न पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है जो, आशा है, विद्यार्थियों को इस विषय के अध्ययन में पर्याप्त मात्रा में सहायक होगा।

आधुनिक कला ने पाश्चात्य कला-क्षेत्रों, निर्माण-क्षेत्रों व सामाजिक जीवन में निश्चित स्थान प्राप्त कर के सिद्ध किया है कि आधुनिक काल की कला का रूप आधुनिक ही हो सकता है। सर्वसाधारण भारतीय दर्शक आधुनिक चित्र को दुर्बोध व गूढ़ मानता है। किन्तु यदि हम उसके द्वारा किये दैनंदिन उपयोग की वस्तुओं—वस्त्र, बरतन, मकान आदि—के चयन का अवलोकन करेंगे तो स्पष्ट होगा कि वह इन वस्तुओं को अधिकतर आधुनिक रूप में ही पसन्द करता है। अतः आधुनिक कला के सामाजिक महत्व के बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता। प्रश्न केवल आधुनिक चित्रकला के अन्तर्गत चित्रकार द्वारा किये गये विशुद्ध प्रयोगों को समाज सम्मुख रखने के औचित्य के बारे में है। जब ऐसे प्रयोगों द्वारा निर्मित विशुद्ध कलाकृति अनभिज्ञ दर्शकों के सम्मुख रखी जाती है तो स्वाभाविकतया उनमें जिज्ञासा पैदा होती है। इस जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने के विचार से भी लेखक को कुछ प्रेरणा मिली। आधुनिक कला का मूल्यांकन भारतीय जीवन-दर्शन व परिस्थिति के विचार को दृष्टि में रखकर, करने की आवश्यकता पर लेखक ने बल दिया है।

आधुनिक कला के इतिहास के मुख्य रूप से चार कालखण्ड होते हैं; प्रथम, कालखण्ड है उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्ध; दूसरा, बीसवीं सदी के आरम्भ से प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त तक का, तीसरा, दोनों विश्वयुद्धों के बीच का, और चौथा, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का। प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त तक की आधुनिक कला के कलाक्षेत्रीय एवं सामाजिक महत्व का एवं उस काल के प्रमुख कलाकारों की श्रेष्ठता का मूल्यांकन निश्चित रूप से हो चुका है। अतः इस कालखण्ड की कला के इतिहास का विवरण कुछ विस्तार से किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् आधुनिक कला के क्षेत्र में हुए विभिन्न प्रयोगों के मूलाधार बीसवीं सदी के आरंभिक कालखण्ड में हुए कलात्मक प्रयोगों द्वारा प्रकाशित कलातत्व ही थे व बाद में उन कलातत्वों के आधार पर ही कलाकृतियों को समयोचित रूप या प्रभावी अभिव्यक्ति प्रदान करने के प्रयत्न हुए। अतः द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुए प्रयोगों को केवल परिचयात्मक स्थान दिया गया है। समकालीन प्रसिद्ध कलाकारों एवं उनके प्रयोगों से पाठकों को परिचित कराकर उनके कलाक्षेत्रीय स्थान व उनकी कला का मूल्यांकन अपनी कल्पनानुसार करने का कार्य पाठकों पर ही छोड़ दिया गया है। आधुनिक कला को अब विश्वव्यापी रूप प्राप्त हुआ है। व समकालीन आधुनिक कला के इतने व्यापक क्षेत्र पर विचार करके विवरण करने के लिए स्वतन्त्र ग्रंथ का प्रकाशन आवश्यक है। अतः इस पुस्तक में समकालीन आधुनिक कला का विचार योरोप—विशेषतः फ्रांस व अमेरिका—तक ही सीमित है। आधुनिक कला के इतिहास में भारतीय कलाकारों का मौलिक योगदान नगण्य है; क्योंकि यहां स्वतंत्र प्रेरणा से कोई नवीन आविष्कार नहीं हुए। केवल योरोप व अमेरिका में हुए प्रयोगों का अनुसरण करके आधुनिक अंकनपद्धतियों द्वारा कलाकृतियों का निर्माण हुआ है; हां, इनमें भारतीयत्व का परोक्ष या अपरोक्ष दर्शन अवश्य होता है। अतः भारतीय आधुनिक कलाक्षेत्र का संक्षिप्त परिचय देकर, यहां के प्रमुख कलाकार आधुनिक कला से किस तरह प्रभावित हैं, इसका विवरण दिया गया है।

इस प्रकार के प्रकाशन का यह प्रथम प्रयत्न होने की वजह से लेखक को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रारम्भिक कठिनाई थी विदेशी कलाकारों व स्थानों के नामों का उचित हिन्दी में लिप्यन्तरण। भाषा-विशेषज्ञों की सलाह लेकर भी इस समस्या का पूर्ण उपयुक्त हल असम्भव था व लेखक को कुछ पूर्वनिर्धारित नियमों के आधार पर ही आगे बढ़ना पड़ा। जहां तक संभव हुआ लेखक ने मूल उच्चारण की रक्षा करने का प्रयत्न किया है, किन्तु उनमें कुछ जगह अपवाद हैं। उदाहरण के लिए Paris शब्द का फ्रेंच भाषा में उच्चारण है 'पारी', किन्तु अंग्रेज़ी एवं हिन्दी में उसका प्रचलित उच्चारण 'पॅरिस' होने के कारण यहां भी उसको 'पॅरिस' ही लिखा है। उच्चारण-चिह्नों के अभाव के कारण कुछ विदेशी शब्दों का यथोचित हिन्दी लिप्यन्तरण कठिन है, जैसे Seurat–जो इस पुस्तक में सोरा लिखा है—का फ्रेंच उच्चारण स्युरा, सेरा व सोरा कहीं बीच का है। जो कलाकार विदेश जाकर

बहुत काल तक वहां स्थायी निवास कर चुके हैं उनके नामों का उच्चारण प्रायः उस देश के शब्दोच्चरण की प्रथा के अनुसार होता है, अतः उसको यहां भी वैसे ही लिखा है।

चित्रकला पर लिखी गई इस पुस्तक में चित्रों का समावेश अनिवार्य था व आरम्भ में लगभग १५० चित्रों के संग्रह को इस पुस्तक के अन्तर्गत प्रकाशित करने का निश्चय किया था। सभी चित्र विदेशी संग्रहालयों में होने से प्रकाशनाधिकार प्राप्त करना आर्थिक बल पर निर्भर था। अतः लेखक ने इस कार्य को प्रकाशन संस्था पर ही छोड़ा। आर्थिक कठिनाई के कारण प्रकाशन-संस्था ने इस बोझ को उठाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की व परिणाम स्वरूप पुस्तक में केवल ५ चित्रों का समावेश हो सका। पाठकों की दृष्टि में उपयुक्त सिद्ध होकर यदि लेखक को पुस्तक के द्वितीय संस्करण का सुअवसर प्राप्त होता है तो सरकारी अनुदान प्राप्त करके, चित्रसंग्रह को विदेश में छपवा कर, विषयोचित, सर्वांगसुन्दर, आकर्षक रूप में एवं अशुद्धियों को हटा कर पुस्तक का प्रकाशन करने की लेखक की हार्दिक आकांक्षा है।

चित्रकला के अध्यापन, लेखन, अध्ययन में अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग वांछनीय है व जिन हिंदी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग इस पुस्तक में किया है उनका अंग्रेज़ी प्रतिशब्दों के साथ संकलन परिशिष्ट में पारिभाषिक शब्दावली में किया है। कलाक्षेत्र में प्रसिद्ध कलाकरों की उक्तियां, चित्रों के शीर्षक—जिनको हिन्दी में अनुवादित किया है—व विभिन्न शैलियों के नाम टिप्पणियों में अंग्रेज़ी में दिये हैं। विशेष नामों के हिज्जों के बोध के लिए विशेष नामावली, अशुद्धियों व मुद्रणदोषों को दूर करने के लिए शुद्धिपत्र भी अन्त में जोड़ दिये हैं।

अन्त में राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी—मुख्यतया उपनिदेशक महोदय श्री यशदेव जी शल्य, जिनके प्रयत्नों के फलस्वरूप इस पुस्तक का प्रकाशन सुकर हुआ, के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूं। मेरे जिन मित्रों एवं विद्यार्थियों ने अमूल्य सुझाव देकर ग्रंथ-लेखन में सहायता की उनका मैं आभारी हूं। निम्नलिखित संग्रहालयों ने अपने संग्रहों में से कुछ चित्रों प्रकाशित करने के अधिकार बिना मुआवजे के देकर जो सहायता की उसके लिए उनको हार्दिक धन्यवाद।

यदि सूज्ञ पाठकों से पुस्तक की त्रुटियों के सम्बन्ध में कोई निर्देश या सुधार की दृष्टि से उपयुक्त सुझाव प्राप्त होंगे तो मैं उनका हार्दिक स्वागत करूंगा, क्योंकि मुझे विश्वास है कि ये आगामी संस्करण में उपयुक्त होंगे।

र० वि० साखलकर

परम पूजनीय दिवंगत पिता की
पावन स्मृति में
सादर समर्पित

प्राक्कथन

आधुनिक कला का इतिहास मुख्य रूप से आधुनिक कलाकारों के कलासंबन्धी दृष्टिकोणों में हुए परिवर्तनों का इतिहास है। जीवन के दार्शनिक मूल्यों में परिवर्तन होते ही उसका जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था व कलाक्षेत्र इसमें अपवाद नहीं हो सकता था। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से परम्परागत सामाजिक व धार्मिक निष्ठाएं टूट रही थीं, व आधुनिक दर्शन की स्वीकृतियों में मानव का स्वतन्त्र, स्वयंपूर्ण व बहुरङ्गी व्यक्तित्व, उसकी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा एवं ऐंद्रिक अनुभूतियों के पीछे छिपे हुए रहस्य की खोज ये तत्व बाह्य उद्देश्यों के बन्धनों से मुक्त होकर कार्यान्वित हो रहे थे। जबतक आधुनिक सृजनात्मक कलाकृति का दर्शक स्वयं को इन तत्वों के प्रति जागृत नहीं पायेगा तबतक वह उस कलाकृति का भावोत्कट रसग्रहण करने में सफल नहीं होगा।

कलाकार का व्यक्तित्व स्वतंत्र होते ही सृजनक्षेत्र में कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति व विशुद्ध सौंदर्य की खोज के बीच द्वंद्व शुरू हुआ; ऐसी द्वंद्वात्मक अवस्था में आधुनिक कला गतिमान हो गयी व उसके विभिन्न पहलू रूपायित हुए।

आधुनिक कला के विरोधियों के साधारणतः दो वर्ग पाये जाते हैं; एक वर्ग आधुनिक कला को तांत्रिक व दुर्बोध समझ कर उसके बारे में विचार ही नहीं करता तो दूसरा वर्ग ऐसे दर्शकों का है जो उसको पाखंड या विकृतिजनित मान कर उसकी निंदा करने को उद्यत होता है।

सामान्य दर्शक चित्रकला को वास्तव सृष्टि को प्रतिरूपायित करने का साधन-मात्र समझता है व जब वह इस दृष्टिकोण को लेकर आधुनिक कलाकृति का रसग्रहण करना चाहता है तब उसमें असफल होता है। सामान्य दर्शक के इस दृष्टिकोण को सुदृढ़ बनाने का कार्य मुख्य रूप से योरपीय पुनर्जागरण-काल से अपनाये गये वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने किया। जब पुनर्जागरणकाल से कलाकार ने वैज्ञानिक ढंग से अपनी अंकनपद्धतियों में संशोधन शुरू किया तब कला की धार्मिक अभिव्यक्ति कमजोर होकर उसको भौतिक रूप प्राप्त हुआ। भौतिक सौंदर्य के प्रति आकृष्ट दर्शक के लिए कलाकृति में वास्तव सृष्टि की सच्ची प्रतिकृति होना कलाकृति की श्रेष्ठता का मापदण्ड बन गया। आधुनिक कलाकृति के रसग्रहण के लिए यह अनिवार्य है कि दर्शक इस पूर्वग्रहदूषित दृष्टिकोण को त्यागें।

आधुनिक कला का अध्ययन करते समय 'आधुनिक' शब्द को केवल काल-निर्देशक मानना भ्रममूल होगा। वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य, आत्मिक अनुभूति, अतियथार्थ कल्पना आदि कलांतर्गत सृजनशील तत्वों का स्पष्ट व विशुद्ध रूप आधुनिक काल की जिन कलाशैलियों में दृष्टिगोचर हो गया है उन सभी कलाशैलियों को आधुनिक कला में सम्मिलित करते हैं, अर्थात् ये सभी तत्व सृजनप्रवृत्ति के अविभाज्य अंग होने के कारण न्यून-अधिक मात्रा में प्राचीन, मध्ययुगीन एवं समकालीन सभी कलाशैलियों में विद्यमान होते हैं। २० से ३० सहस्र वर्ष पूर्व की वन्य मानव की कला में ये तत्व इतने स्पष्ट रूप से प्रकट हैं कि देखने में यह कला आधुनिक कला के काफी समान रूप बन गयी है व इसी कारण प्रसिद्ध कलासमीक्षक हर्बर्ट रीड ने लिखा है कि "आधुनिक कला तीस सहस्र वर्ष प्राचीन है।"[1] लोककला एवं बालचित्रकला में भी मूल सृजनशील तत्वों का बहुत ही स्वाभाविक विकास होता है। आधुनिक कला का अध्ययन करते समय हम देखेंगे कि उपर्युक्त कलाओं से आधुनिक कलाकारों को अपरिमित प्रेरणा मिली है। वन्य मानव की कला, लोककला व बालचित्रकला से आधुनिक कला इस विचार से भिन्न है कि आधुनिक कला रूपांतर्गत तत्वों के शास्त्रीय अध्ययन का परिणाम है, या कलाकार की व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति है या उसमें कलाकार द्वारा की गयी आंतरिक सत्य की खोज है; किन्तु इन कलाओं में जो आधुनिक कला के समान गुण दृष्टिगोचर हैं वे पूर्णतया सृजनक्रिया की स्वाभाविकता से सिद्ध हुए हैं। आधुनिक कला का बाह्य उद्देश्य नहीं होता जबकि ये कलाएं बाह्य उद्देश्य से प्रेरित होती हैं।

समकालीन नैसर्गिकतावादी कला कालमान की दृष्टि से आधुनिक होते हुए भी उसको आधुनिक कला में समाविष्ट नहीं किया जा सकता क्योंकि वह बाह्य उद्देश्य से सीमित है। बिजांटाइन कला, अजन्ता की कला, राजपूत कला व जैन पुस्तकचित्रण कला आधुनिक चित्रकला के अन्तर्गत नहीं होते हुए भी उन प्राचीन धार्मिक कलाओं में कला के मूलाधार सृजनतत्व इतनी प्रकृष्ट मात्रा में प्रकट हुए हैं कि दर्शक आश्चर्य करता है। ये कलाशैलियां आधुनिक कला के तत्वनिकषों के अनुसार उत्कृष्ट मानी जाती हैं यद्यपि उनकी निर्मिति के लिए प्राचीन कलाकारों ने किस प्रकार शास्त्रीय अध्ययन किया इसके कोई प्रमाण नहीं मिलते। किंतु एक सत्य अवश्य चिंतनीय है कि जिन कलातत्वों व सृजनात्मक सहज प्रवृत्तियों को प्राचीन कलाकारों ने साधन के रूप में अपनाया वे आधुनिक कलाकार के साध्य बन गये हैं। किसी भी बाह्य ध्येय पर श्रद्धा न होने के कारण आंतरिक व्यक्तित्व की स्वयंपूर्ण अनुभूति व जड़ सौंदर्य के मृगजल की प्राप्ति के लिये अथक प्रयत्न आधुनिक कलाकार की कलानिर्मिति के कार्यकारण हो बैठे हैं। अनुभूति की अपरिपक्वता के कारण हो या कालपरिवर्तनजनित किसी अन्य कारण से हो, आधुनिक कलाकार के विचारों में इतनी आत्यंतिकता आ गयी है कि कलाकार का व्यक्तित्व व चिरन्तन तत्व—जिसमें शायद

ही कोई आधुनिक कलाकार विश्वास करता होगा—का सम्बन्ध पूर्ण रूप से टूट गया है। इसके कारण हैं आत्मिक अनुभूति पर अश्रद्धा व उसके परिणामस्वरूप उस दिशा में प्रयत्नशीलता का अभाव। हो सकता है कि इसके लिये बदली हुई परिस्थिति मूलभूत कारण हो जिसमें आधुनिक भौतिक सुखसाधनों के पीछे भागते हुए मानव को आत्मिक शांति के बारे में विचार तक करने को न समय है, न इच्छा, न उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने का सामर्थ्य। पुनश्च, आधुनिक मानव का धर्म व शाश्वत मूल्यों के प्रति श्रद्धायुक्त होना अशक्यप्राय है। मूलभूत प्रश्न यह है कि क्या आधुनिक कलाकार एवं मानव, अपने भिन्न मार्ग से चाहे क्यों न हो, जीवन के अंतिम सत्य का साक्षात्कार कर पायेगा? क्योंकि मानव कितना भी अधार्मिक हुआ हो उसकी जीवन के आंतरिक रहस्यों के प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा किंचिदपि कम नहीं हुई है व जब तक वह पशु स्तर तक नहीं पहुंचता तब तक उसकी यह तड़प नष्ट नहीं हो सकती। विश्वास है कि सत्य का दर्शन उन्हीं कलाकारों को हो सकता है जो कि स्वयं दार्शनिक होकर अपनी आत्मिक अनुभूति द्वारा जीवन के छिपे हुए रहस्य की खोज में सृजन कार्य करते रहते हैं व जिनकी कला उपासना रूप होती है केवल व्यवसाय रूप नहीं।

कला मानवनिर्मित है, और मानव की निर्मिति को मानव के सम्पूर्ण जीवन से कैसे पृथक् किया जा सकता है। वृक्ष की जड़, तना, शाखा, पत्ता, फूल या फल के जन्म, विकास व कार्य का वृक्ष की कल्पना के बिना पृथक् ज्ञान असम्भव है। मानव की कला, विज्ञान, व्यवहार व कृति को मानव के जीवन से ही अर्थ प्राप्त होता है। सभी एक विशाल पुरुष के अंग हैं। अर्थात् आधुनिक कला के अध्ययन के लिये प्रथम यह समझ कर चलना आवश्यक है कि आधुनिक कला आधुनिक मानव की कला है। आधुनिक जीवन जितना जटिल है उतनी ही आधुनिक कला जटिल है। अतः उसमें भिन्न व परस्परविरोधी प्रवाह होने के कारण उसकी सरल व निर्णायक परिभाषा करना असम्भव है। उसके अन्तर्गत सभी प्रवाह अन्तिम सत्य की ओर गतिमान हैं।

प्रारम्भ में ही आधुनिक कला की सारासार-चिकित्सा या तत्वविवेक करने में कोई फलप्राप्ति नहीं होगी, किंतु उसकी प्रमुख विशेषताओं से यदि पूर्वपरिचय कराया जाये तो वह अध्ययन में अवश्य सहायक होगा।

१९वीं सदी के करीब धर्म, राजा एवं धनिक वर्ग का आश्रय नष्ट होने से कलाकार बाह्य बन्धनों से अधिकांशतः मुक्त होकर स्वतंत्र विचार से कलानिर्मिति करने लगा। 'कला के लिये कला'[2] उसका ध्येयवाक्य बन गया व अपनी कलाकृतियों में सौंदर्यात्मक गुणों का अधिक से अधिक विकास करने में या कला को आत्मिक अभिव्यक्ति का साधनमात्र समझने में वह सफलता मानने लगा। चित्रविषय का महत्व कम होता गया। कलाकार ने अनुभव किया कि कलांतर्गत गुणों के विकास का या कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति का विषय के परिणामकारक चित्रण से समन्वय दुष्कर है; विषय का होना उसमें बाधा डालता है। धीरे-धीरे उसने विषय को कला से पूर्णतया

हटा कर वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियों का निर्माण आरम्भ किया।

इस प्रकार दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन होते ही अपने नये उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु कलाकारों ने संशोधन वृत्ति से कला की चिकित्सा शुरू की। कलाकार के स्वतंत्र विचारों एवं अनुभूतियों का दर्शन आधुनिक कला का महत्वपूर्ण अंग बन गया। कला के आंतरिक स्वरूप के सत्यान्वेषण में दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, पदार्थविज्ञान आदि विषयों का अध्ययन अनिवार्य हो गया। धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक तथा अन्य सीमित विचारों को गौण स्थान प्राप्त हुआ व कला में मूलगामी दृष्टिकोण अपनाने से भिन्न देशों के कलाकार एक-दूसरे के अधिक निकट आ गये। आधुनिक कला का इतिहास पढ़ते समय हम स्पष्ट रूप से देखेंगे कि आधुनिक कला को जापानी, चीनी, अफ्रीकी व भारतीय कलाओं से बहुत प्रेरणा मिली है। इसके विपरीत समकालीन एशियाई कलाकार योरपीय व अमरीकी आधुनिक कला के सिद्धांतों व अंकनपद्धतियों का अध्ययन करके कलानिर्मिति करने में सफलता मानते हैं। यातायात के सुलभ व वेगवान साधनों ने इस आदान-प्रदान में अपूर्व योगदान किया है।

प्रकृति के विरोधाभास के तत्व को हम आधुनिक कला के संदर्भ में भी अनुभव करते हैं। कलासंबन्धी सिद्धांत व वैचारिक चर्चाएं बढ़ने से कला को सरल व शास्त्र-शुद्ध रूप प्राप्त होने के बजाय वह अत्यधिक दुर्बोध व गूढ़ बनती गयी व उसमें कल्पनातीत विविधता आ गयी। प्रत्येक आधुनिक कलाकार अपने व्यक्तित्व के अनुरूप कलानिर्मिति करने लगा व कला में वैचित्र्य आ गया। बीसवीं सदी के मध्य तक कला को हस्ताक्षर का महत्व प्राप्त होकर कलाकृतियां व्यक्तित्वनिर्देशक बन गयीं। धीरे-धीरे कला का प्रतीकात्मक महत्व नष्ट हो गया। इस संबंध में पिकासो का कथन "आजकल कोई कलाशैलियां नहीं हैं, केवल कलाकार ही कलाकार हैं" समकालीन कला पर प्रकाश डालता है। ऐसी परिस्थिति में आधुनिक कला की कोई परिभाषा असम्भव है। इससे तो उसकी अङ्गीकार सूचक एवं निषेधात्मक विशेषताओं को ध्यान में रख कर उसके इतिहास का परिशीलन करना अधिक उपयुक्त है।

सुविधा के विचार से आधुनिक कला को तीन प्रमुख प्रवाहों में विभाजित किया जा सकता है। पहले कलाप्रवाह में कलाकृति के वस्तुनिरपेक्ष रूप का विचार प्रधान है, दूसरे में कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति पर बल दिया जाता है, और तीसरे में कलाकार के कल्पनाविलास को साकार किया जाता है। किंतु इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्रत्येक कलाकृति में ये कलाप्रवाह न्यूनाधिक मात्रा में, सम्मिश्र अवस्था में कार्यान्वित रहते हैं व कलाकृति का वर्गीकरण करते समय केवल इस बात का विचार किया जाता है कि उसमें कौनसा प्रवाह अधिक बलवत्तर है।

आधुनिक कलाकारों की तीन प्रमुख विचारधाराएं हैं। पहली विचारधारा के अनुसार कलाकार वस्तु के बाह्य रूप के सादृश्य से प्रतीकात्मक दर्शन को अधिक पसंद करता है, दूसरी के अनुसार वह अपनी कलाकृति को सामाजिक महत्व की निर्मिति

मानने के बजाय आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति मानता है, और तीसरी के अनुसार वह कलाकृति का मूल्यांकन या रसग्रहण करते समय उसके सौंदर्यात्मक गुणों का विचार करता है व उसको संदेशात्मक महत्व नहीं देता।

आधुनिक कला में जड़वाद को अत्यन्त महत्व प्राप्त हो गया है। जड़वादी दृष्टिकोण के कलाकार जड़ सौंदर्य को ही सत्य की अनुभूति का मूलाधार मानते हैं, किंतु इस अर्थ में निसर्ग के दृश्य सौंदर्य का कलाकृति में प्रतिरूप दर्शन वे अपर्याप्त एवं तुच्छ मानते हैं। इसके विपरीत कुछ आधुनिक कलाकार आंतरिक या अंतर्मन की अनुभूति को ही सत्य के साक्षात्कार का एकमेव साधन मानते हैं। ये कलाकार ईश्वर, धर्म, मानवता, राष्ट्र, नीति वगैरह मानवनिर्मित मूल्यों को काल्पनिक–अतः असत्य–मानते हैं व उनके प्रति अश्रद्ध हैं। कलाकार की सभी बन्धनों से पूर्ण रूप से मुक्त वैयक्तिक अनुभूतिमात्र उनकी आत्मिक अभिव्यक्ति का साधन है। रंग, रेखा, सतह आदि दृश्य कला के मूल तत्वों को तादात्म्यभाव से सचेत करके भावपूर्ण चित्रसृष्टि का निर्माण इन कलाकारों की साधना है।

आधुनिक कला की सभी विचारधाराओं के अंतर्गत कलाकार का विशुद्धतावादी दृष्टिकोण प्रेरणाभूत है। कलाकार की आत्मिक अनुभूति के अतिरिक्त विशुद्धता का कोई मापदण्ड नहीं होने के कारण आधुनिक कला में व्यक्तिवाद को आत्यंतिक स्वरूप प्राप्त हो गया है, अर्थात् बहुरंगी आधुनिक कला-सृष्टि में 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः' की उक्ति चरितार्थ हो रही।

उपरिनिर्दिष्ट विशेषताओं को ध्यान में रखकर यदि आधुनिक कला का अध्ययन किया जाये तो उसकी जटिलता कम होगी।

आधुनिक कला को किस कालखंड से प्रारम्भ करना उचित है इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं व प्रत्येक इतिहासकार ने निजी धारणा के अनुसार प्रारम्भ किया है। इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण विचार की ओर ध्यान आकृष्ट करना होगा। कला में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं होता। उसके लिये पोषक वातावरण का होना आवश्यक है, और जिसको हम क्रांतिकारी परिवर्तन समझते हैं उसका पूर्वगामी शैलियों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अर्थात् किसी भी कलाशैली का समुचित अध्ययन उसके पूर्व की कलाशैली के इतिहास का तुलनात्मक विचार किये बिना नहीं हो सकता।

कला के इतिहास का अर्थ होता है कला के रूपों व अभिव्यक्ति की मूलभूत प्रेरणाओं में हुए परिवर्तनों का इतिहास। इन परिवर्तनों में प्रचलित कला एवं नवीन विचार ये दोनों संघर्ष में समान महत्व के पक्ष हैं। प्राचीन कलाशैलियां व विदेशी कलाओं का प्रभाव उसमें पर्याप्त सहायता करता है। कला का जन्म सौंदर्यानुभूति व भावनाओं में होता है, अतः प्रगति की कल्पना कला के इतिहास को लागू नहीं की जा सकती। कलासमीक्षक एरिक न्यूटन के अनुसार कला वास्तव के नैसर्गिक दृश्य रूप व काल्पनिक प्रतीकात्मक रूप के बीच घड़ी के लंगर के समान झूलती रहती है।

योरपीय कला का इतिहास इस विधान की सत्यता का उद्‌बोधक उदाहरण है। ग्रीक कला में ईसा के पूर्व की चौथी शताब्दी तक दृश्य रूप का पर्याप्त विकास हुआ। उसके पश्चात् छठी शताब्दी से विजान्टाइन कला में काल्पनिक आकारों द्वारा चित्रण प्रारम्भ हुआ जो पुनर्जागरण काल तक अविरत चलता रहा। पुनर्जागरण काल में ज्योतो, राफेल, माइकेल एन्जेलो, लिओनार्डो आदि कलाकारों ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया व अपने बौद्धिक आविष्कारों से कला को नैसर्गिक दृश्य रूप प्रदान किया। १९वीं सदी तक उनके निर्दिष्ट मार्ग से कलाकारों ने निर्मिति की। १९वीं सदी के अंत में सेजान, गोग्वँ व वान गो ने कलाकारों के वैज्ञानिक नैसर्गिकतावादी दृष्टिकोण को धक्का पहुंचाया व आधुनिक कला में फिर से काल्पनिक आकारों व प्रतीकात्मक रंग-संगति पर बल देकर चित्रण शुरू हुआ। अतः प्राचीन धार्मिक कलाशैलियों में व आधुनिक कला में यदि घनिष्ठ समानताएं प्रतीत होती हैं तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आधुनिक कलाकारों ने इन कलाशैलियों से काफी प्रेरणा पायी है।

आधुनिक कला के जन्मदाता सेजान की कला से स्पष्ट है कि उन्होंने प्रचलित प्रभाववादी कला का गहरा अध्ययन करके, पूर्वगामी पुसँ की शास्त्रशुद्ध कला से प्रेरणा लेकर अपनी आधुनिक शैली को जन्म दिया। कला के रूप में परिवर्तन होते रहना कला को सचेत व प्रभावी रखने के विचार से वांछनीय है। कला के इतिहास में समान रूप-कल्पनाएं पुनरुज्जीवित होती हैं व कार्यकाल समाप्त होते ही नष्ट भी हो जाती हैं। पुसँ की कला राफेल से प्रभावित है तो आधुनिक कलाकार मोदिल्यानी की कलाशैली इटालियन कलाकार वोतिचेलि की कलाशैली से मिलती जुलती है। महान् कलाकारों में स्वतन्त्र प्रतिभा अवश्य होती है जो उनको वाह्य प्रभावों के ऊपर उठा कर स्वतंत्र कलात्मक व्यक्तित्व प्रदान करती है। उसी के कारण उनका नाम कला के इतिहास में अमर होता है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे वाह्य प्रभावों के परे हैं।

उपरिनिर्दिष्ट कारणों का विचार करके इस पुस्तक में आधुनिक चित्रकला के इतिहास को प्रभाववाद व उसकी पृष्ठभूमि से प्रारम्भ किया गया है।

आधुनिक चित्रकला की पूर्वपीठिका

आधुनिक चित्रकला के इतिहास को प्रभाववाद से आरम्भ करने का प्रमुख कारण यह है कि आधुनिक चित्रकला की कुछ विशेषतायें इतने स्पष्ट रूप से सर्व प्रथम प्रभाववाद में ही प्रतीत होती हैं। कला के क्षेत्र में पुरातनविरोधी शक्तियों से प्रकट रूप से सामना करने का क्रांतिकारी साहस प्रथम प्रभाववादी कलाकारों ने ही किया। प्रभाववाद के साथ कलाकारों की कला के प्रति धारणाओं में स्पष्ट परिवर्त्तन हो गया व उन्होंने स्वतंत्र रूप से विचार करके निजी कला की दिशा को निर्धारित करने के कलाकार के अधिकार को प्रस्थापित किया। वे कला को केवल समाज-सेवा या अर्थार्जन का साधन मानने के बजाय आत्मिक अभिव्यक्ति का माध्यम मानने लगे व उनके लिये वैयक्तिक अनुभूति कलाकृति के कलात्मक गुणों की श्रेष्ठता का निर्णय करने का मापदण्ड बन गयी। कला के संबन्ध में कलाकारों में आपसी वाद-विवाद होने लगे। समाजविमुख हो कर कलाकारों ने अपनी निराली दुनियां बसायी जिसका 'कला के लिये कला' ध्येय बन गया।

प्रभाववाद के अध्ययन से पहले यदि हम उसके पूर्व की शताब्दी की कला का परिशीलन करेंगे तो प्रभाववाद का जन्म किस वातावरण में हुआ व उसके जन्म का श्रेय कहां तक उस परिस्थिति को है, इसका ज्ञान होगा। पूर्वगामी कलाओं के परिशीलन से अध्ययन के लिये आवश्यक तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनायेंगे जिससे प्रभाववादी कला में कौन से नवीन, क्रांतिकारी तत्व थे, यह समझना सरल होगा।

अट्ठरहवीं शताब्दी के मध्य तक फ्रान्स में किसी राष्ट्रीय महत्व की कला का निर्माण नहीं हुआ। ई० १५१६ में फ्रान्सिस प्रथम ने लिओनार्डो डा विंची नाम के विख्यात इटालियन कलाकार को अपने दरबार में स्थान दिया। फ्रान्स में इटालियन डच व फ्लेमिश चित्रों की बहुत मांग थी। जार्ज द ला तुर, लोरें, पुसँ व लुई ल नें को छोड़ फ्रान्स में कोई विश्वविख्यात चित्रकार नहीं हुए व इनमें से लोरें व पुसँ ने इटली को अपना निवासस्थान बना लिया। जार्ज द ला तुर ने ईसा के जीवन की घटनाओं को, कृत्रिम छाया-प्रकाश का प्रभाव दिखाते हुए बड़ी कुशलता से चित्रित किया है जो मानवशरीरचित्रण एवं नैसर्गिकतावादी चित्रण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ल नें भाइयों ने किसान के जीवन को परिणामकारक यथार्थवादी

शैली में चित्रित किया है। पुसँ की कला पर राफेल का स्पष्ट प्रभाव है। पुसँ को हम मौलिक प्रतिभा के कलाकार नहीं मान सकते, किंतु उन्होंने पुनर्जागरण-कालीन इटालियन कला का गहरा अध्ययन कर शास्त्रशुद्ध शैली का पूर्ण विकास किया। उस शैली के उनके चित्रों ने आधुनिक चित्रकला के जन्मदाता सेजान को यहां तक प्रभावित किया कि वे पुसँ को अपना प्रेरणास्थान मानते थे। लोरें भी कोई विशेष प्रतिभा के चित्रकार नहीं थे किन्तु उन्होंने कला में प्रकृतिचित्रण को स्वतंत्र महत्व का स्थान प्राप्त कराया। उन्होंने सिद्ध किया कि मानवजीवन-रहित प्राकृतिक दृश्य भी प्रभावी चित्रण के उपयुक्त विषय हो सकते हैं। फिर भी उनके चित्रों में भी। बहाने के रूप में क्यों न हो, छोटी मनुष्याकृतियों का समावेश है।

१८ वीं सदी के प्रारंभ में फ्रान्स की दरबारी कला में एक नयी शैली ने जन्म लिया। इस शैली पर समकालीन वास्तुकला शैली—जो रॉकॉको कहलातो है—का स्पष्ट प्रभाव था व यह शैली रॉकॉको नाम से प्रसिद्ध हुई। इस शैली के कलाकारों में वातो, बुशे, फ्रागोनार व विजी ल ब्र्यु प्रसिद्ध हैं। सामर्थ्यशाली अंकन-पद्धति के बावजूद नाटकीय अभिनय काल्पनिक वातावरण व भावनाओं के अतिरंजन के कारण, अभिव्यक्ति के विचार से, इनके चित्र बड़े अस्वाभाविक से दिखाई देते हैं। समकालीन धनिक वर्ग व प्रतिष्ठित समाज की कल्पनारम्य जीवन के प्रति रुचि बढ़ जाने के कारण रॉकॉको शैली के चित्रों की मांग थी व इस शैली को बहुत प्रोत्साहन मिला। रॉकॉको शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द 'रॉकेय' से हुई थी जिसका अर्थ है 'सीप'। सीप के ऊपर जिस प्रकार की गतिमान वक्र रेखायें होती हैं उसी प्रकार की रेखाओं को रॉकॉको शैली में प्राधान्य दिया जाता था व ऐसी रेखाओं से बद्ध आकारों की इस शैली में भरमार होती थी। अर्थात् सर्वसाधारण जनजीवन के यथार्थ चित्रण का उसमें नाम ही नहीं था। इस शैली के चित्रों में अधिकतर नायक नायिकाओं के समान, काल्पनिक स्वर्गसमान वातावरण में बनाये गये, राजाओं व दरबारी लोकों के व्यक्तिचित्र, एवं ग्रीक व रोमन पुराणों से लिये गये देवताओं, परियों व अन्य अतिमानवीय शक्तियों के चित्र हुआ करते थे। कलाकार ग्रोज व वस्तुचित्रण के लिये प्रसिद्ध कलाकार शार्दे को छोड़ १८ वीं सदी के मध्यतक फ्रेंच कला राजदरबार तक ही सीमित रही।

नव शास्त्रवाद

१८ वीं सदी के उत्तरार्ध में फ्रेंच राज्यशासन-पद्धति में बहुत उथलपुथल हुई; सर्वसाधारण जनता में जागृति हुई व बदलते हुए वातावरण के साथ कला में भी परिवर्तन होते गये। १५ वें लुई के राज्यकाल में कला व साजसज्जा में ग्रीक मूर्तियों को बड़ा महत्व प्राप्त हुआ। फ्रेंच प्रतिष्ठित समाज में ग्रीक मूर्तियों के प्रति अभिरुचि बढ़ाने का कार्य लुई की प्रेयसी मादाम पम्पादुर के वास्तुकलाकार भाई ने किया। उस समय इटली में उत्खनन हो रहे थे जिन में प्राचीन ग्रीक वास्तुकला व

मूर्तिकला की रोमन प्रतिकृतियां प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो रही थीं। कला प्रेमियों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। १७३८ में हर्क्युलियन व १७५५ में पॉम्पिया के उत्खनन हुए व प्रसिद्ध जर्मन विद्वान विंकेलमान ने ग्रीक मूर्तिकला की प्रशंसा में कई लेख प्रकाशित किये। हमेशा नवीनता के पीछे भागने वाले प्रतिष्ठित समाज को प्रचलन का विषय प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप समकालीन फ्रेंच कला पर ग्रीक कला का प्रभाव पड़ा व उसको एक नयी दिशा में मोड़ मिला। चित्रकला में ग्रीक कला को आदर्श के रूप में सम्मुख रख कर नयी चित्रकला शैली को जन्म देने का कार्य प्रसिद्ध फ्रेंच चित्रकार जाक दावि ने किया। यह शैली नवशास्त्रीयतावाद नाम से प्रसिद्ध हुई।

नव शास्त्रीयतावाद ने आदर्श मानव–शरीर–सौंदर्य की ग्रीक कल्पना को पुनरुज्जीवित किया है। इस शैली के अधिकतर चित्रों के विषय ग्रीक पुराणों या रोमन कथाओं से लिये गये हैं एवं उस काल की पृष्ठभूमि पर अंकित किये गये हैं। अध्ययनपूर्ण बाह्यरेखा से आकारों को आदर्श व स्पष्ट रूप दिया है।

जाक दावि (१७४८-१८२५)

विद्यार्थी अवस्था के प्रारंभिक काल में दावि बुशे के शिष्य थे। इस काल के उनके चित्र 'मिनर्वा की विजय' में रॉकॉको शैली की कुछ विशेषताएं स्पष्ट दिखायी देती हैं। १७७५ में 'प्री द रोम' [2] छात्रवृत्ति प्राप्त करके वे आगे अध्ययन के लिये रोम चले गये। वहां उनको ग्रीक कला का गहराई से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ व उससे वे वहुत प्रभावित हुए। रोम में उनके मित्र डिक्विन्सी ने उनको विंकेलमान के ग्रीक कला संबन्धी विचारों से परिचित कराया। १७८५ में दावि ने अपना चित्र 'होरेशिआ का प्रण' [3] वनाया जो नव-शास्त्रीयतावाद का सर्वप्रथम चित्र माना जा सकता है। इस चित्र का निर्माण उस समय हुआ जव राजसत्ता कमज़ोर हो रही थी व फ्रेंच जनता अपने सम्मुख रोमन गणतंत्र का आदर्श रखे हुए आगे कदम वढ़ा रही थी। इस परिस्थिति का दावि को लाभ हुआ। उनके चित्र की दर्शकों ने वहुत प्रशंसा की। जनता को खुश करने के हेतु राजा ने दावि के उस चित्र को खरीदा। दावि का सवसे प्रसिद्ध चित्र 'ब्रूटस के पुत्र के निधन की खवर' फ्रेंच राज्य क्रांति के समय चित्रित किया गया। क्रांतिकारी जनता एवं राजनिष्ठ परंपरावादी दोनों को रोमन साम्राज्य का इतिहास समान आदर का विषय था। जनता को ब्रूटस के क्रान्तिवाद ने आकर्षित किया था जवकि राजनिष्ठ लोगों को सीज़र का साम्राज्यवाद प्रिय था। दावि के चित्र 'ब्रूटस के पुत्र के निधन की खवर' का जनता पर इतना प्रभाव पड़ा कि वोल्तेर के नाटक 'ब्रूटस' का रंगमंच पर अभिनय करते समय प्रमुख नट दावि के चित्र में निर्दिष्ट मुद्राओं का अनुकरण करते थे। १७९२ में फ्रेंच राष्ट्रीय लोकसभा पर चुने जाने से दावि फ्रेंच कलाक्षेत्र के तानाशाह वन गये। उन्होंने फ्रेंच चित्रकला में रोमन-ग्रीक

शैली को पुनरुज्जीवित किया व 'नवशास्त्रीयतावाद' नाम से वह देशव्यापी कलाशैली बन गयी। अबतक राजाश्रय में फूलीफली 'रॉकॉको' शैली लुप्तप्राय हो गयी। घरेलू व ग्राम्य जीवन के चित्र बनाने वाले कलाकारों पर इसका कोई असर नहीं पड़ा परन्तु अन्य कलाकारों के विरुद्ध दावि ने कड़ा रुख अपनाया। विवश हो कर उनको नवशास्त्रीयतावाद का अनुयायी बनना पड़ा। राजनैतिक उथलपुथल के साथ दावि को पदभ्रष्ट भी होना पड़ा। १८०४ में नेपोलियन के राजा बनते ही दावि प्रमुख राज्य चित्रकार नियुक्त किये गये। अब चित्रकला, वास्तुकला, अंतः सज्जा, पोशाक, प्रचलन आदि सभी कलाओं में दावि के विचारानुसार परिवर्तन हुए। नवीन वातावरण पर प्राचीन रोमन कल्पनाओं की छाप स्पष्टतया दिखायी देने लगी। 'मादाम रेकामिय' [4] जैसे व्यक्तिचित्र की पृष्ठभूमि से इस बात का प्रमाण मिलता है। नेपोलियन की अंतिम पराजय होते ही दावि फ्रान्स को छोड़ बेल्जियम गये जहां उनकी १८२५ में ब्रुसेल्स में मृत्यु हुई। विषय के अनुसार दावि के चित्रों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में उनके 'साक्रेटिस की मृत्यु', [5] 'सेबाइन्स पर बलात्कार', [6] 'ब्रूटस के पुत्रों के शवों का दहन' जैसे प्रसिद्ध चित्र आते हैं, किंतु विषय रोमन व ग्रीक हैं; ये चित्र निश्चित ही कुशलतापूर्ण हैं किन्तु विषय-चयन के कारण कुछ अनोखे बन गये हैं। दूसरे वर्ग में 'मारा की मृत्यु,' 'गेंत की महिलाएं' [7] आदि चित्र आते हैं जिनके विषय समकालीन हैं व जो दर्शन में अधिक वास्तविक बन गये हैं।

दावि के पश्चात् चित्रकार ग्वेरँ ने दावि का अंधानुकरण करके नवशास्त्रीयतावाद को जीवित रखा। आन्त्वान ग्रो (१७७१–१८३५) दावि के शिष्य थे। उनके आरम्भ के चित्रों में दावि का अनुकरण है किंतु कुछ समय तक उन्होंने रूबेन्स के प्रभाव में आ कर ऐसे चित्र बनाये जो नवशास्त्रीयतावाद के अंतर्गत नहीं आते। ग्रो ने अपनी आयु के अन्तिम १५ वर्ण तक दावि के सिद्धान्तों का कट्टरता से पालन किया व वे अपने शिष्यों को भी उसी तरह चित्रण करने का उपदेश करते थे। वे कहा करते "यह मेरा कहना नहीं है बल्कि दावि का आदेश है"। नवशास्त्रीयतावादी चित्रकारों में रेन्योल, जेरार, प्रुदां व अँग्र प्रमुख थे जिन में से अँग्र सब से विख्यात हुए। इन चित्रकारों की भी नवशास्त्रीयतावाद पर वह विशुद्ध निष्ठा नहीं थी जो दावि चाहते थे। वैसे १८०८ से ही दावि कहने लगे थे "मैंने चित्रकारों के लिये जो मार्ग निश्चित किया है वह बड़ा कष्टप्रद है व फ्रेंच चित्रकार उस दिशा में अधिक समय तक मार्गक्रमण नहीं कर पायेंगे।

रोमांसवाद

नवशास्त्रीयतावाद का प्रमुख दोष था तर्ककठोरता; उसमें मानवता व समाज के यथार्थ रूप को कोई स्थान नहीं था। समाज में वैचारिक जागृति बढ़ती

जा रही थी व कलाकार के लिये आवश्यक था कि वह बदलते हुए सामाजिक एवं राजनैतिक वातावरण के अनुकूल दृष्टिकोण अपनाए। दावि कहते थे "कला का आधार तर्क होना चाहिये" किंतु शायद वे इस फ्रेंच कहावत को भूल गये थे कि 'दिल के भी कुछ अपने तर्क होते हैं जिनका तर्कशास्त्र द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता'। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कलाकृति को सामर्थ्यवान् रूप व अभिव्यक्ति प्रदान करने का एक साधन तर्क है किंतु कलाकृति का जन्म भावना में होता है व भावनाओं से ही कलाकृति में चैतन्य आता है। महान् कलाकृति के सृजन में भावना व बुद्धि दोनों का सहयोग आवश्यक है। अतः दावि के शिष्यों की नवशास्त्रीयतावाद पर विशेष निष्ठा नहीं रही, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। १८ वीं सदी के फ्रेंच समाज में नवशास्त्रीयतावाद लोकप्रिय होने का मुख्य कारण था समकालीन फ्रेंच समाज का सामाजिक, राजनैतिक एवं वैयक्तिक जीवन के प्रति परंपरागत तार्किक दृष्टिकोण। किन्तु १८ वीं सदी के मध्य में एक महान् दार्शनिक ने फ्रान्स में अपने क्रान्तिकारी विचारों का प्रसार आरंभ किया जिससे परंपरागत दृष्टिकोण को धक्का पहुंचा। ये दार्शनिक थे ज्यां जाक रूसो (१७२२–१७७८)। इनके विचार से मानव में जन्मतः कोई बुराइयां नहीं होतीं व संसार में सुख व शांति की प्रस्थापना के लिये आवश्यक है कि मानव-जीवन का विकास स्वाभाविकता से हो—परंपरागत विचारों व आदर्शों को सामने रखने से नैसर्गिक प्रवृत्तियों पर दबाव आकर मानव के सृजनशील व्यक्तित्व का विकास नहीं होता; परंपरागत विचारों पर अंधश्रद्धा होने से संघर्ष बढ़ता है व अशांति का वातावरण फैलता है।

कलाक्षेत्र में परंपरागत आदर्शों को ठुकरा कर नैसर्गिक भावनाओं द्वारा कलानिर्मिति करने का कार्य रोमांसवादी कलाकारों ने शुरू किया जो रूसो के उपर्युक्त सिद्धांतों के अनुरूप था।

कला के इतिहास के अध्ययन से हम एक कलासंबंधी सत्य से परिचित होते हैं कि कला की कभी पूर्णत्व की अवस्था होती ही नहीं। पूर्णत्व के लिये प्रयत्नशील रहने की मानवप्रवृत्ति के अनुसार कलाकार किसी काल में शास्त्रीय नियमों का कठोर पालन कर के कलानिर्माण करता है तो उस काल के पश्चात् वह नियमों को तोड़ कर स्वतंत्र बुद्धि से कलानिर्मिति करता है। फ्रेंच कला में नवशास्त्रीयतावाद के स्थान पर रोमांसवाद का संपन्न होना इस सत्य का परिचायक है। रोमांसवादियों का विचार था कि केवल बुद्धिनिष्ठ व नियमबद्ध होने से कला की चेतना नष्ट हो जाती है व उसका विकास नहीं हो पाता। अतः उन्होंने निर्भीक होकर स्वतंत्र विचार से कलानिर्माण करने का निश्चय किया। उनका विश्वास था कि अपने उद्दिष्ट की प्राप्ति भावनाओं पर निर्भर रह कर चित्रण करने से ही हो सकती है। भावनाओं को जागृत करने के उद्देश्य से उन्होंने कल्पित कथाओं, साहसिक घटनाओं व परिकथाओं को चित्रित करना सयुक्तिक माना। दावि के अनुयायी जिरोदे व ग्रो

के चित्रों में हम रोमांसवाद के कुछ तत्वों को अंशतः ज़रूर देखते हैं किंतु रोमांसवाद को स्पष्ट रूप देने का श्रेय जेरिकोल को ही है।

तेओदोर जेरिकोल (१७९२-१८२४)

१८१९ में जेरिकोल ने अपना चित्र 'मेदुसा का वेड़ा'[8] फ्रेंच राष्ट्रीय कला भवन में प्रदर्शित किया। नवशास्त्रीयतावाद के लिये दावि के चित्र 'होरेशिआ का प्रण' का जो महत्व था वही महत्व रोमांसवाद के लिये 'मेदुसा का वेड़ा' का था। इस चित्र के जरिये जेरिकोल ने मेदुसा जहाज़ के अधिकारियों को दोषी ठहरा कर उनकी भर्त्सना की है। यह जहाज़ १८१८ में अफ्रीका के किनारे से कुछ दूर समुद्र में दुर्घटनाग्रस्त हुआ था जब उनके अधिकारियों ने जहाज़ के सौ से अधिक यात्रियों को छोटे से वेड़े पर उतार कर उन्हें अपने भाग्य के हवाले छोड़ दिया। उनमें से केवल १५ आदमी जीवित रहे व वाकी सब या तो भूख से या पागल होकर मर गये। बचे हुए आदमियों को एक अन्य जहाज़ ने देखा और वह उनको किनारे पर ले आया। इस प्रत्यक्ष घटना का चित्रण करने के हेतु जेरिकोल ने दुर्घटना से बचे हुए व्यक्तियों को प्रत्यक्ष देख कर चित्रित किया, जहाज़ के खाती से वेड़े का नमूना वनवाया व रुग्णालयों में जाकर मृत्युशय्या पर आसीन आदमियों के व लाशों के चित्र खींचे। उसी उद्देश्य से उन्होंने पागलखाने में जाकर वहां के पागल निवासियों के कई रेखाचित्र खींचे। कहा जाता है कि जेरिकोल ने अध्ययन के हेतु घर में भी लाशें रखी थीं जिसपर पड़ोसियों ने उनके खिलाफ शिकायतें कीं। 'मेदुसा का वेड़ा' में कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनसे वह नवशास्त्रीयतावादी चित्र से विलकुल भिन्न प्रतीत होता है। रोमांसवाद का यह सर्वप्रथम चित्र माना गया है। इस चित्र में जेरिकोल ने मानव-शरीरों को ग्रीक आदर्श के अनुसार बनाने के बजाय रुबेन्स की भांति गतिपूर्ण रेखाओं से अंकित किया है, रंगों का प्रयोग परम्परागत सिद्धांतों का पालन करके करने के बजाय घटना के कारुण्यपूर्ण भावप्रदर्शन का लक्ष्य सामने रखकर किया है व इस विचार से रंगयोजना पर इटालियन चित्रकार कारावाज्यो का अनुसरण किया है। वेड़े के व्यक्तियों के चेहरों के भाव एवं संपूर्ण अवस्था अत्यन्त दयनीय दिखायी है। चित्रसंयोजन में तिरछी रेखाओं का अनोखा प्रयोग करके मानवाकृतियों को सचेत बनाया है व नवशास्त्रीयतावाद के सम्मितियुक्त चित्रसंयोजन के नियमों को समाप्त कर दिया है। मानवशरीरों को ऊबड़खावड़ चित्रित करके उनकी करुण अवस्था का परिणामकारक दर्शन कराया है जो विचार नवशास्त्रीयतावादी चित्रकार के मन में कभी नहीं आ सकता था। तूलिकासंचालन व अंकन-पद्धति में अनोखा जोश है जिसका नव शास्त्रीयतावाद में अभाव था। जेरिकोल के इस चित्र की प्रतिष्ठित कलाकारों व कला समीक्षकों ने कटु आलोचना की, किंतु उस करुणाजनक सत्य घटना का प्रत्यक्ष चित्रण देखने के लिये दर्शकों ने भीड़ की। निराश होकर जेरिकोल इंग्लेंड चले गये जहां

उनको इस चित्र की प्रदर्शनी से काफी आमदनी हुई। इस प्रकार रोमांसवादी कला का आरम्भिक प्रचार उसके कलात्मक गुणों के आकर्षण से होने के बजाय चित्रित की गयी घटना के प्रासंगिक महत्व की वजह से हुआ।

रोमांसवाद 'रोमांटिसिज्म' शब्द का अनुवाद है जिसकी उत्पत्ति फ्रेंच शब्द 'रोमां' से हुई है (रोमां = कथा)। रोमांसवादी चित्रकारों ने विषय के रूप में साहसिक कथाओं व रोमांचकारी घटनाओं को चुना। चित्र को भावस्पर्शी बनाने के उद्देश्य से वे चमकीले रंगों का प्रयोग करते, लयपूर्ण रेखांकन करते व संयोजन, दूरदृश्य लघुता, संतुलन, अंकनपद्धति वगैरह कला के अंगों का अतिरंजित प्रयोग करते। एक तरह से रोमांसवाद यथार्थवाद का कल्पना की सहायता से किया गया अतिशयात्मक रूप था। अतः रोमांसवाद के पश्चात् अयथार्थवाद का आगमन कोई दूर नहीं था।

इंग्लैंड जाने से पहले जेरिकोल ने निश्चय किया था कि वे पुनः तूलिका को हाथ में नहीं उठायेंगे किन्तु उनको जीवन में कला से अधिक प्रिय कुछ भी नहीं था व उसके बिना वे जीवित नहीं रह सकते थे। इंग्लैंड के तीन साल के निवास में उन्होंने घोड़ों व जानवरों के कई चित्र बनाये। इंग्लैंड में उनको ख्यातनाम प्रकृति-चित्रकार जॉन कॉन्स्टेबल के चित्र देखने का अवसर प्राप्त हुआ। विशुद्ध व चमकीले रंगों के प्रयोगों द्वारा कॉन्स्टेबल परम्परागत भूरे रंगों से प्रचुर व निस्तेज रंगांकन पद्धति में परिवर्तन लाना चाहते थे जिसका इंग्लैंड में चित्रकारों व कलासमीक्षकों ने कड़ा विरोध किया। कॉन्स्टेबल की रंगांकन पद्धति से जेरिकोल बहुत प्रभावित हुए तथा प्राकृतिक स्थानों पर जाकर भिन्न वातावरण व प्रकाश से परिवेष्टित प्रकृति की भिन्न अवस्थाओं का निरीक्षण करके प्रत्यक्ष चित्रण करने की कॉन्स्टेबल की पद्धति उनको बहुत पसंद आयी। फ्रान्स लौटने पर जेरिकोल ने कॉन्स्टेबल के चित्रों की प्रशंसा की व १८२४ की फ्रेंच राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में कॉन्स्टेबल के तीन चित्र प्रदर्शित हुए। फ्रान्स में जेरिकोल ने पागलखाने के निवासियों के कुछ व्यक्तिचित्र बनाये जिनमें से 'पागल हत्यारा'[9] बहुत प्रभावपूर्ण व प्रसिद्ध चित्र है। घोड़े पर से गिरने से जेरिकोल की ३३वें साल में मृत्यु हुई।

ओजेन देलाक्रा (१७९९-१८५१)

जेरिकोल ने रोमांसवाद को आरम्भ किया परन्तु उसमें चेतना डाल कर सामर्थ्यशाली बनाने का श्रेय ओजेन देलाक्रा को है। अतः रोमांचवादी चित्रकारों में देलाक्रा को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। विद्यार्थी अवस्था में देलाक्रा जेरिकोल को अपना प्रेरणास्थान मानते थे यद्यपि जेरिकोल उनसे केवल आठ साल बड़े थे। देलाक्रा प्रयोगशील स्वभाव के थे व निष्कर्षों द्वारा सैद्धांतिक खोज में मग्न रहते थे। उन्होंने अपने कलासंबन्धी निष्कर्षों को पुस्तकरूप में प्रकाशित किया जिसका भावी—विशेषतया प्रभाववादी—चित्रकारों को अत्यन्त लाभ हुआ। उनकी कला में भावनाविलास के

अतिरिक्त बौद्धिक सामर्थ्य भी है। देलाक्रा की कला में वह उन्मुक्तता नहीं है जो रोमांसवाद में अपेक्षित है। देलाक्रा स्वयं को शास्त्रशुद्ध कला का सच्चा अनुयायी मानते थे किंतु वे उन चित्रकारों से घृणा करते थे जो उनकी दृष्टि से पुरानी कला का अंधानुकरण करते थे। शास्त्रनिष्ठ चित्रकार होते हुए उनकी कलाकृतियों में ऐसा अनोखा जोश है कि उनको रोमांसवादी कला में समाविष्ट किया गया है व कला के इतिहास में देलाक्रा को रोमांसवाद के प्रणेता का स्थान दिया गया है। देलाक्रा की कला अन्य रोमांचवादी चित्रकारों को आदर्शवत् थी। देलाक्रा की कला से यही सिद्ध होता है कि सच्चे कलाकार की कला वर्गीकरण के परे होती हैं। रोमांसवादी कला के प्रणेता माने गये देलाक्रा के चित्रों में शेरों, घोड़ों, अरबों आदि विषयों का केवल भावपूर्ण सृजन ही नहीं है वल्कि उनमें साहसी मानवों के जीवन का गहरा निरीक्षण एवं कला के मूल तत्वों की खोज भी है। नवशास्त्रीयतावादी चित्रकार दावि की कला के समान देलाक्रा की कला गहरे अध्ययन का परिपाक है, केवल उन्मुक्त अंकन नहीं। उनके इधर-उधर अव्यवस्थित ढंग से लगाये गये रंगों में व तूलिका संचालन में सहेतुकता है; विरोधयुक्त चमकीली रंगसंगति के पीछे पूर्वनियोजन है। देलाक्रा की कला में प्रतीत यह विरोधाभास कला के इतिहास में प्रत्येक महान् कलाकार की कला में अनुभव किया जाता है। अतः कला का वर्गीकरण केवल अध्ययन को सरल वनाने के उद्देश्य से किया जाना चाहिये; इसके अतिरिक्त उसका न कोई महत्व है न कोई सत्यार्थ। कला का सृजन इतना जटिल है कि विश्लेषण से उसको ज्ञान-सुलभ वनाना असंभव है; उसका सच्चा साक्षात्कार प्रत्यक्ष अनुभूति द्वारा हो सकता है।

देलाक्रा को प्रारम्भिक यश उनके चित्र 'यमलोक में डांटे व वर्जिल'[10] से मिला जव उनकी आयु पच्चीस साल की थी। जेरिकोल की भांति देलाक्रा आरम्भ में रुवेन्स व माइकेल एंजेलो से प्रभावित थे जिसका प्रमाण उनके उपर्युक्त चित्र से मिलता है। यह चित्र १८२२ की फ्रेंच राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में रखा गया। देलाक्रा के गुरु ग्वेरँ को यह चित्र विल्कुल पसन्द नहीं था और उन्होंने देलाक्रा को यह चित्र प्रदर्शित न करने की सलाह दी थी। परन्तु उस साल की राष्ट्रीय प्रदर्शनी की कार्यकारिणी के एक सदस्य ग्रो उस चित्र से इतने मोहित हुए कि उन्होंने कहा "रुवेन्स ने फिर जन्म लिया है", और चित्र को अपने खर्च से मढ़वाया, क्योंकि देलाक्रा के पास मढ़वाने के लिये पैसा नहीं था। इस चित्र की दर्शकों व आलोचकों ने निंदा की परन्तु फ्रेंच सरकार ने उसको ख़रीदा। इस घटना के पीछे ज़रूर कोई रहस्य था। माना जाता है कि देलाक्रा फ्रान्स के विदेशमंत्री तालेराँ की अनैतिक सम्वन्ध से पैदा हुई संतान थे व इसी कारण उनको प्रोत्साहित करने के हेतु उनका चित्र खरीदा गया। तालेराँ ने इस वात को चतुराई से छिपाये रखा और गुप्त रूप से वे देलाक्रा को सरकारी सहायता दिलाते रहे। विरोध के वावजूद देलाक्रा के चित्र राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में स्वीकृत होते गये, फ्रेंच सरकार उनको खरीदती रही व उनको

सरकारी भवनों में भित्तिचित्र बनाने का कार्य मिलता रहा। दो साल बाद देलाक्रा ने अपना विख्यात चित्र 'शिओ में मानव-संहार'[11] राष्ट्रीय प्रदर्शनी में रखा। इस चित्र की पहले से भी अधिक निंदा हुई। चित्रकार ग्रो—जो देलाक्रा के चित्र 'यमलोक में दांते व वर्जिल' से बहुत प्रभावित हुए थे—को भी यह चित्र बिल्कुल पसंद नहीं आया व उन्होंने चित्र का नामकरण किया 'चित्रकला का संहार'[12]। सर्वसाधारण दर्शकों व आलोचकों ने इस चित्र की इस वजह से निंदा की थी कि चित्र के विषय को समकालीन इतिहास से चुना था जबकि प्रचलित विचारधारा के अनुसार कला का विषय पौराणिक या आदर्शवादी ही हो सकता था। ग्रो व अन्य आलोचकों के विरोध का कारण भिन्न था; उनके विचारों के अनुसार उस चित्र में देलाक्रा के किये गये रंगों का प्रयोग नियमहीन एवं रंगांकन-पद्धति बेढंगी थी। वास्तव में इस चित्र को प्रदर्शनी में रखने के लिये भेजते समय देलाक्रा ने उसको अपनी अभ्यस्त पद्धति से ही बनाया था किंतु बीच में उन्होंने प्रदर्शनी के लिये आये हुए इंग्लिश चित्रकार कॉन्स्टेबल के चित्र 'चारे की गाड़ी'[13] को देखा व उससे वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने चित्र 'शिओ में मानवसंहार' के रंगांकन में प्रदर्शनी के उद्घाटन से पहले परिवर्तन किया, जो वे प्रदर्शनी के नियमानुसार कर सकते थे। कॉन्स्टेबल ने अपने चित्र में भिन्न रंगों को मिश्रित करके लगाने के बजाय उनका पृथक् अंकन किया था जबकि प्रचलित पद्धति के अनुसार भिन्न रंगों के क्षेत्रों को मुलायम कूंची से एक दूसरे में क्रमशः मिश्रित किया जाता था। देलाक्रा ने देखा कि कॉन्स्टेबल के अपनाये हुए ढंग से रंगों की स्वाभाविक चमक की रक्षा होती है एवं चित्रकार के तूलिका-संचालन की विशेषता को देख कर दर्शक उसके कलात्मक व्यक्तित्व से परिचित हो जाता हैं। विषय के चित्रण के साथ कलाकृति में कलाकार के व्यक्तित्व का दर्शन भी होना आवश्यक है; मुक्त अंकन पद्धति द्वारा किये गये कलाकार के व्यक्तित्व के दर्शन से दर्शक को सृजन का आनंद भी कुछ सीमा तक प्राप्त हो सकता है। देलाक्रा मानते थे कि कलाकृति चित्रकार की अनुभूति व दर्शक की अनुभूति के बीच की कड़ी होनी चाहिये। कॉन्स्टेबल से प्रेरणा पाकर देलाक्रा ने रंगों के क्षेत्र में प्रयोग आरम्भ किये व उस दिशा में वे आजीवन कार्य करते रहे जिससे आधुनिक कला को बहुत लाभ हुआ। दावि ने रंगांकन पद्धति पर जो बंधन लगाये थे उनसे देलाक्रा ने चित्रकारों को मुक्त किया व साथ में अपने नये विचार प्रदान किये। दावि की निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार प्रथम वस्तु के आकार को मूर्ति के समान स्पष्ट रेखांकित किया जाता था व उसके पश्चात् उस पर एक सा—जैसे छायाचित्र को रंगते समय किया जाता है—चिकना रंग फैलाया जाता था; प्रत्येक वस्तु का रंग वस्तु की बाह्य रेखा के अंदर ही अंदर ठीक लगाया जाता था। इसके विपरीत देलाक्रा के रंगांकन में स्फोटकता थी; वस्तु के निजी रंग के साथ अन्य रंगों को समाविष्ट करके उसमें चमक डाली जाती थी; वस्तु के छायावाले हिस्सों में हरा, जामुनी, नीला आदि रंग चमकते व

बाह्य रेखा के बाहर फैले हुए रंगों से वस्तु अधिक प्रकाशमान दिखायी देती। देलाक्रा ने आधुनिक चित्रकारों के सम्मुख इस महत्वपूर्ण विचार को स्पष्ट किया कि चित्रकला की आत्मा रंग है, अतः रंगों के गुणधर्मों का सही व पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके रंगांकन द्वारा ही वस्तु को ठोस रूप प्रदान किया जाना चाहिये; रंगीन चित्र रंगों से साकार होता है बाह्यरेखा से नहीं। बाद में प्रभाववादी चित्रकारों ने बाह्यरेखा को चित्रकला से हटा दिया। सेजान ने जो कहा था—"मेरे लिये आकार व रंग अभिन्न हैं"[14] उसका प्राथमिक रूप देलाक्रा के इन रंगों संबंधी विचारों में प्रतीत होता है। आधुनिक चित्रकला में विशुद्ध रंगों एवं विशुद्ध स्वाभाविक रंगांकन द्वारा जो प्रयोग हुए उनका उद्‌गम देलाक्रा की कला से हुआ। देलाक्रा की कला की एक और विशेषता थी उसके पौर्वात्य विषय जिसका दूसरे रोमांसवादी चित्रकारों ने अनुसरण किया। पौर्वात्य विषय एवं कला के प्रति आधुनिक कलाकारों की अभिरुचि देलाक्रा की कला से बढ़ती गयी। देलाक्रा बाह्य रेखा पर बल देकर आकार को स्पष्ट या आदर्श रूप देने के विरोधी थे। पौर्वात्य विषय का उनका चित्र 'सारडानापालुस की मृत्यु'[15] विशेष प्रसिद्ध है। यह चित्र उन्होंने १८२७ में प्रथम बार चित्रित किया किंतु उससे वे संतुष्ट नहीं थे व सत्रह साल बाद उन्होंने उसको फिर से छोटे आकार में बनाया। दोनों चित्रों के बीच के काल में देलाक्रा ने अपने चित्रकला संबंधी सिद्धांतों को विकसित करके सुनिश्चित रूप दिया। देलाक्रा के सामने वही समस्या थी जो हरेक प्रतिभावान् कलाकार के सामने होती है: भावनाओं को सुदृढ़ व सामर्थ्यवान् बनाकर साकार करना, यानि उच्छृंखल भावना व स्थिर आकार का सुयोग्य समन्वय। अतः वे जिस प्रकार नियमों का कठोर पालन करके चित्रण करने की निंदा करते थे उसी प्रकार वे केवल भावनोद्रेक के साथ बेढंगा सृजन करने के भी विरोधी थे। वे कहते "चित्रांकन गतिपूर्ण व उत्स्फूर्त होना चाहिये जिससे भावनाओं से चित्र सचेत हो जाये किंतु उसके पीछे जब तक निश्चित दृष्टिकोण व अभ्यास का सामर्थ्य नहीं है तब तक उसका प्रभावी व स्थायी रूप असंभव हैं"। अपने रंग संबंधी सिद्धांतों के विकास के लिये उन्होंने रंगबिरंगे व कल्पनारम्य पौर्वात्य वातावरण को उपयुक्त माना। अपने विचारों को उन्होंने 'मोरोक्को के वार्तापत्र'[16] शीर्षक से ग्रंथबद्ध किया। इस ग्रंथ में बीच-बीच में रेखाओं व जलरंगों में बनाये गये अभ्यासचित्र हैं। रोमांसवादी चित्रकारों में देलारोश, देकां व रेन्योल ने भी काफी ख्याति प्राप्त की, किंतु उनमें विशेष प्रतिभा नहीं थी।

अंग्र (१७८०-१८६७)

जिस समय देलाक्रा के नेतृत्व में रोमांसवाद का सामर्थ्य बढ़ता जा रहा था, ज्यां ओग्युस्त दोमिनिक अँग्र को छोड़ नवशास्त्रीयतावादी चित्रकारों में कोई विशेष ख्यातिप्राप्त चित्रकार नहीं रहा। अँग्र उम्र के सत्रहवें साल में पैरिस आये। वे दावि

के प्रिय शिष्य थे और विद्यार्थीदशा में उन्होंने कई पुरस्कार प्राप्त किये। तीन साल के भीतर ही दावि व अँग्र में वैचारिक संघर्ष शुरू हुआ और अँग्र को दावि की अकृपा का सामना करना पड़ा। १८०१ में उन्हें रोम पुरस्कार[17] विजेता घोषित किया गया किंतु फ्रेंच सरकार की आर्थिक स्थिति असंतोषजनक होने के कारण उनको और पांच साल तक रोम नहीं भेजा गया। अँग्र कोई क्रांतिकारी विचारों के चित्रकार नहीं थे। दावि के समान वे भी चित्रण में रेखाबद्ध स्पष्ट आकारों को प्रमुख स्थान देते और रंगों को गौण मानते। किंतु दावि ग्रीक मूर्तिकला में प्राप्त गणितीय, अनुपातशुद्ध आदर्शों का कट्टरता से पालन करते जबकि अँग्र मानवों व वस्तुओं के नैसर्गिक आकारों को सुंदर व आदर्श रूप देकर चित्रित करते। दृष्टिकोणों में यह मूलगामी अंतर होने से दावि की आकृतियों में श्रेष्ठत्व है तो अँग्र की आकृतियों में है मानवीय सौंदर्य।

अँग्र एक श्रेष्ठ रेखाचित्रकार थे और कला के इतिहास में उनकी तुलना के रेखाचित्रकार इनेगिने ही हुए। चित्र बनाने से पहले अँग्र सैकड़ों अभ्यासचित्र रेखांकित करते। पेन्सिल द्वारा बनाये हुए उनके रेखाचित्र निरीक्षण, अभ्यास, कौशल व उत्कृष्ट शैली के उदाहरण हैं। व्यक्तिचित्र बनाने से पहले भी अँग्र उस व्यक्ति का पेन्सिल से छायाप्रकाश व बारीकियों को दिखाते हुए पूर्ण रेखाचित्र बनाते। उन्होंने यथार्थ व्यक्तिचित्रण को विशेष महत्व नहीं दिया किंतु व्यक्तिचित्र बनाने के लिये जब वे यथार्थवादी पद्धति को अपनाते तब उनकी बराबरी कोई भी यथार्थवादी चित्रकार नहीं कर सकता था।

१८०६ से १८२० तक अँग्र रोम में रहे जहां उन्हें रोम पुरस्कार देकर विशेष अध्ययन के लिये भेजा गया था। वहां उन पर राफेल का बहुत प्रभाव पड़ा। १८२० से १८२४ तक वे फ्लोरेन्स में रहे। १८२५ में दावि की मृत्यु होने पर अँग्र फ्रेंच राष्ट्रीय कला संस्था[18] के प्रमुख कलाकार बने और उन्होंने अपने विचारों को फ्रेंच कलाक्षेत्र में कानून की तरह लागू किया। उस समय किसी भी कलाकार को जब तक फ्रेंच राष्ट्रीय कला संस्था से मान्यता प्राप्त नहीं होती तब तक प्रसिद्धि या पैसा एक असंभव बात थी। कलाकार अपनी कलाकृतियों के विक्रय की बात भी नहीं सोच सकता जब तक उसकी कृतियां राष्ट्रीय कला संस्था की वार्षिक प्रदर्शनी में स्वीकृत नहीं होतीं। इस प्रकार संस्था के पुराने उच्चपदस्थ कलाकारों के हाथों में ऐसा सामर्थ्य था जिससे वे नवविचारों के कलाकारों को आगे नहीं बढ़ने देते। अँग्र के विचारों के अनुसार फ्रेंच कलाशिक्षासंस्थाओं[19] में रेखांकन पर बल दिया जाने लगा व विद्यार्थियों को रंगांकन आरम्भ करने से पहले सालों तक केवल रेखांकन करना पड़ता। अँग्र के सिद्धांत 'रेखांकन चित्रकला का एकमेव आधार है' के देलाक्रा कट्टर विरोधी थे। किंतु फ्रेंच कला के इतिहास में देलाक्रा एक अपवादमात्र कलाकार थे जो फ्रेंच राष्ट्रीय कला संस्था के विरोध के बावजूद ख्याति व धन प्राप्त कर सके और इसके पीछे क्या रहस्यपूर्ण कारण थे यह हम पहले ही देख चुके हैं।

स्त्री के नैसर्गिक सौंदर्य को आदर्श रूप देकर बनाये गये अँग्र के चित्रों में 'उद्गम' व 'तुर्की हमामखाना'[20] प्रसिद्ध हैं। अँग्र एक उत्कृष्ट व्यक्तिचित्रकार भी थे व उनके 'मादाम रिविए' 'फ्रान्स्वा ग्राने'[21] आदि व्यक्तिचित्र प्रसिद्ध हैं किंतु 'लुई वर्तें'[22] जैसे अपवादमात्र चित्रों को छोड़ उनके व्यक्तिचित्रों में व्यक्ति की स्वभाव विशेषताओं का दर्शन हमें नहीं मिलता। उनके व्यक्तिचित्र कुशल अंकनपद्धति व कलात्मक गुणों के सौंदर्य के विचार से ही प्रशंसनीय हैं। दावि की भांति ग्रीक कला का आदर्श सामने नहीं रखने पर भी अँग्र को शास्त्रनिष्ठ चित्रकार मानना पड़ता है क्योंकि शास्त्रनिष्ठ कलाकार के मुख्य लक्षण हैं नियमबद्धता व कला के आंतरिक गुणों का तर्कशुद्ध विकास करने का निग्रह जो अँग्र में विशेष स्पष्ट थे। अँग्र के समान कोमल, सुनियंत्रित व सजीव रेखा इससे पहले केवल राफेल ही बना सके। इन गुणों से ही अँग्र की गणना संसार के श्रेष्ठ चित्रकारों में की जाती है किंतु उनके चित्रों में हम मानवता के दर्शन की आशा नहीं कर सकते।

रोमांसवाद व नवशास्त्रीयतावाद में इतनी भिन्नताएं होते हुए भी एक समानता थी—यथार्थ मानव-जीवन से दोनों मीलों दूर थे। रोमांसवाद ने कल्पना की सहायता से कभी मनोरम, तो कभी साहसपूर्ण घटनाओं से भरी हुई किंतु असत्य सृष्टि का निर्माण किया; व नवशास्त्रीयतावाद ने आदर्शों को सामने रख कर ऐसी चित्रसृष्टि का निर्माण किया जो वास्तविकता से उतनी ही दूर थी। ऐसी कलानिर्मिति से समाज के पीड़ित लोकों का दुःख मिटनेवाला नहीं था और बदलती परिस्थिति में पीड़ित वर्ग का राष्ट्रीय तथा सामाजिक महत्व बढ़ता जा रहा था। विचारवंतों का ध्यान समाज की सत्य स्थिति की ओर आकृष्ट हुआ व विचारों के नवीन प्रवाहों ने राजनैतिक एवं कला के क्षेत्रों को घेर लिया। पीड़ित जनता के उद्धार के विचार से प्रेरित होकर नवविचारकों ने पुराने विचारों को धक्का देना आरम्भ किया। कलाक्षेत्र में भी ऐसे विचारों से प्रेरित होकर कुछ नवीन कलाकारों ने क्रांति शुरू की जिनमें से दोमीय, कुर्बे, मिले व कोरो विशेष प्रसिद्ध हैं। इन सब चित्रकारों को यथार्थवादी चित्रकार कहते हैं क्योंकि इनकी कला में कल्पना की सहायता से निर्मित आभासात्मक, स्वप्निल चित्रण या पलायनवाद नहीं है एवं मायावी आदर्शों के पीछे सत्य परिस्थिति को छिपाने के प्रयत्न भी नहीं हैं बल्कि जो हैं वे हैं वस्तुस्थिति का गहरे परिशीलन के साथ किया सच्ची प्रतिभाओं से युक्त दर्शन, व पीड़ित मानव जीवन के सुखदुःखों के प्रति हार्दिक सहानुभूति। इन सभी चित्रकारों से पूर्व विख्यात स्पॅनिश चित्रकार गोया की कला में हमको यथार्थवाद के बीज प्रतीत होते हैं यद्यपि असाधारण कल्पनाशक्ति व संपन्न प्रतिभा के कारण उनकी रोमांसवादी चित्रकारों में भी गणना की जाती है। गोया व एल्ग्रेको दोनों आधुनिक चित्रकला के पूर्वकाल के चित्रकार हैं परन्तु उनकी कला प्रेरणा के रूप में एवं अंतर्गत कलात्मक गुणों के कारण आधुनिक चित्रकला के विकास में बहुत सहायक हुई। अतः पूर्वपीठिका में उन दोनों की कला का विचार

आवश्यक है।

फ्रान्सिस्को गोया (१७४६-१८२८)

गोया को हम विशुद्ध रोमांसवादी चित्रकार नहीं मान सकते क्योंकि उनके रोमांसवादी चित्रण में भी यथार्थ जीवन के गहरे अनुभवों का सामर्थ्य है; उसी प्रकार हम उनको विशुद्ध यथार्थवादी चित्रकार भी नहीं मान सकते क्योंकि उनके यथार्थवादी चित्रण में उपहास, निंदा व करुणा के अतिरिक्त अधिक आत्मीयता से सत्य परिस्थिति का अध्ययन करके मार्गदर्शन करने का प्रयत्न नहीं है।

गोया दाविद के समकालीन थे किंतु उन्होंने अपने कलात्मक व्यक्तित्व की आवश्यकता के सामने कला के परम्परागत नियमों को ठुकरा दिया। उनकी कल्पना-शक्ति की उड़ान में फ्रेंच रोमांसवाद की निष्क्रियता व निरुपयुक्तता नहीं हैं; उनकी कल्पनाशक्ति जागरूक है। उनके काल्पनिक चित्र भी सत्यसृष्टि से गहरा संबंध रखते हैं और उनमें जीवन के कटु सत्य की निर्भीक आलोचना है। कला के इतिहास में ऐसा अन्य जिंदादिल कलाकार शायद ही हुआ होगा जिसने सत्य परिस्थिति के प्रति इतने सचेत रह कर, साहस के साथ संसार की दुष्ट शक्तियों से कड़ा मुकाबला किया हो। अतः अन्य रोमांसवादी कलाकारों में व गोया में जमीन आसमान का अन्तर है यद्यपि असामान्य कल्पनाशक्ति के कारण उनकी रोमांसवादी कलाकारों में गणना की जाती है। कुछ यथार्थवादी कलाकारों की भांति गोया वास्तव सृष्टि के केवल बाह्य सौंदर्य से लुब्ध होकर संतुष्ट नहीं हुए बल्कि उन्होंने अपनी अंतर्भेदी प्रतिभा से जीवन की बुराइयों का पर्दा फाश किया। गोया ने ऐसी परिस्थिति को देखा जिसको वे सह नहीं सकते थे और उन्होंने उससे सामना करने का मार्ग स्वीकार किया। आदर्शवादी विचारों की मदिरा पीकर सत्य परिस्थिति को भूलना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। स्पेन की राज्यसत्ता पर मदांध, मूर्ख व दुराचारी राजा एवं तत्सम दरबारी लोकों का प्रभुत्व था। अशिक्षित व असहाय जनता दुःख व दरिद्रता से पीड़ित थी।

गोया का जन्म एक निर्धन किसान परिवार में स्पेन के आरागोन प्रांत के फ्वेन्डेटोडोस गांव में हुआ। अन्य किसान बच्चों की तरह उनको सुबह से शाम तक खेत में परिश्रम करना पड़ता। उस समय वे जली हुई लकड़ियों से पत्थरों व चट्टानों पर रेखाचित्र बनाते थे। इस छोटे बच्चे की कुशलता को देख कर गांववालों ने उसको गिरजाघर की वेदी पर लटकाने के पट को चित्रित करने का काम सौंप दिया। आयु के १४वें साल में एक धनिक सज्जन ने अपने खर्च से गोया को कला का अध्ययन करने के लिए सारागोसा शहर भेज दिया। गोया के अनिर्बन्ध जीवन व उत्पातकारी कला का यहीं से आरंभ हुआ। वे सारा दिन चित्र बनाने में, रात नशा व नृत्य करने में व छुरी तलवार का खेल व सांडों से लड़ाई करने में बिताते। वे आवारा लड़कों की एक टोली के नेता थे और इनकी टोली की दूसरी टोली से हुई लड़ाई में कुछ लड़के मारे

जाने से उनको माड्रिड भागना पड़ा। वहां भी उनकी परिपाटी में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और वहीं से वे इटाली भाग गये। वहां वे स्पेन के लोकों के जीवन पर चित्र बना कर सस्ते में बेचते व रोम के नीतिहीन लोकों के साथ रहते। कुछ समय तक वे इटाली के पार्मा शहर में रहे जहां उनको वहां की कलासंस्था का पुरस्कार प्राप्त हुआ। कुछ साल तक इटाली में निवास करने के बाद वे अपनी मातृभूमि स्पेन लौट आये और आरागोन में रहने लगे। उनका एक ख्यातनाम चित्रकार की भगिनी से विवाह संपन्न हुआ व उनको दीवार पर्दों की राजकीय निर्माणशाला में चित्रकार की नौकरी मिली। उन्होंने रुबेन्स से प्रभावित प्रचलित दीवार पर्दों की अंकनशैली को छोड़ कर एक स्वतंत्र नयी शैली में काम करना शुरू किया। दीवारपर्दों पर, अप्सराओं व देवताओं की जगह, उन्होंने समकालीन स्पेन के लोकों के जीवन को चित्रित करना शुरू किया। रेखाओं से बनाये गये रूढ़िबद्ध आकारों की जगह उन्होंने ठोस आकारों को गहरे रंगों में अंकित करके दीवारपर्दों को अलंकृत किया। अब तक गोया अपनी शैली का पूर्ण विकास कर चुके थे और उनको भित्तिचित्रण, व्यक्तिचित्रण, गिरजाघर का अलंकरण आदि काम मिलने लगा। गोया ने स्पेन की राजधानी बार्सिलोना को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। राजा के भाई से उनकी घनिष्ठ मित्रता थी जो राजा को पसंद नहीं थीं और उसी कारण राजा ने उनको दरबार में स्थान नहीं दिया। किन्तु गोया अब ख्याति-प्राप्त चित्रकार हो गये थे तथा उनको राजाश्रय की आवश्यकता नहीं थी। सरदार व सधन लोक अपना व्यक्तिचित्र बनवाने के लिए गोया के पीछे पड़ते। गोया स्पेन की कलासंस्था के अध्यक्ष बन गये। स्पेन के राजा तीसरे चार्लस की मृत्यु के बाद गोया की दरबारी चित्रकार के रूप में नियुक्ति हुई। इस समय सत्ताधारी वर्ग का भ्रष्टाचार व अनीतिमय जीवन एवं जनता की विपन्नावस्था चरम सीमा तक पहुंच गयी थी। गोया समाज के सभी स्तरों की परिस्थिति देख चुके थे और अब से उन्होंने जो चित्र बनाये उनसे उनकी असाधारण प्रतिभा व श्रेष्ठ व्यक्तित्व का परिचय होता है। गोया ने राजा व सधन वर्ग के जो व्यक्तिचित्र बनाये हैं उनमें उन व्यक्तियों की विलासवृत्ति व मूर्खता की ओर स्पष्ट संकेत किया है। राजा चतुर्थ चार्लस के परिवार का सामूहिक व्यक्तिचित्र इस बात का उदाहरण है। इस चित्र में राजा व राज्यपरिवार के सदस्यों को खुश करने का जरासा भी प्रयत्न नहीं है बल्कि व्यभिचारी व बदसूरत रानी एवं अन्य बुद्धिहीन सदस्यों के चेहरों पर यथार्थ भावों को चित्रित करके गोया ने उनको चिरकाल के लिये बदनाम किया है। किंतु इस चित्र से गोया की निंदा होने के बजाय धनिक वर्ग में गोया से व्यक्तिचित्र बनवाने की स्पर्धा सी शुरू हो गयी। समाजप्रसिद्ध महिलाएं गोया से व्यक्तिचित्र बनवाना प्रतिष्ठा व आत्मसम्मान की बात मानती थीं। गोया के बनाये आल्बा की बेगम के दो व्यक्ति-एक सवस्त्र व दूसरा विवस्त्र–[23] कला के इतिहास में प्रसिद्ध हैं; स्त्री शरीर की कोमलता का आकर्षक चित्रण एवं मोहक रंगांकन की दृष्टि से ये चित्र बहुत ही सुन्दर हैं। कहते हैं कि गोया के साथ बेगम की

घनिष्ठ मित्रता थी। एक समय वे वेगम के साथ पहाड़ों में घूमने गये थे जब सर्दी-जुकाम होकर वे पूर्ण वहरे हो गये। गोया ने 'एक्वार्टिट' पद्धति से कई चित्र बनाये। 'चांचल्य'[24] नाम की चित्रमालिका में उन्होंने मनुष्य की इन्द्रियाधीनता, अहंकार व मूर्खता का उपहास किया है। १८०८ में फ्रांस ने स्पेन पर आक्रमण किया और निर्घृणता से निष्पाप लोकों की हत्या की। इस विषय के उनके 'एक्वार्टिटस्' 'युद्ध की भयानकता'[25] नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार आलोचनात्मक व निंदागर्भित चित्र कला के इतिहास में सर्वप्रथम गोया ने ही निर्माण किये। युद्ध के विषय पर उन्होंने 'युद्ध के दुष्परिणाम'[26] नाम से कुछ तैलचित्र भी बनाये जिनमें से 'दो मई' व 'तीन मई' विशेष प्रसिद्ध हैं और वे उनके समाजवादी चित्रण की स्फोटकता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। चित्रों में फ्रेंच सैनिक स्पेनिश जनता की निर्घृणता से हत्या करते हुए दिखाये हैं। ये चित्र गोया के सबसे प्रसिद्ध चित्रों में से हैं। अबतक के कलाकारों ने युद्ध के चित्रों का निर्माण वीरता व धैर्य की प्रशंसा में किया था किन्तु गोया ने आक्रामकों की निर्दयता की निंदा करने व पराभूत जनता की दयनीय अवस्था की ओर सबका ध्यान आकर्षित करने के लिये ये चित्र बनाये। अतः गोया के इन चित्रों में आत्मीयता व नवविचार का जोश है जो गुण पुराने युद्धचित्रों में नहीं मिलते। इसके अलावा गोया ने इन चित्रों के निर्माण में प्रभावी संयोजन, प्रसंगोचित रंगसंगति व सामर्थ्यपूर्ण तूलिका संचालन में अपूर्व कौशल दिखाया है। चंचल व अभिव्यक्तिपूर्ण रेखाओं व हल्के-गहरे क्षेत्रों की यथोचित किंतु नाटकीय योजना के परिणामस्वरूप चित्र विस्फोटक बने हैं; जीवन मरण के अंतिम क्षणों का इतना परिणामकारक यथार्थ चित्रण करने में इनेगिने महान् चित्रकार ही सफल हुए हैं।

नेपोलियन ने स्पेन को हरा कर अपने भाई जोसेफ को स्पेन की राजगद्दी पर बिठाया किंतु गोया के दरबारी चित्रकार के स्थान को कोई धक्का नहीं पहुंचा बल्कि जोसेफ ने उनको मानचिन्ह प्रदान किया। नेपालियन की पराजय के बाद स्पेन में फिर से पुराना बुर्बोन वंश सत्तारूढ़ हुआ और राजसत्ता से एकनिष्ठ रहने का प्रण लेकर गोया ने स्वयं को बचाया। राजा ने उनको दरबार में आश्रय देने का वचन दिया था परन्तु गोया दरबारी जीवन से ऊब गये थे अतः वे सेविल चले गये। वहां के गिरजाघर को उन्होंने चित्रित किया। माड्रिड लौटने पर वे शहर के सीमावर्ती भाग में १८१९ में खरीदे हुए अपने मकान में शांति से समय बिताने लगे। इस मकान की दीवारों पर उन्होंने अपने अंतिम महत्वपूर्ण चित्र बनाये जो अतियथार्थवादी हैं यद्यपि कला के इतिहास में अतियथार्थवाद का जन्म होने में अभी लगभग सौ साल बाकी थे इन चित्रों में 'पुत्रभक्षक शनि' व 'जादूगरनियों का व्रतदिन[27] विशेष प्रसिद्ध हैं। आयु के ७८ वें साल में गोया पैरिस गये किंतु उस समय उनकी आंखें कमजोर होगई थीं और शरीर दुर्बल हो गया था। वहां उनको नवकलाकारों में से जेरिकोल व देलाक्रा की कलाकृतियां बहुत पसंद आयीं; ये दोनों चित्रकार बाद में

रोमांसवाद के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हुए। गोया की मृत्यु आयु के ८३ वें साल में माड्रिड में हुई।

आधुनिक चित्रकला के लिये गोया की कला का बड़ा महत्व है। उन्होंने किन्हीं कलासंबंधी सिद्धान्तों को प्रस्थापित करने के उद्देश्य से कलानिर्मिति नहीं की फिर भी उनकी कला में यथार्थवाद, रोमांसवाद एवं आधुनिक कला के अभिव्यंजनावाद व अतियथार्थवाद के बीज दृष्टिगोचर हैं। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि इन सभी वादों का उदय गोया की मृत्यु के कई साल बाद हुआ। गोया की कला की विशेषताओं को देख कर उनको चिरकालीन महत्व का महान् कलाकार माना है। गोया की कलात्मक अभिव्यक्ति की यह विशेषता है कि उनके मानव-जीवन के घृणायुक्त चित्रों में अगतिकता व निराशा के भाव हैं तथा काल्पनिक चित्रों में जीवन की निरर्थकता की स्पष्ट छाया है। इस विरोधाभास के कारण उनके ऐसे चित्र कभी अभिव्यंजनावादी बन गये हैं तो कभी उनमें व्यक्तिगत अंतर्मुखता आयी है। गोया के रंगांकन की चमक, व तूलिकासंचालन की स्पष्टता व सामर्थ्य को देख कर उनको प्रभाववाद का एक अग्रदूत मानना पड़ता है। देलाक्रा की कल्पना व गोया की कल्पना में जमीन आसमान का अंतर है। देलाक्रा की कल्पना सौंदर्य व आशा के भाव लिये हुए है जबकि गोया की कल्पना बीभत्स व निराशा की ओर संकेत करती है; अतः गोया को सत्यार्थ में रोमांसवादी चित्रकार नहीं मान सकते। गोया के चित्रों में रूप संबंधी कलात्मक गुण परिपक्व अवस्था में पाये जाते हैं तथा उनके यथार्थ दर्शन में कल्पनाविलास व आंतरिकता का संमिश्रण है अतः गोया की कला का वर्गीकरण कठिन है। गोया की कला की महानता इस बात में है कि उनकी कला का जन्म कठोर बौद्धिकता में नहीं बल्कि असाधारण प्रतिभा व जीवन के प्रति सच्ची निष्ठा में हुआ। इन्हीं कारणों से गोया की कला आधुनिक कलाकारों को सर्वदा प्रेरणाप्रद रही।

एलग्रेको (१५४५-१६१४)

गोया के समान एलग्रेको एक ऐसे चित्रकार हुए जो कालगणना के अनुसार आधुनिक कला के अंतर्गत नहीं हैं किंतु जिनकी कला आधुनिक कलाकारों को सदैव प्रेरणा देती रही और जो देखने में भी आधुनिक कला की समीपवर्ती है।

उनका संपूर्ण नाम डोमेनिकोस थिओटो कोत्युलोस था और वे एलग्रेको नाम से प्रसिद्ध हुए। उनका जन्म क्रीट में हुआ। विद्यार्थी अवस्था में उन्होंने बिजांटाइन प्रतिमा-चित्रण का अध्ययन किया बाद में वेनिस जा कर टिशिआं व टिन्टोरेटो की चित्रशालाओं में पुनर्जागरणकालीन व्यक्तिचित्रण व रंगांकन-पद्धतियों का अध्ययन किया। १५७७ में उन्होंने स्पेन के टोलेडो नाम के गांव को अपना निवासस्थान बनाया व अंततक वहीं रहे।

आरंभ से ही एलग्रेको घमंडी थे और उनकी किसी से पटती नहीं थी। स्पेन का राजा व जनता दोनों को वे अप्रिय थे किंतु वेनिस शैली के कारण उनको व्यक्ति-चित्रण एवं धार्मिक चित्रण का काम मिलता रहा तथा वे आर्थिक दृष्टि से संपन्न हुए। उनके सुखासीन जीवन को देख कर आश्चर्य होता है कि उन्होंने इतने आध्यात्मिक प्रभाव से ओतप्रोत चित्र कैसे बनाये।

एलग्रेको के स्पेन में बनाये गये आरंभिक चित्रों में 'मेरी का पुनर्ग्रहण [28]' स्पष्टतया पुनर्जागरणकालीन चित्रकला से प्रभावित है; यह चित्र उन्होंने १५७७ में बनाया। बाद में उनकी शैली में परिवर्तन होने लगा व १५८८ में बनाये गये उनके चित्र 'ओर्गाज के सरदार का दफन—'[29] जो करीब १६'×२२' बड़ा है—उनकी शैली के विकास की दिशा पर प्रकाश डालता है। एलग्रेको इस चित्र को अपनी एक अच्छी कलाकृति मानते थे और इस पर विजांटाइन शैली व टिन्टोरेटो का संमिश्र प्रभाव है। उनके चित्र अक्सर मानवाकृतियों से भरे होते हैं और चित्र की पृष्ठभूमि बहुत कम दिखायी देती है किन्तु उनका चित्र 'मन्दिर का शुद्धिकरण' [30] इस बात का अपवाद है। इसकी पृष्ठभूमि में मंदिर है और मंदिर की खिड़की में से दूरस्थित जेरूशलेम शहर का धुंधला दृश्य दिखायी देता है।

उन्होंने एक ही अपवादमात्र प्राकृतिक दृश्य चित्रित किया किंतु प्रकृति-चित्रण के इतिहास में वह बहुत ही श्रेष्ठ चित्र माना गया है। उस चित्र का नाम है, 'टोलेडो का दृश्य' काले आकाश में घने बादल छाये हुए हैं और उनके बीच बीच से तीव्र प्रकाश-शलाकाएं निकल कर नीचे पहाड़ों पर फैले हुए किला, गिरजाघर, नदी, वृक्षों आदि पर गहरी छाया के साथ आंख-मिचौनी खेल रही हैं, जैसे कि पंचमहातत्व सचेत होकर अपने अस्तित्व का अनुभव करा रहे हैं।

१६वीं सदी के चित्रकार होते हुए भी एल्ग्रेको आधुनिक चित्रकारों की प्रेरणा के स्रोत थे। सेजान व पिकासो उनकी ऐंठनदार मानवाकृतियों से एवं आकारों के तोड़ से बहुत प्रभावित थे। मूल आकारों, सहजनिर्मित गहरी रेखाओं व हलके-गहरे रंगों के स्पष्ट क्षेत्रों की सहायता से उन्होंने मानव-शरीर व अन्य वस्तुओं को जो ठोसपन प्रदान किया है वह सेजान की शैली से मिलता-जुलता है और यह बात सेजान के स्नान-मग्न व्यक्तियों की आकृतियों से एल्ग्रेको की मानवाकृतियों की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाती है। एल्ग्रेको की सोच समझकर लंबी की गयी ऐंठनदार मानवाकृतियों की तुलना आधुनिक चित्रकार मोदिल्यानी एवं अभिव्यंजनावादी चित्रकारों की चित्रित मानवाकृतियों से की जा सकती है। प्रसिद्ध जर्मन लेखक मैर ग्राफे ने एल्ग्रेको को स्पेन का सबसे महान् चित्रकार माना है। स्पेन में ख्याति व यश प्राप्त करके इस महान् चित्रकार ने १६१४ में इहलोक से विदा ली और बाद में करीब तीन सौ साल तक कला-क्षेत्र में उनकी कला की उपेक्षा हुई। आधुनिक कलाकारों व कलासमीक्षकों ने उनकी कला की महानता को पहचाना और कला के इतिहास में उनको श्रेष्ठ स्थान प्राप्त

हुआ। १९ वीं सदी के आरंभ में जब यथार्थवाद सब से प्रमुख कलाशैली थी तब स्पेन के चित्रकार वेलास्के एक महान् व आदर्श चित्रकार माने जाते थे व एल्ग्रेको की कला की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। किंतु १९ वीं सदी के अंत के करीब यथार्थवाद का महत्व घटते ही आधुनिक कला के प्रणेताओं का—विशेषतया सेजान व पिकासो का—ध्यान एल्ग्रेको की कला की ओर आकृष्ट हुआ व उनको अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हुआ।

एल्ग्रेको की रंगसंगति विरोधयुक्त व चमकीली है। बिजांटाइन कला के बाद ऐसी चमकीली रंगसंगति एल्ग्रेको की कला में ही देखने को मिलती है। बिजांटाइन कला व आधुनिक कला में आकारों की ऐंठन व चमकीली रंगसंगति के प्रयोग का जो महत्व है वही एल्ग्रेको की कला में है। अतः एल्ग्रेको की कला को हम बिजांटाइन कला व आधुनिक कला के बीच की कड़ी मान सकते हैं। और एक कारण से एल्ग्रेको की कला आधुनिक कलाकारों के लिये आदर्शवत् है; वह कारण है उनकी अंकनपद्धति की निर्भीक, वैयक्तिक स्वतंत्रता। पुनर्जागरणकाल से प्रचलित नियमबद्ध रेखांकन व चिकनी रंगांकन पद्धति को देखते हुए एल्ग्रेको की रेखाओं की उन्मुक्तता व ऐंठन, रंगांकन की चमक एवं तूलिका संचालन की निर्भीकता आश्चर्यजनक हैं।

यथार्थवाद व ओनोरे दोमीय (१८०८-१८७९)

मानव की कमजोरियां, विवशता व अहंकार का एवं उसके सुखदुःखों का आत्मीयता से परिशीलन करके परिणामकारक किंतु व्यंगपूर्ण चित्रण करने का श्रेय ओनोरे दोमीय को है।

दोमीय का जन्म मार्साय शहर में हुआ। उम्र के २२ वें साल में उन्होंने व्यंग्य-चित्रकार के रूप में कार्य शुरू किया। उसके पश्चात् ४० साल के अंदर उन्होंने करीब ४००० व्यंग्य चित्र, कई रेखाचित्र व सैंकड़ों तैलचित्रों का निर्माण किया। ये सब यथार्थवादी कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इतना कार्य करने पर भी इस महान चित्रकार की मृत्यु अत्यंत विपन्नावस्था में हुई।

साधारण रूप से कहा जा सकता है कि १९ वीं सदी के पूर्वार्ध में फ्रेंच नागरिक रोमांसवादी दृष्टिकोण अपनाये हुए था जबकि उस सदी के उत्तरार्ध में तेज बदलती हुई परिस्थितिवश उसका दृष्टिकोण यथार्थवादी बन गया और वह अपने हरेक विचार व व्यवहार का मूल्यांकन उसी दृष्टिकोण से करने लगा। दोमीय के सामने ऐसी सामाजिक परिस्थिति थी जब बुद्धिजीवी मध्यमवर्ग निष्फल कल्पनावाद से उद्विग्न हुआ था और वह पक्का उपयुक्ततावादी बन गया था। महान् कलाकारों की कला सदैव समकालीन परिस्थिति का दर्पण व विचारों का सारसंग्रह रही है; दोमीय की कला इस बात का उदाहरण है। उनकी कला में समकालीन परिस्थिति के कारणों की खोज व प्रचलित दुष्ट परंपराओं की उपहासयुक्त निंदा है। दोमीय ने वस्तुस्थिति को अपनी

कला के लिये समुचित विषय माना और परंपरागत पौराणिक व ऐतिहासिक विषयों को त्यागा। पौल सॅक्स ने लिखा है "अब तक कोई भी व्यक्ति अपने समय के साथ दोमीय जितना एकरूप नहीं हुआ"। उन्होंने दोमीय की तुलना इंग्लिश उपन्यासकार डिकन्स से की है। दोनों ने शहरी आदमी के जीवन का गहरा निरीक्षण किया और उसकी भावनाओं, मनोवृत्तियों व सुखदुःखों का मनोवैज्ञानिक तरीकों से उपहासात्मक चित्रण किया।

सौंदर्य की देवता वीनस से ग्रामीण कन्या को चित्रित करना यथार्थवादी कलाकार को अधिक प्रिय था। उसने देखा कि बाह्य रूप में नीरस दिखायी देने वाली वास्तविकता में इतनी विविधता है कि उसका कोई पार नहीं व कलाकार को वास्तव सृष्टि में ही चित्रण योग्य अनंत विषय मिल सकते हैं यदि वह खुली आंखों देखने व बिना पूर्वग्रह व पक्षपात के विचार करने की कोशिश करे। इस प्रकार दृष्टिकोण में मूलगामी परिवर्तन होते ही यथार्थवादी कलाकार को परंपरागत आदर्श सौंदर्य से मानव शरीर का नैसर्गिक रूप, कपोलकल्पित कथाओं से सत्य घटनाएं व काल्पनिक वातावरण से सत्य परिस्थिति अधिक प्रिय व चित्रण योग्य प्रतीत होने लगीं। इस प्रकार सर्व-सामान्य मानव, उसका दैनंदिन जीवन, उसकी सुखःदुख की कहानियां कला का प्रमुख विषय बन गयीं। चित्रकार केवल कल्पना पर निर्भर रह कर चित्रण करने के बजाय आसपास की दुनिया का प्रेक्षक के रूप में निरीक्षण करने लगा और उसकी कला जीवन का सच्चा दर्पण बन गयी।

सत्य जीवन का परिणामकारक चित्रण करने के उद्देश्य से यथार्थवादी कला-कार को परंपरागत अंकनपद्धतियों में बहुत परिवर्तन करना पड़ा जिससे उसकी शैली में अंकन के सहज सामर्थ्य व नैसर्गिकता के गुणों की रक्षा हुई व पुरानी शैली का नियमित एकसा चिकनापन हट गया। अंकनपद्धति में कलाकार को नियंत्रणपूर्वक विष-यानुकूल परिवर्तन करना आवश्यक हुआ एवं कलाकारों में नये प्रयोग करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। यथार्थवाद के कारण कलाकार के व्यक्तिगत चिंतन व दर्शन को प्रोत्साहन मिला और वह बंधमुक्त होकर सृजन-व्यस्त हो गया। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि भिन्न प्रकृति के कलाकारों को, भौतिक स्तर पर अपनी सृजनात्मक भाव-नाओं की पूर्ति का यथार्थवाद एकमात्र प्रभावी साधन प्रतीत हुआ। काव्यमय प्रवृत्ति के चित्रकार प्रकृतिचित्रण की ओर आकृष्ट हुए व चित्रकला में प्रकृतिचित्रण का महत्व बढ़ गया। समाजसेवा से प्रेरित कलाकारों ने पीड़ित जनता के दुःखी जीवन का सहानुभूतिपूर्वक दर्दभरा चित्रण किया एवं सारे समाज का ध्यान पीड़ित वर्ग की ओर आकृष्ट करने का कला एक प्रभावी साधन बन गयी। कुछ यथार्थवादी कलाकारों ने पारिवारिक जीवन के—वनभोजन, घरेलू खेल, उत्सव, त्यौहार जैसे—प्रसन्नता, उत्साह व हर्ष के प्रसंगों का कृतज्ञता भाव से मनोहर चित्रण करके सिद्ध किया कि मानव-जीवन आनंद व आशा के क्षणों से कितना ओतप्रोत है। संक्षेप में यथार्थवाद से कला के

क्षेत्र में अधिक व्यापकता आ गयी जो व्यापकता पुराने धार्मिक व ऐतिहासिक चित्रण में नहीं थी; कलाकार स्वतंत्र रूप से अपनी स्वाभाविक अभिरुचियों के अनुसार निजी विचारो से चित्रण करने को उद्यत होकर अपने पृथक् कलात्मक व्यक्तित्व को अनुभव करने लगा। यह नवीन विचारधारा आधुनिक कला के विकास में सहायक हुई।

गोया की भांति दोमीय असत्य, पाखंड व अन्याय से घृणा करते थे। व्यंग्य-चित्र द्वारा राजा की निंदा करने के कारण उनको कारावास की सजा हुई। १८३५ के कानून से उनके व्यंगचित्रण पर प्रतिबंध लगाये गये जिससे उम्र के २२ वें साल में शुरू किये उनके व्यंग्यचित्रण के कार्य में बाधा पड़ी। अब 'ला कारिकात्युर' मासिक पत्रिका के व्यंग्यचित्रकार का काम छोड़ कर उन्होने 'ला शारिवारि' दैनिक पत्रिका के लिये रेखाचित्र बनाना शुरू किया व तेरह साल में उस पत्रिका में उनके सैंकड़ों रेखाचित्र प्रकाशित हुए। दोमीय कोई सामान्य रेखाचित्रकार नहीं थे। वे असाधारण प्रतिभा के कलाकार थे और उनके रेखाचित्रों की तुलना रेम्ब्रांट, रुबेन्स जैसे श्रेष्ठ कलाकारों के रेखाचित्रों से की जा सकती है। दोमीय ने इन कलाकारों का लुव्र संग्रहालय में अध्ययन किया था व उनसे वे बहुत प्रभावित थे। दोमीय के रेखाचित्रों के विषय सर्वसामान्य होने के कारण समकालीन दर्शक व समीक्षक उनकी योग्यता व उनकी कृतियों के कलात्मक गुणो को पहचान नहीं सके।

बचपन में ही चित्रकार बनने की आकांक्षा ने दोमीय को प्रेरित किया किंतु उम्र के ४० वें साल तक वे दरिद्रावस्था को पार नहीं कर सके और अर्थार्जन के लिये रेखाचित्रकारी में व्यस्त होने के कारण वे रंगीन चित्र बना नहीं सके। रेखाचित्रों से उनको कोई विशेष आमदनी नहीं होती थी। सैंकड़ों रेखाचित्र बनाने पर ही वे अपना खर्च निभा सकते थे। १८६० में 'ल शारिवारि' पत्रिका ने उनको नौकरी से हटा दिया। अब उनको रंगीन चित्र बनाने के लिये समय मिला किंतु उस काम के लिये उनके पास पैसा नहीं था। तीन साल तक अपने घनिष्ठ मित्रों के दातृत्व पर व नाममात्र सरकारी सहायता पर वे निर्भर रहे। खर्च कम करने के हेतु दोमीय पैरिस छोड़ कर वाल्मांद्वा नाम के पैरिस के उपनगर में जाकर रहे। १८६३ में उनको कम तनखा पर फिर से 'ल शारिवारि' पत्रिका में नौकरी मिली। किंतु उससे उनकी विपन्नावस्था में कोई अंतर पड़ने वाला नहीं था। अब उनकी दृष्टि भी कमजोर हुई थी। १८७९ में इस महान् चित्रकार की मृत्यु ऐसी परिस्थिति में हुई कि उनके अंत्यसंस्कार के लिये सरकारी सहायता लेनी पड़ी जो बड़ी मुश्किल से व बहुत अपर्याप्त मिली। उनकी मृत्यु के पश्चात् धूर्त व्यापारियों ने उनकी विधवा पत्नी से अल्प मूल्य देकर उनके चित्र खरीदे जिनकी समय के साथ कीमत बढ़ती गयी।

दोमीय की कला यही सिद्ध करती है कि कलाकृति में संदेश होने से या कलाकृति का निर्माण केवल सामान्य दर्शक के ज्ञान या मनोरंजन के लिये किये जाने से

ही कलाकृति की श्रेष्ठता में कोई बाधा नहीं आती। दोमीय की कला अभिप्राययुक्त होते हुए संयोजन, रूप, अभिव्यक्ति आदि कलात्मक गुणों से प्रचुर है। दोमीय ने कभी आत्मप्रशंसा या सैद्धांतिक चर्चा नहीं की किंतु उनकी कलाकृतियां कलासमीक्षकों व विद्वानों के लिये उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी कि सामान्य दर्शकों के लिये।

उनके चित्रित किये हुए सभी व्यक्ति-गरीब, धनी, वकील, डॉक्टर, न्यायाधीश, व्यापारी, भिखारी, चोर वगैरह—आंतरिक मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से इतने परिपूर्ण व सच्चे हैं कि वेषभूषा व वातावरण की भिन्नता होने पर भी वे हमारे लिये समकालीन महत्व रखते हैं जैसे कि वे सब अपने-अपने वर्ग की अपरिवर्तनशील, मूलभूत मनोवृत्ति का दर्पण ही हैं।

१९वीं शताब्दी के श्रेष्ठ कलाकारों में दोमीय एक ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने किसी भी चित्रशाला या कलाकार से शिक्षा प्राप्त किये बिना व्यक्तिगत परिश्रम से कलासाधना की। उनके सरल व प्रभावी रेखांकन की तुलना रेम्ब्रांट के रेखांकन से की जा सकती है। रेम्ब्रांट ने धार्मिक विषयों को चित्रित किया जबकि दोमीय ने सामान्य आदमी के दैनंदिन जीवन को विषय के रूप में चुना। कहीं शास्त्रीय अध्ययन या मार्ग-दर्शन नहीं होने पर भी उन्होंने केवल निरीक्षण द्वारा मानवशरीर रचना, पोशाक, बाह्य एवं घरेलू वातावरण का बारीकियों के साथ जो सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया वह आश्चर्यजनक है। यही बात मानव-स्वभाव, रहन-सहन व व्यक्तित्व के उनके ज्ञान के बारे में कही जा सकती है।

निरर्थक सैद्धांतिक वादविवाद से दोमीय कितनी घृणा करते थे यह उनके व्यंग्यचित्र 'शैलियों की लड़ाई'[31] से स्पष्ट होता है। इस चित्र में दो चित्रकारों को ढाल तलवार की जगह मिश्रणफलक, तूलिका व आधारपट्टी को हाथों में लेकर लड़ते हुए दिखाया है।

रेम्ब्रांट व गोया से प्रभावित होते हुए दोमीय के चित्रों में न रेम्ब्रांट की धार्मिकता है न गोया की कल्पना। वे १९वीं सदी के चित्रकार थे और उनका धर्म था समाज-जीवन के बाह्य नकली आवरण के पीछे-छिपे कटु सत्य को समाजोन्मुख करना व उनकी कल्पना थी उपहास। उन्होंने व्यक्तियों के चेहरों के कृत्रिम भावों व झूठे मुद्राभिनयों का सूक्ष्म निरीक्षण किया व उसको चित्रित करके मानव के पाखंडी व्यवहार का उपहास किया। दोमीय ने अपनी समर्थ कूंची से व्यंग्यचित्रण को कला का स्थान प्राप्त कराया। उनके उपहास का मुख्य लक्ष्य था मध्यमवर्ग, उसका अहंकार व खोखलापन; साथ-साथ उन्होने गरीबों के दुःख व उच्च वर्ग के अन्यायपूर्ण व्यवहार का भी भंडाफोड़ किया। उनके व्यंग्यचित्रों में न्यायालय, रेल का डिब्बा, रंगमंच के दृश्य तथा डॉन क्विक्जोट के कहानीचित्र बहुत प्रसिद्ध हैं।

दोमीय यथार्थवादी चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हैं; परन्तु उनकी कला में इतने विविध गुण हैं कि उनको किसी वाद में सीमित रखना अयोग्य है। उनके तैलचित्रों में

आकारों का सरलीकरण व भिन्न छटाओं के सुस्पष्ट क्षेत्रों की सुसंगत रचना करके ठोस चित्रण किया है जिसके 'भिखारी' व 'धोबन' ये चित्र उत्कृष्ट उदाहरण हैं। दोमीय के बाद सेजान ने उसी प्रकार ठोस रचना पर बल देकर चित्रण किया। दोमीय की कला में रचनात्मकता के अतिरिक्त भावपूर्ण जोशीला अंकन व रेखाओं का गतित्व है जिससे उनकी कला में अभिव्यंजनावादी झलक आ गयी है। अभिव्यक्ति के विचार से उनके चित्र रुओल की कलाकृतियों के समरूप हैं। अभिव्यंजनावादी चित्रकार एमिल नोल्ड व रुओल दोमीय की कला से प्रभावित थे। कुछ इतिहासकार दोमीय को प्रथम अभिव्यंजनावादी चित्रकार मानते हैं। दोमीय के चित्र देशत्याग व डॉन क्विक्जोट के कहानीचित्र पूर्ण रूप से रोमांसवादी हैं।

दोमीय के चित्र जैसे कलात्मक गुणों से परिपूर्ण हैं वैसे उनमें परिणामकारक विषय प्रतिपादन के साहित्यिक गुण भी हैं। जिनसे सामान्य दर्शक भी उनकी कृतियों से आकृष्ट होता है व उनकी कृतियों को सामाजिक महत्व प्राप्त हो गया है। बोदेलोर ने लिखा है "दोमीय न केवल व्यंग्य चित्रकला में बल्कि आधुनिक कला में भी महान् चित्रकार हैं"। दोमीय के रेखाचित्रों को देख कर बाल्जाक ने कहा था "इस चित्रकार के भीतर माइकेल एंजेलो छिप कर बैठे हैं"।

चित्रकार कुर्बे व देलाक्रा तथा साहित्यकार बोदेलेर व गोतिय दोमीय के घनिष्ठ मित्र थे और उनके यहां जा कर, जमीन पर बैठ कर वे सब विचारगोष्ठी किया करते। एक रोज जब दोमीय लियोग्राफ बनाने में व्यस्त थे तब उनमें से किसी ने धीमी आवाज में कहा "देखो वृद्ध दोमीय को कितना काम करना पड़ता है"। यह सुन कर दोमीय ने कहा "मुझे काम करना पड़ रहा है यह कोई बुरी बात नहीं है किन्तु आंख कमजोर होने से मुझे अत्यधिक परिश्रम होता है। किन्तु दयालु मित्रो, मैं याद दिलाना चाहता हूं कि आपको आमदनी है और मेरे लिये है कलाप्रेमी रसिकगण; और मैं कलाप्रेमी रसिकगण को ही चाहता हूं"। और उनके जीवन में ऐसा ही हुआ; जिसको वे चाहते थे वह रसिकगण उनको मिला व वे लोकप्रिय व्यंग्यचित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए परंतु उनको आमरण आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

गुस्ताव कुर्बे (१८१९-१८७७)

यथार्थवाद के प्रणेताओं में गुस्ताव कुर्बे को सबसे प्रमुख स्थान दिया गया है। कुर्बे का जन्म ओर्नां नाम के छोटे गांव में किसान परिवार में हुआ। चित्रकार बन जाने पर उन्होंने देहाती वातावरण व ग्राम्य जीवन को चित्रित करना पसंद किया। बचपन में वे पुस्तकीय अध्ययन से घृणा करते थे व जब उनके गुरुजी निसर्ग अध्ययन व चित्रण के लिये कक्षा को बाह्य स्थानों पर ले जाते तब वे खुश हो जाते बेसांकों के महाविद्यालय में जब उनको इच्छा के विरुद्ध भरती कराया गया तब वे

अपना बहुत सा समय दावि के शिष्य द्वारा चलायी गयी वहां की चित्रशाला में बिताने लगे। १८३९ में उनको कायदे के अध्ययन के लिये पैरिस भेजा गया परंतु वे वापस आ गये एवं चित्रकार बनने का अपना निश्चय पिता के सामने रखा। अंत में उनके पिता ने राजी होकर उनको कला के अध्ययन में सहायता देने का वचन दिया। कुर्बे ने भी खुश हो कर परिवार के सामने प्रण किया कि "मैं दस साल के अंदर ही ख्यातिप्राप्त चित्रकार बनूंगा"। १८४० में वे चित्रकला के अध्ययन के लिये वापस पैरिस आ गये व चित्रशाला स्विस में भरती हो गये। चित्रशालेय अध्ययन से वे असंतुष्ट थे। वे लुव्र संग्राहालय में जा कर रेम्ब्रांट फ्रान्स हाल्स, व देलाक्रा के चित्रों का अध्ययन करते व उनके चित्रों की प्रतिकृतियां बनाते। १८४४ की राष्ट्रीय प्रदर्शनी में उनका चित्र 'कुत्ते के साथ चित्रकार कुर्बे' स्वीकृत हुआ। उसके पश्चात् १८४९ में उनके दो चित्र 'आत्मचित्र' व 'ओर्नां का भोजन' [32] स्वीकृत होकर उनमें से 'ओर्नां का भोजन' पर उनको पुरस्कार मिला। इस पुरस्कार से उनको दो लाभ हुए, उनके परिवार के सदस्य संतुष्ट हुए और अब चयन-समिति की स्वीकृति के बिना वे अपने चित्रों को प्रदर्शनी में रख सकते थे। दूसरा लाभ निश्चित ही महत्वपूर्ण था व १९५० की प्रदर्शनी में वे अपना विशाल चित्र 'ओर्नां का दफन संस्कार' [33] प्रदर्शित कर सके यद्यपि चयन समिति के सदस्यों को यह चित्र बिलकुल पसंद नही था। यह चित्र यथार्थवादी चित्रकला के आरंभिक चित्रों में महत्वपूर्ण माना गया है। मानवाकृतियों, उनकी हलचल एवं आसपास के वातावरण में कहीं भी कल्पना-तिरंजन या अनैसर्गिकता नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है मानों किसी घटना को हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। चित्र का कोना कोना निसर्गसादृश्य से ओतप्रोत है। कुर्बे गर्व के के साथ कहते थे "मेरे 'ओर्नां के दफन 'संस्कार' ने रोमांसवाद को दफनाया है।" उनके इस चित्र की पैरिस के लब्धप्रतिष्ठ कलासमीक्षकों व दर्शकों ने इस वजह से निंदा की थी कि प्रचलित परंपरा के अनुसार कला के विषय देवता, धर्म, राजा व उच्च खानदान के लोक ही हो सकते थे और उनका चित्रण भी आदर्श रूप देकर किया जाता था जबकि कुर्बे ने इस रूढि को तोड़ कर समाज के सामान्य स्तर के लोगों का और वह भी यथार्थ रूप में चित्रण किया था और इतने बड़े पट पर। सब ने कुर्बे पर गंवारपन व भ्रष्टता का आरोप लगाया और कुछ राजनैतिक विचारकों को इस चित्र में समाजवाद के प्रचार का संदेह हुआ। सब सहमत थे कि राष्ट्रीय स्तर की प्रदर्शनी में ऐसा निम्न श्रेणी का चित्र नहीं रखा जाना चाहिये था। समकालीन कलापरंपरा के अनुसार उस चित्र में और एक निन्दा-जनक बात थी कि सामान्य दैनंदिन घटना के चित्रण के अलावा उसमें कोई कहानी, रोमांसकता, संदेश या विचार नहीं था। दर्शकों के विचार से ऐसी घटना के चित्रण से कला की उच्च परंपरा को नष्ट किया जा रहा था। विरोधी आलोचना से निराश होने के बजाय कुर्बे अधिक उत्साह से कार्य करने लगे। उनको समाजवादी विचारक

प्रुदाँ ने प्रोत्साहन दिया और कुर्बे ने अपनी कला को सामाजिक व राजनैतिक महत्व देने की भी चेष्टा की; किंतु वे एक श्रेष्ठ कलाकार मात्र थे और उनकी कला का केवल कलात्मक विचारों से ही महत्व है। वे अब लगातार नवनवीन चित्र बना कर चयनसमिति के विरोध के बावजूद प्रदर्शित करने लगे और उनके प्रत्येक चित्र से कला-क्षेत्र में हलचल मचने लगी। कुछ नवकलाकार अनुयायियों व कलाप्रेमी साहित्यिकों में उनकी स्वतंत्रवृत्ति व नवविचारों की प्रशंसा हुई और झुंझारवृत्ति कुर्बे निर्भीक होकर अपने पथ पर अग्रसर हुए।

बदलते हुए जमाने में पैरिस के नवकलाकारों एवं साहित्यिकों में कला में नवीन प्रयोग करने व जलपानगृहों में सम्मिलित होकर कलासंबंधी चर्चा करने की प्रथा रूढ हो रही थी और प्रतिभासंपन्न कलाकार उनका नेतृत्व करते थे। कुर्बे भी पैरिस के 'ब्रासरी द मार्ति' व 'आंद्ल केल' जलपानगृहों में जाते और नवकलाकारों से चर्चा करके उनका मार्गदर्शन करते। १८६१ में राष्ट्रीय कला संस्था के चित्रशालेय विद्यार्थियों ने उनको अध्यापन करने की पत्र द्वारा प्रार्थना की। कुर्बे ने इन्कार किया परन्तु विद्यार्थिओं की सुविधा के लिये उन्होंने एक चित्रशाला खोली जहां विद्यार्थी स्वतंत्र विचार से चित्रण कर सकते थे। यह प्रयोग विशेष सफल नहीं हुआ। उस चित्रशाला में बनाया हुआ एक चित्र विद्यमान है जिस में चित्रशाला में मॉडेल के रूप में खड़े हुए बैल को देख के कला अध्ययन करते हुए विद्यार्थियों को चित्रित किया है। यह चित्र कुर्बे के यथार्थवादी सिद्धान्तों पर प्रकाश डालता है। अपने कला-संबंधी विचारों को शाब्दिक रूप देने में कुर्बे इतने सफल नहीं रहे क्योंकि उनमें विश्लेषणात्मक विचारशक्ति विशेष नहीं थी। लिखते समय वे अपने साहित्यिक मित्रों से सहायता लेते थे। इसी कारण उनके कलासंबंधी विचार और प्रत्यक्ष कला-कृतियों में भिन्नता दिखायी देती है।

कुर्बे के कलाविषयक विचार सरल व स्पष्ट थे। वे कहते "मुझे देवता दिखाओ और मैं उसका चित्र खींचूंगा"।[34] उनके विचारों के अनुसार चित्रकला का मूलाधार दृश्य सौंदर्य का परिणाम है अर्थात् कलाकृति में केवल दृश्य वस्तुओं को प्रत्यक्ष देख कर यथार्थ चित्रित किया जाना चाहिये। किंतु यह विचार उनकी निजी कृतियों पर भी पूर्णतया लागू नहीं होता। उदाहरण के लिये यदि हम उनके चित्र 'स्नानमग्ना युवती' 'तोता व तरुणी' तथा 'सेन नदी के किनारे पर दो महिलाएं'[35] देखेंगे तो स्पष्ट है कि उन्होंने भी नारी-शरीर का चित्रण पूर्ण यथार्थवादी पद्धति से नहीं किया बल्कि उन्होंने नारी-शरीर को नैसर्गिक रूप से अत्यधिक सुंदर व आसपास के वातावरण को कल्पना द्वारा रमणीय चित्रित किया है। फिर भी उस काल की कलाक्षेत्र की परिस्थिति को देखते हुए मानना पड़ता है कि कुर्बे ने यथार्थवाद की दिशा में क्रांतिकारी कदम उठाये और वे यथार्थवाद के सच्चे प्रवर्त्तक व महान् कलाकार थे। उनके कुछ विधान भावी यथार्थवादी कलाकारों के लिये वेद-

वाक्य हुए यद्यपि कुर्बे ने निजी कला में उनका शब्दशः पालन नहीं किया। वे कहते "कलाकार को कोई अधिकार नहीं है कि वह नैसर्गिक सौंदर्य में इच्छानुसार परिवर्तन करे, क्योंकि निसर्गनिर्मित सौंदर्य कलाकार की कल्पना से अधिक सूक्ष्म, गहन व श्रेष्ठ होता है"।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में पाश्चात्य राष्ट्रों का ध्यान औद्योगिक विकास पर केन्द्रित था। १८५५ में तीसरे नेपोलियन के अनुग्रह से पैरिस में एक विशाल अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। उसके साथ एक कलाप्रदर्शनी का विभाग था। उसमें चित्र भेजने के लिये २८ राष्ट्रों के प्रमुख कलाकारों को निमंत्रित किया गया था। इस प्रदर्शनी का आयोजन 'पाले द आर' में किया गया और कुर्बे के प्रमुख चित्र अस्वीकृत हुए। क्रुद्ध होकर कुर्बे ने नजदीक ही 'पाविलों द्यू रेआलिज्म[36]' नाम से अपने ४० चित्रों और ४ रेखाचित्रों की प्रदर्शनी लगायी। इसमें उन्होंने अपने पुराने चित्र 'ओर्नां के दफन संस्कार' के साथ एक नया विशाल चित्र 'चित्रकार का कार्यकक्ष'[37] प्रदर्शित किया। इस चित्र के निर्माण के पीछे उनका विशेष उद्देश्य था। नवशास्त्रीयतावाद के लिये 'होरेशिआ का प्रण' एवं रोमांसवाद के लिये 'मेदुसा का वेड़ा' का जो महत्व था उसी महत्व का क्रांतिकारी यथार्थवादी चित्र बनाने के उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने यह विशाल चित्र (२०'×२२') निर्माण किया था और यह उनकी अहंकारवृत्ति का स्पष्ट उदाहरण था। इस चित्र में विस्तीर्ण कार्यकक्ष के बीच चित्रकार को चित्रण करने में व्यस्त दिखाया है व निकट विवस्त्र स्त्री मॉडेल और एक छोटा बालक औत्सुक्य के साथ चित्रकार के कार्य को देखते हुए चित्रित किये हैं। चित्र के बायें हिस्से में चित्रकार के अनेक मॉडेल्स विभिन्न अवस्थाओं में चित्रित हैं व दायें हिस्से में चित्रकार के मित्र व संग्राहक प्रशंसा व आश्चर्य के भाव लिये हुए चित्रकार के सृजनकार्य का निरीक्षण कर रहे हैं। चित्र में कुछ हास्यास्पद बातें होते हुए भी कुर्बे ने अपनी कुशल रंगांकन शैली व अभ्यासपूर्ण रेखांकन से उसको एक प्रभावी चित्र बनाया है। अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में यह चित्र अस्वीकृत होने के साथ और एक कारण से कुर्बे अपना अपमान नहीं सह सके; उसी प्रदर्शनी में नवशास्त्रीयतावादी चित्रकार अंग्र व रोमांसवादी चित्रकार देलाक्रा प्रत्येक के ४० चित्र स्वीकृत हुए थे। कुर्बे की एकल चित्रप्रदर्शनी दर्शकों को आकर्षित करने में असफल रही किन्तु देलाक्रा ने 'चित्रकार का कार्यकक्ष' चित्र की बहुत प्रशंसा की। कुर्बे ने अपनी यथार्थवादी कला को 'जनतंत्रवादी कला' नाम से घोषित कर के फ्रान्स के भिन्न प्रांतों, हालेंड, बेल्जियम स्विट्जर्लेंड व जर्मनी में प्रदर्शित किया। योरोप के साहित्यकों व समीक्षकों ने उनकी विशेष प्रशंसा की तथा उनको विदेशों में ख्याति प्राप्त हुई। १८६७ की पैरिस की अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में उनके १३० चित्र व कुछ मूर्तियां प्रदर्शित हुईं। दो साल पश्चात् फ्रान्स के राजा ने उनको राष्ट्रीय सम्मान से पुरस्कृत करना चाहा किंतु कुर्बे ने उसको

अस्वीकृत किया । वे अब संसार के सब से ख्यातनाम चित्रकार हो गये थे और राज को अपमानित करने का मौका छोड़ना नहीं चाहते थे । उनके चित्र 'नमस्ते, कुर्वे महोदय'[38] से भी उनके गर्वीले स्वभाव का परिचय होता है । इस चित्र में कुर्वे प्रकृति-चित्रण के लिये बाहर ठाट से घूमते हुए व रास्ते में उनके चित्रों के संग्राहक ब्रयुया उनको नम्रता से अभिवादन करते हुए दिखाये हैं ।

फ्रान्स में गणतंत्रराज्य की प्रस्थापना होते ही कुर्वे की राजकीय कला निदेशक के स्थान पर नियुक्ति हुई । इस समय फ्रांस का जर्मनी से युद्ध चल रहा था बमवर्षा से बचाने के हेतु कुर्वे ने सभी कलाकृतियों को सुरक्षित स्थान पर हट दिया और जर्मन कलाकारों को लिखित में निवेदन किया कि वे सब मिल कर संपूर योरप की एकता व भ्रातृभाव के लिये प्रयत्न करें । जर्मन आक्रमण के सामने फ्रें गणतंत्र का पतन हो गया एवं फ्रेंच सरकार में उथल-पुथल हो गयी । कुछ समय ही कुर्वे के दुर्भाग्य का प्रारंभ हुआ । उनकी राष्ट्रीय सेवाओं व त्याग को भूल क उनपर अभियोग चलाया गया तथा वांदोम के राष्ट्रीय स्मारक के विनाश के लि उनको उत्तरदायी ठहराकर उनको छः महिनों के कारावास की सजा हुई । कारावा से मुक्त होते ही कुर्वे अपने वतन ओर्नां चले गये । वहां के लोकों ने भी उनक निषेध किया । फ्रेंच सरकार ने उन पर दुबारा अभियोग चलाने का विचार किय और वे फ्रान्स छोड़ कर स्विटजर्लेंड भाग गये । उनकी अनुपस्थिति में उन पर अभि योग चलाया गया और उनकी सब संपत्ति व कलाकृतियों को अधिकार में ले लिय गया । ऐसी विपत्ति में भी वे अंत तक चित्रण करते रहे उनकी १८७७ स्विट्जर्लेंड में मृत्यु हुई । १९१९ में उनकी जन्मशताब्दी के अवसर पर उनके शरीर अवशेष उनके जन्म स्थान ओर्नां लाये गये और वहां उनका स्मारक बनाया गया

कुर्वे में दावि की व्यावहारिक धूर्तता नहीं थी न देलाक्रा का तर्कशुद्ध बुद्धि वाद । वे सच्चे, निष्ठावान कलाकार थे । उनके कला-विषयक विचारों से भी उनकी कलाकृतियां दर्शकों को अधिक प्रभावित करती हैं । उन्होंने कला के बारे में लिख है "कला में शैलियां नहीं होती, वहां केवल कलाकार होते हैं"[39] । यह विचा उनकी कला पर समुचित रूप से लागू होता है । उनकी कलाकृतियों में ऐसी प्रसादकत है कि उनको देखते समय मन में कोई सैद्धांतिक विचार नहीं आते । श्रेष्ठ कलाकृ का यह एक मापदण्ड है ।

कुर्वे ने चित्रण के लिये सामान्य विषयों को चुना जैसा कि किसान, सामान स्तर के स्त्री पुरुष, वन व समुद्र के प्रकृतिदृश्य, फूलदान वगैरह और अपनी कुश लता से उनको सर्वांगसुंदर व आकर्षक रूप प्रदान किया । उनके विवस्त्र नारियों चित्रों में अंग्र द्वारा चित्रित नारियों की दुर्बलता नहीं है, न दावि द्वा चित्रित नारियों की नियमबद्ध कठोरता । वे सशक्त, मांसल, सचेत व मनोह हैं जैसे कि रुबेन्स के नारीचित्र । कुर्वे ने सिद्ध किया कि रोमांसवादी कल्पना

सहायता लिये बिना चित्रसृष्टि में वास्तव को सुंदर व आकर्षक बनाया जा सकता है। सच देखा जाये तो वास्तव सृष्टि इतनी कल्पनातीत मनोहर है कि यदि कलाकार तन्मय होकर, निजी प्रतिभा से दृश्य संसार को चित्रित करेगा तो उसको पुराने परंपरागत नियमों का पालन करने की आवश्यकता नहीं होगी। कुर्बे की आधुनिक कला को यही देन है कि उन्होंने कलाकार को रूढिबद्ध नियमों से बंधमुक्त करके वास्तविकता के सौंदर्य को स्वतंत्र रूप से पहचानने की दृष्टि प्रदान की। उन्होंने अपने विचारों को निम्न शब्दों में स्पष्ट किया है "संग्रहालयों को बीस साल तक बंद रखना चाहिये जिससे आज के चित्रकार वास्तव को अपनी आंखों से देखना शुरू करेंगे। .... मैं केवल नैसर्गिकतावादी हूं। मैं सत्य सृष्टि से एकनिष्ठ रहता हूं।"

कुर्बे की वास्तव के बाह्य सौंदर्य की प्रशंसा से आधुनिक कला में जड़वाद को प्रोत्साहन मिला। उन्होंने लिखा है "यथार्थवाद का सिद्धांत हैं आदर्श का अस्वीकार ....चित्रकला पूर्णतया भौतिक भाषा है, उसमें आत्मिक या अदृश्य को स्थान नहीं है.... धार्मिक चित्रण आधुनिक युग के प्रतिकूल है।........यंत्रगृह, खानें, व कारखाने १९वीं शताब्दी के साधुसंत व चमत्कार हैं, अतः हमें उनको चित्रित करना चाहिये। घनवाद, रचनावाद, विशुद्धवाद आदि आधुनिक कला के जड़त्वनिष्ठ वादों के बीज कुर्बे के विचारों में मिलते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् लेखक अपोलिनेर ने कुर्बे को घनवाद का जनक माना है।

बार्बिजां चित्रकार

जिस समय पैरिस में नवशास्त्रीयतावादी, रोमांसवादी व यथार्थवादी चित्रकार अँग्र, देलाक्रा व कुर्बे के नेतृत्व में एक दूसरे का विरोध कर रहे थे, पैरिस के समीपवर्ती देहातों में कुछ चित्रकार प्रकृति के संपर्क में चित्रकारी में व्यस्त थे।

प्राकृतिक दृश्य को प्रत्यक्ष देख कर यथार्थ चित्रित करने का प्रयत्न १९ वीं सदी से पूर्व शायद ही किसी चित्रकार ने किया होगा। दावि ने ल्युक्सेम्बुर के बगीचे का कारागृह की खिड़की से देख कर चित्र बनाया था किन्तु उससे प्रकृति-चित्रण की परम्परा नहीं बनती थी। १८ वीं शताब्दी में चित्रकारों का प्रकृतिचित्रण के बारे में क्या दृष्टिकोण था यह देपर्त के निम्न विचारों से अवगत होता है। उन्होंने लिखा है "प्राकृतिक दृश्य को चित्र में स्थान देने से पहले चित्रकार को भूलना नहीं चाहिये कि चित्र में उसका स्थान गौण है, और यदि चित्रकार सोचता है कि चित्र की पृष्ठभूमि में प्राकृतिक दृश्य का होना आवश्यक है तो प्रकृति के सुंदर अंगों को चुन कर, उनकी पुनर्रचना करके दृश्य को चित्रित किया जाना चाहिये। इस प्रकार प्रकृति के यथार्थ चित्रण का कला में कोई स्थान नहीं था। जो भी प्राकृतिक चित्र बनाये जाते थे वे या तो काल्पनिक हुआ करते थे या शास्त्रीयतावादी पद्धति से आदर्श बनाये जाते थे।

इसका सबसे समुचित उदाहरण है पुसँ का प्रसिद्ध चित्र 'फोसिग्रों की शवयात्रा'[40]। इस चित्र मे प्राकृतिक दृश्य की रमणीयता नहीं है और इसमें विषय का भी महत्व नहीं है। इस चित्र की विशेषताएं हैं नियमबद्ध रचना, सुंदर रंगांकन व ग्रादर्श सौंदर्य; भावना व यथार्थ को यहां कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत १७ वीं शताब्दी के डच चित्रकार रुइस्डाएल का चित्र 'कब्रिस्तान'[41] पूर्णतया काल्पनिक व भावपूर्ण है; काले बादल, इंद्रधनुष, टूटे हुए पेड़, गतिमान झरना, भग्न गिरजाघर, कब्रें ग्रादि वस्तुग्रों पर चंचल छाया प्रकाश का खेल चित्रित कर चित्रकार ने रहस्यमय, भयानक वातावरण का निर्माण किया है। चित्र रोमांसवादी तत्वों से परिपूर्ण है। क्लोद लोरें के प्रकृति-चित्र पुसँ की भांति शास्त्रीयतावादी हैं चाहे नाममात्र क्यों न हो, किसी मानवीय घटना को विषय के रूप में चुन कर बनाये गये हैं। प्रसिद्ध रोमांसवादी जर्मन चित्रकार कास्पर डाविड फ्रीडरिख (१७७४–१८४०) ग्रपने काल्पनिक प्रकृतिचित्रों के लिये प्रसिद्ध हैं। उन्होंने १९वीं शताब्दी के ग्रारम्भिक काल में चित्रनिर्मिति शुरू की। वे ग्रक्सर संध्यासमय, चांदनी रात या जाड़े की शाम के वातावरण को पसंद करते थे ग्रौर उनके चित्रों में ऊंचे भयानक पहाड़ों, ध्वस्त गिरजाघरों, विशाल वृक्षों व वीरान जंगलों का ग्रंतर्भाव प्रचुर मात्रा में है।

१९वीं शताब्दी के मध्य में जिन चित्रकारों ने प्रकृति को प्रत्यक्ष देख कर चित्रण करना ग्रारम्भ किया उनमें रूसो, दोविन्यी, मिले व कोरो प्रमुख थे। चित्रण के लिये चुने हुए स्थानों में पैरिस के निकट फाँतेनब्लो वन की सीमा पर बार्बिजां नाम का एक निसर्गरम्य गांव था। इस गांव के नाम से लोक इन चित्रकारों को भी बार्बिजां चित्रकार कहने लगे। फाँतेनब्लो का वन कोई सुनसान, भयनक जंगल नहीं था; मानवनिर्मित नहीं होते हुए भी उसमें बगीचे की प्रसादकता थी व प्रकृति का ग्रकृत्रिम मनोहर सौंदर्य। वन के ग्रासपास खेत थे ग्रौर छोटी-छोटी झौंपड़ियों में किसान ग्रपने पालतू बतख, गाय ग्रादि पशुग्रों के साथ रहते थे। इस निष्कपट ग्रामीण जीवन ने बार्बिजां चित्रकारों को ग्राकृष्ट किया। उन चित्रकारों में कोई संघटन नहीं था; उनमें से कुछ चित्रकार बहुत काल तक वहां रहते ग्रौर ग्रन्य चित्रकार वहां समय-समय पर ग्राकर चित्रण करते।

बार्बिजां चित्रकारों का मुख्य दृष्टिकोण था प्राकृतिक दृश्यों व ग्रामीण जीवन को प्रत्यक्ष निरीक्षण करके यथार्थ चित्रण करना। उस समय कार्यकक्ष के बाहर दृश्य के स्थान पर जाकर चित्रण करना बिलकुल ग्रनोखी बात थी। कुर्बे ने ग्रपने बहुत से प्रकृतिचित्र कार्यकक्ष में बनाये थे यद्यपि वे ग्रभ्यासचित्रण के हेतु बाह्य स्थानों पर जाया करते थे। वे नवकलाकारों को ग्रक्सर उपदेश दिया करते "यदि ग्रापको गोबर के ढेर का चित्रण करना है तो भी प्रत्यक्ष देख के करो"। बार्बिजां चित्रकार कुर्बे की तरह केवल यथार्थवादी चित्रकार नहीं थे; वे प्रकृति के काव्यपूर्ण सौंदर्य के उपासक भी थे ग्रौर मिले को छोड़ मानवीय जीवन के दुःखों का

विचार उनके मनमें नहीं आया ।

'यथार्थवादी' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है : पहले अर्थ में यथार्थवादी चित्रकार वे हैं जो—ऐतिहासिक कथाओं, पुराणों, काल्पनिक विषयों या राजा व सत्ताधारी वर्ग को छोड़कर—सामान्य जनता की, उसके सुख दुःख की कहानियों को चित्रित करते हैं; दूसरे अर्थ में यथार्थवादी चित्रकार वे हैं जो मानव या वस्तुओं को आदर्श या काल्पनिक रूप में चित्रित करने के बजाय नैसर्गिक रूप में चित्रित करते हैं । पहला अर्थ चित्रकला के विषय से संबंध रखता है तो दूसरा अर्थ अभिव्यक्ति से । बार्बिजां चित्रकार दूसरे अर्थ में यथार्थवादी थे । उनकी आत्मा कवि की थी और वे प्रकृति के निष्काम पुजारी थे । प्रकृति के निरुपम सौंदर्य के दर्शन के अतिरिक्त उनके चित्रों में कोई संदेश या प्रचार नहीं था । उन्होंने वृक्ष, मैदान, पहाड़, नदी, आकाश आदि प्रकृति के अंगों को विभिन्न अवस्थाओं में चित्रित किया । उनके चित्रों में सर्वत्र शांति व प्रसन्नता का साम्राज्य है । उन्होंने सुंदर को ही सत्य माना ।

१८३० व १८४० के बीच बार्बिजां चित्रकारों ने कड़े परिश्रम के साथ कार्य किया । आरम्भ में गंवार कह कर उनका उपहास किया गया किंतु धीरे-धीरे उनके चित्र राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में स्वीकृत होने लगे । उनमें से कुछ चित्रकारों को पुरस्कार प्राप्त हुए । १८५० के करीब उनके चित्र लोकप्रिय होकर बिकने लगे तथा उनको आर्थिक सुस्थिति प्राप्त हुई । प्रभाववादी चित्रकारों के प्रकृतिचित्रों के सामने बार्बिजां चित्रकारों के चित्र तुच्छ प्रतीत होते हैं; किंतु प्रकृति में जाकर स्थान पर चित्रण करने की प्रथा को बार्बिजां चित्रकारों ने जन्म दिया और उससे प्रेरणा लेकर प्रभाववादी चित्रकार आगे बढ़े । बार्बिजां चित्रकारों में से रूसो, दोबिन्यी, द्यूप्र व त्रायो प्रकृतिचित्रकार के रूप में प्रसिद्ध थे जिनमें से रूसो व दोबिन्यी विशेष ख्यातनाम हुए ।

तेओदोर रूसो (१८१२-१८६७)

बार्बिजां चित्रकारों में रूसो सबसे उत्साही थे और उनसे अन्य चित्रकारों को प्रेरणा मिलती थी । जब वे पैरिस की कला-शिक्षासंस्था के विद्यार्थी थे तभी से प्रचलित कलासंप्रदाय से घृणा करने लगे । १८३४ में उनका एक चित्र राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में स्वीकृत हुआ परन्तु उसके पश्चात् १८४८ तक प्रदर्शनी के सत्ताधारियों की राजनैतिक चालबाजियों से उनके चित्र स्वीकृत नहीं हुए । परन्तु प्रकृतिचित्रण से रूसो को कोई रोक नहीं सकता था । उन्होंने वृक्षों, वनस्पतियों और तृणों के आकारो की विशेपताओ का गहराई से निरीक्षण किया । उनके चित्रो में मैदान, खेत, वृक्ष झरना आदि प्रकृति के अंग उनके शास्त्रशुद्ध अध्ययन के कारण पूर्ण नैसर्गिक व आकार में ठोस दिखायी पड़ते हैं । छाया प्रकाश जैसे प्रकृति के चंचल तत्वों को उन्होंने विशेष महत्व नहीं दिया । व्यक्तिचित्रकार मानव शरीर रचना का जैसे

सूक्ष्म अध्ययन करता है उसी प्रकार रूसो ने प्रकृति के अंगप्रत्यंगों का अध्ययन किया और उसी वजह से उनके चित्रों में हर वस्तु स्वतंत्र रूप से अपना व्यक्तित्व बतलाती है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को उन्होंने सचेत माना व उसका सहानुभूतिपूर्ण ढंग से स्वाभाविक चित्रण किया जैसे कि कोई मूर्तिकार देवता की प्रतिमा बनाता है। विकास, ऋतुपरिवर्तन आदि प्रकृति के नियमों के सामर्थ्य को उन्होंने पहचाना, उसके कलात्मक महत्व को अनुभव किया और देखा कि उसके सामने कला के सांप्रदायिक नियमों का पालन आवश्यक नहीं है। उन्होंने इतनी आत्मीयता से चित्रण किया कि चित्र को भावपूर्ण बनाने के लिये उनको कल्पना का सहारा नहीं लेना पड़ा। दर्शन, चिंतन और स्पष्टीकरण उनके लिये विशेष महत्व नहीं रखते थे क्योंकि उनकी कला प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित थी।

फाँतेनब्लो वन की सीमा पर कुटिया में रह कर निर्वाह के लिए अधिक खर्च की आवश्यकता नहीं थी। १८४८ में रूसो के चित्र राष्ट्रीयकला प्रदर्शनी में स्वीकृत हुए और वे एक सफल चित्रकार बने। उनके चित्र बिकने लगे। बार्बिजां में उन्होने एक मकान खरीदा और वे वहां अन्त तक रहे।

शार्ल दोबिन्यी (१८१७-१८७८)

बार्बिजां प्रकृति-चित्रकारों में दोबिन्यी सब से अधिक लोकप्रिय हुए, यद्यपि वे रूसो को अग्रणी मानते थे। बार्बिजां चित्रकारों के प्रकृति-चित्रण को विशेष रूप प्रदान करने में रूसो के नेतृत्व से दोबिन्यी की अंकनशैली अधिक प्रभावी रही। बार्बिजां के अन्य प्रकृति-चित्रकारों की ख्याति घट जाने के पश्चात् भी दोबिन्यी की लोकप्रियता बढ़ती गयी और उनका भावी चित्रकारों पर बहुत प्रभाव पड़ा। दोबिन्यी व रूसो के प्रकृतिचित्रण में बहुत अंतर है। दोबिन्यी ने प्रकृति को कवि की दृष्टि से देखा तथा वैसे ही काव्यमय चित्रित किया। दोनों में से किसी ने भी प्रकृति को काल्पनिक रूप नहीं दिया। रूसो प्रत्येक वस्तु का बारीकियों के साथ निरीक्षण करके समूचे आकार को ठोस व नैसर्गिक रूप प्रदान करते जबकि दोबिन्यी प्रकृति की अवस्था व प्रकाश के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए प्रकृति के अंगों का काव्यपूर्ण चित्रण करते। सौम्य प्रकाश, अशांत आकाश, निश्चल मैदान व मंदगति नदी प्रवाह को चित्रित कर के वे प्रकृति की अवस्था से दर्शक को परिचित कराते। संपूर्ण प्रकृति की भावपूर्ण अवस्था से दोबिन्यी अनुरक्त थे जबकि रूसो प्रकृति के रचनासौंदर्य से आकृष्ट थे। दोबिन्यी के दृष्टिकोण में व्यापकता व सामंजस्य है, प्रकृति की पेचीली रचना को एकरूप देनेवाली समग्रवृत्ति को वे प्रकृति का सत्यरूप मानते थे। उनके प्रकृतिचित्रों में सुपरिचित दृश्य होते हैं व उनमें मानवीय काव्य-भावना प्रतिबिंबित होती है। उनके प्रकृति-चित्रों में मानवनिर्मित झोंपड़ियां व पुल उतने ही स्वाभाविक दिखायी देते हैं जितने कि वृक्ष व स्रोत।

निसर्ग का अवाधित, एकाग्र अवस्था में सौंदर्यग्रहण व चित्रण करने के उद्देश्य से वे अकेले जाना पसंद करते थे। नदी के किनारों के मनोरम दृश्यों को चित्रित करने के लिये वे कई वार नाव पर ही रहते। पानी का चमकीला, पारदर्शक पृष्ठ-भाग, संध्याकालीन एवं उषः कालीन सौम्य प्रकाश व हवा के ठंडे झोकों का स्वच्छंद आस्वाद लेकर प्राकृतिक सौंदर्य के उन चंचल क्षणों को अपने चित्रों में अमर रूप देना दोविन्यी की कला का ध्येय था और यही कारण है जिससे वार्विजां के प्रकृति-चित्रकारों में से दोविन्यी सब से अधिक लोकप्रिय हुए। वार्विजां चित्रकारों ने बाद में इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की कि व्यापारिक चित्रकार उनका भ्रष्ट अनुकरण करके दैनिक-चित्र वनाने लगे।

ज्यां फ्रान्स्वा मिले (१८१४-१८७५)

वार्विजां चित्रकारों में मिले एक अपवादमात्र चित्रकार थे जिन्होंने प्रकृति-चित्रण नहीं किया। उनको वार्विजां चित्रकारों में समाविष्ट करने का कारण इतना ही था कि उन्होंने वार्विजां चित्रकारों के साथ रह कर कलानिर्मिति की और ग्रामीण जीवन को चित्रित किया।

मिले का जन्म शेरबुर नाम के छोटे गांव में किसान परिवार में हुआ। उनको बचपन में खेतों में जाकर जो कठिन परिश्रम करना पड़ता उसका उनकी भावी कला की अभिव्यक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ा। प्राकृतिक दृश्य को वे मेहनती कृषक-जीवन से पृथक् नहीं कर सकते थे; उनकी दृष्टि में प्रकृति व परिश्रम एक दूसरे के पूरक तत्व थे। अतः श्रमजीवी किसानों के प्राकृतिक वातावरण के अन्तर्गत बनाये गये उनके चित्र सत्य व सुन्दर दोनों का दर्शन कराते हैं।

बचपन में ही चित्रकार बनने की महत्वाकांक्षा ने मिले को घेर लिया। उनकी चित्रकारी से खुश होकर गांव के लोकों ने चन्दा एकत्रित किया व १८३७ में कला के विशेष अध्ययन के लिए वे पेरिस पहुंचे। वहां वे देलारोश की चित्रशाला में भरती हुए। उस समय विवस्त्र स्त्री पुरुषों व वायवल के विषयों के चित्र लोकप्रिय थे। मिले ऐसे लोकप्रिय विषयों के चित्र, व्यक्तिचित्र व व्यापारिक नामफलक बना कर अर्थार्जन करते व फुरसत के समय में लुव्र संग्रहालय जाकर प्राचीन ख्यातनाम कलाकारों के चित्रों का अध्ययन करते। किंतु वे पैरिस से खुश नहीं थे और देहातों में जाकर निरीक्षणपूर्वक गांव के लोकों के परिश्रमी जीवन को चित्रित करना चाहते। जब उनके एक मित्र ने उनको देलाक्रा के समान चित्र बनाने की सलाह दी तब उन्होंने उत्तर दिया "मुझे तो भाई जमीन की पुकार सुनाई देती है।"[४२] १८४७ में उनका चित्र 'ओडियस'[४३] राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में दिखाया गया और दूसरे साल ही उनका मन-पसन्द चित्र 'पछोरनेवाला आदमी'[४४] प्रदर्शित हुआ; उसकी बहुत प्रशंसा हुई। प्रोत्साहित होकर पैरिस को छोड़ कर वार्विजां जाकर ग्रामीण जीवन के चित्रण में

सारा समय लगाने का मिले ने निश्चय किया। वार्बिजां चित्रकारों ने नवागत सदस्य का स्वागत किया। ग्रामीण जीवन मिले को सुपरिचित था और वे उस उत्साह से वार्बिजां आये थे जिस उत्साह से शिशु अपनी मां की ओर दौड़ता है।

आर्थिक विपन्नावस्था से डट कर मुकावला करके उन्होंने किसानों के परिश्रम व कठिनाइयों से भरे हुए जीवन को सहानुभूतिपूर्वक चित्रित किया। कृपकों के भूमि-निष्ठ जीवन के प्रति मिले गहरी आत्मीयता अनुभव करते थे और उसके फलस्वरूप उन्होंने उस जीवन को अपने चित्रों द्वारा अमर रूप दिया। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में रखने के हेतु मिले अपने चित्रों को लगातार भेजते रहे किंतु पैरिस के लव्धप्रतिष्ठ समीक्षकों व पूर्वग्रहदूषित दर्शकों को वे पसन्द नहीं आते। निम्न श्रेणी के लोकों का जीवन चित्रण योग्य विषय हो सकता है इसकी कल्पना भी उनके लिए अनोखी थी और ऐसे विपय से वे घृणा करते थे। ऐसे चित्रों को देखकर राजनियुक्त कलानिदेशक ने कहा था "ये ऐसे आदमियों के चित्र हैं जो अपने कपड़ों को वदलते नहीं और अपने को प्रतिष्ठित कहलवाना चाहते हैं। ऐसी कला मुझे पसन्द नहीं है। मैं उससे घृणा करता हूं।"

चित्रविपय को कल्पना द्वारा अलौकिक सौंदर्य से ओतप्रोत वना देना चित्रकार की प्रतिभा का लक्षण व परम कर्तव्य माना जाता था; यथार्थ चित्रण को असुन्दर और कलाहीन मानते थे। पैरिस के कलाप्रेमियों को मिले के जो चित्र निंदास्पद लगते वे अमेरिका से आने वाले यात्रियों को कभी पसन्द आते और वे उनको खरीदते। उस समय अमेरिका में जनतन्त्रवादी कवि वाल्ट विटमन के विचारों का तेजी से प्रसार हो रहा था व उनके विचार मिले के विचारों से मिलते जुलते थे। इस प्रकार मिले के कई चित्र अमेरिका पहुंच गये। इसके अलावा कोरो जैसे उदार कलाकार-मित्र मिले की आर्थिक सहायता करते और उनका किसी तरह उदरनिर्वाह चलता।

१८६७ की पैरिस की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में मिले के चित्रों की वहुत प्रशंसा हुई और उनके चित्र विकने लगे। फ्रेंच कलाप्रेमियों ने मिले के चित्रों को देश में रखने के प्रयत्न किये किंतु तत्पूर्व उनके कई अच्छे चित्र अमेरिकन संग्राहक खरीद चुके थे जिनमें उनका प्रसिद्ध चित्र 'कुदालीवाला आदमी'[45] भी था। उसी शीर्पक की कविता को रच कर अमेरिकन कवि एडविन मार्खाम ने उस चित्र की ख्याति में चार चांद लगा दिये। प्रसिद्ध आधुनिक चित्रकार वान गो, वेल्जियन अभिव्यंजनावादी चित्र-कार कॉन्स्टंट पर्मीक, गुस्टाव डि स्मेट व यान स्लुइटर्स के किसान-जीवन के चित्रों का उद्गम मिले की चित्रकला है। वान गो के प्रसिद्ध चित्र 'वीज वोनेवाला'[46] उसी शीर्पक के मिले के चित्र की आधुनिक आवृत्ति मान सकते हैं। उपरिनिर्दिष्ट सभी चित्रकारों ने मिले का अनुकरण करके कृपकों के परिश्रम से कठिन व गठीले शरीरों को पत्थर की मूर्तियों के समान ठोस व स्मारकीय रूप प्रदान किया। अभिव्यंजना-वादी कला के आवेशपूर्ण रेखांकन का आरम्भिक रूप हमें मिले के चित्रों में देखने को

मिलता है। 'सामाजिक यथार्थवादी' कला के लिये मिले सदैव प्रेरणा रूप रहे। 'बीज बोनेवाला' की भांति उनका चित्र 'खान-मजदूर'[47] भी बहुत जोशपूर्ण व गतित्वयुक्त बन गया है। कर्णवत् दिशा में गतिमान रेखाओं की योजना मजदूरों के ऊबड़खाबड़, गठीले शरीरों का अंकन व प्रकाश का संयोजन कुशलतापूर्ण व प्रभावी है।

कामीय कोरो (१७९६-१८७५)

कोरो ने अन्य वार्बिजां चित्रकारों की तरह स्वयं को प्रकृति-चित्रण में सीमित नहीं रखा वलिक व्यक्तिचित्र व काल्पनिक चित्र भी बनाये। कलाक्षेत्र में क्रान्ति करने के उद्देश्य से वे प्रेरित नहीं हुए थे, अपनी इच्छानुसार वे आत्मसंतोष के लिये चित्रण करते थे। वार्बिजां चित्रकारों के समान वे कभी प्रकृति में जा कर प्रत्यक्ष चित्रण करते, अतः उनको वार्बिजां चित्रकारों में सम्मिलित करते हैं। उनको किसी विशिष्ट शैली का चित्रकार मानना कठिन है। वे बहुत ही विनम्र स्वभाव के व्यक्ति थे और अपने विचारों को दूसरों पर लादने का उन्होंने प्रयत्न नहीं किया। कोरो पूर्ण शांति से काम करना चाहते और वे आत्मश्लाघा से इतने परे थे कि उनके पिता को उनकी योग्यता के बारे में तब मालूम पड़ा जब उनको उम्र के ५० वें साल में फ्रेंच सरकार ने राष्ट्रीय सम्मान से विभूषित किया। तब तक उनके पिता यही समझते थे कि कामीय केवल मन बहलाने के लिये फुरसत में चित्र बनाता है।

कामीय कोरो का जन्म एक सधन परिवार में हुआ। उनके पिता टोपों के व्यापारी थे। कामीय इतने सीधे सादे व सरल स्वभाव के थे कि सफल व्यापारी होना उनके लिये असंभव था। अपने चित्रकारी के व्यवसाय में भी लगभग ५० वें साल तक वे एक भी चित्र बेच नहीं सके। तब तक निर्वाह के लिये वे अपने पिताजी पर निर्भर थे। उसके पश्चात् वे राष्ट्रीय सम्मान से आभूषित किये गये और उनको ख्याति प्राप्त हुई। अब उनके चित्र काफी तादाद में बिकने लगे और उनको इतनी अर्थ-प्राप्ति होने लगी जितनी उनके पिता को शायद ही कभी उनके व्यापार में हुई हो।

आरंभ में पिता की आज्ञानुसार कोरो पैरिस के किसी कपड़ों के व्यापारी की दूकान में अनुभव प्राप्त करने के हेतु लिपिक के रूप में काम करने लगे। उस काम में कोरो का दिल नहीं लगता था और वे मन ही मन जलने लगे। अन्त में बड़ी हिम्मत करके उन्होंने पिता से निवेदन किया कि चित्रकारी के अलावा कोई अन्य काम उनसे नहीं हो सकता, तब उनके पिता ने भी सहानुभूतिपूर्वक सब सहायता करने का आश्वासन दिया व विल द आव्रे में छोटा सा मकान दिलाकर नियत-कालिक अर्थ-प्रबंध किया।

कोरो ने १८२४ की फ्रेंच राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इंग्लिश प्रकृति-चित्रकार कॉन्स्टेबल के चित्र देखे और उनसे बहुत प्रभावित हुए। अब कॉन्स्टेबल के सिद्धान्त

के अनुसार प्रकृति को गुरू मान कर चित्रण करने का उन्होंने निश्चय किया। दूसरे वर्ष रोम जाकर उन्होंने शहर के दृश्य-चित्र व समीपवर्ती प्रदेश के प्रकृति-चित्र बनाये। इसी प्रकार प्रकृति-चित्रण के लिये कोरो भ्रमण करते और फिर लंबे समय के लिये वापस आ कर कार्य-कक्ष में चित्रों को पूर्ण करते तथा वार्बिजां चित्रकारों के साथ स्थानीय प्राकृतिक दृश्यों को चित्रित करने जाते। वैसे देखा जाये तो कोरो विल द आव्रे की अपनी कुटिया के एकांत में रमणीय प्राकृतिक दृश्यों को हलके व मुलायम रंगों में चित्रित करना अधिक पसंद करते। हलके व कोमल रंगांकन के पीछे कोरो का रेखांकन का गहरा अध्ययन व कौशल छिप नहीं सकते।

१८५० के करीब ख्याति प्राप्त होने पर कोरो अधिक लगन से और प्रचुर मात्रा में चित्रनिर्मिति करने लगे। १८५५ में फ्रान्स के राजा को उनका एक प्राकृतिक दृश्य बहुत पसंद आया और उन्होंने उसको खरीदा। अब कोरो जितने चित्र बनाते वे सब खरीदे जाते और इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी शैली के जाली चित्र बना कर उनके नाम से बिकने लगे। कहा जाता है कि जब एक निर्धन व्यक्ति जाली चित्र बेचने के संशय में पकड़ा जाकर कोरो के पास लाया गया तब कोरो ने दयालुता से चित्र पर हस्ताक्षर करके उस व्यक्ति को मुक्त कराया। कोरो बहुत ही कोमल स्वभाव के थे और सदैव दूसरों की सहायता करने में तत्पर रहते। उनका रहन-सहन सीधासादा था। वे आजीवन अविवाहित रहे। अर्थार्जन का उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि उससे वे गरीबों की सहायता करने का आनंद प्राप्त कर सकते थे। आवश्यकता के बारे में पूछताछ किये बिना उन्होंने कई कलाकारों की सहायता की। दूसरों की सहायता कोरो ऐसे अप्रत्यक्ष रूप से करते कि उपकृत व्यक्ति उपकार का बोझ महसूस नहीं करता। चित्रकार दोमीय को वृद्धावस्था में किराया देने में असमर्थ होने के कारण वाल्मांद्वा का मकान छोड़ना पड़ा तब कोरो ने उनको पत्र लिखा "मेरे प्रिय मित्र, वाल्मांद्वा में मेरी छोटी कुटिया है और मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि उसका क्या किया जाये। अतः मैं उसको आप ही को दे रहा हूं। इसमें मैं आपके लिये कुछ नहीं कर रहा हूं। मेरा केवल आपके दुष्ट मकान मालिक को झुंझलाने का उद्देश्य है।" इस प्रकार कुटिया को दान के रूप में देकर कोरो ने दोमीय को कठिनाई से मुक्त किया।

कोरो के प्रकृतिचित्रों के घनरूप व सरलीकृत आकार हमको पुसँ का स्मरण दिलाते हैं। कोरो की कला को हम पुसँ की शास्त्रशुद्ध शैलीं व घनवाद के बीच की अवस्था मान सकते हैं। 'नार्नी का दृश्य' एवं रोम के दृश्यचित्रों से कोरो ने अनावश्यक बारीकियों को हटाया है और वस्तुओं के आकारों को ठोस रूप प्रदान कर उनमें भव्यता डाली है। सुस्थापन, रचनाकौशल एवं हल्के किंतु स्पष्ट रंगांकन से कोरो के प्रकृतिचित्र श्रेष्ठ व प्रभावपूर्ण बन गये हैं। नैसर्गिक रूप में चित्रित करने के बजाय कोरो ने दृश्यों को सुरचना के विचार से एवं संयोजनपूर्वक चित्रित किया है। अपने

कलाविषयक मूलगामी सिद्धांत के बारे में उन्होंने लिखा है "आकार व प्रयोजन—ये मूलतत्व हैं"।[48] किन्तु इन दोनों तत्वों का परिणामकारक प्रयोग हरेक कलाकार कर नहीं सकता। उसके लिये प्रतिभा व संवेदनशीलत्व आवश्यक हैं जो कोरो में थे। कोरो आकार को कितना निरपेक्ष महत्व देते थे उसका प्रमाण उनके निम्न विधान से मिलता है। वे कहते "मैं स्त्री के स्तनों को वैसे ही चित्रित करता हूं जैसे कि दूध की शीशियों को"।[49] पुसँ की तरह कोरो के चित्र सुरचित, स्पष्ट, प्रसन्नतापूर्ण व मानवीय संघर्ष से दूर हैं और इन्हीं गुणों का विकास करने के उद्देश्य से प्रेरित हो कर बाद में घनवादी कलाकारों ने आधुनिक कला को नयी दिशा में मोड़ दिया। 'एम. आंरी के मकान व कारखाना', 'फार्नेस का बगीचा', 'रोजनी के गिरजाघर'[50] ये कोरो के चित्र उनके उपरिनिर्दिष्ट गुणों से परिपूर्ण हैं। उनके वस्तुचित्र जैसे सुरचित, निश्चल व भव्य हैं वैसे वन, उपवनों के दृश्य रमणीय, प्रशांत व निसर्गशक्ति से सचेत हैं। उनका प्रकृतिचित्र 'मोर्तिफांतेन की स्मृति'[51] निसर्ग की प्रशांत अवस्था का सर्वोत्कृष्ट चित्र है। इस चित्र का वातावरण काव्यमय है; हलकें कुहरे में से झुकावदार पेड़, पानी का शांत पृष्ठभाग व दूरस्थित धुंधले पहाड़ दिखायी दे रहे हैं और पूरे दृश्य को सौम्य रवि–किरणों ने प्रकाशित किया है। यह चित्र एक समय इतना लोकप्रिय था कि करीव प्रत्येक सुशिक्षित योरपीय व्यक्ति के गृह की दीवार को इससे अलंकृत किया जाता था।

कोरो के व्यक्तिचित्रों व मानवाकृतियों के चित्रों की प्रशंसा उनके जीवनकाल में नहीं हुई किंतु आजकल वे उनकी उत्कृष्ट कलानिर्मिति माने जाते हैं और उनकी मांग भी है। व्यक्तिचित्रों में अधिकतर स्त्रियों के चित्र हैं। प्रकृतिचित्रों की भांति कोरो के व्यक्तिचित्र परम्परागत शास्त्रशुद्ध शैली के विकसित रूप होकर भविष्य की आधुनिक कला के लिए प्रेरणाप्रद रहे। यह बात कोरो के व्यक्तिचित्र 'खंडित पठन'[52] की तुलना पिकासो के चित्र 'पंखावाली स्त्री'[53] के साथ व 'मोती पहने हुए स्त्री'[54] की तुलना लिओनार्डो डा विंची के 'मोना लिसा'[55] के साथ करने से स्पष्ट हो जाती है। हलके व गहरे रंगों के क्षेत्रों का समुचित स्थापन करके कोरो ने मनुष्याकृतियों को ऐसे संतुलित व घन रूप में गढ़ा है जैसे कि कोई स्थापत्यकार भवन निर्माण में करता है। अलंकार, कपड़ों के सल, वाल, छायाप्रकाश के सौम्य क्षेत्र वगैरह वारीकियों को उन्होंने ऐसे कुशलतापूर्वक अंकित किया है कि चित्र के समूचे प्रभाव में कहीं वाधा नहीं पड़ती। कोरो के सामान्य व्यक्ति के चित्रों में वस्तुनिरपेक्ष गुण ऐसी उमंग के साथ साकार हो गये हैं कि चित्रांतर्गत व्यक्तियों को अलौकिक श्रेष्ठत्व प्राप्त हो गया है और दर्शक उनकी तुलना प्राचीन साधुसंतों व महात्माओं के प्रतिमाचित्रों से करने को उत्सुक होता है। सामान्य प्राकृतिक दृश्यों व साधारण मानवों को कोरो ने असाधारण प्रतिभा से स्वर्गीय रूप प्रदान किया है। लिओनार्डो के चित्र 'मोना लिसा' में चित्रविषय स्त्री को आदर्श रूप देने का स्पष्ट प्रयत्न है

परन्तु कोरो के 'मोती पहने हुए स्त्री' चित्र में स्त्री को ऐसी कुशलता से आदर्श रूप प्रदान किया है कि वह अनैसर्गिक नहीं लगता। पिकासो ने अपने चित्र 'पंखावाली स्त्री' संयोजन-कौशल का प्रदर्शन करने के हेतु सोच समझ कर स्त्री को अनैसर्गिक मुद्रा में चित्रित किया है जिससे आधुनिक चित्रकार के मुख्य सिद्धांत 'कला के लिये कला' व 'चित्रविषय की उपेक्षा' स्पष्ट हो जाते हैं। कोरो के व्यक्तिचित्र परम्परागत शैली का विकसित रूप होते हुए भी उनमें यह प्रदर्शन वृत्ति या कृत्रिमता नहीं है व वे पूर्णतया नैसर्गिक भाव लिये हुए यथार्थवादी चित्र प्रतीत होते हैं। यथार्थवादी कला व आधुनिक कला के बीच का यह अंतर समय के साथ बढ़ता गया और आधुनिक चित्रकार कलानिर्मिति के लिये किसी विषय का होना अनावश्यक मानने लगे। संक्षेप में प्राचीन कला व आधुनिक कला में दृष्टिकोण की एक निम्न भिन्नता प्रमुख है; प्राचीन कला में किसी विषय को प्रधान स्थान देकर उसकी प्रभावी अभिव्यक्ति के हेतु वस्तुनिरपेक्ष गुणों का विकास किया जाता था जबकि आधुनिक कला में कलात्मक वस्तुनिरपेक्ष गुणों के विकास में कलाकार की व्यक्तिगत सृजनक्रिया यदि आवश्यक समझें तो विषय की ओर संकेत करती है।

सौम्य, निर्मल रंगसंगति, आकारों का सुयोग्य स्पष्टता से संतुलित गठन, और कलाकार की विषयजनित आत्मीयता से ओतप्रोत अभिव्यक्ति इन गुणों से परिपूर्ण ऐसे कोरो के कई चित्र हैं जिनमें 'कलाकार का कार्यकक्ष', 'ग्रीक बालिका', 'समुद्र के किनारे पर माता पुत्र' विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रायः कलाकार में जो अहंकार होता है व उसके परिणामस्वरूप उसमें जो महत्वाकांक्षा व प्रदर्शनवृत्ति होती हैं उसका कोरो में पूर्ण अभाव था। वे गर्वरहित व आत्मसंतुष्ट थे, उनके चित्र भी स्वाभाविक व प्रसादक हैं जैसे कि पौधे पर खिले हुए फूल। ये गुण अहंकारी व महत्वाकांक्षी कलाकार की कलाकृतियों में नहीं पाये जा सकते क्योंकि उनमें दर्शकों को प्रभावित करने की आकांक्षा होती है जो स्वाभाविक सृजन में बाधा डालती है।

कोरो, देलाक्रा की तुलना गरुड पक्षी से और स्वयं की तुलना चंडोल पक्षी से करते थे। वे अपनी कला के बारे में कहते "यह मेरा छोटा सा संगीत है"। इस छोटे से संगीत में कितना सामर्थ्य भरा है इसका शायद उन्होंने कभी विचार नहीं किया होगा। कोरो इस विरोधाभास का प्रत्यक्ष उदाहरण हैं कि जो कलाकार 'कला के लिये कला' के नारे लगा कर कार्य करते हैं उनकी कला से संसार से प्रेम करने वाले कलाकारों की कला अधिक स्वाभाविक व कलात्मक गुणों से परिपूर्ण होती है।

महत्वाकांक्षी नहीं होते हुए भी कोरो कार्यव्यस्त थे। उन्होंने काफी भ्रमण किया। वे राष्ट्रीय प्रदर्शनी की निर्णायक समिति के सदस्य रहे और कलाक्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करके उन्होंने सम्मान का स्थान प्राप्त किया। इतना होते हुए भी वे चिंतनशील व निरपेक्ष थे।

आयु के उत्तरकाल में कोरो 'बाबा कोरो' नाम से प्रसिद्ध हुए। वे निर्धन

कलाकारों की आर्थिक सहायता करते, असफल व निराश कलाकारों को सहानुभूति के साथ समयोचित उपदेश करते व मार्गदर्शन करते। कोरो अंत तक चित्रण करते रहे। कुछ दिनों की कमजोरी के वाद जव एक रोज सवेरे उनको नाश्ता करने को कहा गया तव वे वोले "आज वावा कोरो ऊपर नाश्ता करेंगे"; वही उनकी आयु का अंतिम दिन था। अंत से पहले वे आकाश की ओर देख कर वोले "मुझे ऐसा लगता हैं कि आकाश का चित्रण कैसे करना चाहिये यह मैंने कभी नहीं जाना। वहां देखो आकाश कितना गुलावी, गहरा व पारदर्शक है। कलाप्रेमियों के लिये मेरे सामने के क्षितिजों को चित्रित करने को मैं कितना उत्सुक हूं।"

इस अध्याय में हमने गोया, देलाक्रा, कुर्वे आदि चित्रकारों की कला का अध्ययन किया और देखा कि आधुनिक कला के प्रारंभिक चरणों की आहट उनकी कला में सुनने को मिलती है। इन महान् चित्रकारों से प्रेरणा पाकर १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रभाववादी चित्रकार उत्साह व निश्चय के साथ आगे वढ़े और उन्होंने आधुनिक कला की नींव डाली। परम्परागत शास्त्रोक्त नियमों का अध्ययन कला को सामर्थ्यवान वनाने में व कलाकार के पथदप्रर्शन में कितना उपयुक्त है यह आधुनिक कलाकारों ने दावि व अँग्र से सीखा; देलाक्रा से विशुद्ध रंगांकन व निर्भीक तूलिकासंचालन पर वल देना सीखा, और कुर्वे से उनको ज्ञात हुआ कि वास्तवसृष्टि व यथार्थ मानव जीवन, सौंदर्य व सृजनशील अनुभूतियों से इतना ओतप्रोत है कि चित्रण के लिये काल्पनिक या आदर्श विषयों की आवश्यकता नहीं है। प्रसन्नचित्त व आत्मसंतुष्ट रह कर निष्कामभाव से कलासाधना करने से कितनी सफल कलानिर्मिति की जा सकती है इसकी ओर कोरो ने निर्देश किया। कलानिर्मिति की सार्थकता निरपेक्ष साधना में ही है न कि उसकी सामाजिक मान्यता में या आर्थिक फलप्राप्ति में।

प्रभाववादी चित्रकारों को अपने कलासम्वन्धी सिद्धांतों को प्रस्थापित करने के लिये जो त्याग व संघर्ष करने पड़े उसका अध्ययन हम स्वतन्त्र अध्याय में करेंगे।

प्रभाववाद

आधुनिक योरपीय साहित्य एवं कला एक दूसरे से इतने प्रभावित रहे हैं कि समान नवविचारों के आंदोलनों से दोनों एक साथ प्रेरित होते दिखाई देते हैं। आधुनिक चित्रकला के अध्ययन में समकालीन साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन बहुत सहायक रहता है। क्रान्तिवादी साहित्यिकों व कवियों ने कला के अन्तर्गत आरम्भ हुए नवीन प्रवाहों के महत्व को पहचाना एवं नवीन विचारों द्वारा कला के विकास को गति प्रदान करके महत्वपूर्ण योगदान किया। साहित्यिकों के समान कलाकारों में स्वतन्त्र विचारों से अपने कलाविषयक ध्येय को पूर्वनियोजित करने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी। आधुनिक कला व प्राचीन कला में यह एक महत्वपूर्ण अन्तर है कि प्राचीन कलाकार अपनी कला के ध्येय के निर्णय के लिए धर्माधिकारियों, राजाओं व सामाजिक आवश्यकताओं पर निर्भर रहते थे जबकि आधुनिक कलाकारों ने अपनी कला के ध्येय को निश्चित करने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया।

चित्रकला में जिस समय प्रभाववाद का उदय हो रहा था, समकालीन साहित्य प्रभाववाद की ओर विकासशील था। दोनों ने विषय के महत्व को ठुकरा दिया था। साहित्य में लेखक किसी वास्तविक, किन्तु बिलकुल मामूली, दैनन्दिन प्रसंग को लेकर लेखनशैली से उसको प्रभावपूर्ण बनाते थे तो चित्रकला में चित्रकार किसी भी साधारण दृश्य—जैसे कि कोने में अस्तव्यस्त पड़ी वस्तुएं, स्वाभाविक अवस्था में बैठा हुआ सामान्य आदमी वगैरह को लेकर चित्रण करते थे। उनका मूल सिद्धांत यह था कि चराचर सृष्टि के दृश्य, घटनाएं, प्रसंग सौंदर्य से ओतप्रोत हैं और कलाकृति के निर्माण के लिए किसी काल्पनिक या महत्वपूर्ण विषय के होने की आवश्यकता नहीं है। कलात्मक सृजन मुख्य रूप से आत्मनिष्ठ है वस्तुनिष्ठ नहीं। भावनाओं की जागृति प्रत्यक्ष रूप से कलाकार की मानसिक अवस्था से सम्बन्ध रखती हैं विषय से नहीं। संक्षेप में समस्त सृष्टि को विषय के रूप में स्वीकार कर कलाकार अधिक सौंदर्यवादी एवं आत्मकेंद्रित हो गया।

प्रभाववादी चित्रण के लिए कलाकार प्राकृतिक या शहरी दृश्यों एवं दैनिक जनजीवन के सामान्य घरेलू या सामाजिक प्रसंगों को चुनते थे और इस विचार से कुछ विद्वान् प्रभाववाद को यथार्थवाद का ही परिवर्तित रूप मानते हैं। इसके अतिरिक्त

उनके दृष्टिकोण में प्रभाववाद में ठोस आकार रचना या अभिव्यंजना—जो आधुनिक कला की प्रमुख विशेषताएं हैं—नहीं होने के कारण उसको आधुनिक कला के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं किया जा सकता। किंतु यह धारणा सदोष है। प्रभाववाद व यथार्थवाद में स्पष्ट अंतर है। यथार्थवाद में विषय का अस्तित्व उद्देश्यपूर्ण है जबकि प्रभाववाद में विषय का कार्य सौंदर्यानुभूति को जागृत करना मात्र है। यथार्थवाद में वस्तु के नैसर्गिक वर्ण का विचार करके रंगांकन किया जाता था जबकि प्रभाववाद में प्रकाश व वातावरण के प्रभाव के साथ रंगों के नैसर्गिक सौंदर्य का भी विचार था। सुन्दर रंगयोजना व स्पष्ट तूलिकासंचालन—जिन गुणों का विकास करके मोने ने अपने अंतिम वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य से परिपूर्ण चित्र बनाये—प्रभाववाद की आधुनिक कला को देन है। प्रभाववाद के कारण आधुनिक कलाकारों में स्वतंत्र विचार से, व्यक्तिगत अनुभूति के अनुसार चित्रण करने का साहस आ गया। प्रभाववाद से ही कलाकारों को विचारों के आदानप्रदान का महत्व ज्ञात हुआ। प्रभाववाद का अध्ययन किये बिना आधुनिक कला की विशेषताओं को समझना सुतरां असम्भव हैं। प्रभाववादी चित्रकारों ने वैज्ञानिक अध्ययन करके परम्परागत अंकनपद्धतियों में क्रांतिकारी परिवर्तन किये और आधुनिक कला की अंकनपद्धतियों की नींव डाली एवं कलाकार के विषय के प्रति दृष्टिकोण को नया विचार प्रदान किया।

आधुनिक चित्रकला के जन्मदाता सेजान, घनवाद के प्रणेता पिकासो व ब्राक अभिव्यंजनावाद एवं फाववाद के प्रेरणा के स्रोत वान गो व गोग्वँ इन कलाकारों ने तथा आधुनिक कला के आरम्भिक काल के करीब सभी चित्रकारों ने अपनी विद्यार्थी-अवस्था में प्रभाववाद के अध्ययन से लाभ उठाकर अपनी कला को नयी दिशाओं में मोड़ दिया। अतः प्रभाववादी चित्रकारों ने परम्परागत अंकनपद्धतियों में व कलाकारों की प्रचलित विचारधाराओं में क्या परिवर्तन किये और उसके लिये उनको कितना परिश्रम करना पड़ा इसका आरम्भ में विचार करना होगा।

एद्वार माने व प्रभाववाद का बीजारोपण:—

आधुनिक चित्रकला के इतिहास में १८६३ का वर्ष बड़ा महत्वपूर्ण रहा। इस वर्ष पैरिस में 'अस्वीकृत चित्रों की प्रदर्शनी'[1] आयोजित हुई जिसमें प्रदर्शित एद्वार माने का चित्र 'तृण पर भोजन[2] कटु आलोचना का विषय बना।

रोमांसवाद के प्रणेता देलाक्रा व नवशास्त्रीयतावादी चित्रकारों के नेता अँग्र की मृत्यु हो चुकी थी एवं यथार्थवाद का बीजारोपण कर के कुर्वे फ्रांस से भाग गये थे। नवीन चित्रकार तीनों वादों का निष्पक्ष अध्ययन करके नवनिर्माण के लिए आधारभूत सिद्धान्तों की खोज में थे। गोया की स्वतंत्रबुद्धि व वेनिशियन चित्रकारों के चमकीले रंगांकन से वे प्रभावित थे; तथा पूर्वगामी क्रांतिकारी चित्रकारों की कलाकृतियों व सिद्धान्तों के अध्ययन से वे आधुनिक कला की नींव डाल रहे थे। किंतु

फ्रेंच राष्ट्रीय कलासंस्था के सत्ताधारियों के दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं पड़ा था और १८६३ की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में—जिसमें परम्परागत विचारों के निर्णायकों का बहुमत था—४००० से भी अधिक चित्र अस्वीकृत हुए। अस्वीकृत चित्रकारों ने कोलाहल मचाया और राजा ने मध्यस्थता करके इन चित्रकारों के चित्रों की स्वतंत्र प्रदर्शनी कराने का आदेश दिया। यह प्रदर्शनी चित्रकला के इतिहास में 'अस्वीकृत चित्रकारों की प्रदर्शनी' नाम से प्रसिद्ध हुई। जो अस्वीकृत चित्रकार इस प्रदर्शनी में अपने चित्रों को प्रदर्शित नहीं करना चाहते थे उनको दो सप्ताह के अन्दर चित्रों को वापस लेने की सूचना दी गयी। बहुसंख्य चित्रकारों ने अपने चित्रों को प्रदर्शित करने का निर्णय लिया किंतु कुछ चित्रकारों ने इस प्रदर्शनी में भाग लेना असम्मानजनक माना तथा ६०० से अधिक चित्र वापस लिये गये। प्रदर्शनी उसी भवन में हुई जिसमें राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था।

प्रदर्शनी एक दृष्टि से सफल हुई कि अस्वीकृत चित्रकारों के असन्तोष के पीछे क्या सत्य है यह समझने के लिए दर्शकों की भीड़ एकत्रित हुई। इनेगिने चित्रों को छोड़ दर्शकों ने प्रदर्शनी को नापसन्द किया और उसकी हंसी उड़ाई। प्रदर्शनी से राष्ट्रीय कला संस्था की प्रतिष्ठा को किंचिदपि धक्का नहीं पहुंचा परन्तु इस धारणा की भी पुष्टि हुई कि कलाकार को अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार कलानिर्मिति करने का अधिकार है। राजनैतिक क्षेत्र में जिस प्रकार भाषण-स्वातंत्र्य के लिये लड़ाई की गयी उसी प्रकार चित्रकार कला के क्षेत्र में 'सृजन-स्वातंत्र्य' की लड़ाई लड़ रहे थे।

सबसे अधिक आलोचना माने के चित्र 'तृण पर भोजन' की हुई। माने को यह आशा नहीं थी। वे राष्ट्रीय कलासंस्था के कदापि विरोधी नहीं थे और उसकी मान्यता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। दो साल पहले ही उनके चित्र 'स्पैनिश गिटारवादक' व 'मातापिता के व्यक्तिचित्र' राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में स्वीकृत हुए थे और पहले चित्र की काफी प्रशंसा हुई थी। यह चित्र उसी ढंग से बनाया गया था जिस ढंग से माने ने बाद में 'तृण पर भोजन' को बनाया किंतु 'तृण पर भोजन' की कटु आलोचना होने का कोई विशेष कारण था। यह कारण क्या था इसका विचार करने से पहले माने की कला में क्या नवीन विशेषताएं थीं इसका विचार करना आवश्यक है।

माने की रंगांकनपद्धति में एक नवीनता थी। वे रंगों के हलके व गहरे रंगों के क्षेत्रों को स्पष्टता से पृथक् अंकित करते। हलके क्षेत्र को क्रमशः गहरे क्षेत्र में परिवर्तित करने की परम्परागत पद्धति को उन्होंने तोड़ दिया। अतः उनके चित्रों में मध्यम छटा के क्षेत्र जहां अत्यावश्यक हों वहीं अंकित किये हैं। वस्तुओं व मानव शरीरों के छाया के क्षेत्रों को छोटा करके उन्होंने चित्र के समतल प्रभाव को बढ़ाया उनके चित्रों में पुनर्जागरणकाल से प्रचलित घनत्व के प्रभाव को स्थान नहीं है और

वे जापानी चित्रों के समान समतल दिखाई देते हैं। कारावाज्यो से लेकर १७वीं सदी तक के चित्रकारों के चित्रों में कृत्रिम प्रकाश का प्रभाव है क्योंकि ये चित्रकार वस्तु का रंगांकन करते समय रंग की सबसे हलकी से लेकर सबसे गहरी तक सभी छटाओं का प्रयोग करते थे; इस पद्धति से आकार में ठोसपन आता। इस घनत्वांकन-पद्धति को छोड़ देने से माने अपने चित्रों में नैसर्गिक प्रकाश के प्रभाव को अंकित करने में सफल हुए। चित्रित की गयीं मानवाकृतियां तथा वस्तुएं ऐसी दिखाई देती हैं मानो चित्रकार ने प्रत्यक्ष देखकर उनकी प्रतिकृतियां बनायी हों। चित्र की रंगांकित पृष्ठ-भूमि को चिकना बनाने की प्रथा को तोड़ कर माने ने तूलिका संचालन की स्पष्टता को कायम रखा। उन्होंने परम्परागत विषयों को छोड़कर दैनन्दिन जीवन को विषय के रूप में चुना और कल्पना से चित्रण करने के बजाय प्रत्यक्ष देखकर चित्रण आरम्भ किया। 'आलिम्पिया'[3] देवता के चित्रण के लिए उन्होंने किसी स्त्री को मॉडेल के रूप में बिठाया तथा 'तृण पर भोजन' में अपने मित्र व एक स्त्री मॉडेल को देख के मानवाकृतियां चित्रित कीं; पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हुए दोनों चित्रों के विषय समकालीन दैनंदिन जीवन के प्रसंग हैं। इससे माने ने सिद्ध किया कि प्राचीन कल्पनाओं को लेकर आधुनिक विषयों द्वारा समकालीन जीवन का सजीव चित्रण किया जा सकता है। प्रत्येक वस्तु को स्वतंत्र रूप में ठोस चित्रित करने के बजाय पूरी चित्रभूमि को हलके गहरे क्षेत्रों में विभाजित करके, उन सभी क्षेत्रों का संतुलित व सुसंगतिपूर्ण संयोजन करने पर माने ने अपना ध्यान केंद्रित किया जिससे माने के चित्रों का सम्पूर्ण प्रभाव रचनात्मक व मनोहर बन गया है।

प्राचीन चित्रकार विषय के प्रतिपादन से दर्शकों को आकर्षित करते थे जबकि माने ने कलाप्रेमियों का ध्यान चित्र के कलात्मक गुणों की ओर खींचा। माने के चित्र के सम्मुख दर्शक प्रथम चित्र के कलात्मक सौंदर्य से मुग्ध हो जाता है और चित्र के विषय के बारे में बाद में विचार करने लगता है। माने के चित्र 'तृण पर भोजन' में भी यह विशेषता है। इस चित्र की तुलना ज्योर्जिओन के चित्र 'चरागाह में समूह-संगीत'[4] से करने पर यह बात स्पष्ट होती है। ज्योर्जिओन के चित्र को देखते समय दर्शक की निगाह प्रत्येक वस्तु व व्यक्ति को स्पष्ट व क्रमशः देखती है जबकि माने के चित्र का पूरा दृश्य एक ही दृष्टिपात में दिखाई देता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि माने ने विषय का महत्व कम करके अंकनशैली पर अधिक बल दिया। हो सकता है कि इस प्रकार की अंकनपद्धति को अपनाने में माने को छायाचित्रणकला से प्रेरणा मिली हो। माने की अंकनपद्धति में और एक विशेषता थी। वे पूरे क्षेत्र को प्रथम हलके रंग से अंकित करते और बाद में गहरे रंगों के छोटे क्षेत्रों को ऊपर से दबाते। यह परम्परागत रंगांकनपद्धति के ठीक विपरीत था। परम्परागतपद्धति में प्रथम सबसे गहरे क्षेत्रों को अंकित करके बाद में हलके क्षेत्रों को क्रमशः अंकित किया जाता था। माने की रंगांकनपद्धति में यह लाभ था कि उससे छाया के हिस्से चमकीले व पारदर्शक

दिखाई देते। किन्तु परम्परावादियों ने माने पर अज्ञान व अकुशलता का आरोप किया।

माने के चित्र 'तृण पर भोजन' के निंदा का विषय होने का और भी कारण था। माने की मौलिक चित्रणशैली से उतना उत्पात नहीं हुआ जितना कि उस चित्र में एक विवस्त्र स्त्री को दो वस्त्रधारी पुरुषों के साथ चित्रण करने से हुआ। इससे पैरिस के प्रतिष्ठित लोकों की सदभिरुचि को धक्का पहुंचा। राजा ने घोषित किया कि यह चित्र असभ्यता का परिचायक है। किंतु निकट की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में कावानेल के 'विवस्त्र वीनस' चित्र की बहुत प्रशंसा हुई और राजा ने उसको खरीदा। परम्परागत विचारों के अनुसार देवताओं, अप्सराओं व पौराणिक स्त्रीपुरुषों के विवस्त्र अवस्था में चित्र बनाने में कोई अश्लीलता नहीं थी किंतु सामान्य स्त्री का विवस्त्र अवस्था में—और वह भी पोशाक पहने हुए पुरुषों के साथ चित्रण बिलकुल अनोखी बात थी। अतः सभी विरोधी सहमत थे कि ऐसा चित्रण करनेवाला जरूर कोई विकृत मनोवृत्ति का चित्रकार होगा। माने के समर्थकों ने प्रमाणित किया कि करीब ३०० वर्ष पूर्व ज्योर्जिओन ने अपने चित्र 'चरागाह में समूहसंगीत' में दो विवस्त्र महिलाओं का सवस्त्र पुरुष के साथ चित्रण किया था। किंतु ज्योर्जिओन के स्त्रीपुरुष पूर्णरूप से काल्पनिक थे जबकि माने के स्त्रीपुरुष ऐसे लग रहे थे जैसे कि हम किसी समकालीन प्रसंग का प्रत्यक्ष चित्रण देख रहे हैं। माने के समर्थकों ने यह भी सिद्ध किया कि माने ने प्रसिद्ध चित्र 'पैरिस का निर्णय'[5] के एक हिस्से में चित्रित किये गये तीन देवताओं के समूह का अनुकरण करके चित्र बनाया था; परन्तु ऐसे पौराणिक विषय के उदाहरण से माने दोषमुक्त नहीं हो सकते थे।

दो साल पश्चात् माने का सुविख्यात चित्र 'ग्रालिम्पिया' फ्रेंच राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में दिखाया गया। यह चित्र इतना विस्फोटक रहा कि कलामंत्रालय ने चित्र की रक्षा के लिये सिपाही की नियुक्ति की। वस्तुतः इस चित्र का विषय प्राचीन था और शय्या पर लेटे हुए सौंदर्य की देवता या स्त्री का नग्न अवस्था में चित्र अब तक कई चित्रकार बना चुके थे और उसमें समीप खड़ी हुई दासी को भी चित्रित किया जाता था। रुबेन्स व गोया के इस विषय के चित्र प्रसिद्ध हैं किंतु टिशिग्राँ के चित्र 'अर्बिनो की वीनस[6]' से यह चित्र बहुत मिलता जुलता है। माने का अक्षम्य अपराध यह था कि उन्होंने समाज में कुख्यात स्त्री का चित्र बना के 'ग्रालिम्पिया' देवता के नाम से उस चित्र को प्रदर्शित किया था। सत्य को इस प्रकार प्रकाशित करने में धृष्टता थी क्योंकि इससे पैरिस के अनैतिक जीवन की स्पष्ट रूप से निंदा की जा रही थी। ग्रालिम्पिया के मुख पर ऐसे भाव चित्रित किये गये थे जैसे कि किसी वेश्या के चेहरे पर होते हैं। यहां नग्न सत्य का दर्शन था और उसके साथ प्रतिष्ठित माने गये व्यक्तियों की पाखंडी वृत्ति का गर्भित उपहास भी।

'ग्रालिम्पिया' माने की पूर्ण विकसित शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

चित्र को दो मुख्य समतल क्षेत्रों में विभाजित किया है—गहरी पृष्ठभूमि और हलकी अग्रभूमि—एवं छायाप्रकाश व घनत्वांकन को लगभग पूर्णतः हटा दिया है। अग्रभूमि में शय्या, तकिया, चादर एवं आलिम्पिया की आकृति मानो केवल एक हलकी रेखा से ही अंकित की है। कृष्णवर्ण दासी की अर्धाकृति काली पृष्ठभूमि में अस्पष्ट सी दिखायी दे रही है। चित्र के विषय से भी अधिक चित्र का आकार-सौंदर्य और हलके गुलाबी, हरे, पीले एवं धूसर रंगों की मनोहर रंग-संगति दर्शक को मोह लेती है। छायाप्रकाश, घनत्व, वर्ण आदि नैसर्गिक रूप के गुणों के विकास के शास्त्रोक्त सिद्धांतों के द्वारा सादृश्य पर बल देने के बजाय माने ने आकारसौंदर्य, रंग-संगति, रचना-कौशल आदि विशुद्ध कलात्मक गुणों के विकास को महत्व दिया था। आगे चल कर बीसवीं शताब्दी में माने के इस दृष्टिकोण की परिणति वस्तुनिरपेक्ष कला के निर्माण में हुई। अतः माने की कला कुर्बे व मिले के यथार्थवाद से भिन्न है क्योंकि उन दोनों की कला में जीवनसंबंधी किसी विचार को लेकर चित्रण किया गया है। कुर्बे के यथार्थ-वाद के बारे में उनके मित्र कास्तान्येरी ने लिखा है "कुर्बे व प्रुदां का दृष्टिकोण कला की दृष्टि से अयोग्य है; कला का किसी विचारधारा से संबंध नहीं होता"। अतः माने की कला को कुछ समीक्षक वास्तविकतावादी या वस्तुनिष्ठ यथार्थवादी मानते हैं। वास्तविकतावादी कलाकार यथार्थवादी कला को केवल प्रचार या विचारप्रदर्शन मानते हैं। वास्तविकतावादी कलाकार स्वयं को वस्तु के बाह्य सौंदर्य में सीमित रखते हैं और उनकी कलानिर्मिति के पीछे 'कला के लिये कला' का भाव छिपा रहता है; बाह्य रूप के सौंदर्यदर्शन के अतिरिक्त उनकी कला में कोई वैचारिक अभिप्राय नहीं होता। वस्तुरनिरपेक्ष कला इसी विचारधारा का आत्यंतिक रूप है जिसमें वस्तु के अस्तित्व के विचार को भी स्थान नहीं दिया जाता। 'आलिम्पिया' चित्र का सौंदर्य-ग्रहण इसी विचारधारा को समझ कर किया जाना चाहिये। इस चित्र का दर्शक पर होनेवाला प्रभाव दृश्य के प्रथम दृष्टिपात में होनेवाले प्रभाव के समान है। प्रथम दृष्टिपात से मिलने वाला अनुभव केवल सौंदर्यजनित होता है—न कि बौद्धिक—और माने की कलाकृति से मिलनेवाला आनंद ऐसा ही है। टिशिआं ने 'अर्बिनो की वीनस' में स्त्रीशरीर के आकर्षक सौंदर्य व उसके पीछे छिपे हुए प्रकृति के चिरकालीन सत्य को साकार किया है जबकि 'आलिम्पिया' द्वारा माने ने एक ही क्षण में बंधे हुए दृश्य सौंदर्य को पुनरनुभूत कराया है। माने के साथ कला में पुनर्जागरण काल से चलती आयी बौद्धिकता का महत्व घटता गया और विशुद्ध सौंदर्य का महत्व बढ़ता गया। विषयप्रतिपादन के विचार से भी 'आलिम्पिया' का सामर्थ्य उपेक्षणीय नहीं है यद्यपि माने ने इस चित्र की निर्मिति कथनात्मक उद्देश्य से नहीं की थी। स्त्री-शरीर का मोहक सौंदर्य चित्र का विषय था और सौंदर्यानुभूति माने की कला का प्रमुख लक्ष्य होने के कारण विषयप्रतिपादन के विचार से भी चित्र प्रभावी बन गया है।

एद्वार माने का जन्म १८३२ में एक सधन परिवार में हुआ। उनके पिता न्यायाधीश थे। बचपन से ही एद्वार चित्रकार बनना चाहते थे और मातापिता से कहते कि इस विचार में यदि वे उनको अनुमति नहीं देंगे तो वे समुद्री यात्रा में शामिल होकर कहीं चले जायेंगे। मातापिता ने एद्वार को रिओ-डि-जानेरो भेज दिया और सोचा कि इस सागर-परिभ्रमण के अनुभव से शायद वे अपने निश्चय से परावृत्त होंगे। किंतु इसका परिणाम बिलकुल विपरीत हुआ और चित्रकार बनने का माने का निश्चय अधिक पक्का हो गया।। अंत में पिता की संमति से वे चित्रकार कुत्युर की चित्रशाला में प्रविष्ट हुए। छः साल के अध्ययन से माने परंपरागत अंकनपद्धतियों से परिचित हो गये किंतु उससे वे संतुष्ट नहीं थे और लुव्र संग्रहालय जा कर उन्होंने विख्यात कलाकृतियों का अध्ययन किया। बाद में वे जर्मनी व हालेंड गये जहां फ्रान्स हाल्स की स्वच्छंद अंकनशैली से वे बहुत प्रभावित हुए। इटाली जा कर उन्होंने पुनर्जागरणकालीन ख्यातनाम कलाकारों एवं वेलास्के के चित्रों का अध्ययन किया जिनमें से वेलास्के का माने पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा।

आरंभ से ही माने यथार्थवाद की ओर आकृष्ट थे। वे जब कुत्युर के मार्गदर्शन में अध्ययन कर रहे थे तब कुर्बे यथार्थवादी कलानिर्मिति में व्यस्त थे। माने चित्रशालेय वातावरण से परेशान थे और वे जब स्वतंत्र विचार से चित्रण करते तब कुत्युर उपहास के साथ कहते "तुम तो केवल अपने समय के दोमीय हो पाओगे।" माने रूढिबद्ध शिक्षा से कितने ऊब गये थे यह उनके निम्न कथन से स्पष्ट होता है; वे कहते "मेरी समझ में नहीं आता कि मैं यहां क्यों हूं आसपास जहां भी देखो सब हास्यास्पद बातें हो रही हैं। कृत्रिम प्रकाश कृत्रिम छाया! जब मैं चित्रशाला में प्रवेश करता हूं, मुझे ऐसा लगता है कि मैं कब्र में प्रवेश कर रहा हूं।" असंतुष्ट होने पर भी माने ने दृढ़ता से वहां का नियमबद्ध अध्ययन जारी रखा और उससे यह लाभ हुआ कि उनके स्वच्छंद चित्रण में भी आकारों व रेखाओं में ऐसा डौल व लय हैं जो परिश्रम से ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

कुत्युर व उनके अनुयायियों के यथार्थवाद के बारे में क्या विचार थे यह उनकी चित्रशाला में चित्रित किये गये 'यथार्थवादी' चित्र से अवगत होता है। इस चित्र में एक गंवार पोशाक वाला व्यक्ति ग्रीक मूर्ति के शीर्ष पर बैठ के मरे हुए सूअर का चित्र खींचते हुए दिखाया गया है। १८५९ में जब माने ने अपना चित्र 'एब्सिंथ पीनेवाला' [7] राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी के लिये भेज दिया तब कुत्युर ने उसको देख कर उपहास के साथ कहा "यह किसी एब्सिंथ पीनेवाले ने बनाया होगा"। इस चित्र के बारे में माने ने लिखा है "मैंने पैरिस में ऊंचा टोप पहने हुए किसी निर्धन, घुमक्कड़ को देखा और उसको वेलास्के की सरलीकृत शैली में चित्रित किया"। वेलास्के से माने बहुत प्रभावित थे। माने का यह चित्र स्वीकृत नहीं हुआ।

१८६२ में पैरिस में स्पेनिश नर्तकों व वादकवृंदों के कार्यक्रम हो रहे थे और

मानें ने प्रत्यक्ष देख कर उनके कुछ तैलचित्र व रेखाचित्र बनाये। ये चित्र मानें ने १८६३ की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी से पहले मार्तिने कलावीथिका में प्रदर्शित किये। चमकीली स्पेनिश रंगसंगतियां माने को बहुत पसंद आयी थीं और उनके अनुसार माने ने इन चित्रों में काले या धूसर रंगों के ऊपर विशुद्ध रंगों के प्रयोग किये थे जिससे ऊपर के रंग अधिक चमकीले दिखायी दे रहे थे। चमकीले रंगों के इन प्रयोगों को समीक्षकों ने हीन अभिरुचि का लक्षण माना व लोला नाम की नर्तकी के व्यक्तिचित्र[8] की बहुत निंदा हुई। इन चित्रों की प्रदर्शनी के बाद माने ने जब अपने चित्र 'तृण पर भोजन' को 'अस्वीकृत चित्रकारों की प्रदर्शनी' में दिखाया तब-जैसे हम पहले देख चुके हैं—बड़ा प्रक्षोभ हुआ। इस प्रदर्शनी के बाद राजा ने नवकलाकारों के प्रति अपनी उदारता को सीमित रखा और १८६४ में 'अस्वीकृत चित्रकारों की प्रदर्शनी' के बजाय कुछ अस्वीकृत चित्रों को प्रदर्शित करने के लिये राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी का एक कक्ष आरक्षित किया गया। तीन चौथाई निर्णायकों का चुनाव पुरस्कृत कलाकारों द्वारा कराने का नियम बनाया गया।

१८६५ की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में माने का चित्र 'आलिम्पिया' स्वीकृत हुआ और कास्तान्यारी ने उसको 'ताश का पत्ता' कह कर निंदा की। 'आलिम्पिया' की निंदा के बाद माने स्पेन गये। वहां का रंगीला जीवन देखने को वे उत्सुक थे। किन्तु वहां की परिस्थिति को प्रत्यक्ष देखकर वे निराश हो गये। कल्पना व यथार्थ दोनों सदैव एक दूसरे से परे होते हैं। १८६६ की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में उनका चित्र 'बांसुरीवाला'[9] अस्वीकृत हुआ किंतु १८६८ में उनके दो चित्र 'तोतेवाली स्त्री' व 'एमिल जोला'[10] स्वीकृत हुए। एमिल जोला माने की चित्रकला के प्रशंसक थे और उन्होंने माने पर एक पुस्तक लिखी थी। जोला के व्यक्तिचित्र की पृष्ठभूमि में दीवार पर 'आलिम्पिया' की प्रतिकृति व जापानी छापचित्र लगाये हैं। जापानी छापचित्रों का प्रभाववाद के इतिहास में विशेष स्थान है। योरपीय चित्रकारों को जापानी छापचित्रों का परिचय आकस्मिक रूप से हुआ। जापान से जो चीनी मिट्टी के पात्र योरप जाते थे वे पुराने कागजों में लपेटे हुए होते थे और इन कागजों पर कभी जापानी कलाकार होकुसाई व हिरोशिगे के छापचित्र हुआ करते। इन छापचित्रों से कुछ योरोपीय कलाकार इतने प्रभावित हुए कि इन छापचित्रों को प्राप्त करने के हेतु चीनी मिट्टी के पात्र मंगाये जाने लगे। पैरिस के एक विक्रेता ने साहित्यिक व कलाकार ग्राहकों के लिये जापानी छापचित्र मंगवाये। १८६७ में पैरिस की विश्व-प्रदर्शनी में जापानी कला का विभाग पृथक् किया गया था जिसमें जापानी छापचित्र, अलंकरणयुक्त कपड़े, कलापूर्ण पात्र, पंखे व हस्तकला के नमूने रखे गये थे। पैरिस के कई कलाकार जापानी कला से प्रभावित हुए और उन्होंने अपनी कलाशैली में जापानी कला के कुछ तत्वों का समावेश किया। ऐसे कलाकारों में माने, विसलर, देगा, वान गो, गोग्वें व तुलुज लोत्रेक थे जिनका आधुनिक चित्रकला के इतिहास में

महत्वपूर्ण स्थान है। इन चित्रकारों ने अपने कुछ चित्रों की पृष्ठभूमि में जापानी छापचित्रों, पात्रों, पंखों आदि कलाकृतियों को चित्रित किया है जिससे वे जापानी कला से कितने आकृष्ट थे इसका प्रमाण मिलता है। जापानी कला के समतलत्व, रेखात्मकता एवं कोमल व मनोहारी रंगांकन के गुणों से वे मोहित थे। माने की कला में इन्हीं गुणों को पाश्चात्य अंकनपद्धतियों के अनुकूल परिवर्तित रूप में विकसित किया है। माने ने जापानी कला का अंधानुकरण नहीं किया। जापानी छापचित्रों का और एक विचार से भी नवीन चित्रकारों के लिए महत्व था; ये चित्रकार जिन विषयों को लेकर चित्रण करना चाहते थे वैसे ही इन छापचित्रों के भी विषय थे—रंगमंचों, जलपानगृहों व नृत्यगृहों के दृश्य तथा प्राकृतिक दृश्य, नटनटियों के व्यक्तिचित्र व समकालीन घरेलू व सामाजिक प्रसंग। जापानी चित्रकला से प्रभावित होते हुए माने अन्य योरपीय चित्रकारों की कला व जापानी छापचित्र कला में पर्याप्त अंतर है। जापानी कलाकार बारीक बाह्यरेखा से अंकित रूढिबद्ध आकारों में चित्रण करते थे जबकि योरपीय चित्रकारों का रेखांकन स्वच्छंद है। जापानी कलाकार कल्पना से चित्रण करते थे और उनके चित्रों में छाया-प्रकाश व वातावरण का वास्तविक प्रभाव नहीं है जबकि योरपीय चित्रकार प्रत्यक्ष देखकर चित्रण करते और वास्तविक प्रभाव का पुर्ननिमाण उनकी कला का एक प्रमुख उद्देश्य था।

इधर माने के चित्रों की समीक्षकों द्वारा कटु आलोचना होती रही और उधर उनके आसपास साहित्यिकों, नवकलाकारों व कलाप्रेमियों का मंडल एकत्रित हो रहा था। राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनियों में माने के चित्रों की निंदा होने के पश्चात् वे नवचित्रकारों के आदर्श नेता बन गये। ये सब चित्रकार व साहित्यिक पैरिस के जलपानगृह काफे ग्वेर्बा में मिलते व विचारगोष्ठी करते। साहित्यिकों में द्युरे, द्युरांति, जोला व आस्त्र्युक, व चित्रकारों में मोने, सिसली, पिसारो, रेन्वा, देगा, बाजीय व सेजान प्रमुख थे। कलाविषयक चर्चाएं होतीं और प्रत्येक सदस्य अपने विचारों को सिद्ध करने का प्रयत्न करता। इन गोष्ठियों के बारे में मोने ने लिखा है "इन गोष्ठियों से अधिक आनंदप्रद कुछ नहीं हो सकता। सदैव मतभिन्नता होती और हर कोई अपने मत का तर्कबुद्धि से समर्थन करने का प्रयत्न करता। सभी सदस्य उत्साह से भाग लेते और सप्ताहों तक एक ही बात पर मस्तिष्क को चेतना देकर सोचते रहते तथा अपने अनुभवों द्वारा सत्यता की प्रतीति करना चाहते। इन गोष्ठियों ने हमें अधिक तर्कनिष्ठ व निश्चयी बनाया।"। १८७० में फांतें लातुर द्वारा बनाया हुआ इन चित्रकारों का समूह-चित्र विद्यमान है जिसमें माने, मोने, बाजिया, जोला, रेन्वा आदि सदस्यों को चित्रित किया है। माने इन चित्रकारों से सहानुभूति रखते और उनको प्रोत्साहित करते यद्यपि वे उनके सभी विचारों से सहमत नहीं थे, न वे कभी उनके साथ पूर्ण रूप से प्रभाववादी चित्रकार बने। माने स्वतन्त्र रूप से कलानिर्मिति करते और उनको प्रभाववादी चित्रकार केवल इसीलिये अपना नेता मानते कि वे राष्ट्रीय-कला-

संस्था के परंपरागत विचारों का विरोध करते, एवं अनुभवी थे और नवीन चित्रकारों को उचित सलाह देकर प्रोत्साहित करते थे। उन चित्रकारों को छोड़ कर माने सुसज्जित, आलीशान जलपानगृहों में जाते एवं घुड़दौड़ के मैदानों, नाटकगृहों, संगीत-भवनों व सार्वजनिक बगीचों में जाकर प्रतिष्ठित समाज के जीवन को चित्रित करते। असल में माने प्रभाववादी चित्रकारों के साथ तद्रूप नहीं हुए यद्यपि वे उनके प्रशंसक व हितचिंतक जरूर थे और उनके नवीन प्रयोगों में उनको सहयोग देते थे। वे स्वयं को प्रतिष्ठित चित्रकार मानते और उन्होंने कला के परम्परागत नियमों को पूर्ण रूप से कभी नहीं छोड़ा; अतः माने के चित्रों में आकारों की स्पष्टता, अध्ययन-पूर्ण रेखा व शास्त्रशुद्ध रचना ये गुण जो दृष्टिगोचर हैं वे अन्य प्रभाववादी चित्र-कारों के चित्रों में नहीं मिलते। वे ख्यातनाम चित्रकार बनने के लिये प्रयत्नशील रहे एवं कुर्बे के समान निजी प्रेरणा से राष्ट्रीय कलासंस्था के विरोध में खड़े नहीं हुए। कई बार अस्वीकृत होने पर भी वे अपने चित्रों को प्रदर्शन के हेतु राष्ट्रीय कलासंस्था को भेजते रहे। राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में अस्वीकृत होने एवं प्रभाववादियों द्वारा प्रशंसा किए जाने से वे प्रभाववादी चित्रकारों के अधिक निकट आ गये परन्तु उन्होंने अपने चित्रों को प्रभाववादियों की प्रदर्शनियों में कभी नहीं रखा तथा उनके पूर्ण प्रभाववादी चित्र भी संख्या में बहुत कम हैं। माने दरिद्र कलाकारों की सहायता करते और मोने की विपन्नावस्था में उन्होंने काफी मदद की। माने कला को परिव-र्तनशील मानते थे व नवीन प्रयोगों में उत्सुकता से भाग लेते किंतु उन्होंने कला की उपयुक्त विद्यमान मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं किया। इस विचार से माने यथार्थवाद व प्रभाववाद के बीच की कड़ी थे।

१८७३ में बनाया हुआ माने का चित्र 'अच्छी बीअर'[11] राष्ट्रीय कलाप्रद-र्शनी में स्वीकृत हुआ। माने ने अपनी शैली में कोई परिवर्तन नहीं किया था परन्तु यह चित्र लोकों ने बहुत पसंद किया। प्रसिद्ध डच चित्रकार फ्रान्स हाल्स से प्रभावित होकर, चित्रविषय व रंग-संगति में उनका अनुसरण करके माने ने यह चित्र बनाया था। किंतु यह सफलता तात्कालिक थी। आनेवाले दो सालों में माने के तीन चित्र फिर अस्वीकृत हुए।

माने के प्रभाववादी अनुयायी बाह्य स्थानों पर जाकर प्राकृतिक दृश्यों को प्रत्यक्ष देख कर विशुद्ध रंगों में चित्रित करते थे। उन्होंने अपनी रंग-संगति से काले व धूसर रंगों को—जिनका माने की रंग-संगति में महत्वपूर्ण स्थान था—बिलकुल हटा दिया। जब माने ने मोने को सेन नदी के दृश्यों को प्रत्यक्ष चित्रित करते हुए देखा तब वे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने १८७४ में अपना चित्र 'नाव की सवारी'[12] बनाया जिसको हम पूर्ण प्रभाववादी चित्र मान सकते हैं। इसके पश्चात् माने ने प्रभाववादी चित्र बनाना शुरू किया किन्तु वे अन्य प्रभाववादियों के समान प्रकृति-चित्रण की ओर आकृष्ट नहीं हुए। वे प्रत्यक्ष देख के चित्रण करते परन्तु उनके चित्रों

के विषय वैसे ही प्रतिष्ठित व्यक्तियों के रहनसहन से संबंधित थे। 'नाव की सवारी' में बाह्य वातावरण व प्रकाश का परिणाम सफलता से अंकित किया है जैसा उनके इससे पहले के चित्रों में देखने को नहीं मिलता। चित्र में स्त्री व पुरुष इतने स्वाभाविक ढंग से बैठे हुए हैं कि उसके सामने 'तृण पर भोजन' में बैठी हुई मानव आकृतियां कृत्रिम दिखायी पड़ती हैं। 'नाव की सवारी' वास्तविकतापूर्ण है जबकि 'तृण पर भोजन' रचनात्मक है।

अब माने ने प्रभाववादियों के क्षणिक दृष्टि प्रभाव की दिशा में प्रगति की जिसके लिए उनको आकारों की स्पष्टता को कम करके विशुद्ध चमकीले रंगों का प्रयोग करना पड़ा। १८७९ में बनाये 'जार्ज मूर का व्यक्तिचित्र' व 'फोलिय बर्जेर का मदिरागृह'[13] इस नवीन विकसित शैली के अप्रतिम उदाहरण हैं।

'फोलिय बर्जेर का मदिरागृह' में उनकी निजी अभ्यासपूर्ण शैली एवं प्रभाववाद का सुन्दर संगम है और यह उनका सर्वोत्कृष्ट चित्र माना गया है। इस चित्र में प्रभाववादी रंगों की जगमगाहट व चंचलता होते हुए अग्रभूमि का शीशियों, फलों व फूलों का वस्तुचित्रण एवं सेविका की आकृति शास्त्रशुद्ध अध्ययन का परिपाक है। चित्र के मध्य में सेविका की आकृति का अंकन बहुत ही स्वाभाविक ढंग से एवं मुक्त तूलिका संचालन से किया है फिर भी आकृति, सुस्पष्ट, सुडौल व शरीररचनाशास्त्र के नियमों का पालन करते हुए सुन्दर बन गयी है। पृष्ठभूमि के शीशे में दिखाई देनेवाले मदिरागृह के दृश्य एवं कोने में खड़े हुए स्त्रीपुरुष को प्रभाववादी ढंग से अस्पष्ट रूप में अंकित करके मध्यवर्ती सेविका की आकृति को स्पष्टता व महत्व प्रदान किया है; और चित्र को व्यक्तिचित्र का आकर्षण प्राप्त हुआ है। रंगांकन के लिए ऐसे सौम्य व स्वच्छ रंगों को चुना है कि रंगसंगति नेत्रोद्दीपक न होकर कोमल व विषयवस्तु को साकार करने में सहायक हो गयी है। संयोजन के विचार से चित्रकार ने अपार कौशल दिखाया है। मध्यवर्ती सेविका की त्रिभुजात्मक आकृति को अग्रभूमि की मेज एवं शीशे की आड़ी रेखाओं ने स्थैर्य प्रदान किया है तथा शीशे में दिखाई देनेवाले दो खंभों के बीच वह सन्तुलित होकर आगे निकलती है। माने ने इस चित्र द्वारा सिद्ध किया कि प्रभाववादी अंकनशैली का आकारसौंदर्य व रचनाकौशल से समन्वय किया जा सकता है। कट्टर प्रभाववादी न होते हुए भी माने ने यह एक ऐसा महान् चित्र बनाया जैसा कोई अन्य प्रभाववादी नहीं बना पाया। इस चित्र के बाद उन्होंने विशेष चित्रण नहीं किया। इस चित्र को बनाते समय ही उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था और उसके बाद वह और भी बिगड़ता गया और १८८२ में उनका देहावसान हुआ।

मृत्यु के बाद माने के चित्र चढ़ते मूल्य में बिकने लगे। सात साल बाद उनके प्रशंसकों ने चन्दा एकत्रित करके 'आलिम्पिया' चित्र को खरीद कर लुव्र संग्रहालय को दान किया।

प्रभाववादियों का भ्रातृमण्डल:—

जैसे हम पहले देख चुके हैं, १८७० के करीब नवीन विचारों के तरुण चित्रकार पॅरिस के 'काफे ग्वेर्वा' में मिलकर कलाविषयक चर्चा करते और माने उनको प्रोत्साहन देते। राष्ट्रीय कलासंस्था में परम्परागत विचारों के कलाकारों का प्रभुत्व होने के कारण उसके द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों में नवीन विचारों के कलाकारों को स्थान नहीं मिलता था और यह बात उनके विकास में बहुत बड़ी बाधा थी। १८७४ में इन असन्तुष्ट चित्रकारों ने स्वतन्त्र रूप से प्रदर्शनी का आयोजन करने का निश्चय किया। यह विचार उनके सामने पहले भी आ चुका था किन्तु उनमें एकमत नहीं होने के कारण वे अब तक प्रदर्शनी का आयोजन नहीं कर सके। अब उन्होंने देखा कि लोकों के सामने आने का व आगे बढ़ने का और कोई मार्ग नहीं हैं। उनके विचारों से सहानुभूति रखने वाले कोरो व कुर्बे जैसे अनुभवी कलाकारों को अपने चित्रों को प्रदर्शित करने का निमन्त्रण देकर अपनी प्रदर्शनी को प्रतिष्ठा देने का उन्होंने विचार किया। कुछ सदस्यों ने यह भी प्रस्ताव रखा कि प्रदर्शनी में भाग लेनेवाले चित्रकारों को प्रण करना होगा कि वे अपने चित्रों को राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में रखने के लिए नहीं भेजेंगे। माने व फांतँ लातुर ने उन चित्रकारों की प्रदर्शनी में भाग लेने में अपनी असमर्थता स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की। भाग लेनेवालों में भी कुछ चित्रकारों का मत था कि राष्ट्रीय कलाप्रर्शनी में यश प्राप्त करना आर्थिक सफलता का एकमेव मार्ग है। आयोजित प्रदर्शनी के दो प्रमुख उद्देश्य थे; पहला था अर्थप्राप्ति और दूसरा, अपने कलाविषयक प्रयोगों को मतप्रदर्शन के लिये लोकों के सम्मुख रखना। अब तक व्यापारी द्युरां रुएल इन चित्रकारों के चित्र भविष्य में अच्छे मूल्य पर बिकने की आशा में खरीदते थे, किंतु उनके पास भी बहुत से चित्र खरीदे न जाने से पड़े रहे व उन्होंने चित्र खरीदना बन्द कर दिया। इसी समय उनमें से कुछ चित्रकारों के चित्र नीलाम में अच्छे मूल्य पर बिके और उससे प्रोत्साहित होकर उन्होंने सोचा कि यदि वे अपने चित्रों की स्वतन्त्र प्रदर्शनी करेंगे तो सम्भवतः दर्शकों को पसन्द आकर उनका विक्रय हो सकता है एवं इसी तरह उनके लिये आगे बढ़ने का रास्ता खुल जायेगा। इसके अतिरिक्त कला के विकास के उद्देश्य से वे कलाप्रेमियों के सामने अपनी इस विचारधारा को प्रस्तुत करना चाहते थे कि कलाकार तबतक मौलिक कलानिर्मिति नहीं कर सकता जबतक वह रुढिबद्ध नियमों को तोड़कर आगे नहीं बढ़ता; अतः प्रतिभावान् कलाकारों को चाहिये कि वे स्वतन्त्र प्रेरणा से कलासाधना करके मौलिक सृजन करें।

बहुत सी गड़बड़ी व आपसी वादविवाद के बाद नियोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन छायाचित्रकार नादा के कार्यकक्ष में हुआ व तीस कलाकारों की १६५ कलाकृतियों को दर्शकों के सम्मुख रखा गया। प्रदर्शनी की व्यवस्था रेन्वा ने की थी।

प्रदर्शनी का किस नाम से प्रसिद्धिकरण किया जाना चाहिये इस विषय में मतभिन्नता हुई। देगा व रेन्वा कोई भी नाम देने के विरोधी थे। अंत में प्रदर्शनी की निम्न-प्रकार प्रसिद्धि की गयी, 'अज्ञात चित्रकारों, मूर्तिकारों व रेखाकलाकारों की परिषद'[14] किंतु प्रदर्शनी को अपने आप नाम प्राप्त हो गया। प्रदर्शनी में क्लोद मोने के चित्र 'सूर्योदय का प्रभाव'[15] प्रदर्शित किया गया था। कलासमीक्षक लुई लेराय ने प्रदर्शनी की निंदा में 'शारिवारी' पत्रिका में एक लेख प्रकाशित किया और मोने के चित्र के शीर्षक को सूत्ररूप में लेकर उन्होंने लेख को 'प्रभाववादियों की प्रदर्शनी' शीर्षक दिया व स्थान-स्थान पर प्रभाव, प्रभावी, प्रभावित, प्रभाववादी वगैरह शब्दों का प्रयोग कर के प्रदर्शनी की हंसी उड़ायी। प्रदर्शकों ने उदारता से इस नाम को स्वीकारा व अपने भ्रातृमंडल को 'प्रभाववादी चित्रकार' [16] नाम से घोषित किया। असफलता से प्रभाववादी चित्रकार निराश नहीं हुए क्योंकि भविष्य में यश मिलने के कुछ अस्पष्ट पूर्वचिन्ह दृष्टिक्षेप में आये। तीन चार व्यापारियों व संग्राहकों ने भविष्य में खरीदने के हेतु चित्रों का वर्गीकरण कर के सूची बनायी। समंजस समीक्षक व साहित्यिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कलाक्षेत्र में अब परिवर्तन होने-वाला है।

प्रभाववादियों ने अपनी दूसरी प्रदर्शनी का आयोजन द्यु रां रुएल कलावीथिका में किया। अब की बार प्रदर्शकों की संख्या तीस से घट कर उन्नीस हुई। सेज़ान ने भाग नहीं लिया व केयबोत ने पहली बार एक चित्र प्रदर्शित किया जो अब लुव्र संग्रहालय में है। पहले की भांति इस प्रदर्शनी के विरुद्ध प्रक्षोभ नहीं हुआ यद्यपि प्रमुख समीक्षकों ने प्रदर्शनी की पुनश्च कटु आलोचना की। कुछ अन्य समीक्षकों ने प्रदर्शनी की सीमित प्रशंसा की व कुछ चित्रों का क्रय हुआ। १८७७ में तीसरी प्रदर्शनी के आयोजन के समय फ्रान्स में राजनैतिक अशांति थी और राजसत्तावादी प्रचारक नवीन तत्वों को 'साम्यवादी' नाम देकर दबाने में लगे थे। इसका असर प्रभाववादियों पर होकर उनके चित्रों की बिक्री मुश्किल हो गयी और उनको कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। विपन्नावस्था के कारण पिसारो चित्रकला को छोड़ कर अन्य किसी व्यवसाय की खोज में लगे; क्या कला जीवन के लिये आवश्यक है? क्या कला से पेट भरता है? ये उनके विचार हो गये। किंतु १८७९ में गणतंत्र प्रस्थापित होकर राजनैतिक वातावरण में शांति आ गयी। प्रभाववादियों ने चतुर्थ प्रदर्शनी का आयोजन करने का विचार किया। रेन्वा, सिसली व सेज़ान भाग लेने से इन्कार हो गये क्योंकि वे आशा कर रहे थे कि उस साल उनके चित्र राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में स्वीकृत हो सकते हैं और यदि वे प्रभाववादियों की प्रदर्शनी में भाग लेते हैं तो उनको राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में स्वीकृति मिलना कठिन था। देगा ने इस शर्त पर भाग लेना स्वीकार किया कि प्रदर्शनी की कहीं भी 'प्रभाववादी' नाम से प्रसिद्धि नहीं की जाये। देगा ने अपनी अमेरिकन शिष्या मेरी कैसाट को भी प्रदर्शनी में भाग

लेने को निमंत्रित किया। अब तक की प्रभाववादियों की प्रदर्शनियों से यह प्रदर्शनी अधिक सफल रही। प्रवेशशुल्क देकर दर्शक बहुसंख्या में प्रदर्शनी देखने आये और उन्होंने चित्रों की प्रशंसा की यद्यपि अभी कुछ ऐसे दुराराध्य समीक्षक थे जिन्होंने पूर्ववत् निंदा के राग गाये। चित्रों की सीमित बिक्री हुई और प्रवेश शुल्क से प्राप्त धनराशि से प्रत्येक प्रदर्शक को ४३६ फ्रांक्स दिये गये। मेरी कैसाट ने अपने हिस्से की राशि से रेन्वा व देगा प्रत्येक का एक चित्र खरीदा।

चतुर्थ प्रदर्शनी से प्रभाववादियों को सफलता मिली और प्रसिद्धि प्राप्त होकर उनके चित्र बिकने लगे किंतु उससे अधिक संघटित होने के बजाय उनमें फूट पड़ने लगी। रेन्वा ने चतुर्थ प्रदर्शनी में भाग नहीं लिया था व उस साल उनके चित्र 'मादाम शार्पांतिय व उनकी पुत्रियां'[17] को वार्षिक राष्ट्रीय प्रदर्शनी में सफलता मिली। यह देखकर विचलित होकर दूसरे वर्ष मोने ने प्रभाववादियों की पांचवीं प्रदर्शनी में भाग न लेकर अपने दो चित्रों को राष्ट्रीय प्रदर्शनी के लिये भेज दिया। देगा ने मोने को 'विश्वासघाती' कह कर दोष लगाया व रुष्ट होकर मोने ने नवागत प्रभाववादियों को 'पुताईकार' नाम दिया क्योंकि पांचवीं प्रदर्शनी में देगा व पिसारो के चित्रों को छोड़ कर शेष चित्र बर्त मोरिसो, केयबोत, ग्वियामं आदि नये कलाकारों के थे। देगा के दोषारोपण से सेजान, सिसली व रेन्वा भी नाराज हुए। प्रभाववादियों की प्रदर्शनी की कार्यवाही अब केयबोत करते थे व उन्होने छठी प्रदर्शनी में देगा के चित्रों को स्थान न देने का प्रस्ताव रखा किंतु पिसारो ने यह अनुचित समझा। १८८२ में छठी प्रदर्शनी की गयी। आंतरिक झगड़ों के कारण सातवीं प्रदर्शनी के आयोजन में केयबोत कठिनाई महसूस करने लगे तब चित्रविक्रेता द्यु रां रुएल ने मध्यस्थता कर के उनके अधीन चित्रों को प्रदर्शित करने की असंतुष्ट चित्रकारों से संमति प्राप्त की। देगा ने इस प्रदर्शनी में भाग नहीं लिया क्योंकि उनके अनुयायियों को निमंत्रित नहीं किया गया था। सेजान के चित्रों की बिक्री होने की आशा नहीं थी, अतः द्यु रां रुएल ने उनको निमंत्रित नहीं किया किंतु सेजान खुश थे कि राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में उनका एक चित्र पहली बार प्रदर्शित किया गया था। असल में इस साल की प्रदर्शनी की चयन समिति में सेजान के एक मित्र चुने गये थे व उनकीसिफारिश से सेजान का एक चित्र स्वीकृत हुआ था। १८८५ तक राष्ट्रीय आर्थिक संकट के कारण प्रभाववादियों को फिर विपन्नावस्था का सामना करना पड़ा। १८८५ में अमेरिकन आर्ट एसोसिएशन ने द्यु रां रुएल को फ्रेंच चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन करने को निमंत्रित किया। मेरी कैसाट के प्रयत्नों से अमेरिकन कलाप्रेमी प्रभाववादी चित्रकला से परिचित हो गये थे। न्यूयार्क में की गयी प्रदर्शनी में प्रभाववादी कलाकारों को बहुत सफलता मिली। जिसकी वे आशा नहीं कर रहे थे। अब उन्होंने उसी साल आठवीं प्रदर्शनी का आयोजन किया। पिसारो के सुझाव से सोरा व सिन्याक को निमंत्रित किया था। पहले से ही प्रभाववादियों का विघटन हो रहा था और आठवीं प्रदर्शनी में मोने, रेन्वा, सिसली, केयबोत व सेजान ने भाग नहीं लिया। प्रदर्शकों में बर्त मोरिसो, गोग्वँ, मेरी

कॅसाट व ओदिलों रेदां प्रमुख थे। यह प्रदर्शनी प्रभाववादियों की अंतिम प्रदर्शनी रही व इसके साथ ही उनका पूर्ण विघटन हुआ।

कुछ भी हो प्रभाववादी कलाकार अपना कार्य कर चुके थे और प्रभाववाद के सिद्धांतों का चित्रकारों में बहुत प्रसार हुआ था। प्रभाववाद ने योरपीय व अमेरिकी कला को नयी दिशा में मोड़ दिया था। अब प्रभाववादी चित्रकारों की स्वतन्त्र संस्था होने में कोई कार्यसिद्धि होने वाली नहीं थी। व्यापारियों व संग्राहकों का ध्यान आकर्षित करने में प्रभाववादी सफल हो गये थे और उनके चित्रों की काफी मांग थी। किंतु राष्ट्रीय संस्था एवं उससे संबंधित मंडली का विरोध कायम था और जब १८९३ में केयबोत के मृत्युपत्र द्वारा प्रभाववादी चित्रों का संग्रह लुव्र संग्रहालय को प्रदान किया गया तब चित्रकार जेरोम ने उन चित्रों को रद्दी की उपमा देकर उनको स्वीकारने की सरकारी नीति की आलोचना की। जेरोम व बुग्वेरो जैसे प्रतिष्ठित परंपरावादी अब वृद्ध हो गये थे और उनके चित्रों के बराबर मोने, रेन्वा, देगा व दूसरे प्रभाववादी चित्रकारों के चित्रों की मांग बढ़ रही थी। अमेरिका में प्रभाववादी चित्र काफी तादाद में बिक रहे थे और माने के चित्र 'आलिम्पिया' को चंदा एकत्रित करके खरीदने के पीछे यह भय था कि शायद अन्य श्रेष्ठ प्रभाववादी कलाकृतियों की तरह यह चित्र भी अमेरिका नहीं पहुंच जाये। परंपरावादी विचारों का सामना करके जिन कलाविषयक सिद्धांतों को प्रभाववादियों ने स्थापित किया था उनका क्या स्वरूप है यह अब हम देखेंगे।

प्रभाववाद के सिद्धांत

मोने के चित्र 'सूर्योदय का प्रभाव' की आलोचना में 'प्रभाव' शब्द का प्रयोग होने से पहले भी इस शब्द का इसी तरह का प्रयोग किया जा चुका था। दोबिन्यी के प्रकृतिचित्रों की निंदा करते हुए लेखक तेओफिल गोतिए ने लिखा था "दोबिन्यी के चित्रों में बारीकियों की ओर ध्यान नहीं है व उनमें केवल दृश्य के सर्वसाधारण प्रभाव का अंकन है"। प्राकृतिक दृश्य की काव्यात्मकता पर बल देने के हेतु दोबिन्यी सोच समझकर बारीकियों की उपेक्षा करते क्योंकि वे जानते थे कि चित्र की काव्यात्मकता दृश्य के हुबहू चित्रण की अपेक्षा दर्शक की मानसिक अवस्था पर अधिक निर्भर करती है अतः ऐसी मानसिक अवस्था को जागृत करने के लिये निसर्ग के तदुचित काव्यपूर्ण अंगों पर बल दिया जाना चाहिये। अतः दोबिन्यी को प्रभाववादी की अपेक्षा निसर्गवादी कहना योग्य है।

प्रभाववादी चित्रकार दृश्यांतर्गत वस्तु के यथार्थ-रूप-सादृश्य की ओर ध्यान नहीं देते; उनका लक्ष्य वस्तुसंचय पर हुए वातावरण व प्रकाश के समूचे प्रभाव को चित्रित करना था अर्थात् समय एवं ऋतु के परिवर्तन के साथ वही वस्तुसंचय उनके लिये भिन्न चित्रविषय बन जाता। बदलते हुए प्रकाश के साथ वही वृक्ष उनको

हरा, पीला, लाल, जामुनी इस तरह बदलते हुए रूप में दिखायी देता। वातावरण व प्रकाश से दृश्य पूर्ण रूप से व्याप्त है अतः उनको अंकित करने के उद्देश्य से प्रभाववादी चित्रकारों को व्यापक दृष्टिकोण अपनाना पड़ता और वे प्रत्येक वस्तु एवं उसकी बनावट तथा बारीकियों में रुचि नहीं लेते। एक ही दृष्टिपात में संपूर्ण दृश्य के नेत्रपटलीय परिणाम को अंकित करना उनका लक्ष्य हुआ; इस लक्ष्य की पूर्ति में वस्तुसंबंधी ज्ञान एवं निरीक्षण सहायक नहीं होते तथा वस्तु के आकार का अंकन स्मृति से करना पड़ता। सीमित अर्थ में आधुनिक कला के वस्तुनिरपेक्षता की ओर मार्गक्रमण में प्रभाववाद आरंभिक चरण था। कट्टर प्रभाववादी चित्रकार मोने कहते कि यदि वे जन्मतः अंधे होते व उनको अचानक दृष्टि प्राप्त होती तो अच्छा होता जिससे वस्तुओं के बारे में जरासा भी पूर्वज्ञान नहीं होने के कारण वस्तुओं पर हुए प्रकाश के परिणाम को वे विशुद्ध रूप में चित्रित कर सकते; वस्तु के निजी रंग व आकार का ज्ञान नहीं होने के कारण वे केवल देख कर ही उसी क्षण में हुए वस्तु के नेत्रपटलीय परिणाम को रंगों द्वारा पट पर उतारते। जड़ वास्तविकता का प्रभाववादी चित्रकारों के लिए इतना ही महत्व था कि उसकी वजह से उनको प्रकाश व वातावरण के तरल तत्वों का दृष्टिज्ञान हो सकता था। प्रभाववादी चित्रकारों के चित्रण के मुख्य विषय थे प्रकाश व वातावरण। इस सम्बन्ध में माने का वक्तव्य उद्बोधक है। जब किसी मित्र ने माने के व्यक्तिसमूह के चित्र को देख कर पूछा "चित्र में सबसे अधिक महत्व किस व्यक्ति को दिया गया हैं ?" तब माने ने उत्तर दिया "किसी भी चित्र में सबसे प्रमुख व्यक्ति होता है प्रकाश"।[18]

चित्रकला में प्रकाश के महत्व के बारे में प्रभाववादियों के जो विचार थे उनमें गोया के कुछ विचारों को अंतिम रूप दिया था। गोया कहते थे "प्रकृति में रेखा कहां है ? मुझे तो केवल प्रकाशित व अप्रकाशित आकार दिखायी देते हैं—समतल जो निकट हैं एवं समतल जो दूर हैं। मुझे रेखाएं एवं बारीकियां दिखायी नहीं देतीं। मैं व्यक्ति के सिर के बालों को नहीं गिन सकता, न उसके कोट के बटनों को। मुझे जो दिखायी नहीं देता वह देखने का मेरी कूंची को कोई अधिकार नही है"।[19] किंतु गोया ने प्रभाववादियों के समान वास्तविक आकारों की उपेक्षा नहीं की थी। १७ वीं सदी के चित्रकार वेलास्के के चित्र प्रभाववाद के इस सिद्धांत के सीमित प्रयोग के उदाहरण हैं। वे दूरस्थित व निकटवर्ती वस्तुओं की आकारों की स्पष्टता में अंतर रखते और उनके चित्र 'वीनस व क्युपिड' में वीनस की आकृति एवं उसकी दर्पण में परावर्तित प्रतिभा की स्पष्टता में अंतर हैं; प्रभाववादी सिद्धांत के अनुसार रंगों की छटाओं में परिवर्तन करके प्रतिभा को धुंधला चित्रित किया है। चित्रकला के इतिहास में ऐसे और उदाहरण मिलेंगे जिनसे सिद्ध किया जा सकता है कि प्रभाववाद के कुछ सिद्धांतों की संकुचित कल्पना पहले भी कुछ चित्रकारों को थी; परन्तु प्रभाववादियों ने आगे बढ़ कर, प्रकाश व रंगों का वैज्ञानिक अध्ययन करके अपने सिद्धांतों को जो

स्पष्ट व वैज्ञानिक रूप प्रदान किया वह क्रांतिकारी कदम था।

नेत्रपटलीय परिणाम को प्रभाववाद में दिये गये महत्व को देखकर उपहास में प्रभाववाद को 'नेत्रशैली'[20] नाम दिया गया। दृश्य को अंकित करने की प्रभाववादियों की नयी पद्धति को देखकर पौल मांत्स ने लिखा "ये चित्रकार जरूर किसी नेत्रदोष से पीड़ित हैं"। १८८४ में अमेरिकन चित्रकार इन्नेस ने प्रभाववाद की त्रुटियों को बताते हुए लिखा "यह बिलकुल असत्य है कि इन चित्रकारों ने जैसे चित्रित किया है वैसे उनको प्रकृति में दिखाई देता है।" क्षणिक दृष्टिपात एवं उसमें होनेवाले संपूर्ण दृश्य के नेत्रपटलीय परिणाम को इतना महत्व अब तक के चित्रकारों ने नहीं दिया था। ये चित्रकार वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण करके चित्र बनाते और उसमें वस्तुसादृश्य का महत्व होता। प्रभाववाद में वस्तुसादृश्य का स्थान वस्तुओं से परावर्तित प्रकाश ने ले लिया। जब कलाकृति में वस्तुसादृश्य को महत्व देना होता है तब वस्तुरचना का अध्ययन करने के लिए चित्रकार को प्रत्येक वस्तु के भिन्न अंगों का क्रमशः निरीक्षण करना पड़ता है—यह 'क्रमबद्ध दृष्टि' है। प्रभाववाद में प्रकाश को महत्व है; क्योंकि प्रकाश का प्रभाव एक ही क्षण में होता है, प्रभाववादी चित्रकार दृश्यांतर्गत वस्तु-संचय को एक ही समयावच्छेद में देखता है—यह 'समपात दृष्टि' है। प्रभाववादी चित्रों में वस्तुओं के आकारों के ठोसपन नहीं होने का यही कारण है; उनके चित्रों का सम्पूर्ण क्षेत्र सौम्य चंचलता से सचेत होता है। रचनात्मक एवं अभिव्यंजनावादी कलाओं की दृष्टि से यह बहुत बड़ी कमजोरी है जिसको अनुभव करके, उत्तरप्रभाववादी चित्रकारों ने नयी दिशाओं को अपनाया। किंतु इससे प्रभाववाद का महत्व कम नहीं होता; उत्तरप्रभाववादी चित्रकारों को भी अपने कलात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रभाववादियों की स्वतन्त्र व विशुद्ध अंकनपद्धति को, परिश्रम व अध्ययन के साथ, आत्मसात् करना पड़ा।

प्रभाववाद की आधुनिक कला को सबसे बड़ी देन है रंगांकन की विशुद्धता और कलाकार के मूलभूत सृजनस्वातंत्र्य की प्रस्थापना। यदि प्रभाववादियों से यह कार्य नहीं होता तो बीसवीं सदी की कला के विकास का आरम्भ नहीं होता।

प्रभाववादी चित्रकारों ने रंगसंगति एवं अंकनपद्धति में जो क्रांतिकारी परिवर्तन किये उसके पूर्वचिन्ह हमको देलाक्रा की कला में प्रतीत होते हैं। कूंची द्वारा बनाये गये धब्बों व लकीरों को देलाक्रा चित्रण में कायम रखते और उनको वे 'फ्लोशेताज'[21] कहते। इस पद्धति को कुछ प्रभाववादियों ने इतना आत्यंतिक रूप दिया कि उनके चित्रों के क्षेत्र ऊबड़खाबड़ दिखाई देते। देलाक्रा ने सूक्ष्म निरीक्षण करके देखा कि लाल रंग के क्षेत्र में कुछ हरी, एवं पीले रंग के क्षेत्र में कुछ नीली झलक होती है; अतः लाल वस्तु का यथार्थ चित्रण केवल लाल रंग से एवं पीली वस्तु का चित्रण केवल पीले रंग से नहीं किया जा सकता। किसी भी रंग के यथार्थ अंकन में उसके पूरक रंग की झलक आवश्यक है जिसके बिना उसकी स्वाभाविक

चमक का परिणाम चित्रण में प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त परावर्तन के कारण प्रत्येक वस्तु में निजी रंग के साथ अन्य रंग भी दिखायी देते हैं। देलाक्रा को ज्ञात हुआ कि प्रत्येक वस्तु का रंग उसके द्वारा किये गये प्रकाश के परावर्तन का परिणाम है। साथ ही समीपवर्ती रंग एक दूसरे पर प्रभाव डाल के मूल रंग को बदल देते हैं। देलाक्रा के इन निष्कर्षों से प्रारम्भ करके प्रभाववादियों ने रंगांकन को शास्त्रीय स्वरूप दिया। उन्होंने प्रकाशविज्ञान के नियम को मूलाधार माना कि सूर्य का श्वेत प्रकाश लाल, नारंगी, पीले, हरे, आसमानी, नीले व जामुनी किरणों के समपाती प्रभाव से बनता है।

१९वीं सदी में परम्परावादी चित्रकार प्रथम सुनियन्त्रित वाह्य रेखा से आकारों को पट पर अंकित करते और उन आकारों में एक से रंग की चिकनी परत देकर रंगांकन करते। रंगों या रंगांकन पद्धति को चित्रण में इससे अधिक महत्व नहीं था। कॉन्स्टेबल का अनुसरण करके देलाक्रा ने इस पद्धति को तोड़ दिया और भिन्न रंगों के स्पष्ट धब्बों व लकीरों में रंगांकन आरम्भ किया जिसका स्पष्ट व तर्कशुद्ध विवरण उन्होंने अपने ग्रंथ में किया है। वाह्यरेखा के महत्व को घटा कर हलकी गहरी छटाओं के समीपवर्ती क्षेत्रों के अंकन से वे वस्तु के आकार को स्पष्ट करते। इस पद्धति को माने ने अपनाया; प्रभाववादी चित्रकार इसको 'छटाओं द्वारा अंकन'[22] कहते थे व उन्होंने वैज्ञानिक अध्ययन से इसका पर्याप्त विकास किया। उन्होंने रेखा की आवश्यकता को ही समाप्त कर दिया क्योंकि उन्होंने देखा कि रेखा केवल कल्पना की निर्मिति है व उसका प्रत्यक्ष अस्तित्व नहीं है।

समपात दृष्टि में नेत्रपटल पर क्या परिणाम होता है इसके बारे में विचार करने पर प्रभाववादियों को ज्ञात हुआ कि प्रकाशविज्ञान के अनुसार कोई भी वस्तु तब दिखाई देती है जब उससे परावर्तित प्रकाशकिरण दर्शक के नेत्रपटल पर आघात करती हैं; अर्थात् वस्तु के चित्रण का सत्य अर्थ है प्रकाशकिरणों के नेत्रपटलीय परिणाम का चित्रण; अत, इस परिणाम के सत्य स्वरूप को समझने के लिए वैज्ञानिक अभ्यास आवश्यक है। अब प्रकाशविज्ञान, दृष्टिविज्ञान व रंगविज्ञान का अभ्यास करके उन्होंने अंकनपद्धति के निश्चित नियम बनाये। काले रंग का वैज्ञानिक अर्थ है सभी प्रकाशकिरणों का अभाव; अतः जहां जरासा भी प्रकाश है वहां काला रंग नहीं हो सकता उसी तरह परावर्तन के नियमों के अनुसार काली छाया नहीं हो सकती। अब प्रभाववादियों ने काली वस्तु या छाया का अंकन गहरे नीले, जामुनी या हरे रंग से करना शुरू किया। उसी प्रकार परावर्तन के कारण जिसको हम पूर्ण सफेद मानते हैं ऐसी वस्तु में भी पीले, नीले, लाल वगैरह रंगों की हलकी झलक प्रतीत होती है; अतः उन्होंने विशुद्ध सफेद रंग में अन्य रंगों को समुचित मात्रा में मिश्रित करना शुरू किया। अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रत्यक्ष में प्रत्येक वस्तु पर उसके निजी रंग के अलावा अनेक रंगों की विशेषतया पूरक रंगों की-

छटाएं चमकती हैं। इस विचार के परिणामस्वरूप प्रभाववादियों ने अपनी रंगांकन-पद्धति में मौलिक परिवर्तन किये। प्रत्येक रंगीन क्षेत्र को वे भिन्न शुद्ध रंगों में अंकित करने लगे जिसमें उनको मूल व पूरक रंगों सम्बन्धी वैज्ञानिक सिद्धांतों से काफी मार्गदर्शन हुआ। वैज्ञानिकों के रंगविषयक नये आविष्कारों को पढ़ कर उनको बहुत प्रसन्नता हुई। उनको ज्ञात हुआ कि लाल रंग के समीप हरे, नारंगी के समीप नीले व पीले के समीप जामुनी को अंकित करने से वे रंग अधिक सतेज दिखाई देते हैं; संक्षेप में पूरक रंगों को समीप अंकित करने से वे एक दूसरे की चमक बढ़ा देते हैं एवं समीपीकरण का परिणाम मिश्रण के परिणाम से अधिक तेजस्वी होता है। इसी प्रकार रंगसम्बन्धी सिद्धांतों का पालन करके रंगांकन करने से प्रभाववादी चित्रों में पुराने चित्रों से अधिक तेज व जगमगाहट आ गयी। उनकी इस रंगांकनपद्धति को 'इन्द्रधनुषी रंगांकन'[23] कहते थे। इस पद्धति का सीमित प्रयोग कॉन्स्टेबल के चित्रों में किया हुआ देखने को मिलता है।

जैसे हम पहले देख चुके हैं कि परम्परागत पद्धति के अनुसार कूंची से बनी हुई लकीरों को मिटाकर पूरे चित्रक्षेत्र को चिकना बनाना चित्रकार के कौशल का प्रमाण माना जाता था और इस पद्धति को प्रथम देलाक्रा व फ्रांस हाल्स ने तोड़ दिया था। किंतु वे दोनों भी स्पष्ट-तूलिका-संचालन[24] का प्रयोग रंगांकन की अंतिम अवस्था में करते थे। प्रभाववादियों के साथ यह बात नहीं थी; जब तक वे प्रारम्भ से ही स्पष्ट-तूलिका-संचालन नहीं करते तब तक भिन्न विशुद्ध रंगों के समीपवर्ती धब्बों द्वारा चमकीला रंगांकन करने के अपने उद्देश्य में वे सफल नहीं हो सकते थे। स्पष्ट-तूलिका-संचालन के साथ उससे बनी हुई ऊबड़खाबड़ सतह के स्वाभाविक सौंदर्य की ओर प्रभाववादियों का ध्यान आकृष्ट हुआ और सतह की बुनावट चित्र के सौंदर्य का महत्वपूर्ण अंग बन गयी; मोनें के रुएन गिरजाघरों के चित्र इस दृष्टि से सुंदर व अभ्यसनीय हैं। बाद में बीसवीं सदी में सतह के इस स्वाभाविक प्रभाव को बढ़ाने के उद्देश्य से चित्रकारों ने नये प्रयोग किये; कूंची के स्थान पर चित्रण-चाकू को काम में लेकर मोटी परतों में रंगों को पट पर लगाने लगे, और सतह को खुरदरापन देने के लिये, चित्रण से पहले, पट पर बालू, कपड़ा व लकड़ी का बुरादा चिपकाने लगे। प्रभाववादियों की प्रथम प्रदर्शनी को देख कर कास्तान्येरी ने जो भविष्यवाणी की थी वह सत्य निकली; उन्होंने लिखा था" प्रभाववादियों में अवश्य मौलिक गुण है, किंतु उनके दृष्टिकोण से वास्तविक दृश्य चित्रण के लिये बहाना मात्र रह जाता है, और अन्त में इसका परिणाम यह होगा कि कला का वास्तविकता से संबंध पूर्णरूप से टूट जायेगा"।

प्रभाववादी क्रांति का मूल उद्देश्य था दृश्य के क्षणिक-दृष्टि-प्रभाव को चित्रकार की बौद्धिक कल्पना एवं रचना के रूढ़िबद्ध नियमों से मुक्त कर के छाया चित्रण के समान यथार्थ चित्रित करना। प्रभाववादियों का 'इंद्रधनुषी रंगांकन' इस

उद्देश्य की पूर्ति का साधनमात्र था। यह उद्देश्य ऐसा था कि चित्रण के लिये किसी विशिष्ट विषय का होना आवश्यक नहीं था। अब प्रभाववादियों को आसपास जो कुछ दिखायी देता चित्रण के योग्य था व उसके चित्रण में कल्पना की सहायता से या विचारपूर्वक परिवर्तन करना वे अनुचित मानते। दृश्य में स्वाभाविकता का परिणाम दिखाने के उद्देश्य से वे चित्रक्षेत्र की सीमापर अर्धमानवाकृतियों को चित्रित करते, एवं वस्तुओं को नैसर्गिक फूटी-टूटी अवस्था में चित्रित करते। इस विचार से प्रभाववाद की नैसर्गिकतावाद से घनिष्ठ समानता है; अतः कुछ विद्वान् उसको आधुनिक कला के अंतर्गत नहीं मानते। विषयसंबंधी इस दृष्टिकोण के कारण प्रभाववाद में प्रकृतिचित्रण को सब से अधिक महत्व प्राप्त हुआ, उसमें अन्य विषयों के चित्र बहुत ही कम हैं। बार्बिजां चित्रकारों के प्रकृतिचित्रण में और प्रभाववादियों के प्रकृतिचित्रण में अंकन पद्धति की भिन्नता के अतिरिक्त और भी अंतर है। प्रकृतिचित्र को काव्यमय बनाने के उद्देश्य से बार्बिजां चित्रकार योग्य दृश्यों को चुनते; उन्होंने प्रकृति को मानवतावादी दृष्टिकोण से विषय के रूप में अपनाया और उसको मानव के अस्तित्व एवं विकास के लिये पोषक वातावरण के रूप में चित्रित किया। प्रभाववादियों का प्रकृतिचित्रण अधिक निरपेक्ष था; उन्होंने प्रकृति के मानवीय संबंध का विचार नहीं किया। उन्होंने प्रकृति को को स्वतंत्र व्यक्तित्व देकर ऋतु व समय के अनुरूप भिन्न अवस्थाओं में चित्रित किया जैसे कोई व्यक्ति चित्रकार मानव को चित्रित करता है। मोने के प्रकृतिचित्र इस बात के समुचित और बहुत ही सुंदर उदाहरण हैं।

बाह्य स्थानों पर जाकर प्रत्यक्ष चित्रण करना प्रभाववादियों की विशेषता थी जो 'बाह्य-स्थान-चित्रण'[25] नाम से प्रसिद्ध है। देगा इस तरह बाहर जा कर चित्रण करने के विरोधी थे किंतु मोने, पिसारो व सिसली इस पद्धति के निष्ठावान् उपासक थे। मोने ने इसी उद्देश्य से शिकारा बनवाया था जिस पर बैठ कर वे नदी-किनारों के दृश्यों को चित्रित करते।

प्रभाववादियों की जीवन के प्रति क्या धारणाएं थीं इसकी स्पष्ट कल्पना उनके चित्रों के विषयों से होती है। साधारणतया उनके चित्रों के विषय थे नदी के किनारों, सागरतटों, मैदानों, उपवनों, बगीचों, खेतों, शहर के रास्तों व चौराहों के दृश्य, एवं जनसमुदाय के चित्रों में घुड़दौड़ के मैदानों, वनभोजनों, खेलों, सार्वजनिक समारोहों, नृत्यों, नाटकगृहों व मदिरागृहों के दृश्य। प्रभाववादियों ने जीवन को प्रसन्नता व कृतज्ञता के भाव से देखा व चित्रित किया। उनके दृष्टिकोण में संसार का कोना-कोना सौंदर्य से इतना परिपूर्ण है कि विषय की खोज में धर्म, साहित्य, पुराण या इतिहास को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है; कलाकार जहां भी देखता है वहां उसको सौंदर्यपूर्ण, कलात्मक विषय मिल सकता है। औद्योगीकरण से दुनिया में नवीन चेतना आ गयी है, कारखाने, रेलगाड़ियां, लोहे के पुल, जहाज व यंत्र, प्रकृति के साथ, दृश्य

सौंदर्य के नवीन अंग बन गये हैं, वैज्ञानिक प्रगति से हम संसार को स्वर्ग बनाने की आशा कर रहे हैं। प्रभाववादी चित्रकारों ने उद्योगसृष्टि का भी आशावादी दृष्टिकोण से चित्रण किया; वहां भी उनको अनोखा सौंदर्य प्रतीत हुआ। प्रभाववाद ने चित्रकार को कार्यकक्ष की सीमाओं के बाहर जाकर संसार के वास्तविक सौंदर्य को अनुभव कराने को प्रेरित किया। १८७६ में द्युरांति ने लिखा था "अब हम मानव को उसके आसपास के वातावरण से भिन्न नहीं मानते। संन्यासी की तरह कार्यकक्ष में बंदी होकर स्वर्ग प्राप्ति हो सकती है, किंतु हम चाहते हैं कि चित्रकार इस सीमित स्थान को छोड़ कर मानवता के खुले वातावरण में आ जायें।" वर्नर हाफ्टमन के शब्दों में "प्रभाववाद आशावादी भौतिकवाद का ही एक रूप है।"

क्लोद मोने (१८४०–१९२६)

प्रभाववाद के सिद्धांतों को चरम सीमा तक प्रयोगान्वित कर के उनको चित्रकार के लिये उपयुक्त सिद्धि करने का कार्य मोने ने किया। वे प्रभाववादियों के नेता थे और अंत तक प्रभाववाद में निष्ठावान् रहे।

क्लोद मोने के पिता पन्सारी थे और उन्होंने क्लोद की चित्रकार बनने की मनीषा का विरोध किया। बचपन में ही क्लोद अपनी शालेय अभ्यास-पुस्तिकाओं में रेखाचित्र बनाने में रुचि लेने लगे। उम्र के १६ वें साल तक वे ल आव्र में चित्रकार व व्यंगचित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए और उनको २५ फ्रांक प्रति चित्र के मूल्य से बहुत काम मिलने लगा। उनके चित्र किसी दूकान की प्रदर्शन-खिड़की में लगाये जाते उसी दूकान में उनको प्रकृति-चित्रकार ओजेन बुदॅं के चित्र देखने को मिले। बुदॅं पहले उस दूकान के मालिक थे और चित्रकारों को कलासामग्री व चित्रों के चौखटे बेचते थे। मिले, कुत्युर, मायो आदि चित्रकार गर्मी की छुट्टियां बिताने को वहां आते, उनसे प्रोत्साहन पाकर बुदॅं चित्रण करने लगे और कुछ समय बाद अधिक अध्ययन के लिये पैरिस रवाना हुए। पहले से ही खुले वातावरण के चित्रण में बुदॅं की रुचि थी और पैरिस की चित्रशाला में अध्ययन करने से वह कम नहीं हुई। बुदॅं ने क्लोद की असाधारण प्रतिभा को पहचाना और उनको प्रत्यक्ष स्थान पर जा कर प्रकृति-सौंदर्य को चित्रित करने का महत्व समझाया। आरंभ में घमंडी क्लोद ने बुदॅं के उपदेश को नहीं माना, परन्तु धीरे-धीरे प्रकृति सौंदर्य ने उनको अपनी ओर ऐसे आकृष्ट किया कि वे अंत तक प्रकृति के पागल पुजारी बने रहे। १८५९ में वे जब पैरिस गये तब तक उनकी प्रकृतिचित्रण के प्रति रुचि काफी बढ़ गयी थी। १८६१ में जब सैनिक-सेवा में उनको अल्जियर्स भेजा गया तब वहां के प्रकाशमान व रंगीले वातावरण का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा जो आजीवन टिका रहा।

१८६२ में मोने वापस पैरिस आकर ग्लेयर की चित्रशाला में प्रविष्ट हुए। वहाँ मानव शरीर चित्रण के लिये आदमी को सामने बिठाते किंतु प्राचीन ग्रीक

मूर्तियों को आदर्श मान कर मानवशरीर चित्रण करने को कहते। मोने के व्यक्ति-चित्र की यथार्थता को देख कर ग्लेयर ने कहा "वह भद्दा है, वास्तविकता के अध्ययन से चित्रण में सहायता मिलती है परंतु आदर्शों के पालन से ही चित्र सुंदर व कलापूर्ण बनता है"। मोने को इस प्रकार की शिक्षा से घृणा थी किन्तु वे ग्लेयर की चित्रशाला को छोड़ नहीं सकते थे क्योंकि उनके पिता का आदेश था कि यदि वे किसी प्रसिद्ध चित्रकार से शिक्षा प्राप्त नहीं करेंगे तो उनको किसी भी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी। वहां उनका बाजीय से परिचय हुआ जो वैद्यकी के साथ चित्रकला का भी अध्ययन कर रहे थे। सिसली व रेन्वा भी ग्लेयर की चित्रशाला के विद्यार्थी थे। 'अस्वीकृत चित्रकारों की प्रदर्शनी' के दूसरे साल ग्लेयर ने अपनी चित्रशाला बंद की और मोने पूर्ण स्वतंत्र होकर चित्रण करने लगे। मार्तिने कलावीथिका में आयोजित माने की प्रदर्शनी को देख कर मोने बहुत प्रभावित हुए। यह उनका विशुद्ध रंगांकन पद्धति से प्रथम परिचय था। रूढिबद्ध छायाप्रकाश के कृत्रिम प्रभाव को हटा कर चित्र को चमकीला रूप कैसे प्रदान किया जा सकता है यह उन्होंने माने के चित्रण से सीखा। अब उन्होंने चित्रकार साथियों का मंडल बनाया और वे सब फाँतेनब्लो वन के सीमावर्ती शेली नाम के गांव के आसपास प्रकृति-चित्रण करने लगे। यहां उनका बार्बिजां चित्रकारों से परिचय हुआ एवं उनकी प्रकृतिचित्रण-पद्धति का उनको ज्ञान हुआ।

१८६६ में मोने ने कामीय नाम की लड़की का—जो बाद में उनकी पत्नी हुई—व्यक्तिचित्र बनाया जो उस साल की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में स्वीकृत हुआ। दूसरे साल उन्होंने अपना प्रसिद्ध चित्र 'बगीचे में महिलाएं'[३६] बनाया जो उनके मित्र बाजीय ने २५०० फ्रांक देकर खरीदा। इस समय मोने को कठिन आर्थिक परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा था; माने व अन्य उदार मित्रों की सहायता से ही वे उस परिस्थिति को पार कर सके। उनकी विपन्नावस्था की कल्पना उनके उस समय माने को लिखे हुए पत्रों से आती है। १८७० में जर्मनी ने फ्रांस पर आक्रमण किया और मोने प्रथम हालेंड भाग गये और उसके पश्चात् पिसारो के साथ लंदन में रहे। हालेंड में पन्सारी की दूकान में सामान पर लपेटने के लिए रखे हुए कागजों पर मोने को जापानी छापचित्र देखने को मिले। छापचित्रों के अनोखे संयोजन व अपरिचित रंगांकन से उनको नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। लंदन में टर्नर के प्रकृतिचित्रों से वे बहुत प्रभावित हुए। भिन्न रंगों व छटाओं द्वारा वातावरण व प्रकाश का प्रभाव किस तरह बनाया जा सकता है इसका प्रमाण उनको देलाक्रा व माने के चित्रों से मिला था; टर्नर के चित्र इस पद्धति के बहुत ही स्पष्ट व सफल उदाहरण थे। अब तक विशुद्ध रंगांकन के साथ मोने वस्तु के निजी रंग पर भी ध्यान देकर चित्रण किया करते थे। अब मोने ने निश्चय किया कि सम्पूर्ण दृश्य पर हुए प्रकाश के प्रभाव को प्रमुख लक्ष्य मान कर वे चित्रण करेंगे। १८७४ के पश्चात् बनाये गये मोने के चित्र ऐसे दिखाई देते हैं

जैसे कि पार्थिव वस्तुओं को व्याप्त करनेवाले भिन्न अवस्था प्राप्त वातावरणों के प्रतिरूप। प्रकाशकिरणों के परावर्तन की जगमगाहट को अंकित करने के उद्देश्य से छाया के क्षेत्रों के चित्रण में भी उन्होंने विशुद्ध रंगों का प्रयोग किया है। ऐसा लगता है कि सभी वस्तुमात्र सप्तरंगी वातावरणरूपी द्रव में डूबा हुआ है जो द्रव ऋतु व समय के परिवर्तन के अनुसार गिरगिट के समान अपना रूप बदलता है।

काफे ग्वेर्बा में जो प्रभाववादी चित्रकार कलासम्बन्धी चर्चा करने को मिलते थे उनके विचारभिन्नता के अनुसार दो वर्ग किये जा सकते हैं; पहले वर्ग में माने, रेन्वा व देगा जैसे चित्रकार हैं जिनकी कला में प्रभाववादी अंकनपद्धति की विशेषताओं के अतिरिक्त समकालीन जीवन का भी दर्शन है; दूसरे वर्ग में मोने, पिसारो व सिसली ये प्रभाववादी हैं जिनकी कला में प्रभाववाद के सिद्धान्तों का कट्टरता से पालन है किंतु वातावरण व प्रकाश के चंचल रूपों के अतिरिक्त अन्य उपलब्धियां नहीं हैं।

मोने ने अविश्रांत परिश्रम करके प्रभाववाद को १९वीं शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण व क्रांतिकारी कलाशैली का स्थान प्राप्त कराया। उनके चित्रों में विशुद्ध रंगसंगति एवं नैसर्गिक प्रकाश एक साथ दर्शकों को मोहित कर लेते हैं। उन्होंने रंगों के स्वाभाविक सौंदर्य की रक्षा करके उसके द्वारा नैसर्गिक प्रकाश व अवकाश के परिणाम को चित्रित किया और रूढिबद्ध छायाप्रकाश के परिणाम को चित्रकला से हटा दिया। कुर्बे ने चित्रकला से काल्पनिक व पौराणिक विषयों को हटाया एवं सूर्यदेवता के चित्र को देखकर पूछा "क्या आपने सूर्यदेवता को देखा है ?" अब मोने व उनके प्रभाववादी अनुयायियों ने सूर्य के प्रकाश को सब जगह देखा और उसके चंचल प्रभाव को अपने चित्रों का विषय बनाया। ये सब चित्रकार चित्रण के लिए बगीचा, रेल्वेस्टेशन, नदी का किनारा, उपहारगृह, घुड़दौड़ के मैदान, नाटकगृह आदि स्थानों पर जाते। वे जीवन से प्यार करते; जहां भी देखते सौंदर्य को अनुभव करते और उनको चित्रणयोग्य विषय मिलता।

मोने ने पैरिस, लंदन व वेनिस के शहरी दृश्यों को चित्रित किया है किंतु मैदानों, नदीकिनारों व उपवनों के दृश्य उनको विशेष प्रिय थे। कार्यकक्ष में बैठकर चित्रण करना उनको बिलकुल पसन्द नहीं था और वे कहते "मेरे पास कोई कार्यकक्ष नहीं है एवं मेरी समझ में नहीं आता कि कमरे में बन्द होकर चित्रकार क्यों काम करना चाहता है।" पुर्विल की पहाड़ी के उतार-चढ़ाव, गिवर्नी का बगीचा, सेन नदी पर शिकारा, आंतिब के ताड़वृक्षों की छाया ये सब स्थान मोने के कार्यकक्ष थे। प्राकृतिक सौंदर्य के वे दीवाने थे और अपनी सौंदर्यानुभूति को चित्ररूप देना कितना असम्भव है इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने मित्र गुस्ताव जेफ्राय को लिखा था "मैंने फिर ऐसे कार्य को आरम्भ किया है जिसकी सिद्धि असम्भव है.....पानी के पृष्ठभाग पर डोलती हुई घास की पत्तियां........दीखने में अतिसुन्दर किंतु चित्रित करते करते आदमी पागल हो जाता है।" उनके एक अन्य अनुभव से भी रंग व प्रकाश में सौंदर्य के कैसे गुलाम हो गये

थे इसका प्रमाण मिलता है; १८७९ में जब उनकी प्रिय पत्नी कामीय मृत्युशय्या पर आसीन थी और वे समीप बैठ कर पत्नी के मुखमन्डल पर बदलते हुए रंगों को गौर से देख रहे थे तब उन्होंने अकस्मात् भयभीत होकर महसूस किया कि वे रंगसौंदर्य के सामने अपनी पत्नी की गिरती हुई अन्तकालीन अवस्था को भी भूल गये थे।

मोने ध्येयवादी एवं परिश्रमी चित्रकार थे। प्रारम्भ में अत्यन्त विपन्नावस्था में उन्होंने बड़ी मेहनत से कलानिर्मिति की और बाद में कीर्ति व सम्पन्नावस्था प्राप्त होने पर भी वे ध्येयनिष्ठ व मेहनती जीवन से विचलित नहीं हुए। वे एक ही स्थान को लेकर ऋतु व समय के परिवर्तन के अनुसार उसके कई चित्र बनाते; वही स्थान प्रकाश व वातावरण में परिवर्तन होते ही उनके लिए भिन्न विषय बन जाता। उनकी ऐसी चित्रमालिकाओं में गिवर्नी के चिनारवृक्ष, सूखी घास के ढेर व रुएन के गिरजाघर[27] की चित्रमालिकाएं विशेष प्रसिद्ध हैं। समयपरिवर्तन से उसी वस्तुसमूह के दृश्य प्रभाव में कितना अन्तर पड़ता यह हमें ये चित्रमालिकाएं बता देती हैं।

१८९० में उन्होंने 'घास का ढेर' चित्रमालिका को आरम्भ किया; वे सवेरे उठते ही बहुत से पट लेकर घास के ढेर के सामने जा बैठते और करीब एक घंटे तक एक पट पर काम करने के बाद दूसरे पट पर काम शुरू करते और इस तरह शाम तक आठ से दस तक पटों पर चित्र बनाते; दूसरे दिन फिर वहीं जाकर उन्हीं पटों पर आगे काम करते और इस प्रकार चित्रमालिका को पूर्ण करते। समय के अनुसार बदलनेवाले दृश्य प्रभाव को चित्रित करने का ऐसा अनोखा प्रयोग अब तक किसी चित्रकार ने नहीं किया था। रुएन गिरजाघर के दर्शनीयभाग के ठोस शिलाकार्य पर चंचल सूर्यकिरणों का नेत्रोद्दीपक नृत्य मोने ने देखा और उसको भी उन्होंने चित्रमालिका में बन्दी किया। इस चित्रमालिका में स्थायित्व व चांचल्य जैसे विरोधी तत्वों को परिणामकारक ढंग से एक साथ चित्रित करके चित्रकार ने अपने कलाप्रभुत्व को सिद्ध किया है। आर्ज्वांतिल के दृश्यों को चित्रित करने के लिए मोने ने शिकारा खरीदा और उस पर बैठ कर उन्होंने नदीकिनारों के कई चित्र बनाये।

मनोहर प्राकृतिक दृश्य से प्राप्त ऐंद्रिक आनन्द में तन्मय होने के मोने के मनोबल व दृश्य अनुभूति का परिशीलन करके उसको पट पर अंकित करने की उनकी कुशलता को देखकर सेजान ने कहा था "मोने केवल आंख है—किंतु कैसी आंख!" चित्रण करते समय मोने दृश्य में कितने तद्रूप होते थे इसका प्रमाण उनके जेफ्राय को लिखे हुए पत्र से मिलता है; उन्होंने लिखा था "मुझे जो दिखाई देता है वह मैं चित्रित करता हूं; यदि चित्रण के सचमुच कोई मूलभूत सिद्धांत हैं तो उनको मैं उस समय भूल जाता हूं; संक्षेप में, मेरी व्यक्तिगत सौंदर्यानुभूति को साकार करने के प्रयास में मैं अपने दोषों को भी चित्रण में रहने देता हूं।"

१९०१ के करीब मोने ने लंदन में टेम्स नदी के ३७ चित्र बनाये जिनमें कुहरे से व्याप्त वातावरण के अन्तर्गत नदीकिनारे पर स्थित मानवनिर्मित जड़ वस्तुओं व

नैसर्गिक चंचल सूर्यप्रकाश के बीच के संघर्ष को चित्रित किया है। 'कुमुदिनी के फूलों'[28] की चित्रमालिका को छोड़ मोने की कोई सी भी सम्पूर्ण चित्रमालिका एक ही जगह देखने को नहीं मिलती यह दुर्भाग्य की बात है। मोने के ८ चित्रों की अन्तिम चित्रमालिका 'कुमुदिनी के फूल' पैरिस के त्विलेरी बगीचे में एक छोटे तालाब के चारों ओर लगायी गयी है। इस चित्रमालिका में कहीं भी जमीन या आसमान को चित्रित नहीं किया गया है; पूरे चित्रक्षेत्र में पानी ही पानी है और उसके पृष्ठभाग पर प्रकाश किरणों से चमकते हुए रंगबिरंगे फूलों व पत्तों को चित्रित किया है; फूलों व पत्तों का चित्रण निमित्तमात्र है और चित्र का प्रभाव वस्तुनिरपेक्ष सा व रंगसंगति में मोहक है। इस चित्रमालिका से वस्तुनिरपेक्ष कलाकारों को काफी प्रेरणा मिली।

आरंभ में मोने ने जिस ध्येय को अपनाया था उसकी सफलता के लिये वे श्रद्धा व निश्चय के साथ अविरत, आजीवन कार्य करते रहे। जब उनको फ्रेंच सरकार ने राष्ट्रीय सम्मान[29] से पुरस्कृत किया तब रेन्वा ने उनको अभिनंदन-पत्र लिख कर उनकी निश्चय-वृत्ति की प्रशंसा की; रेन्वा ने लिखा था "आप अपने मार्ग को सुनिश्चित व सराहनीय रूप में देख रहे हैं............इसके विपरीत यह तो कभी मेरी समझ में ही नहीं आया कि मुझे अगले क्षण क्या करना है"। स्वभाव से भावनाशील होने के कारण बहुत ही कम कलाकारों में मोने की निश्चयवृत्ति एवं ध्येयनिष्ठता देखने को मिलती हैं।

मोने के चित्रों से प्रभाववाद का अध्ययन सब से सरल व लाभदायक है क्योंकि उन्होंने प्रभाववादी सिद्धांतों का जितनी एकनिष्ठता से पालन किया उतना और किसी चित्रकार ने नहीं किया। 'आर्ज्वा तिल की लाल नावें', 'चिनारवृक्ष[30] या उनके किसी अन्य चित्र का यदि हम निकट से अध्ययन करेंगे तो प्रकाश के क्षेत्र में हलके पीले, गुलाबी वगैरह रंगों के धब्बे व छाया के क्षेत्र में नीले, हरे, जामुनी वगैरह गहरे रंगों के धब्बे स्पष्ट रूप से दिखायी देंगे; प्रत्येक रंग के कई प्रकारों को चुनकर उन्होंने प्रयोगान्वित किया है दूर से देखने पर ये भिन्न रंगों के धब्बे एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं और जगमगाहट सी नजर आती है जो प्रभाव रंगों के प्रत्यक्ष मिश्रण से किसी हालत में नहीं बनता। समीपवर्ती भिन्न रंगों के धब्बों को नेत्र द्वारा मिश्रित रूप में देखने की क्रिया को दृष्टिजन्य मिश्रण[31] कहते हैं व यह मिश्रित प्रभाव रंगों के प्रत्यक्ष मिश्रण से अधिक चमकीला, मोहक व यथार्थ होता है; चित्र के जगमगाते हुए क्षेत्र में दृश्यांतर्गत वस्तुएं अस्पष्ट सी दिखायी देती हैं और संपूर्ण प्रभाव में प्रत्येक वस्तु को गौण स्थान प्राप्त होता है। अपने अंतिम चित्रों में वस्तुओं को आभास के रूप में अस्पष्ट चित्रित करके मोने वस्तुनिरपेक्ष कला के काफी निकट पहुंचे। मोने को नैसर्गिकतावाद एवं वस्तुनिरक्षेप कला के बीच की कड़ी मानते हैं।

पिसारो व सिसली :—

कट्टर प्रभाववादियों में मोने के वाद पिसारो व सिसली को स्थान दिया जाता है।

कामीय पिसारो (१८३१–१९०३) का जन्म डैनिश वेस्ट इंडीज की राजधानी सेंट टॉमस में हुआ जहां उनके पिता की दूकान थी। पैरिस में कुछ साल तक शालेय शिक्षा प्राप्त करके वापस आकर वे अपने पिता की दूकानादरी में सहायता करने लगे। दूकान में वैठे वैठे एवं फुरसत के समय में वे रेखाचित्र वनाते। वे अपना सारा समय चित्रकारी में लगाना चाहते थे और पांच साल तक प्रतीक्षा करने के बाद एक दिन किसी डैनिश चित्रकार के साथ वे घर छोड़ कर वेनेजुएला चले गये। जव उनके मातापिता ने देखा कि कामीय को चित्रकार वनने से रोका नहीं जा सकता तब उन्होंने अनुमति देकर कामीय को पैरिस जाने दिया।

संदेहपूर्ण अवस्था में वे पैरिस की भिन्न-भिन्न चित्रशालाओं में शिक्षा लेते रहे। 'स्विस' चित्रशाला में उनका मोने से आकस्मिक परिचय हुआ। १८५५ की पैरिस विश्वप्रदर्शनी में कुर्वे के चित्रों को देखने से उनको काफी प्रेरणा मिली। वार्विजां चित्रकारों में से कोरो सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से नवकलाकारों की सहायता करते और उनका मार्गदर्शन करते। कोरो के मार्गदर्शन से लाभ उठानेवालों में पिसारो भी थे। वाह्य स्थानों पर जाकर प्रत्यक्ष चित्रण करने की समान अभिरुचि के कारण पिसारो व मोने में घनिष्ठ मित्रता हुई यद्यपि पिसारो मोने से उम्र में दस साल वड़े थे। समान ध्येय से प्रेरित होते हुए प्रभाववादी चित्रकारों में कुछ वैयक्तिक विशेषताएं थी; पिसारो को पांत्वाज व ओवर के देहाती प्रदेश के दृश्य चित्रण के लिये विशेष प्रिय थे; प्राकृतिक चित्रों में कार्यव्यस्त मानवाकृतियों को चित्रित कर के उन्होंने प्रकृति व मानवीय जीवन के घनिष्ठ पारस्परिक संवंध की ओर संकेत किया है।

१८५९ में पिसारो के चित्र राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में स्वीकृत हुए। जर्मन आक्रमण की वजह से १८७० में उनको अपने वहुत से चित्रों को पीछे छोड़ कर लंदन भागना पड़ा। वहां उन्होंने मोने के साथ कॉन्स्टेवल व टर्नर के चित्रों का अध्ययन किया। दोनों के प्रकृति-चित्र पिसारो को पसंद आये किन्तु उनमें कुछ त्रुटियां भी नजर आयीं। वाद में उन्होंने अपने एक मित्र से कहा "कॉन्स्टेवल व टर्नर के चित्रों से हमने वहुत कुछ सीखा, परंतु मैंने देखा कि वे दोनों छाया के रंगों का विश्लेषण करने में सफल नहीं हुए हैं, उन्होंने छाया को प्रकाशहीन क्षेत्र के रूप में अंकित किया है; टर्नर ने छटाओं द्वारा रंगांकन करने के महत्व को सिद्ध किया है यद्यपि वे अपने चित्रों में उसका इतना सफल प्रयोग नहीं कर सके"। लंदन से लौटने पर उन्होंने पांत्वाज को अपना निवासस्थान वनाया।

१८७३ में पिसारो का सेजान से परिचय हुआ, दोनों ने एकदूसरे से बहुत कुछ सीखा। पिसारो ने सेजान को प्रभाववादी अंकनपद्धति से अवगत कराया। जब प्रभाववादियों ने १८७४ से अपनी प्रदर्शनियों का स्वतंत्र आयोजन शुरू किया तब पिसारो ने अपने चित्रों का राष्ट्रीयकलाप्रदर्शनी में भेजना छोड़ दिया और प्रभाववादियों की प्रदर्शनियों में उत्साह से भाग लिया। १८८० तक पिसारो ने विशुद्ध प्रभाववादी अंकन पद्धति से चित्रण किया किंतु उसके बाद उनके चित्रांतर्गत वस्तुओं के आकार अधिक स्पष्ट हो गये। १८८४ में उनका सोरा से परिचय हुआ और उनके प्रभाव में आकर वे बिंदुवादी पद्धति के चित्र बनाने लगे। सोरा की कला के बारे में उन्होंने अपने पुत्र को लिखा "सोरा की कला में ऐसी नवीनता है जो कला के विकास में सहायक होगी"। सोरा की बिंदुवादी अंकनपद्धति का अध्ययन करके उन्होंने उस पद्धति के चित्र करीब ४ साल तक बनाये। उसके बाद उन्होंने निर्णय किया कि वह पद्धति उनकी स्वाभाविक रुचि के अनुकूल नहीं है; उन्होंने स्पष्टीकरण किया "इस पद्धति में वैज्ञानिकता पर अत्यधिक बल दिया है, अतः इस पद्धति से दृश्य अनुभूति का स्वाभाविक चित्रण नहीं किया जा सकता"। अब उन्होंने अपने कुछ बिंदुवादी चित्रों को नष्ट कर दिया और वे पुनः प्रभाववादी चित्रण करने लगे।

आयु के उत्तरकाल में पिसारो को ख्याति प्राप्त होकर उनके चित्र पर्याप्त मात्रा में बिकने लगे। १८९२ में द्युरां रुएल ने उनके पुराने व नये चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन किया जिससे उनकी ख्याति बढ़ गयी। पिसारो नवकलाकारों को मार्गदर्शन करने में तत्पर रहते; सहृदयता से विचारपूर्वक सलाह देने के उनके मित्रतापूर्ण व्यवहार से वे अन्य चित्रकारों को प्रिय थे और वे उनका आदर करते थे। सेजान, वान गो व गोग्वँ के शिक्षाकाल में पिसारो ने उनका उपयुक्त मार्गदर्शन किया। उनके मधुर स्वभाव, समझाने का तरीका व अनुभव को देख कर सेजान जैसे हठी प्रकृति के चित्रकार भी उनसे सीखने आये। १८७२ व १८७७ में दोनों ने पांत्वाज में प्रकृतिचित्रण किया। पिसारो से प्रभावित होकर सेजान ने शुरू में उनका अनुकरण करके छोटे धब्बों में रंगांकन किया। पिसारो ने उनकी प्रकृतिचित्रण में रुचि बढ़ायी। पिसारो की स्वच्छंद शैली व विशुद्ध रंगांकन को आधार के रूप में लेकर सेजान ने अपनी ठोस कलाशैली का विकास किया। सेजान पिसारो का बहुत आदर करते और उनकी स्मृति में उन्होंने अपने एक चित्र पर हस्ताक्षर के साथ लिखा है 'पिसारो का शिष्य' आयु के उत्तरकाल में आंख में विकार होने से वे प्रकृतिचित्रण के लिए बाह्य स्थानों पर जाने में असमर्थ हुए; अतः वे कार्यकक्ष से देख कर शहरी रास्तों के दृश्यचित्र बनाने लगे; इन दृश्यचित्रों में पैरिस, रुएन, ल आव्र व दिएप के चित्र प्रसिद्ध हैं व पिसारो की कलानिर्मिति में ये सबसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। १९०३ में इस महान् प्रभाववादी चित्रकार की मृत्यु हुई।

आल्फ्रेड सिसलो (१८३९–१८९९) का जन्म पैरिस के एक इंग्लिश

व्यापारी के परिवार में हुआ। उम्र के १८ वें साल में उनके पिता ने व्यापार का अनुभव कराने के हेतु उनको इंग्लैंड भेजा; किंतु चित्रकला के अतिरिक्त किसी अन्य विषय में रुचि नहीं होने के कारण १८६२ में वे पैरिस में ग्लेयर की चित्रशाला में भरती हुए जहां उनका रेन्वा, मोने व बाजीय से परिचय हुआ। मोने के साथ बाह्य स्थानों पर प्रकृतिचित्रण करके उन्होंने अपनी प्रभाववादी शैली की नींव पक्की की। १८७० में पिता की मृत्यु होने से परिवार का सारा भार उन पर पड़ा जिसके लिये वे स्वभावतः अयोग्य थे। व्यवहारकुशल नहीं होने से वे अपने चित्रों को बहुत कम मूल्य में बेचते। पिसारो के समान वे आरंभकाल में कुर्बे व कोरो से प्रभावित थे। विक्रेता द्यु रां रुएल ने उनके चित्रों को खरीद कर कुछ सहायता करने के प्रयत्न किये किन्तु उससे उनकी विपन्नावस्था में अंतर नहीं पड़ा। जीवन के उत्तरकाल में सिसली अंतर्मुख हुए और वे बहुत कम मित्रों से संपर्क रखते। आर्थिक बल नहीं होने के कारण वे पैरिस के उपनगरों के अलावा और कहीं विशेष यात्रा नहीं कर सके। उनके चित्रों में मार्लि, बुगिवाल, आर्ज्वांतिल, लुवेसिएन आदि पैरिस के उपनगरों के दृश्य-चित्र प्रसिद्ध हैं। १८९९ में कर्कविकार से उनकी मृत्यु हुई। मृत्यु के पश्चात् उनके चित्रों की मांग बढ़ती गयी और वे ऊंचे मूल्य में बिकने लगे।

सिसली की शैली में मोने व कोरो की शैलियों का मनोहर संमिश्रण व बार्बिजां चित्रकारों की काव्यमयता है; रंगसंगति सौम्य है। मोने के समान केवल प्रकाश के प्रभाव को प्रधानता देकर सिसली ने चित्रण नहीं किया; उनके चित्रों में प्राकृतिक सौंदर्य का भी दर्शन है। उन्होंने नदी किनारों, झरनों, बगीचों व छोटे गांवों को प्रचुर मात्रा में चित्रित किया। सौम्य, सुनहरी किरणों से जगमगाते आकाश का चित्रण करने में वे अन्य प्रभाववादियों से अधिक सफल हुए; वे कहते भी थे "मैं चित्रण का आरम्भ आकाश से करता हूं"। उनके विचार से आकाश चित्र की पृष्ठभूमि मात्र नहीं था बल्कि भूमि के समान महत्व का चित्र का एक आवश्यक अंग।

एद्गा देगा (१८३४–१९१७)

प्रभाववादी चित्रकारों में देगा एक ऐसे चित्रकार थे जो प्रभाववाद के कुछ सिद्धांतों से सहमत नहीं थे। कला में क्रांतिकारी परिवर्तन करने के ध्येय से प्रेरित होते हुए, उन्होंने कला के परम्परागत अच्छे आदर्शों का निष्ठा से पालन किया। देगा की कला अनुशासनपूर्ण है और उन्होंने नवीन विचारों को तभी अपनाया जब सतर्क होकर उन्होंने निश्चित रूप से देखा कि वे विचार कला के अबाधित नियमों के प्रतिकूल नहीं हैं एवं कला के विकास में सहायक हो सकते हैं।

देगा जन्मतः अमीर थे और कलाकार के रूप में भी उनका व्यक्तित्व श्रेष्ठ व स्वतन्त्र था जो उनकी बुद्धिमत्ता, व्यवहार व कलानिर्मिति से स्पष्ट दिखायी देता है। प्रभाववादी चित्रकारों में देगा की कला प्रत्यक्ष रूप से स्वाभाविक किंतु

अभ्यासपूर्ण, वाह्यदर्शन में सरल किंतु रचना में जटिल, भाव में स्पष्ट किंतु चिंतनशील है, रेखांकन व संयोजन के विचारों से वे प्रभाववादी चित्रकारों में सर्वश्रेष्ठ व संसार के महान् चित्रकारों में से एक हैं। अन्य प्रभाववादियों की भांति क्षणिक-दृष्टि प्रभाव को प्रमुख महत्व देकर उन्होंने चित्रण किया परन्तु चित्रांतर्गत मानवाकृतियों के स्वतंत्र व्यक्तित्व को खोने नहीं दिया। देगा ही एक ऐसे प्रभाववादी चित्रकार हैं जिनकी चित्रित मानवाकृतियां व्यक्तित्व लिये हुए हैं; उनकी चित्रित धोबनें, वेश्याएं, नौकरानियां, स्वेच्छाचारी मनुष्य एवं लिपिक आदि व्यक्ति अपने व्यवसाय व स्वभाव-विशेषताओं, आंतरिक भावनाओं व सामाजिक स्तर को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। वास्तविकता के वाह्य सौंदर्य के प्रति आकर्षण व आंतरिक कठोर सत्य का विचार ये दोनों प्रवृत्तियां देगा में आरंभ से थीं; बाह्य सौंदर्य के आकर्षण से वे प्रभाववाद के निकट आ गये किंतु जीवन के कठोर सत्य को चित्रित करने के उद्देश्य से वे उससे पृथक् रहे।

देगा का जन्म १८३४ में एक सधन परिवार में हुआ। उनके पिता बैंकर थे व एद्गा को भी उसी व्यवसाय में लगाना चाहते थे। किंतु बचपन में ही एद्गा अपनी शालेय अभ्यासपुस्तिकाओं में रेखाचित्र बनाते व बड़े होकर चित्रकार बनना चाहते थे। अंत में अनुमति देकर पिता ने उनको अँग्र के शिष्य लुई लामोत की चित्रशाला में प्रविष्ट कराया। उस समय फ्रेंच कलाक्षेत्र में दो विचार-प्रवाह प्रबल थे; देलाक्रा के नेतृत्व में रोमांसवादी चित्रकार भावपूर्ण रंगांकन द्वारा साहसिक घटनाओं को चित्रित कर रहे थे व अँग्र के नेतृत्व में नवशास्त्रीयतावादी चित्रकार ग्रीक कला को आदर्शरूप मान कर पौराणिक व ऐतिहासिक विषयों को चित्रित कर रहे थे। लामोत के मार्गदर्शन से देगा असंतुष्ट थे और वे लुव्र संग्रहालय जाकर वहां के इटालियन चित्रकारों की कृतियों का अध्ययन करते। पुनर्जागरणकालीन इटालियन चित्रकारों से वे इतने प्रभावित हुए कि बाद में कई बार इटाली जाकर उन्होंने बोतिचेलि, लिओनार्डो वगैरह विख्यात चित्रकारों की कृतियों का निरीक्षण किया। प्रारंभ में ऐतिहासिक विषयों को लेकर उन्होंने यथार्थवादी शैली के कुछ चित्र बनाये परन्तु तुरन्त ही उन्होंने अपना ध्यान उससे हटा कर व्यक्तिचित्रण पर केन्द्रित किया। देगा एक श्रेष्ठ व्यक्तिचित्रकार थे और अपने आरंभिक व्यक्तिचित्रों में भी उन्होंने मानव-स्वभाव-विशेषताओं व आंतरिक गुणों को परिणामकारक ढंग से व्यक्त किया है। उनके व्यक्तिचित्रों की रेखा में प्राचीन महान् चित्रकारों की रेखा का सामर्थ्य है, एवं रंगसंगति में सूक्ष्मता व सौम्य प्रकाश का प्रभाव हैं। व्यक्तिचित्र बनाने से पूर्व देगा व्यक्ति को देखकर कई रेखाचित्र बनाते व तत्पश्चात् उनकी सहायता से व स्मृति से अंतिम व्यक्तिचित्र को पूर्ण करते। समय के साथ उनके चित्रण में अधिक निश्चय व चंचल मुद्राओं व भावों को अंकित करने का सामर्थ्य आ गये। देगा की एक स्वभाव विशेषता थी कि वे किसी के कहने से व्यक्तिचित्र बनाने को

तैयार नहीं होते और चित्र के प्रभाव से असंतुष्ट होते ही चित्रण करना बंद कर देते। जब एक प्रतिष्ठित व सुंदर महिला ने उनसे अपना व्यक्तिचित्र बनाने की प्रार्थना की तब उन्होंने कहा "हां, यदि आप नौकरानी की पोशाक में अपना व्यक्तिचित्र बनवाना चाहो तो मैं बना सकता हूं"।

१८७० के युद्ध में सैनिक-सेवा करके जब देगा वापस आये तब उन्होंने देखा कि पुरानी सामाजिक प्रथाएं टूट रही थीं व रहनसहन बदल रहा था। अब उन्होंने बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार अपने चित्रविषयों में परिवर्तन करना चाहा एवं नृत्यगृहों व नाटकगृहों के दृश्यों को चित्रण के लिये पसंद किया। इसी समय उनका माने, पिसारो व रेन्वा से परिचय होकर वे प्रभाववादी चित्रकारों की चर्चाओं में भाग लेने लगे। इन चित्रकारों के इस विचार से वे सहमत थे कि चित्र का विषय समकालीन जीवन से चुना जाना चाहिये किंतु बाह्य स्थान पर जाकर चित्रण करने के वे कट्टर विरोधी थे। उनका स्पष्ट मत था कि कला सृजनशील होने के कारण उसमें ऐसे तत्व पाये जाते हैं जो प्रकृति में नहीं होते व जिनका कल्पना व भावनाओं द्वारा कलाकृति में अंतर्भाव किया जाता है; अतः केवल प्रकृति पर निर्भर रह कर श्रेष्ठ कलाकृति का निर्माण नहीं किया जा सकता। वे कहते "यदि मैं सरकार होता तो रक्षकों को नियुक्त कर के प्रकृतिचित्रण करनेवालों पर सख्त आंख रखता"[३२]। उनकी मान्यता थी कि कलाकृति में प्रकृति का अनुकरणमात्र नहीं होना चाहिये क्योंकि कलाकृति कलाकार की कल्पना का विलास है; प्राचीन महान् चित्रकारों के चित्रों में जो वायु है वह श्वास द्वारा जो वायु हम अन्दर लेते हैं उससे निराली है; स्मृति से चित्रण करना सब से अच्छा है क्योंकि उसमें चित्रकार केवल उन्हीं बातों का विचार करता है जो सौंदर्य या किसी अन्य विशेषता के कारण उसके स्मृतिपटल पर टिकी रहती हैं; ऐसे चित्रण में कल्पना से सहायता मिलकर कलाकृति को उदात्त रूप प्रदान किया जाता है; चित्रकार को वस्तु के नैसर्गिक रूप की हुबहू प्रतिकृति करने का प्रलोभन नहीं होता व उसकी प्रतिभा व कला की कठोर वास्तविकता से सुरक्षा की जाती है। वे कहते "कला का अर्थ यह नहीं है कि प्रकृति की शरण लेना चित्र का निर्माण मस्तिष्क में होता है; एकाग्रचित्त होकर निरीक्षण करके वैयक्तिक शैली के अनुरूप उसको अंतिम रूप दिया जाता है"[३३]।

चित्र बनाने से पहले देगा नृत्यगृहों, नाटकगृहों या अन्य चित्रणयोग्य स्थानों पर जाकर सूक्ष्म निरीक्षण करके अभ्यासचित्र बनाते और पश्चात् संयोजन व सरलीकरण करके लयबद्ध रेखाओं से सजीव व स्वाभाविक रूप देकर चित्र को अन्तिम रूप देते। उनके आरम्भकाल के अधिकतर चित्र तैलरंगों में बनाये हुए हैं किंतु बाद में वे रंगीन खड़िया से चित्रण करने लगे क्योंकि उसमें रेखाएं खींचने में सुविधा रहती एवं प्रकाश के सौम्य किंतु सतेज प्रभाव को सफलता से अंकित किया जा सकता। तैलरंगों में चित्रण करते समय टर्पेंटाइन का अधिक मात्रा में प्रयोग करके उन्होंने चित्र की सतह

को पारदर्शक व चमकीला रूप प्रदान किया। १८९० के बाद वे पूर्णरूप से रंगीन खड़िया से काम करने लगे। रंगांकन से पहले वे खड़िया को भाप से मुलायम बनाते जिससे खड़िया की रेखाएं अधिक कोमल बनतीं। देगा की विकसित अंकनपद्धति की कुछ वैयक्तिक विशेषताएं हैं। भिन्न रंगों की समानान्तर रेखाओं या लकीरों से वे चित्र के सम्पूर्ण क्षेत्र को रंगांकित करते जिससे उनके चित्रों में प्रकाश एवं वातावरण का चंचल प्रभाव स्पष्टरूप से दिखाई देता।

१८५५ में पैरिस में हुई अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में देगा को कुर्बे के चित्र देखने को मिले और उससे उनको काफी प्रेरणा प्राप्त हुई। देलाक्रा की स्वच्छंद अंकनपद्धति से वे बहुत प्रभावित थे किंतु उनके मुख्य प्रेरणा के स्रोत थे अँग्र। जब पिता के घनिष्ठ मित्र वाल्पँको के साथ अँग्र से मिलने का उनको मौका मिला तब अँग्र ने देगा को उपदेश दिया "रेखायें खींचो, बेटा, खूब रेखायें खींचो।" देगा की रेखा उनकी विद्यार्थी अवस्था में ही इतनी सधी हुई थी कि रेखांकन का अधिक अध्ययन करने की उनको कोई आवश्यकता नहीं थी किंतु वे निश्चय के साथ लामोत के मार्गदर्शन में रेखाचित्र बनाते रहे। साधारण विद्यार्थियों की भांति देगा प्राचीन कलाकृतियों का अन्धानुकरण न करके उन कलाकृतियों की महानता के पीछे छिपे हुए कला के मूलतत्वों के बारे में चिंतन करते। कला के मूलतत्वों को आत्मसात् करके उनका परिपालन करते हुए समयानुरूप कलानिर्मिति करना देगा ने उचित माना। 'माने का व्यक्तिचित्र', 'घोड़े पर सवार महिला', 'जलपानगृह की गायिकायें'[34] आदि आरम्भकाल के उनके चित्र पूर्ण विकसित व उत्कृष्ट रेखांकन शैली के उदाहरण हैं। अँग्र के रेखाचित्रों के समान देगा के रेखाचित्र केवल आदर्शवादी नहीं हैं। देगा के रेखाचित्रों में शास्त्रीय अध्ययन व नियन्त्रण के साथ शैली की मुक्तता, स्वभावदर्शन व विषयवस्तु के प्रति आत्मभाव ये जो गुण हैं वे शास्त्रीयतावादी कला में नहीं मिलते। वस्तुओं के आकारों की हुबहू नकल नहीं होते हुए देगा के रेखाचित्र स्वाभाविक एवं सजीव प्रतीत होते हैं; रेखाचित्र के किसी भी हिस्से में अनावश्यक बारीकियां या अस्वाभाविकता नहीं दिखायी देतीं।

प्रभाववादियों की चर्चाओं में वे फांतें लातूर के साथ उत्साह से भाग लेते थे; किन्तु १८६५ के करीब उन्होंने अपनी प्रतिभा व अभिरुचि के अनुकूल चित्रविषयों को निर्धारित किया और उन विषयों को लेकर अन्त तक पृथक् रूप से चित्रण करते रहे। उनके चित्रविषयों में शहरी जीवन के ऐसे दृश्य हैं जो जलपानगृहों, नाटकगृहों, नृत्यगृहों, घुड़दौड़ के मैदानों, दूकानों, बगीचों एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों के गृहों की बैठकों में पाये जाते है।

चित्रांतर्गत दृश्य को देगा ऐसी कुशलता से संयोजित करते कि उनके चित्र बिना सूचित किये अकस्मात् खींचे गये जल्द छायाचित्र के समान दिखाई देते हैं[35]। दृश्य में यह असावधानी का स्वाभाविक प्रभाव डालने के हेतु देगा प्रायः 'ऊंचे या

अनोखे दृष्टिकोण'[36] से चित्रसंयोजन करते । उनके चित्रों में सामान्य जनजीवन के दृश्य ऐसे दिखाई देते हैं जैसे कि प्रेक्षकगृह या वीथिका से दिखायी देनेवाले रंगमंच पर अभिनीत किये जा रहे नाटक के दृश्य । दृश्य की स्वाभाविकता को बढ़ावा देने के हेतु वे चित्रभूमि के किनारों पर आदमी, जानवर या वस्तुओं की अधूरी कटी हुई आकृतियां बनाते । उनके चित्र 'घुड़दौड़ के मैदान पर'[37] में घोड़ों की आकृतियां एक तरफ से इस प्रकार काट दी गयी हैं कि कोई छायाचित्रकार दृश्य को उसी क्षण अंकित करने की जल्दी में जैसे तैसे खींच लेता है । उस समय जापानी छापचित्रों ने चित्रकारों का ध्यान आकर्षित किया था और देगा भी उनसे प्रभावित थे; दृश्य को आकस्मिक व घटनासदृश बनाने के उद्देश्य से अधूरी आकृतियों के अंकन एवं असाधारण दृष्टिकोण से संयोजन इनके पीछे यही जापानी छापचित्रों का प्रभाव कारण था । देगा ने छाया-चित्रण का अध्ययन किया था और उसमें प्राप्त प्रभावों का—दूर की एवं समीपवर्ती वस्तुओं का धुंधलापन, निकटवर्ती वस्तुओं का अस्वाभाविक आकार-विस्तार, दृश्य का अनैच्छिक विभाजन आदि का उन्होंने अपने चित्रों में अनुसरण किया जिससे उनके दृश्य ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे कि पात्रों की असावधानी से अंकित किये गये क्षणिक दृश्य । देगा के चित्रों में आकस्मिकता का प्रभाव इतना सहजसिद्ध है कि दर्शक भूल जाता है कि उसके पीछे देगा का असामान्य कौशल और गहरा अध्ययन है; प्रत्येक छोटी सी वस्तु या बारीकी का अंकन सुयोग्य स्थान पर व चित्र के समूचे दर्शन व संयोजन को ध्यान में रखते हुए किया गया है; कहीं भी स्थानान्तर या लोप असंभव है । देगा स्वयं कहते "मेरी कला से किसी भी चित्रकार की कला अधिक स्वाभाविक है । मैं जो कुछ बनाता हूं वह चिंतन व महान् चित्रकारों की कृतियों के अध्ययन का परिपाक है । मैं नहीं समझता कि स्फूर्ति, सहजसिद्धि व चित्रकार का प्रकृति स्वभाव आदि कुछ तत्वों का सृजनकार्य से कोई सम्बन्ध है"[38] । देगा के चित्रण के पीछे इतना गहरा अध्ययन होते हुए उनमें कितनी पराकाष्ठा की स्वाभाविकता है यह बात उनके चित्र 'दिएगो मार्तेलि'[39] की तुलना माने के चित्र 'एमिल जोला' से करने से स्पष्ट हो जाती है । माने के चित्र में एमिल जोला ऐसे बैठे है जैसे कि उनका चित्र खींचा जा रहा है जबकि देगा के चित्र में दिएगो मार्तेलि पूर्ण स्वाभाविक मुद्रा लिये हुए हैं जैसे कि उनका आसपास ध्यान ही नहीं है । देगा के इस चित्र का यथार्थ संयोजन, विशुद्ध रंगों का प्रयोग, स्पष्ट तूलिका-संचालन प्रभाववादी हैं; सामर्थ्यपूर्ण रेखांकन, रचनाकौशल व मार्तेलि का व्यक्तित्वदर्शन उनके शास्त्रीय अध्ययन व स्वतंत्र प्रतिभा के निर्देशक है ।

देगा 'प्रभाववादी' शब्द से घृणा करते थे क्योंकि उसमें अहेतुकता और आकस्मिकता की ओर संकेत हैं । उन्होंने लड़कर १८७९ की प्रभाववादियों की चतुर्थ प्रदर्शनी के विज्ञापन से 'प्रभाववादी' शब्द को हटवा दिया । बाह्य स्थानों पर जाकर खुली वायु एवं तेज प्रकाश से युक्त प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण से वे सहमत नहीं थे

क्योंकि वायु व प्रकाश जैसे चंचल तत्वों को सम्पूर्ण महत्व देना उनको पसन्द नहीं था। कमरों में पाया जानेवाला नैसर्गिक प्रकाश एवं नाटकगृहों व सार्वजनिक स्थानों में पाया जानेवाला कृत्रिम प्रकाश उनकी दृष्टि में संतोषजनक थे। वे कहते "मैं मानवीय जीवन व मानवनिर्मित प्रकाश को पसन्द करता हूं; कला मानवनिर्मित है; कला का प्रकृति से सम्बन्ध नहीं है"। वे स्मृति से चित्रण करते; जब कभी मानव-शरीर के अध्ययन के लिए किसी आदमी की आवश्यकता पड़ती तो वे उसको कार्यकक्ष में घूमने को कहते और उसका निरीक्षण करके बाद में उसको स्मृति से चित्रित करते। इस पद्धति से विशिष्ट मुद्रा में आदमी को बिठाकर चित्र बनाने में जो अस्वाभाविकता आती है उससे वे बचते।

सुरचना व स्थायी रूप दर्शन ये शास्त्रीयतावादी कला के गुण देगा की कला की महानता के आधार हैं; 'रूई का बाजार', 'ओर्लिन्स', 'बेलेलि परिवार[40] आदि चित्र इसके समुचित उदाहरण हैं। इन चित्रों के संतुलन, सुस्थापन, लयबद्ध रेखांकन व आकारों की सुस्पष्टता ये गुण देगा के गहरे अध्ययन व योजनाकौशल की ओर संकेत करते हैं, तो गतित्व व क्षणिक दृष्टि प्रभाव उनकी नवीनता की ओर।

नृत्यगृहों में उनको नवीन ढंग से संयोजन करने के लिए समुचित वातावरण व अनोखा कृत्रिम प्रकाश मिलते जो उनको विशेष पसन्द थे। उनके नर्तकियों के चित्र स्वाभाविक वातावरण व गतित्व से सजीव, एवं आदर्श आकार व लय से सुडौल बन गये हैं। शास्त्रशुद्ध परम्परा व प्रयोगशील आधुनिकता का उनकी कला में सुन्दर संगम है; सुनियंत्रित, अभ्यासपूर्ण रेखा के साथ मुक्त तूलिका-संचालन व विशुद्ध रंगांकन का विलास है।

व्यक्तिचित्रणकला के व्यवसाय से देगा घृणा करते थे किंतु उन्होंने अपने रिश्तेदारों के कुछ ऐसे व्यक्तिचित्र बनाये हैं एवं आत्मचित्र बनाये हैं जो आंतरिक व्यक्तित्व के दर्शन से सजीव हैं। अपनी भाभी एस्तेल म्युसों[41] के व्यक्तिचित्र में देगा ने उच्च कोटि के संयोजनकौशल के अलावा भाभी के चेहरे पर दृष्टिक्षीणता व समर्पण के भाव बड़ी कुशलता से अंकित किये हैं। संगीत सुनते समय बनाये गये अपने पिता के व्यक्तिचित्र में गायक की तन्मयवृत्ति व पिता के चेहरे की मुग्धता के भाव परिणामकारक ढंग से अंकित किये हैं। 'युवती का शीर्ष', 'आत्मचित्र' एवं १८७५ के पश्चात् बनाये गये धोबिनों व नर्तकियों के चित्र उनके मानवतावादी विचारों के प्रमाण हैं।

देगा किसी भौतिक महत्वाकांक्षा से प्रेरित चित्रकार नहीं थे। उनका ध्येय था निजी कला का पूर्ण विकास व इस ध्येय की प्राप्ति के लिये वे जीवन के उत्तर-काल में अधिक एकांतप्रिय बन गये और अपने इनेगिने मित्रों से भी वे बहुत कम सम्पर्क रखते। देगा संवेदनशील, अंतर्मुख व स्पष्टवक्ता थे। उनके कोई विशेष मित्र नहीं थे और वे आजन्म अविवाहित रहे। वे प्रशंसा से घृणा करते थे।

देगा उत्कृष्ट मूर्तिकार भी थे। दृष्टि कमजोर होने के बाद उन्होंने मूर्तिकला पर ध्यान केंद्रित किया और कई उत्कृष्ट मूर्तियां बनायीं जिनमें "तरुण नर्तकी', 'दौड़ने वाला घोड़ा' विशेष प्रसिद्ध हैं। देगा की मूर्तिकला के बारे में रेन्वा ने कहा था "उनको मैं पहला मूर्तिकार मानता हूं"[42]।

देगा प्राय: अपने चित्रों को बेचना नहीं चाहते किंतु १८७६ के बाद अपने चचेरे भाई की आर्थिक सहायता करने में बहुत वित्तहानि होने से उनको विवश होकर निजी चित्रों का विक्रय करना पड़ा। १९१७ में करीब अंधावस्था में उनकी मृत्यु हुई। उससे पहले उन्होंने अपने मित्र फोरें को सूचित किया था कि उनकी मृत्यु के बाद कोई शोकप्रदर्शन नहीं होना चाहिये और यदि अनिवार्य हो तो केवल इतना ही कहा जाये 'देगा को रेखाचित्रण बहुत प्रिय था"[43]।

ओग्युस्त रेन्वा (१८४१-१९१९)

देगा के समान रेन्वा भी एक ऐसे प्रभाववादी चित्रकार थे जिन्होंने दृश्य के बाह्य रूप के साथ विषयवस्तुजनित निजी भावनाओं को भी चित्रित किया है। दोनों में से किसी का भी दृष्टिकोण आलोचनात्मक नहीं था; किंतु देगा का दृष्टिकोण उदासीनता का था जबकि रेन्वा का दृष्टिकोण स्नेह व प्रसन्नता का था। देगा ने स्त्री का चित्रण उसके यथार्थ व्यक्तित्व के साथ किया और उसमें स्त्री को सुंदर या आदर्श दिखाने का प्रयत्न नहीं है जबकि रेन्वा की स्त्री आदर्श सौंदर्य लिये हुए है। देगा के समान रेन्वा के चित्र केवल जीवन के किसी विशिष्ट क्षण का अंकन नहीं हैं, उनमें स्त्रीसौंदर्य की उपासना व जीवन की सुखमयता पर संतोष व्यक्त किया है। देगा ने स्त्री को व्यक्तिरूप दर्शाया है जबकि रेन्वा की स्त्री नारीसौंदर्य का प्रतीकरूप है। रेन्वा के स्त्री-चित्र दर्शक का ध्यान प्रथम स्त्रीसुलभ सौंदर्य की ओर आकृष्ट करते हैं उसके पश्चात् उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं का विचार मन में आता है। व्यक्ति-चित्रों को छोड़कर अन्य स्त्रीचित्रों में रेन्वा ने स्त्रीसौंदर्य की अपनी प्रिय कल्पना को साकार करके उसको पुन: पुन: उसी रूप में चित्रित किया है मानो वे सभी उसी स्त्री के व्यक्तिचित्र हैं।

रेन्वा के कलाजगत् में स्त्री को अधिष्ठात्री देवता का स्थान है, और आसपास के वातावरण, मैदान, वन, वृक्ष, झरने, फूलपौधे आदि वस्तुओं का चित्रण अलंकरण के रूप में किया है। मोने ने स्त्री को प्रकृति के अभिन्न रूप में चित्रित किया जैसे कि वह भी प्रकृति के सर्वव्यापी प्रकाश से, चराचर सृष्टि के साथ, प्रज्वलित हो गयी है; रेन्वा के चित्रों में ऐसे दिखायी देता है मानो मध्यवर्ती स्त्री-आकृति से ही प्रकाश-किरणें निकल कर सर्वसृष्टि को प्रकाशित कर रही हैं।

स्त्री के शारीरिक सौंदर्य को प्रमुख महत्व देकर कलानिर्मिति करने की फ्रेंच कला में परम्परा सी रही है। इसी परम्परा का आधुनिक रूप हम रेन्वा की कला

में देखते हैं। बौद्धकला में मातृदेवता का जो महत्वपूर्ण स्थान था वैसा ही स्थान १८ वीं सदी की फ्रेंच कला में एवं राजदरबार में स्त्री को प्राप्त हुआ था एवं स्त्रीसौंदर्य के गौरव में अपरिमित कलानिर्मिति हुई। १८वीं शताब्दी के चित्रकार फ्रागोनार व वातो का रेन्वा ने अध्ययन किया था और उनसे वे बहुत प्रभावित थे।

रेन्वा का जन्म लिमोज में एक निर्धन दर्जी के परिवार में हुआ। बचपन में ही रेन्वा चीनी मिट्टी के बरतनों पर नक्काशी करने वाले एक कारीगर के नौसिखिया सहायक बन गये। १८ वीं शताब्दी के विख्यात चित्रकार बुशे का अनुकरण करके वे बरतनों को अलंकृत करते। हलके जामुनी व नीले रंगों से युक्त सौम्य रंगसंगति रेन्वा को बहुत प्रिय थी। उन्होंने बुशे का चित्र 'डायना का स्नान'[44] का-बार बार अध्ययन किया। किंतु बुशे ने स्त्री को अस्वाभाविक नाटकीय वातावरण के अंतर्गत, कुछ व्यक्तिगत आदर्श रूप देकर अतिशयोक्त ढंग से चित्रित किया है।

१८६२ में रेन्वा ने ग्लेयर की चित्रशाला में प्रवेश लिया और साथ ही साथ अर्थार्जन के हेतु कुछ व्यापारिक कलाकार्य करते रहे। मोने भी वहीं अध्ययन कर रहे थे और आर्थिक कठिनाइयों से परेशान थे। दोनों का परिचय होकर वे घनिष्ठ मित्र बने। आरम्भ में देलाक्रा की अंकनपद्धति का अनुकरण करके छायाचित्रों की सहायता से रेन्वा ने कुछ चित्र बनाये किंतु बाद में उन्होंने कुर्बे की कला का अध्ययन करके निजी शैली का विकास किया जिसका १८७० की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में रखा गया चित्र 'ग्रिफोनवाली स्नानमग्ना युवती'[45] उत्कृष्ट उदाहरण है; कुर्बे की रंगसंगति को रेन्वा ने अधिक सौम्य व कोमल बनाया है; स्त्री की मुद्रा स्पष्ट रूप से ग्रीक कलाकार प्राक्साइटिलिस की वीनस की मूर्ति से मिलती-जुलती है जो बात रेन्वा के शास्त्रीय कला के प्रति आकर्षण का प्रमाण है। फिर भी इस चित्र में नवशास्त्रीयतावाद की कठोरता नहीं है व स्त्रीशरीर को प्रत्यक्ष देखकर चित्र जैसे स्वाभाविक व यथार्थ बनाया जाना चाहिये वैसे ही बन गया है। परम्परागत शास्त्रीयता पर निष्ठा, यथार्थ का स्वाभाविक आकर्षण, और रोमांसवादी स्वच्छंद अंकनपद्धति का इतना मनोरम संगम रेन्वा के अतिरिक्त अन्य प्रभाववादी चित्रकारों में नहीं मिलता।

१८७० के करीब मोने के साथ रेन्वा ने छायाप्रकाश व वातावरण के प्रभाव को विशुद्ध रंगों के धब्बों में अंकित करने की पद्धति के अध्ययन को आरम्भ किया। प्रभाववादी अंकनपद्धति पर काफी प्रभुत्व प्राप्त करके वे उसी पद्धति में १८८२ तक कार्य करते रहे। १८७६ में बनाये उनके चित्र 'झूला'[46] व १८७७ की प्रभाववादियों की चतुर्थ प्रदर्शनी में दिखाये गये उनके चित्र 'ल मुलँ द ला गालेत'[47] प्रभाववादी शैली के उत्कृष्ट चित्र हैं। चित्रों में प्रकाश की चंचलता व वातावरण की धूसरता सफलता से अंकित की हैं; किंतु इन चित्रों में भी वातावरण व प्रकाश के प्रभाव से मानवाकृतियों को व यथार्थ से चित्ररचना को अधिक महत्व देने की रेन्वा की स्वाभाविक प्रवृत्ति छिपी नहीं रहती। प्रभाववादी अंकनपद्धति पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करने के उद्देश्य से

प्रेरित होने के कारण रेन्वा के आरम्भिक काल के चित्रों में उनकी स्वाभाविक कला-विशेषताओं को सीमित स्थान है। इस काल में उन्होंने प्रचुर मात्रा में चित्रनिर्मिति की व व्यक्तिचित्र, प्रकृतिचित्र, रास्तों के चित्र एवं पूर्णाकृति मानवचित्र वनाये। रेन्वा के चित्र 'ल मुलँ द ला गालेत' की तुलना देगा के चित्र 'काफे बुल्वार मों मार्त्र'[48] से करने से दोनों के दृष्टिकोणों की भिन्नता स्पष्ट हो जाती हैं; रेन्वा की चित्रित की हुई मानवाकृतियां ऐसी दिखायी देती हैं जैसे कि उनके लिये पैरिस सुख-समृद्धि व आराम से परिपूर्ण विलासनगरी थी जबकि देगा के चित्रित नगरवासियों से पैरिस, अपने-अपने सामाजिक स्तर के अनुसार, परिश्रम करके गुजरबसर करने का स्थान प्रतीत होती है। चित्र में अपने मित्रों को चित्रित करते समय रेन्वा ने उनकी वैयक्तिक विशेषताओं का विचार न करके उनको सामान्य रूप देकर चित्रित किया है। रेन्वा के चित्र 'जलपर्यटकों का भोजन' यही एक ऐसा चित्र है जिसमें उन्होंने अपने मित्रों को उनकी शारीरिक विशेषताओं को दर्शाते हुए चित्रित किया हैं।

आरंभ में ही रेन्वा के चित्रों को खरीद कर उनको आश्रय देनेवालों में प्रकाशक शार्पांतिय थे। १८७८ में रेन्वा ने 'मादाम शार्पांतिय व उनकी पुत्रियां' वह व्यक्तिचित्र वनाया जो राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी में स्वीकृत हुआ। इस चित्र से रेन्वा को ख्याति प्राप्त होकर उनके चित्रों की मांग बढ़ती गयी। अन्य प्रभाववादियों के समान रेन्वा की संग्राहकों व दर्शकों के प्रति पूर्वग्रहदूषित विरोधी धारणा नहीं थी, कला के मूलभूत सिद्धांतों व अपने वैयक्तिक विचारों के प्रति निष्ठावान रहकर वे ग्राहकों को संतुष्ट करने का प्रयत्न करते। वैसे वे शुरू से ही प्रभाववादियों की कमजोरियों को महसूस करते थे और जब १८८२ में वे इटाली हो आये तब उनकी प्रतिभा प्रभाववाद के सैद्धांतिक बंधनों से मुक्त हो कर, अधिक आत्मविश्वास से मौलिक सृजन करने में समर्थ होगयी। रेन्वा अनुभव करने लगे कि प्रभाववाद में चित्रकार की व्यक्तिगत मौलिकता के लिए स्थान नहीं होने के कारण उसकी कला शीघ्र ही यांत्रिक व नीरस बन जाने का खतरा है। उन्होंने यह भी देखा कि वैज्ञानिक रंगांकन पद्धति पर अत्यधिक बल देने के कारण प्रभाववादी चित्रकार रेखांकन का कौशल एवं रंगसंगति का स्वाभाविक ज्ञान खो बैठता है; एवं प्रकृति को प्रत्यक्ष देख के चित्रण करने की आदत पड़ने से स्वतंत्र रूप से विचार करके रचना करने का सामर्थ्य भी वह प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने १८७९, १८८० व १८८१ की प्रभाववादियों की प्रदर्शनियों में भाग लेना अस्वीकार किया। १८८२ में उन्होंने इटाली की यात्रा कर वेटिकन में राफेल के भित्तिचित्र व पाम्पिया के उत्खनन में प्राप्त चित्र देखे जिनसे दावि व अँग्र प्रभावित हुए थे। अब अँग्र के रेखांकन व रचना के कौशल का सौंदर्य ग्रहण करने की नयी दृष्टि उनको प्राप्त हुई। इसके पश्चात् नियमबद्ध अध्ययन करके कलानिर्मिति करने का उन्होंने निश्चय किया।

इटाली से वापस आने के बाद बनाये गये चित्र 'बुगिवाल का नृत्य'[49] की

आकृतियां ठोस, लयबद्ध व अध्ययनपूर्वक अंकित की गयी हैं। उसके बाद उन्होंने अपना विख्यात चित्र 'स्नानमग्ना युवतियां'[50] बनाया जिस पर उन्होंने १८८४ से १८८७ तक परिश्रम किया। इस चित्र की बहुत प्रशंसा हुई। यह चित्र बुशे की परंपरा का है यद्यपि इसमें बहुत ही हलकी व सुन्दर रंगसंगति का कोमल तूलिका-संचालन द्वारा प्रयोग किया है। चित्र के विषय को रेन्वा ने १७वीं सदी के फ्रेंच कलाकार फ्रान्स्वा जिरार्दों की उभारदार शिल्पकृति से चुना है जो वर्साय के फव्वारे पर अंकित है। पृष्ठभूमि में प्रभाववादी पद्धति से प्रकाश की जगमगाहट व वातावरण की चंचलता का परिणाम दिखाया है किन्तु सबसे अधिक महत्व स्नानमग्ना युवतियों को दिया है जिनकी मनोहर, लययुक्त, स्पष्ट आकृतियां व क्रीडाशील अभिनय एवं त्वचा की मोतियों जैसी हलकी चमक व ताजगी दर्शक को मोह लेती हैं। रेन्वा स्वयं किसी भी सिद्धांत के गुलाम होने के विरोधी थे। उनके 'स्नानमग्ना युवतियां' जैसे चित्रों में उन्होंने विभिन्न कलासिद्धांतों का ऐसी कुशलता से समन्वय किया है कि वह दर्शक को पूर्ण स्वभाविक व सर्वांग सुन्दर प्रतीत होता है। वे कहते थे "आजकल, हरेक बात का स्पष्टीकरण किया जाता है, किंतु यदि किसी चित्र का स्पष्टीकरण किया जा सकता है तो अवश्य समझ लो कि वह कला नहीं है"[51]। 'स्नानमग्ना युवतियां' चित्र में अँग्र की रेखा की गति, प्रभाववादी प्रकाश व वातावरण की चंचलता व १८वीं सदी की फ्रेंच कला की विवस्त्र स्त्रीशरीर की कोमलता इन सबका सुरीला सहअस्तित्व है। रेन्वा कलाकार की भावनाओं की तीव्रता को सबसे प्रमुख स्थान देते थे। वे कहते "चित्रकार की भावनाओं के साथ सब कुछ आता है"[52]। 'स्नानमग्ना युवतियां' चित्र के बाद रेन्वा ने दैनंदिन जीवन से विषयों को चुन कर चित्र बनाये जिनमें 'पियानो पर दो लड़कियां'[53] यह प्रसिद्ध चित्र व कई विवस्त्र स्त्रियों के चित्र हैं।

रेन्वा की उत्तरायु की कलाकृतियों में तर्कहीन अतिशयोक्ति का दोष पैदा होकर उनकी स्त्रियों की आकृतियां मोटी व भद्दी बन गयीं। १८९० से संधिवात से पीड़ित होने से रेन्वा हलचल करने में धीरे-धीरे असमर्थ हो गये। पहियेवाली कुर्सी पर बिठा कर उनको हिलाया जाता था। कहते हैं कि तूलिका पकड़ने में असमर्थ होने के कारण कपड़े की पट्टी से तूलिका को हाथ में बंधवा कर वे कुर्सी पर बैठे-बैठे चित्रण करते थे। इस बात की सत्यता संदेहास्पद है किंतु एक बात सच है कि रेन्वा आत्यंतिक शारीरिक दुर्बलता व पीड़ा के बावजूद अन्त तक कलाकृतियां बनाते रहे। ऐसी अवस्था में चित्रण करते हुए देख कर जब किसी ने उनसे आश्चर्य से पूछा तब उन्होंने उत्तर दिया "चित्रकार हाथ से चित्र नहीं बनाता"[54]। उनकी इस उक्ति का उनकी निजी कला समुचित उदाहरण है। रेन्वा ऐसे महान् चित्रकारों में हैं जिन्होंने अपने दिल की उमंगों से कला को जन्म दिया।

आंरी द तुलुज लोत्रेक (१८६४-१९०१)

तुलुज लोत्रेक की कला में ऐसे मौलिक गुण विद्यमान हैं कि उनकी शैली को पूर्ण रूप से प्रभाववादी शैली नहीं मान सकते। अंकनपद्धति व चित्र के संपूर्ण प्रभाव के विचारों से उनकी कला व प्रभाववाद में कुछ ऐसी समानताएं हैं कि उनको प्रभाववादी चित्रकारों में सम्मिलित किया जाता है। किंतु साथ ही अपनी कलाकृतियों द्वारा लोत्रेक ने प्रभाववाद की त्रुटियों पर प्रकाश डाला व भावी चित्रकारों का मार्गदर्शन किया। लोत्रेक की कला का व्यापारिक व विज्ञापन कलाओं पर काफी प्रभाव पड़ा किंतु उससे उनकी कला के श्रेष्ठत्व में कोई न्यूनता नहीं आती। प्रभाववादियों की भांति उन्होंने चित्र विषय को गौण नहीं माना बल्कि विषय को परिणामकारक ढंग से चित्रित करने के उद्देश्य से उन्होंने प्रभाववादी शैली का प्रयोग किया। समाज के जिस स्तर को उन्होंने विषय के रूप में चुना, जिस वातावरण को उन्होंने निकट से देखा और जिन स्थानों पर उनका अक्सर आनाजाना रहा, वहां के जीवन को उन्होंने आत्मीयता से यथार्थ रूप में चित्रित किया। ऐसे चित्रों में पैरिस के नृत्यगृहों व मदिरागृह 'मुलँ रुज'[55] के चित्र बहुसंख्य हैं। यहां पैरिस के साहित्यिक, कलाकार, नट-नटियां एवं कलाप्रेमी सम्मिलित होते। इसके अतिरिक्त अन्य मदिरागृहों, वेश्यागृहों, नाटकगृहों व सर्कसों के अंतर्गत दृश्यों एवं सामान्य जनजीवन को भी उन्होंने यथार्थ चित्रित किया। लोत्रेक ने जिस दुनियां का चित्रण किया वह बड़ी अनोखी थी व उनका स्वयं का व्यक्तित्व भी बड़ा अनोखा था।

लोत्रेक का जन्म १८६४ में बहुत ही संपन्न व अमीर खानदान में हुआ। उनके पूर्वजों का राजपरिवार से रिश्तानाता था। यदि दुर्घटनाग्रस्त होकर बचपन में ही वे अपंग नहीं होते तो शायद वे भी परिवार के अन्य सदस्यों की भांति शिकार, मित्रसम्मेलन, भोजन, नृत्य, मदिरापान आदि विलासों में अपना जीवन चैन से बिताते। १८७८ में फर्श पर गिरने से उनकी एक टांग में चोट आयी; १५ महीने बाद, जब पहली टांग का इलाज हो रहा था, फिर ऊंचाई से गिरने से दूसरी टांग में भी चोट आयी। समय बीतता गया और मालूम हो गया कि आंरी की दोनों टांगों की वृद्धि रुक कर वे कमजोर हो गयी हैं। शारीरिक दौर्बल्य का लोत्रेक की महत्वाकांक्षा पर जबरदस्त परिणाम हुआ और उन्होंने निश्चय के साथ चित्रकार पर ध्यान केंद्रित करके कठिन परिश्रम से कलासाधना की। किंतु यह सोचना अन्यायपूर्ण होगा कि लोत्रेक की कला केवल कठिन परिश्रम का फल थी व उनमें कोई विशेष प्रतिभा नहीं थी। उनके बचपन के रेखाचित्र उनकी असाधारण प्रतिभा के प्रमाण हैं। दुर्घटनाग्रस्त होने से पहले भी छोटे आंरी को रेखाचित्रण का शौक था। जब आंरी तीन साल का था तब माताजी के साथ वह शादी में गया था। वहां की प्रथा के अनुसार माताजी ने पंजिका में हस्ताक्षर किया तब आंरी ने भी हस्ताक्षर करना चाहा।

माताजी ने उसको रोका कि वह तभी लिखना नहीं जानता था तब आंरी ने कहा "तो क्या हुआ ? मैं बैल का चित्र खींचूगा" । यह साधारण प्रसंग लोत्रेक में बचपन से ही कलाभिरुचि कैसी थी इसका प्रमाण है । आयु के दसवें साल के करीब उन्होंने रेखाचित्र-पुस्तिका में जानवरों, आदमियों व नावों के बहुत से चित्र बनाये ।

दुर्घटनाओं के बाद जब वे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे, उनका पैरिस के प्रँस्तो नाम के गूंगे व बहरे चित्रकार से परिचय हुआ । प्रँस्तो घोड़ां व कुत्तों के चित्र बनाने में निपुण थे और उनके मार्गदर्शन में लोत्रेक ने कला का अध्ययन जारी किया । इसी समय उनके पिता ने उनको चित्रकार फोरें से परिचित कराया जिनसे कला के मार्ग-दर्शन के अतिरिक्त वे पेरिस के रंगमंच से भी परिचित हुए । अब लोत्रेक ने प्रभाव-वाद का अध्ययन आरम्भ किया । प्रथम चित्रकार बोन्ना व बाद में चित्रकार कोमों की चित्रशालाओं में उन्होंने चित्रकला का अध्ययन किया; वहां परम्परागत शैलियों के अध्ययन के साथ लोत्रेक ने अपनी वैयक्तिक शैली का विकास किया ।

केवल 'कला के लिए कला' लोत्रेक का ध्येय नहीं था; वान गो व गोग्वें के समान वे कला को अभिव्यक्ति का माध्यम मानते थे । अन्य कलाकारों से वैयक्तिक संपर्क द्वारा एवं उनकी कृतियों के अध्ययन से उन्होंने बहुत लाभ उठाया; किंतु सभी चित्रकारों में से वे देगा को आदर्श चित्रकार मानते व उनकी कृतियों को सबसे अधिक पसन्द करते । जापानी छापचित्रकला का भी लोत्रेक पर बहुत प्रभाव था । पूर्वगामी चित्रकारों में से गोया व वेलास्के की कृतियां उनको विशेष प्रिय थीं । गोया की कला ने विशेषतः युद्ध के दुष्परिणाम चित्रित करनेवाली 'मैंने यह देखा'[५५] नाम की चित्र-मालिका ने—उनको निरीक्षणपूर्वक, निर्भीक होकर यथार्थ को उसकी सभी कटुताओं के साथ चित्रित करना सिखाया । अँग्र की कला का अभ्यास करके उन्होंने सशक्त व लयबद्ध रेखा से अपनी अभिव्यक्ति को परिणामकारक बनाया । रंगमंच के एवं मोंमार्त्र के निशाचरों के जीवन को चित्रित करने के विचार से उन्होंने देगा की चित्ररचना पद्धति को सुयोग्य माना । आरम्भ में उन्होंने प्रभाववादी अंकनपद्धति व सिद्धांतों का अध्ययन करके देखा कि प्रभाववाद में कुछ ऐसी कमजोरियां हैं कि वह चित्रकार की अभिव्यक्ति का परिणामकारक माध्यम नहीं हो सकता । उसके बाद वे बाह्यरेखा से अंकित आकारों, रंगों के विस्तृत क्षेत्रों व छोटी लकीरों से चंचल पृष्ठभूमि का प्रयोग करके चित्रण करने लगे । अब लोत्रेक की रंगसंगति में नयी चमक आ गयी जिसके विकास में उनके नये मित्र वान गो व एमिल बर्नार के विचारों से भी उनको लाभ हुआ ।

१८८८ से लेकर करीब १० साल तक लोत्रेक की कला उत्कर्ष के परम बिंदु पर थी । १८८६ से उन्होंने 'मुलं रुज' मदिरागृह के अन्तर्दृश्यों के कई चित्र बनाये । पैरिस के कुख्यात वेश्यागृह 'रुए आम्ब्राज' की बैठक को सजाने का काम लोत्रेक को मिला था । इस मौके से लाभ उठाने का उन्होंने निश्चय किया व १८८६ में आरम्भ करके उन्होंने उस वेश्यागृह के काफी तादाद में चित्र बनाये । १८६४ से उन्होंने एक

अन्य वेश्यागृह 'रुए द मुलें' के अन्तर्गत दृश्यों के चित्र बनाये।

लोत्रेक की कला के विकास में उनका १८८८ में बनाया चित्र 'सर्कस फर्नांदो'[56] बड़ा महत्वपूर्ण है। इस चित्र में लोत्रेक की प्रभाववाद से भिन्न निजी शैली पूर्ण विकसित रूप में प्रथम दृष्टिगोचर हो गयी; इस चित्र में यथार्थ दूरदृश्य-लघुता, एवं छाया प्रकाश व वातावरण के प्रभावों की उपेक्षा करके वस्तुओं के आकारों का स्वतन्त्र विचार से अभिव्यक्तिपूर्ण अंकन किया है। दृश्य के सम्पूर्ण प्रभाव से दृश्यांतर्गत वस्तुओं के, कुछ ऐंठन देकर सरलीकृत किये आकारों के, स्पष्ट व भावपूर्ण दर्शन को अधिक महत्व दिया गया है। सौंदर्यात्मक कलासिद्धांतों के पीछे मानवीय सत्य को लोत्रेक ठुकरा नहीं सकते थे; अतः उनके चित्र 'सर्कस फर्नांदो' में विषय-वस्तु का अभिव्यक्तिपूर्ण दर्शन व चित्र के कलात्मक गुणों का विकास इनमें स्पष्ट स्पर्धा है। इस चित्र पर जापानी कला का भी प्रभाव है। जापानी प्रभाव के कारण वे समतल रंगों के क्षेत्रों को बाह्य रेखा से अंकित करते व पृष्ठभूमि के रंगों व वस्तुओं की छटाओं में स्पष्ट विरोध रख के संयोजनपूर्वक चित्रण करते, जिससे उनके चित्र आलंकारिक किंतु अभिव्यक्तिपूर्ण बन जाते।

सामाजिक मान्यता प्राप्त करने के उद्देश्य से लोत्रेक ने मासिक पत्रिकाओं व समाचारपत्रिकाओं के लिए व्यंग्यचित्र बनाये एवं व्यंग्यचित्रकारों की संस्था 'सलों द आर अँकोएरां'[57] की प्रदर्शनियों में चित्रों को प्रदर्शित किया किंतु उनको वहां विशेष सफलता नहीं मिली। १८९१ में उन्होंने 'मुलें रुज' के लिए एक विज्ञापनचित्र बनाया जिससे उनको ख्याति प्राप्त हुई। इतना प्रभावी व क्रांतिकारी विज्ञापन-चित्र पैरिस की दीवारों पर अब तक नहीं लगाया गया था। इस चित्र पर जापानी कला एवं 'आर्नुवो' शैली का प्रभाव था। यह चित्र विज्ञापनकला में लोत्रेक का आरम्भिक चरण था जिसका बाद में उन्होंने काफी विकास किया। उन्होंने कुल लगभग ३० विज्ञापनचित्र बनाये जिनमें 'पैरिस के बगीचे में जान आवरिल'[58] सबसे महत्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट है। इस चित्र में नर्तिका जान आवरिल की पूर्णाकृति के चारों ओर से लेकर एक विशाल वाद्ययन्त्र चित्रित किया है जिसको हाथ में पकड़े हुए वादक का बेतुका अमानवीय चेहरा नीचे के दायें कोने में बनाया है। व्यापारिक उद्देश्य से बनायी गयीं लोत्रेक की कृतियां—विज्ञापनचित्र, लियोग्राफ्स, आवेष्टनचित्र आदि—कलाजगत को महत्वपूर्ण देन है व उससे भविष्य की व्यापारिक कला को विकास की दिशा में गति प्राप्त हुई। लोत्रेक ने विज्ञापनचित्रों के निर्माण में ऐसे सिद्धांतों को सुनिश्चित रूप दिया जो आजकल की विज्ञापनकला के मूल सिद्धांत माने जाते हैं। आरम्भिक क्षणिक-दृष्टि में होनेवाला सम्पूर्ण प्रभाव, अक्षरों का समतलों के साथ सुसंगत प्रयोग एवं परिणामकारक रचना ये इन सिद्धांतों के मूल-तत्व हैं। लोत्रेक के विज्ञापन-चित्रों के सामर्थ्य को देखकर एक समकालीन व्यक्ति ने कहा "लोत्रेक ने रास्तों पर स्वामित्व प्राप्त किया है"[59]। रंगीन लिथोग्राफी की अंकनपद्धतियों में लोत्रेक ने महत्वपूर्ण

आविष्कार किये जिनसे लिथोग्राफी के माध्यम से भी कलाकार अपनी मौलिक प्रतिभा से दर्शकों को परिचित कराने में समर्थ हुआ और लिथोग्राफी को सृजनकलाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। व्यापारिक कला में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त होने से लोत्रेक की चित्रकला के श्रेष्ठत्व में कोई बाधा नहीं आती।

देगा के समान लोत्रेक प्रथम रेखाकार थे और तत्पश्चात् रंगकार। उनके कई चित्र अक्सर तूलिका से बनाये गये रंगीन रेखाचित्र मात्र हैं। देगा के समान वे तूलिका से छोटी-छोटी लकीरें खींच कर पूरे चित्रक्षेत्र को रंगांकित करते जो उनके प्रसिद्ध चित्र 'मुलँ रुज के अन्तर्भाग के दृश्य' (१८९२)[60] में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ऊंचाई से लिया गया दृष्टिकोण, चित्रक्षेत्र की सीमारेखा से कटी हुई अर्धाकृतियां देगा के संयोजन व कूंजीछिद्र दृश्य का स्मरण दिलाते हैं। परिस्थितिवश हो या स्वभाववैचित्र्य के कारण स्वेच्छा से हो, लोत्रेक ने समाज के उपेक्षित व निंद्य वातारण में अधिकतर जीवन बिताया और गोया के समान उस वातावरण को यथार्थ चित्रित करने की चुनौती को स्वीकार कर सफल व परिणामकारक कृतियों का निर्माण किया। लिखना सीखने से पहले ही लोत्रेक ने वस्तुओं को यथार्थ चित्रित करना शुरू किया व अन्त तक चित्रकला ने उनके लिए भाषा का कार्य किया। लोत्रेक ने चित्रकला को अभिव्यक्ति का माध्यम माना न केवल 'स्वान्तः सुखाय कला' अपितु उस माध्यम से अपनी परिचित दुनिया को यथार्थ चित्रित किया; अतः उनके बारे में जुर्दें ने समुचित शब्दों में लिखा है "रेखांकन, यथार्थ रेखांकन यही लोत्रेक की विशेषता थी"[61]।

अपनी शारीरिक दुर्बलता के कारण जिस भोगमय जीवन से वे वंचित रहे उसको कला का विषय बनाकर उन्होंने अपनी मनोवैज्ञानिक पूर्ति की। उनके चित्रों के विषय भी अधिकतर ऐसे क्षेत्र हैं—घुड़सवारी, नृत्य, सर्कस वगैरह जिनमें वे प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकते थे। उनके लिए कला जीवन से परोक्ष रूप से आनन्द प्राप्त करने का साधन थी, न केवल कला के लिये कला। वान गो के समान सांसारिक दुःखों पर प्रकाश डालने का उसमें उद्देश्य नहीं था। समकालीन साहित्यिक मोपासां व त्रिस्तां बर्नार के समान उन्होंने पैरिस के स्वच्छंद जीवन के सत्य रूप को यथार्थ चित्रित किया। आदमी की मूर्खता व जीवन के कटु सत्य को उन्होंने समझा किंतु वाल्तेर की निष्ठा 'अन्त में सब कुछ ठीक होता है' का विश्वास करके सब को प्रसन्नता से स्वीकारा। गोया का ध्येय वाक्य 'मैंने यह देखा' लोत्रेक की कला पर भी नैतिक एवं कलात्मक, दोनों दृष्टिकोणों से पूर्ण लागू होता है। लोत्रेक की मृत्यु के पश्चात् उनके मित्र त्रिस्तां बर्नार ने लिखा "अब हम समझते है कि लोत्रेक की कला हमको इसी वजह से अनैसर्गिक प्रतीत होती थी कि वे वास्तविक सत्य के प्रति अत्यधिक एकनिष्ठ थे....... उनको दूसरों के विचारों से चलना पसन्द नहीं था, न उनके सामने वे कभी झुके"। इस स्वतन्त्रवृत्ति का अर्थ यह नहीं था कि लोत्रेक में भौतिक महत्वाकांक्षा नहीं थी या

व्यावहारिक दृष्टिकोण की कोई कमी थी। अपनी प्रतिभा का वे कभी प्रदर्शन करते तो उसके विपरीत कभी कठोरता से स्वयं को भी अपंग या हास्यास्पद चित्रित करते। अपने पिता के प्रति नितांत आदरभाव रखते हुए भी लोत्रेक ने उनके कुछ व्यंग्यचित्र बनाये। उनकी विनोदवृद्धि के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हो सकता है कि उसके जरिये वे अपनी शारीरिक दुर्बलता को भूल जाते थे। शायद इसी कारण ही वे सर्कस के विदूषकों, नट-नटियों, वेश्याओं वगैरह निम्नस्तर के लोकों की मित्रता पसन्द करते; ऐसे मित्रों के साथ वे अपनी नैसर्गिक कमजोरियों को महसूस नहीं करते व हंसीमजाक में समय बिताते। जीवन के बाह्य दिखावटी रूप के पीछे जो कटु सत्य छिपा है उसकी खोज में उनको सृजन का आनन्द मिलता। उन्होंने इवेत गिल्बेर से कहा था "सब जगह व सदैव कुरूपता का भी ऐसा पक्ष है जो सुन्दर हैं एवं जिसकी खोज में बड़ा आनन्द मिलता है"।[62] वे कहते "यदि मैं चित्रकार नहीं बनता तो मैं शल्यचिकित्सक बनना चाहता"। लोत्रेक ने तात्विक चर्चा करने या निष्कर्ष निकालने की इच्छा नहीं की बल्कि निष्काम कर्मयोगी के समान जीवन के सुखदु:खों को स्वीकार कर यथार्थ चित्रित किया। लोत्रेक में निरर्थक भावुकता या मन की कमजोरी नहीं थी, और यही कारण है कि समान ध्येय से प्रेरित होते हुए व साधनों से सम्पन्न होते हुए लोत्रेक व देगा की कला में भिन्नता है। लोत्रेक किसी भी विषय को लेकर चित्रण कर सकते थे जबकि देगा विषय को चुनने से पहले सोचते थे कि उससे सुन्दर व सन्तोषप्रद कलाकृति के निर्माण की कहां तक शक्यता है। लोत्रेक के लिए कला जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करने का साधन थी जबकि देगा के लिए जीवन के दृश्य कलात्मक सृजन के लिये एक बहानामात्र था। देगा का दृष्टिकोण मुख्यत: कलाकार का था जबकि लोत्रेक का सामाजिक जीवन के निरीक्षक का। लोत्रेक में व अन्य समकालीन चित्रकार माने, मोने, सेजान, बोन्नार वगैरह में यही मुख्य अन्तर था कि ये सभी चित्रकार कलात्मक ध्येय से प्रेरित थे और कलासम्बन्धी निजी धारणाओं का दृढ़ता से पालन करते थे किंतु लौत्रेक का ध्येय था जीवन का दर्शन व यथार्थ चित्रण। अत: स्वतन्त्र अंकनपद्धति का आविष्कार करने की प्रतिभा रखते हुए दूसरों के प्रयोगों से लाभ न उठाने का दुराग्रह उन्होंने नहीं किया।

कला के सृजन में उन्होंने जो अविरत परिश्रम किये व पतित जीवन को प्रत्यक्ष अनुभव किया उसका उनकी शारीरिक व मानसिक शक्ति पर बुरा असर पड़ा। वे दिन भर चित्रण करते, रात को मदिरागृहों व नृत्यगृहों व नाटकगृहों में जाते व अत्यधिक मदिरापान करते। इससे वे बिलकुल कमजोर होगये और १९०१ में आयु के केवल ३७ वें साल में उनका स्वर्गवास हुआ। उनका व्यक्तित्व महान् था; वे सामाजिक निंदा या आलोचना के सामने नहीं झुके। उनकी कलाकृतियां भी महान् है; उनमें हमको समकालीन जीवन का यथार्थ दर्शन मिलता है।

अब तक कुछ अग्रगण्य प्रभाववादी चित्रकारों के कार्य व कला का हमने परि-

शीलन किया। इनके अलावा सोरा, सेजान, वान गो व गोग्वँ ऐसे श्रेष्ठ चित्रकार थे जिन्होंने आरंभ में प्रभाववाद के अध्ययन से अपनी अंकनशैलियों को सामर्थ्यवान् बनाया और तत्पश्चात् कलासंबंधी मौलिक सिद्धांतों को प्रस्थापित करके नयी कला-शैलियों को जन्म देकर आधुनिक कला को नयी दिशाओं में मोड़ दिया। इन चित्र-कारों की कला ने आधुनिक कला के विकास में अपरिमित पथप्रदर्शन किया अतः इनको आधुनिक कला का प्रणेता मानते हैं। इनकी कला का अध्ययन हम स्वतन्त्र अध्याय में करेंगे।

प्रभाववाद को आरंभ से फ्रान्स में कुछ ऐसे अनुयायी मिले जिनकी गणना अच्छे चित्रकारों में की जा सकती है यद्यपि कला के इतिहास में उनका स्थान गौण है। इन चित्रकारों में बुदँ, योंकिड, बाजीय, वर्त मोरिसो व मेरी कॅसाट आते हैं।

प्रभाववाद का जैसे प्रसार होता गया वैसे उसको दूसरे देशों में भी अनुयायी मिले। इनमें से इंग्लेंड में विसलर, सिकर्ट, ओर्पेन व स्टिअर; जर्मनी में माक्स लिब-रमन, लोविस कोरिंट व स्लेवोट एवं अमेरिका में प्रेंडरगास्ट विशेष प्रसिद्ध हुए।

जेम्स मॅक्नील विसलर (१८३४–१९०३) माने के समकालीन थे व उन्होंने माने के साथ 'अस्वीकृत चित्रकारों की प्रदर्शनी' में भाग लिया था। उनके आरंभिक चित्रों पर कुर्बे का प्रभाव था। १८६४ में चित्रित किये गये 'छोटी श्वेत बालिका'[63] में माने–व कुछ 'प्रिराफेलाइट भ्रातृमंडल'[64] के तत्वों—का स्पष्ट अनुसरण है।

विसलर का जन्म अमेरिका में लोवेल शहर में हुआ। सेना की प्रवेश परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने से वे १८५५ में कला के अध्ययन के लिये पैरिस रवाना हुए जहां वे ग्लेमर की चित्रशाला में प्रविष्ट हुए। यहां कुर्बे, माने, जापानी छापाचित्र व प्रभाव-वाद के अध्ययन से उनकी व्यक्तिगत शैली को सुनिर्णीत रूप प्राप्त हुआ। १८५९ में उन्होंने लंदन के चेल्सी विभाग को अपना निवासस्थान बनाया। प्रिराफेलाइट चित्र-कारों से परिचय होने से उनके कुछ तत्वों ने विसलर की कला में प्रवेश किया। विसलर की कला में योजनापूर्ण मनोहर रंगसंगति, आकारों का स्पष्ट सुस्थापन, कुशल संयोजन, आलंकारिकता वगैरह कलात्मक गुणों का विचारपूर्वक विकास किया गया है, अतः हम उनको निष्ठावान प्रभाववादी चित्रकारों में सम्मिलित नहीं कर सकते एवं कला के इतिहास में उनका स्वतन्त्र स्थान है। १८७० के करीब उन्होंने जापानी छापचित्रों का गहरा अभ्यास किया। चित्ररचना की तुलना संगीतरचना के साथ करके उन्होंने टेम्स नदी के 'निशादृश्य'[64] की चित्रमालिका का निर्माण किया जिसमें दृश्य की वास्तविकता की अपेक्षा आकार-रचना व रंगसंगति को बहुत महत्व दिया है। इस मालिका के कारण उनका प्रसिद्ध इंग्लिश समीक्षक जॉन रस्किन से न्यायाल-यीन संघर्ष हुआ जिसमें जीत जाने पर भी उनको बहुत खर्च उठाना पड़ा और परि-णामस्वरूप उनको आर्थिक विपन्नावस्था से सामना करना पड़ा। अब अर्थार्जन के

लिये उनको आलेखनकला का सहारा लेना पड़ा; उनके एंचिग द्वारा बनाये गये वेनिस के दृश्य आलेखनकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं उनके चित्रों में 'माता का व्यक्तिचित्र' एवं टामस कार्लाइल का व्यक्तिचित्र बहुत लोकप्रिय हुए।

विसलर ने योरोपीय आधुनिक चित्रकारों को समतल आलंकारिक आकार, आकर्षक रंगसंगति व उद्देश्यपूर्ण चित्ररचना को प्रमुख स्थान देकर चित्रण करने का संदेश दिया।

वाल्टर सिकर्ट (१६८०-१९४२) ने आरंभ में विसलर के मार्गदर्शन में लंदन में कला का अध्ययन किया। विसलर के साथ उन्होंने एंचिग का कार्य भी किया। लंदन से भी वे कला केन्द्र के रूप में पैरिस की ओर अधिक आकृष्ट हुए जहां उनका १८८३ में देगा से परिचय हुआ। देगा की कला का उन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। देगा के समान वे कट्टर प्रभाववादी कभी नहीं बने; प्रत्यक्ष बाह्य स्थान पर चित्रण करने के बजाय वे स्थान पर जल्द अभ्यासचित्र बनाते और बाद में उसकी सहायता से योजनापूर्वक अंतिम चित्र बनाते। १८८५ से १९०५ तक वे दिएप में रहे जहां से वे बीच-बीच वेनिस जाया करते थे; इस काल के उनके संगीतगृहों के अंतर्भागों व वेनिस व दिएप के शहरी दृश्यों के चित्र प्रसिद्ध हैं। इन चित्रों में कुछ गहरे किंतु सतेज रंगों का प्रभाव व गहरी बाह्यरेखा का प्रयोग है १९०५ में लंदन वापस आकर वे केम्डेन टाउन में रहने लगे। उनके प्रोत्साहन से 'कॅम्डेन टाउन मंडल'[65] नाम से १६ चित्रकारों का मंडल फ्रेंच उत्तरप्रभाववादियों के समान प्रभाववाद से आगे निकल कर आधुनिक कला का विकास करने में प्रयत्नशील हुआ जिनमें गिलमन, स्पेन्सर गोअर, गिन्नर, बेवन, बिडहॅम लेविस प्रमुख थे। 'कॅम्डेन टाउन' काल में सिकर्ट ने शहरी जीवन व गृहांतर्गत भागों के दृश्यों को विशेष रूप से चित्रित किया।

माक्स लिबरमन (१८४७-१९३५) लिबरमन प्रकृतिचित्रण, व्यक्तिचित्रण व कृषक-जीवन-चित्रण के लिये प्रसिद्ध थे। उनका अध्ययन बर्लिन, वैमार व पैरिस में हुआ। १८७३ में वे बार्बिजां गये थे जहां दोबिन्यी व कोरो की कलाकृतियों को देख कर वे प्रकृतिचित्रण की ओर आकृष्ट हुए; मिले व इस्त्राएल्स की कलाकृतियों को देख कर कृषक-जीवन-चित्रण में उनकी रुचि बढ़ गयी। शहर में पैदा होते हुए भी उनको देहाती वातावरण व जीवन प्रिय थे; इसीलिये उन्होंने खुली हवा व सामान्य जनजीवन को अपनी कला का विषय बनाया, जिसका उनका चित्र 'बकरीवाली' सुंदर उदाहरण है। बाद में प्रभाववाद की ओर आकर्षित होकर उन्होंने विशुद्ध रंगांकनपद्धति में प्रकाश व वातावरण के प्रभाव को महत्व देकर चित्रण शुरू किया व वे प्रभाववादी जर्मन चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। वे १८९९ से 'बर्लिन जेचेसिओन के अध्यक्ष रहे व उन्होंने कलाकारों के नवीन वैचारिक आंदोलनों को प्रोत्साहन दिया।

माक्स स्लेवोट (१८६८-१९३२), लिबरमन से २१ साल छोटे थे। उन्होंने कला का अध्ययन म्युनिख व पैरिस में किया व प्रभाववादी शैली के प्रकृतिचित्र,

वस्तुचित्र व व्यक्तिचित्र बनाये। निर्भीक तूलिकासंचालन उनकी कला की विशेषता थी।

लोविस कोरिंट (१८५८–१९२५) की कला में प्रभाववाद के तत्व अधिक अस्पष्ट हैं। विषय के परिणामकारक चित्रण व अभिव्यक्ति पर उन्होंने विशेष बल दिया। कुछ समय तक उन्होंने बायबल व पुराणों से विषयों को चुनकर चित्रण किया। १९११ में गम्भीर बीमारी से मुक्त होने के पश्चात् उनकी कलाकृतियों में अभिव्यंजनावादी झलक प्रतीत होने लगी। वक्रगति स्पष्ट तूलिकासंचालन व गहरे रंगों के प्रयोग से उनके व्यक्तिचित्रों व आत्मचित्रों को आंतरिकता प्राप्त हुई है।

मोरिस प्रेंडरगास्ट (१८६१–१९२४) ने अमेरिकन प्राकृतिक दृश्यों व दैनंदिन जीवन को विशुद्ध रंगों के धब्बों में प्रभाववादी सिद्धांतों का पालन करते हुए चित्रित किया। उन्होंने आरम्भिक शिक्षा बोस्टन में प्राप्त की। किंतु १८८६ में वे पैरिस जाकर 'कला संस्था ज्युलिआं' में भरती हुए। पैरिस में वे प्रभाववाद से आकृष्ट हुए व उन्होंने प्रभाववादी अंकनपद्धति का गहरा अध्ययन किया। न्यूयार्क जाने से पहले वे कुछ समय तक इटाली में रहे। बाद में उनकी शैली पर कुछ उत्तरप्रभाववादी बिंदुवाद का परिणाम दृष्टिगोचर होने लगा।

नवप्रभाववाद

प्रभाववाद ने विषय को गौण स्थान देकर उसका कला-क्षेत्रीय महत्व घटा दिया किंतु इससे प्रभाववाद यथार्थवाद से पूर्ण रूप से पृथक् नहीं हो सकता था। प्रकाश व वातावरण के संपूर्ण प्रभाव को अंकित करने के उद्देश्य में सफल होने के लिये प्रभाववादी चित्रकारों को किसी यथार्थ दृश्य को ही चुनना पड़ता था जिससे यथार्थवाद से मुक्त होकर आधुनिक कला के रूपात्मक विशुद्ध दृष्टिकोण को अपनाने में कलाकार कठिनाई अनुभव कर रहे थे; प्रभाववादी कलाकृतियों में आकारजनित सौंदर्य का विकास या प्रतीति नहीं होती। इसके अतिरिक्त वैयक्तिक भावनाओं या स्वतंत्र कल्पना से कलानिर्मिति करने को प्रभाववाद में स्थान नहीं था जिससे मौलिक सृजन के आनंद से कलाकार वंचित रह जाता। प्रभाववाद की इन त्रुटियों को देख कर जिन चित्रकारों ने नयी दिशा में प्रयोग किये उनमें जार्ज सोरा थे और उन्होंने जिस शैली को जन्म दिया वह 'नवप्रभाववाद' नाम से प्रसिद्ध हुई।

प्रभाववाद से असंतुष्ट होकर रेन्वा ने मनुष्याकृतियों को ठोस रूप में चित्रित करके अपना चित्र 'स्नानमग्ना युवतियां' बनाया एवं लगभग उसी समय जार्ज सोरा ने उसी विषय को लेकर नवप्रभाववाद का प्रथम चित्र 'स्नानस्थल'[1] पूर्ण किया; किंतु दोनों की अंकनपद्धतियों एवं अभिव्यक्ति में पर्याप्त अंतर है। यह चित्र सोरा ने १८८४ की 'सलों द अँदेपांदां'[2] प्रदर्शनी में रखा व उसको देगा, रेन्वा व रेदों ने बहुत पसंद किया। 'सोसिएते द अँदेपांदां'[3] की प्रस्थापना राष्ट्रीय कलासंस्था से अस्वीकृत, नवविचारों के कलाकारों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सोरा, रेदों, सिन्याक वगैरह कलाकारों ने की थी।

विशुद्ध मूल रंगों के अमिश्रित, छोटे धब्बों से रंगांकन यह सोरा की अंकन-पद्धति की विशेषता थी; ये धब्बें नियंत्रणपूर्वक पूरे पट पर एक से लगाये जाते थे। इसके विपरीत प्रभाववादी चित्रकारों का तूलिकासंचालन मुक्त व स्वच्छंद था व उस पर कोई नियंत्रण नहीं होता था न उसमें कोई सुसूत्रता होती थी। प्रभाववादी चित्रों में वस्तुओं व आदमियों की आकृतियां वातावरण में घुलमिल कर अस्पष्ट हो जातीं जबकि सोरा हलके व गहरे रंगों की उचित छटाओं के प्रयोग द्वारा एवं बाह्य रेखा के सरलीकरण से आकृतियों को स्पष्ट व ज्यामितीय रूप देते, व वातावरण से

पृथक् करते। आकृतियों को स्पष्टता मिलने से सोरा के चित्र प्रसंगनिष्ठ बन गये हैं। प्रभाववाद के क्षणिक दृष्टि के सिद्धांत को चित्रण का प्रथम चरण मान कर, सोरा दैनिक जीवन के किसी क्षण को चुनते व आदमियों व वस्तुओं को ठोस रूप में अंकित करके उस क्षण को चित्र द्वारा अमर रूप देते। संक्षेप में, प्रभाववाद में, प्रकाश व वातावरण जैसे चंचल तत्वों का आभास है जबकि नवप्रभाववाद में आदमियों व वस्तुओं के सरलीकृत ठोस आकारों द्वारा जीवन के प्रसंगों का परिणाम-कारक दर्शन है। प्रभाववादी चित्रकार दृश्य में स्वाभाविक आकस्मिकता का परिणाम दिखाने का प्रयत्न करते जबकि सोरा विचारपूर्वक संयोजन करके चित्र-विषय के प्रतिपादन में कोई त्रुटि नहीं होने देते।

सोरा की कला में प्रभाववाद से भिन्न नवीन दृष्टिकोण था जिसको देख कर फेलि फेनिओ ने उनकी कलाशैली को 'नवप्रभाववाद' नाम दिया, इसको 'बिंदुवाद' या 'विभाजनवाद' भी कहते हैं।

१८८४ की 'सलों द अँदेपांदां' प्रदर्शनी में सोरा का पौल सिन्याक से परिचय हुआ व उन्होंने देखा कि दोनों समान ध्येय से प्रेरित थे। तब से दोनों ने मिलकर अपनी ध्येयप्राप्ति के लिये अपरिमित परिश्रम किये और नवप्रभाववाद को सामर्थ्यवान बनाने का श्रेय दोनों को बराबर दिया जाना चाहिये। १८८९ में प्रकाशित सिन्याक की पुस्तक 'दोजने देलाक्रा ओ निओ-इंप्रैशनिजम'[4] में नवप्रभाववाद के सिद्धांतों का विस्तृत विवरण है।

सिन्याक ने लिखा है "पट के सम्मुख, चित्रकार को चाहिये कि वे पहले जिन रेखाओं व समतलों द्वारा रचना करना चाहते हैं उनको निश्चित करें एवं जिन रंगों व छटाओं की योजना करना चाहते हैं उनकी पूर्वकल्पना करें। प्रथम दो छटाओं के बीच के विरोध को निश्चित करके बाद में एक के पश्चात् दूसरी इस तरह अधिक छटाओं का समावेश कर सकते हैं। चित्रकार को रंगों के क्रम व अनुपात का सूक्ष्म निर्णय लेना चाहिये।...रंग, छटा व रेखा का चित्र के इष्ट प्रभाव से समन्वय करना होगा। वर्ण-क्रम की सुसंगति से चित्ररचना करने वाला चित्रकार संगीतकार के समान है; रेखाओं व रंगों द्वारा भावनाओं की पूर्ति करने वाला चित्रकार कवि व निर्माता के समान है"। नवप्रभाववाद की परिभाषा करते हुए सिन्याक ने लिखा "यकायक सोरा को ज्ञात हुआ कि चित्र क्या है—चित्र का अर्थ है लय, संतुलन व विरोध के नियमों का पालन करके की गयी रचना; चित्र निसर्ग का अनुकरणमात्र नहीं है; चित्र श्रेष्ठ श्रेणी का सृजन है जबकि निसर्ग का अनुकरण करके की गयी कृति अवसरवाद मात्र है"।

नवप्रभाववादियों ने विज्ञान पर अत्यधिक बल दिया क्योंकि उनका विश्वास था कि उससे चित्रकला को सरल बनाया जा सकता है। वैज्ञानिक शेवरोल, रूड व मेक्सवेल के प्रकाश व रंगों संबंधी सिद्धांतों व डेविड सटर के 'दृष्टि के चमत्कार' का

अध्ययन कर के नवप्रभाववादियों ने अपनी रंगांकन पद्धति के नियमों को निश्चित किया। शेवरोल के 'मूल व माध्यमिक रंगों का चक्र'[4] व 'सम-यावच्छेदी विरोध का सिद्धांन्त'[5] के अध्ययन से उन्होंने विशुद्ध रंगों के पारस्परिक सुसंगति के नियम बनाये। वैज्ञानिक रूड ने रंगों संबंधी प्रयोग करके सिद्ध किया था कि रंगों के प्रत्यक्ष मिश्रण से नेत्र द्वारा किये गये मिश्रण या 'दृष्टिजन्य मिश्रण'[6] का परिणाम अधिक तीव्र व चमकीला होता है।। इस आविष्कार से नवप्रभाववादियों को नयी प्रेरणा मिली और उन्होंने रंगों के प्रत्यक्ष मिश्रण के स्थान पर भिन्न मूल रंगों के धब्बों को समीप अंकित करके मिश्रित रंग का प्रभाव चित्रित करना शुरू किया। सोरा का वैज्ञानिक हल पर इतना विश्वास था कि वे सोचते थे कि मानवीय भावनाओं को भी विश्लेषण करके गणितीय सूत्रों में बांधा जा सकता है। गोग्यँ ने उपहास में सोरा को नाम दिया था, 'छोटा हरा रसायन-विशारद'[7] व उनकी अंकन-पद्धतिको वे 'रिप्पी पाइंट'[8] कहते। वैज्ञानिक प्रयोगों से यह भी सिद्ध हुआ था कि प्रत्येक रंग समीपवर्ती रंग पर अपने पूरक रंग की झलक डालता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अध्ययन से पहले सोरा ने देलाक्रा की रंगांकन पद्धति व रंगों संबंधी विचारों का गहरा अध्ययन किया था और उनको विश्वास हो गया था कि संगीत की भांति चित्रकला को भी शास्त्रशुद्ध रूप दिया जा सकता है। उनके पत्र में से निम्न उद्धरण उनके विचारों पर प्रकाश डालता है "चित्रकला के तत्वों का सरल वर्गीकरण है–'छटा,रंग व रेखा; इनके समुचित प्रयोग से उत्साहित, शांत या उदासीन भावनाओं को जागृत किया जा सकता है। उतरती रेखाओं, गहरी छटाओं व ठंडे रंगों से उदासीनता का भाव उत्पन्न होता है जबकि चढ़ती रेखाओं, चमकीली छटाओं व उष्ण रंगों से उत्साह का भाव उत्पन्न होता है"।

वस्तु के प्रकाशित हिस्से के रंगों को विश्लेषण से निश्चित करने के बाद नवप्रभाववादी चित्रकार उन रंगों के पूरक रंगों की झलक उचित अनुपात में, छाया के हिस्से में अंकित करते, एवं रंगीन क्षेत्र की सीमा पर उसके पूरक रंग की छटा हलकी बाह्यरेखा की तरह अंकित करते। वे यह भी देखते कि वस्तु के पूरे दृश्य प्रभाव में उसके निजी रंग का क्या अनुपात है। मुक्त तूलिकासंचालन के स्थान पर नवप्रभाववादी चित्रकारों ने विशुद्ध रंगों के एक से बिंदुओं द्वारा रंगांकन आरंभ किया। इस पद्धति में कितनी यांत्रिकता थी इस संबंध की निम्न घटना मनोरंजक है। १८९३ की नवप्रभाववादी चित्रकारों की प्रदर्शनी के समय प्रवेश शुल्क देने से पहले एक महिला ने सोचकर प्रवेशद्वार से अंदर झांका एवं चित्रों को देखकर वहां बैठे हुए चित्रकारों में से एक से पूछा "क्या ये चित्र यंत्र से बनाये गये हैं ?" चित्रकार ने शांति से उत्तर दिया "नहीं बहन जी, ये हाथ से बनाये हैं"।

नवप्रभाववाद के प्रणेता सोरा का जन्म १८५९ में पैरिस में हुआ। उन्होंने कला का अध्ययन वहां के 'एकोल द बोजार' में प्राप्त किया। १८८४ में उन्होंने

अपने सबसे विख्यात चित्र 'ग्रांद जात्त द्वीप में रविवासरीय अपराह्ण'[9] को आरंभ किया व १८८६ में पूर्ण करके 'सलों द अँदेपांदां' में प्रदर्शित किया। इस चित्र के पूर्वाभ्यास के रूप में उन्होंने पेन्सिल व तैलरंगों से लगभग २५० अध्ययन चित्र बनाये। चित्र को देखकर कलासमीक्षक उइमां ने उपहास में लिखा "इस चित्र के ऊपर जो रंगीन मक्खियां बैठी हैं उनको हटा दो और आप देखेंगे कि उनके नीचे कुछ भी नहीं है—न कोई विचार न आत्मा"[10]। कुछ भी हो 'ग्रांद जात्त द्वीप' चित्र में सोरा ने नैसर्गिक जटिल आकार रचना को सरल व ठोस ज्यामितीय रूप देकर गतिमान मानव-समुदाय को स्थायी रूप में अंकित करके एक क्षणजीवी प्रसंग को ऐतिहासिक महत्व प्रदान किया है।

सोरा उन चित्रकारों में से थे जो अपने विचारों के पक्के होते हैं और जिनको अपने नियोजित कार्य के बारे में पूर्ण आत्मविश्वास होता है। उनका दृष्टिकोण आरंभ से ही तर्कशुद्ध था एवं शास्त्रशुद्ध चित्र रचना उनका लक्ष्य था। रेखाओं व समतलों की सुसंगत रचना एवं अवकाश में सुस्थापन करने में उनकी प्रतिभा असाधारण थी यद्यपि अंकनपद्धति के विचार से उनका रंगांकन यंत्रवत् था। आड़े व खड़े समतलों से वे अपने चित्रक्षेत्र को सचेत करते एवं भिन्न मूल रंगों के बिन्दुओं से उसमें चंचलता डालते। आयु के अठारहवें साल में उन्होंने पुसँ, अँग्र, राफेल व हाल्बिन के चित्रों की अनुकृतियां कीं। पुसँ को वे आदर्श चित्रकार मानते थे। चित्रांतर्गत रचनातत्वों का ज्ञान फ्रेंच फांते न ब्लो चित्रकारों से लेकर पुसँ व शार्दे तक सबको था किन्तु उसका इतना पर्याप्त व वैज्ञानिक प्रयोग प्रथम सोरा ने किया व उनके तीस वर्ष पश्चात् मोंदियां व श्लेमर ने। देलाक्रा व प्रभाववाद के अध्ययन से सोरा ने मूल रंगों का प्रयोग शुरू किया व अपनी रचनाओं को चमकीला रूप प्रदान किया।

सोरा के विचार से केवल विशुद्ध रंगों के बिंदुओं में अंकन करने से चित्रकार का कार्यभाग पूरा नहीं होता जब तक आकृतियों में त्रिमिति का आभास उत्पन्न नहीं होता; वे कहते "चित्रण खुदाई के समान है"[11]। अपने चित्रों के वातावरण व प्रकाश को उन्होंने ऐसा सांचे से ढाला है कि उनमें से प्रत्येक वस्तु व मानवाकृति स्वतंत्र व्यक्तित्व के साथ जगमगाहटभरे चंचल वातावरण से परिवेष्टित होकर, दर्शक के सम्मुख खड़ी होती है एवं दर्शक एक अनोखे काव्यमय दृश्य को अनुभव कर लेता है। प्रभाववाद के क्षणिक दृष्टि के सिद्धान्त पर निर्भर रह कर सोरा अपने त्रिमिति दर्शन के ध्येय में सफल नहीं हो सकते थे; उसके लिये उनको शास्त्रीयतावाद के रंगों की छटाओं एवं विरोधों के सिद्धान्तों का सहारा लेना पड़ा और शास्त्रोक्त ढंग से खड़ी व आड़ी रेखाओं का समन्वय व सरलीकृत रेखाओं का प्रयोग करना पड़ा। सोरा केवल रंगसंबंधी संशोधन से संतुष्ट होते तो वे प्रभाववाद से आगे नहीं बढ़ते। वे सौंदर्यगुणों की एकात्मता के रहस्य को जानना चाहते थे। वे कहते 'यदि

में रंगों के विज्ञान का कलात्मक उपयोग कर सकता हूं तो क्या मैं उसी प्रकार रेखाओं की सहायता से तर्कशुद्ध व वैज्ञानिक चित्ररचना नहीं कर सकूंगा ?"। १८८६ में उनका विद्वान अभ्यासक हेनरी जेम्स से परिचय हुआ जिनसे इस समस्या का हल करने में उनको काफी सहायता मिली।

सोरा की कला की तुलना दक्ष गृहिणी के गृहकार्य से की जा सकती है; ऐसी गृहिणी, एकचित्त होकर, घर की सब वस्तुओं को उचित स्थान पर सुव्यवस्थित रचाती है व इस रचना में किंचिदपि परिवर्तन नजर आते ही बेचैन हो जाती है। इतना वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना कर, सुव्यवस्थित नियमबद्ध कलानिर्मिति करने वाला कोई चित्रकार सोरा से पहले नहीं हुआ। किन्तु सोरा की शैली में एक धोखा है कि जिस चित्रकार में स्वाभाविक संवेदनशीलत्व का अभाव है उसकी कला, सोरा के अनुकरण से, यांत्रिक व निर्जीव मात्र बनेगी।

सूत्ररूप में, सोरा की शैली के तीन प्रमुख पहलू हैं : पहला, नैसर्गिक आकारों का सरलीकृत, ज्यामितीय, ठोस रूप में परिवर्तन और उसके लिये पृष्ठभूमि एवं वस्तुओं के आकारों में हलके व गहरे रंगों का विरोधयुक्त प्रयोग; दूसरा, भिन्न आकारों का एकदूसरे से सुसंगत समन्वय व अवकाश में सुस्थापन के उद्देश्य से संयोजन; तीसरा, नवप्रभाववादियों के रंगसंबंधी सिद्धांतों के अनुसार मूल रंगों का समाकार बिंदुओं में रंगांकन। चित्र संयोजन के विचार से, सोरा की कला पर पुसँ व जापानी कला का द्विविध प्रभाव है।

समाकार बिंदुओं में रंगांकन करना दीर्घ समय व कड़े परिश्रम का कार्य था। सोरा प्रथम विश्लेषण करके आवश्यक रंगों को निश्चित करते व उसके पश्चात् दृश्य के इष्ट प्रभाव का निर्माण करने के उद्देश्य से प्रत्येक रंग का अनुपात निकाल लेते। निकट से उनके चित्र पदार्थ के रंगीन कणों का चंचल समूह जैसे दिखायी देते हैं किंतु दूर से देखने पर उसी धूसर वातावरण से मूर्तियों के समान घनरूप मानवाकृतियां व ठोस जड़ वस्तुएं उभर आती हैं। सोरा की मानवाकृतियां ऐसी प्रतीत होती हैं जैसी कि कलों से चलनेवाली कठपुतलियां किन्तु इससे सोरा की कृतियों का आकर्षण कम नहीं होता क्योंकि वास्तवसृष्टि से प्रेरणा लेकर बनायी गयीं इन कृतियों का उद्देश्य यथार्थवादी नहीं है न उस दृष्टिकोण से इनका रसग्रहण होना चाहिये। यहां हम आकारों की निराली स्वप्निल दुनिया में प्रवेश पाते हैं और यह सोचकर जो दर्शक इन चित्रों को देखता है वह इनके सौंदर्य को पहचान सकता है; यहां वास्तविक दृश्य की चंचलता को चित्रकार की अमर कल्पना में परिवर्तित किया है। सोरा की कला ने आधुनिक चित्रकारों के सम्मुख इस विचार को प्रस्तुत किया कि सृजनात्मक कला में प्रकृति के अस्थायी तत्वों की अपेक्षा आकार, रचना व चित्रकार की मौलिक कल्पना अधिक महत्व रखते हैं एवं इनके विकास में ही कलाकृति की महत्ता है। सोरा ने सिद्ध किया कि चित्रकार को स्वतंत्र विचार से एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण को

अपना कर कलानिर्मिति करनी चाहिये। सोरा की मृत्यु के पश्चात् पिसारो ने अपने पुत्र को लिखा "तुम जो कहते हो वह सही है; बिंदुवाद का अब अंत हो गया है; किन्तु उसके ऐसे परिणाम हुए हैं जो भविष्य में कलाक्षेत्र में महत्वपूर्ण माने जायेंगे सोरा ने जरूर महत्वपूर्ण कार्य किया है"। पिसारो की यह भविष्यवाणी सत्य हुई; आधुनिक कला में आकार, रचना व शास्त्रशुद्धता का महत्व बढ़ता गया और आधुनिक कलाकार प्रयोगवादी एवं सृजनशील बन गया।

सोरा के कार्यकक्ष को कार्यकक्ष की अपेक्षा प्रयोगशाला कहना समुचित होगा। अंकनपद्धति की वैज्ञानिकता पर अत्यधिक बल देने के कारण कुछ कलामर्मज्ञों ने सोरा की निंदा की है। किंतु सोरा को केवल एक नयी अंकनपद्धति का आविष्कारक मानना उनके प्रति अन्याय होगा; मौलिक प्रतिभा द्वारा उन्होंने अपनी कृतियों को उच्चकोटि के कलात्मक गुणों से संपन्न किया है।

ब्रुसेल्स में आयोजित नव कलाकारों की प्रदर्शनी 'ल वँ' में सोरा ने, पिसारो व सिन्याक के साथ, अपनी कृतियों को प्रदर्शित करके काफी ख्याति प्राप्त की। १८९१ में उनकी अल्पायु में मृत्यु हुई जिसका अविरत परिश्रम एक मुख्य कारण था। सोरा ने अपनी आयु में केवल ६ बड़े चित्र पूर्ण किये यद्यपि उन्होंने काफी तादाद में अभ्यासचित्र, सागरी दृश्यों के चित्र व रेखाचित्र बनाये। 'सर्कस', 'शृंगार', 'मंचनृत्य' व 'भिन्न मुद्राएं'[12] उनके बड़े चित्रों में से हैं। 'शृंगार' यह उनका चित्रित किया हुआ एक ही व्यक्तिचित्र है; यह चित्र मादलेन नॉब्लाश नाम की महिला का है जो उनके साथ पत्नी के रूप में रही।

नवप्रभाववाद को बहुत अनुयायी मिले। सोरा के बाद सिन्याक (१८६३–१९३५) ने प्रभाववाद का नेतृत्व किया व वे उसके सबसे मेहनती सदस्य थे। १९०८ से २६ साल तक सिन्याक 'सोसिएते द अँदेपांदां' के अध्यक्ष थे। सिन्याक की अंकन-पद्धति सोरा से अधिक स्वच्छंद व मुक्त थी। सोरा की भांति वे नियमों का सम्पूर्ण दासत्व नहीं करते, समाकार बिंदुओं के स्थान पर कुछ मोटी लकीरों का भी प्रयोग करते।

अन्य नवप्रभाववादी चित्रकारों में से आंरी एद्मों क्रॉस व माक्सिमिलिआं ल्युस अधिक प्रसिद्ध थे। कुछ समय तक पिसारो नवप्रभाववाद की ओर आकृष्ट हुए थे। किंतु उससे असंतुष्ट होकर वे फिर प्रभाववादी चित्रण करने लगे। वान गो भी सोरा की अंकनपद्धति से प्रभावित हुए थे किंतु वे केवल अंकनपद्धति के सामर्थ्य से कला की महानता को आजमाने के विरोधी थे और उन्होंने लिखा था "बिंदुवाद एक आश्चर्यजनक आविष्कार है; किंतु न बिंदुवादी अंकनपद्धति या न दूसरी कोई अंकनपद्धति कला की सभी समस्याओं को हल करने में समर्थ है"। और यही हुआ नवप्रभाववादी अंकनपद्धति को २० वीं सदी के चित्रकार भूल गये किंतु सोरा के निर्दिष्ट मार्ग से वे आकारों की भाषा का विकास करने में प्रयोगशील हुए।

सोरा व उनके अनुयायियों का प्रभाववाद को स्थायी व संगीत के समान शास्त्रोक्त रूप देने का उद्देश्य था। आरंभिक प्रयत्नों के बाद उनकी कला को नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ; उनके चित्रित किये गये नैसर्गिक वस्तुओं के आकारों को वस्तु-निरपेक्ष सदृश रूप प्राप्त हुआ एवं उनमें नैसर्गिकता नाममात्र रही। वस्तुनिरपेक्षता का कला में प्रवेश होते ही स्थायित्व, संतुलन, अपरिवर्तनशीलत्व, संकोच, प्रसरण, तनाव, दबाव वगैरह आकारसंबंधी गुणों का महत्व कला में बढ़ता गया। इस प्रकार बिंदुवाद से नयी शास्त्रप्रिय कलाशैलियों को विकास की दिशा में गति प्राप्त हुई। चित्रकला को विशुद्ध व वस्तुनिरपेक्ष रूप प्राप्त कराने की दिशा में नवप्रभाववाद एक महत्वपूर्ण चरण सिद्ध हुआ। १९ वीं सदी के अन्त में बिंदुवाद एवं प्रतीकवाद ने आधुनिक चित्रकला के पथप्रदर्शन में परिणामकारक योगदान किया—बिंदुवाद ने आकार की ओर व प्रतीकवाद ने आत्मा की ओर। एक समकालीन व्यंगचित्र में आत्मा का चित्रण करनेवाले चित्रकार को पट पर प्रतीकों व बिंदुओं को अंकित करते हुए दिखाया था। सोरा के सिद्धांतों से फाववाद, भविष्यवाद, स्टाइल कलाकार, बौहौस के कलाकार एवं चित्रकार मोंद्रियां व श्लेमर को बहुत मार्गदर्शन हुआ; रंगों, समतलों व अवकाश के गतिविज्ञान को पूर्वसामग्री प्राप्त हुई।

उत्तरप्रभाववादी चित्रकार

प्रभाववाद का जन्म ऐसे समय हुआ जब विज्ञानयुग का आरम्भ हो गया था और मानव की वैज्ञानिक प्रगति को देखकर कलाकार, साहित्यिक व समाजधुरीण भूतल को नंदनवन बनाने का स्वप्न देख रहे थे। किंतु वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ आंतरिक अतृप्ति बढ़ती गयी व १९वीं सदी के अन्त तक कुछ विचारकों को संदेह होने लगा कि विज्ञान की सुखसुविधाओं के बदले में मानवतावादी व आत्मिक मूल्यों का बलिदान करना पड़ रहा है। इस वैचारिक अस्थिरता के वातावरण का समकालीन साहित्य व कला पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। प्रभाववाद के उत्तरकाल में चित्रकारों ने बाह्य दृश्य जगत से अपनी दृष्टि को हटाया व अंतर्मुख होकर आंतरिक दुनिया में सत्य व शांति की खोज की। गोग्वँ ने अपनी कल्पनासृष्टि को साकार करने के प्रयत्नों में अपरिमित संघर्षों को उठाकर सर्वस्व को बलिदान किया; आंतरिक अनुभूति की तीव्रता को कला में अभिव्यक्त करने के प्रयत्नों में वान गो मानसिक संतुलन खो बैठे; सेजान ने एकांत में जाकर वस्तु के आकार सौंदर्य के रहस्यों को ज्ञात करने के अथक प्रयत्न किये। इस प्रकार बीसवीं सदी की कला का उद्गम परस्पर-विरोधी आत्यंतिक विचारप्रवाहों में हुआ। परस्परविरोधी होते हुए ये विचारप्रवाह एक-दूसरे का सामर्थ्य बढ़ाने में सहायक हुए और ऐसे भिन्न प्रवाहों से बीसवीं शताब्दी का विराट रूप बना जिसमें हम 'विविधता में एकता' के सत्य का सौंदर्यात्मक दर्शन पाते हैं।

प्रभाववादी चित्रकारों ने त्याग व परिश्रम से अपने कला-विषयक सिद्धांतों को प्रस्थापित किया। उनकी कलाकृतियां बिकने लगीं एवं प्रभाववाद का विदेशों में प्रसार होकर उसको अनुयायी मिले। किंतु जब एकतरफ प्रभार्ववाद का प्रसार हो रहा था, दूसरी तरफ कुछ चित्रकार उससे असन्तुष्ट होकर अभिव्यक्ति की नयी शैलियों की खोज में लगे थे। वे चित्रकार थे सोरा, सेजान, वान गो व गोग्वँ जिनको कला के इतिहास में 'उत्तरप्रभाववादी' नाम से वर्गीकृत किया गया है। 'उत्तरप्रभाववाद' किसी कला-विषयक वाद का नाम नहीं है न उत्तरप्रभाववादी चित्रकार किसी समान ध्येय से से प्रेरित थे। उनमें एक ही समानता थी कि वे सब प्रभाववाद से असन्तुष्ट थे। प्रभाववाद के उत्तरकाल में उन्होंने वैयक्तिक विचारों के अनुसार कला को नये मोड़

दिये जिस कारण वे 'उत्तरप्रभाववादी' कहलाये। उनमें से सोरा 'नवप्रभाववाद' के प्रणेता थे और उनकी कला का हम पहले ही विचार कर चुके हैं। सेजान की कला-शैली किसी विशिष्ट नाम से प्रसिद्ध नहीं है, किंतु उसमें आकार व रचना पर बल देकर चित्रण किया है एवं उससे प्रेरणा पाकर आधुनिक कला में प्रथम घनवाद व उसके पश्चात् कई ऐसे वादों का जन्म हुआ जिनमें केवल कला के मूलाधार सृजनतत्वों का विचार करके वस्तुनिरपेक्ष या सरलीकृत आकारों द्वारा भिन्न माध्यमों में विशुद्ध सौंदर्यात्मक कलाकृतियों का निर्माण होने लगा। वान गो की कला से अभिव्यंजनावाद को व गोगँ की कला से फाववाद को प्रेरणा मिली; केवल विशुद्ध सौंदर्य की अपेक्षा आत्मिक अभिव्यक्ति को अधिक महत्त्व देकर चित्रकार विषयवस्तुजनित भावनाओं के अनुसार, विषयवस्तु के रूप को विकृति देकर, भावनाओं की पोषक रंगसंगति व अंकन-पद्धति की सहायता से, अपनी आंतरिक अनुभूति का चित्ररूप दर्शन कराने लगा। इस प्रकार इन चारों चित्रकारों से प्रेरणा पाकर आधुनिक कला दो प्रमुख व स्पष्ट रूप से भिन्न प्रवाहों में तेजी से अग्रसर हो गयी। आधुनिक चित्रकला की कई शाखाएं व उपशाखायें हैं किंतु यदि हम सूक्ष्म भेदों की उपेक्षा करके विचार करेंगे तो हमें मुख्यत: दो आत्यंतिक दृष्टिकोणों का ज्ञान होगा। कुछ आधुनिक कलाकारों के दृष्टिकोण में कला भावनाओं एवं आंतरिक जीवन की अभिव्यक्ति का साधनमात्र है तो कुछ आधुनिक कलाकारों की धारणा है कि विशुद्ध, निरपेक्ष सौंदर्य का शास्त्रशुद्ध निर्माण यही कला का एकमेव लक्ष्य है और इसके अतिरिक्त कला में कोई मानवीय विचार नहीं होना चाहिये। किंतु दोनों दृष्टिकोणों के कलाकार एक विचार में सहमत हैं कि सृजनात्मक कला विषयवस्तु के दृश्य रूप की प्रतिकृति मात्र नहीं होती; कला केवल वस्तुनिष्ठ नहीं है; कलाकृति कलाकार के सृजनशील व्यक्तित्व का दर्पण है।

उत्तरप्रभाववादी चित्रकार प्रभाववाद से इसी कारण असंतुष्ट थे कि उसमें वास्तवसृष्टि के बाह्य सौंदर्य के चित्रण के अतिरिक्त मौलिक सृजन का आनन्द नहीं मिलता, न वे उसके द्वारा अपनी वैयक्तिक भावनाओं की पूर्ति कर सकते। प्रकाश-विज्ञान व नेत्रविज्ञान के नियमों पर निर्भर रह कर बनायी गयीं कृतियां एकसी बनना संभव था और ऐसी कृतियों द्वारा अपने सृजनशील व्यक्तित्व का प्रदर्शन करके अहंकार को तृप्त करने का कलाकार को अवसर नहीं मिलता। प्रभाववादी चित्रों में प्रकाश की जगमगाहट व वातावरण की चंचलता में चित्रित वस्तुएं अस्पष्ट व निर्जीव दिखाई पड़तीं।

आरम्भ में, उत्तरप्रभाववादी चित्रकारों ने परिश्रमपूर्वक अध्ययन करके प्रभाव-वादी अंकनपद्धति पर प्रभुत्व प्राप्त किया। इस अध्ययन से उनको बहुत लाभ हुआ; प्रयोगवादी दृष्टिकोण व कलाकार के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के महत्व का उनको ज्ञान हुआ, उनमें झुंझारवृत्ति आ गयी व स्वानुभूति के मार्गदर्शन में निर्भीक होकर वे कला का निर्माण करने लगे। प्रभाववादी अंकनपद्धति के विशुद्ध रंगों का प्रयोग, स्पष्ट-तूलिका-

संचालन व अपरोक्ष रंगांकन ये तत्व उत्तरप्रभाववादियों की अंकनपद्धति के भी मूलाधार रहे। संक्षेप में प्रभाववाद एवं उत्तरप्रभाववाद में मुख्य अन्तर यह था कि प्रभाववाद की प्रधान प्रेरणा दृश्यजगत् का ऐंद्रिक अनुभव था जबकि उत्तरप्रभाववाद की प्रमुख प्रेरणाएं आंतरिक भावना व तर्कशुद्ध विश्लेषण थीं।

पोल सेजान (१८३९-१९०६)

भौतिक सृष्टि की हर वस्तु के आकारसौंदर्य व आकारजनित सौंदर्य के आंतरिक स्थायी तत्वों का दर्शन कराने में सेजान की कला को जो सफलता मिली वह सोरा की कला को नहीं मिली। सोरा की कृतियों के आकारसौंदर्य के पीछे कठोर नियमबद्धता है जबकि सेजान की कृतियों में सहजज्ञान से समस्या को हल करने का सामर्थ्य है। सेजान की चित्रित वस्तुओं व मानवाकृतियों में ज्यामितीयता होते हुए वे स्वाभाविक दिखाई देती हैं; वे सोरा की चित्रांतर्गत आकृतियों के समान कठपुतलियां जैसी कृत्रिम प्रतीत नहीं होतीं। आधुनिक चित्रकारों में से सेजान की महानता इसमें है कि उन्होंने सर्वप्रथम नैसर्गिक आकारों के यथार्थ व सम्पूर्ण दृष्टिज्ञान के पीछे जो तर्कशुद्धता है उसका अविरत परिश्रम व निश्चय के साथ आविष्कार किया। सोरा की कृतियों को देखकर हम आकारों की सुन्दर परन्तु चित्रकारनिर्मित काल्पनिक दुनिया में प्रवेश पाते हैं; सेजान की कला से हम नैसर्गिक आकारों के सौंदर्य से परिचित होते हैं। इन रहस्यों को हम वस्तु को केवल आंखों से देखकर नहीं जान सकते। उसके लिए सौंदर्यप्रेम व संवेदनाक्षमता के अतिरिक्त तर्कशुद्ध दृष्टिकोण एवं सहजज्ञान की भी आवश्यकता है। सेजान की कला में पाये जानेवाले रूपांतरित आकार को रोजरफ्राय ने 'लचीला आकार'[1] नाम दिया है। अन्य उत्तरप्रभाववादी चित्रकारों की अपेक्षा सेजान का बीसवीं सदी की कला पर अधिक क्रांतिकारी प्रभाव पड़ा। अतः उनको 'आधुनिक कला के जन्मदाता'[2] मानते हैं। उनकी कला में आकारसौंदर्य पर बल दिया है।

सेजान के लिए, रंग आकारों को सामर्थ्य देने का साधन था और उनका विश्वास था कि आकारों को स्पष्टता देने का कार्य रेखा की अपेक्षा रंगों से अधिक सफलता से किया जा सकता है। वे कहते थे "रेखा व रंग भिन्न नहीं हैं...जब रंग सबसे योग्य होता है आकार भी सबसे उत्कृष्ट होता है"। कुछ समय तक उन्होंने प्रभाववादी अंकनपद्धति का प्रयोग किया किंतु बाद में उन्होंने उसके रेखात्मक व वातावरणीय दूरदृश्यलघुता का पालन करना पूर्णरूप से छोड़ दिया। सेजान को नवप्रभाववादी पद्धति के अनुसार बिंदुओं या त्रुटित रेखाओं में रंगांकन करना पसन्द नहीं था। सेजान के आरम्भ के चित्रों की रंगांकन पद्धति स्वच्छंद व रोमांसवादी है व उनमें गहरे रंगों का अत्यधिक प्रयोग है जिसके 'आशिय एम्परेर का व्यक्तिचित्र' व 'काली घड़ी'[3] उदाहरण हैं; उसके बाद कुछ साल तक प्रभाववादी अंकनपद्धति से कार्य

करके फिर अपनी व्यक्तिगत शैली का उन्होंने विकास किया जो बहुत ही क्रमबद्ध व सुसूत्र था। जिन्होंने उनको काम करते हुए देखा है उनके कहे अनुसार, कईबार, सेजान एक लकीर खींच कर दूसरी लकीर खींचने से पहले २०-२५ मिनट तक चित्र को गौर से देखते रहते। कुछ चित्र उन्होंने महीनों तक अविरत परिश्रम करके बनाये हैं। सेजान भी कहते कि अधिक समय तक गौर से देखने से उनकी आंखें खिंचने लगतीं जैसे कि उनसे खून बह रहा है।

जैसे कि कोई जुलाहा कपड़ा बुनता है उसी प्रकार सेजान आड़े व खड़े समतलों में चित्रण करते। उनकी इस चित्रणपद्धति का परिशीलन उनके 'मों सेंत विक्त्वार'[4] के पहाड़ों के दृश्य-चित्रों से बहुत सरलता से किया जा सकता है। इन चित्रों से ऐसा लगता है कि चित्रकार ने रंगविरंगी पट्टियों को एकदूसरे के समीप रखके पच्चीकारी के समान चित्र रचना की है।

घनरूप वस्तु को पट की समतल पृष्ठभूमि पर चित्रित करने में क्या विसंगति है इसको सेजान ने प्रथम अनुभव किया। उन्होंने देखा कि ज्यामितीय दूरदृश्यलघुता के नियमों का पालन करके वस्तु का किसी विशिष्ट दृष्टिकोण से प्रतिरूप बनाया जा सकता है किन्तु उससे वस्तु की आकारविशेषताओं का परिचय या साक्षात्कार नहीं होता। अब वे सोचने लगे कि पट की द्विमिति के बंधन में रह कर कैसे चित्रण किया जाये जिससे कि वस्तु के संपूर्ण आकार का सत्य ज्ञान केवल चित्र को देखने से ही हो सके। सेजान ने वस्तु की स्वाभाविक आकारविशेषताओं की रक्षा करते हुए उसको लचीलापन देकर चित्रित करने का निश्चय किया। उन्होंने देखा कि छाया-प्रकाश की अपेक्षा, वस्तु की बाह्य सतह की वक्रता का विचार करके रंगों की हलकी व गहरी छटाओं को चुन कर, वक्रता की अनुकूल दिशा में तूलिका से रंगों को थपथपाया जाये तो वस्तु के स्वाभाविक घनत्व का परिणाम दिखाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा था "मेरे लिये रंग ही आकार हैं—[यानी आकार निर्माण का कार्य करते हैं]"।[5] उनको ज्ञात हुआ कि इसके लिये प्रथम वस्तु के सरलीकृत आकार का ज्यामितीय प्रतिरूप देखना चाहियें। वस्तु के आकार को ज्यामितीय रूप देने की आवश्यकता को समझाते हुए उन्होंने एमिल वर्नार को उपदेश दिया था "निसर्ग को वृत्तचिति गोल व शंकु द्वारा प्रतिरूप दो"[6] इस प्रकार तर्कनिष्ठ होकर उन्होंने मनुष्याकृतियों, वृक्षों, फलों व अन्य वस्तुओं को ज्यामितीय सरल रूप देकर अपनी अंकनपद्धति द्वारा घनत्व प्रदान किया व अपने लक्ष्य को प्राप्त किया; उनके शब्दों में उनका लक्ष्य था "........प्रभाववाद को संग्रहालयीन कलाकृतियों के समान ठोस न शाश्वत रूप देना"। सेजान की प्रत्येक कलाकृति का छोटे से छोटा टुकड़ा उनके विचारपूर्वक किये रंगांकन से सचेत है एवं उससे सेजान की असाधारण परिश्रमवृत्ति, सृजनशक्ति व तर्कबुद्धि का प्रमाण मिलता है। जैसे कोई मूर्तिकार छेनी से काट कर पत्थर की प्रतिमा बनाता है उसी प्रकार सेजान तूलिका के नियंत्रित चलनों से, रंगों

की छटाओं में परिवर्तन करते हुए, एकाग्रचित्त होकर, वस्तु को ठोस रूप में चित्रित करते। उनके चित्रों में मूर्तियों के समान ठोसपन है उसका यही कारण हैं। किंतु वे स्वयं अपने चित्रों से कभी पूर्ण संतुष्ट नहीं हुए। वे कहते "मेरे मस्तिष्क में जो प्रतिमाएं उभरती हैं वैसी पट पर उतारना असंभव है"। कई वार निराश होकर के वे अपने चित्रों को नष्ट कर देते या वाहर खेत या कार्यस्थल पर ही छोड़ आते। परन्तु अंत तक उन्होंने चित्रण करना नहीं छोड़ा एवं अपनी कल्पना को साकार करने में लगे रहे, यद्यपि उम्र के ५० वें साल तक उनको मान्यता या आर्थिक सफलता नहीं मिली।

वर्नर हाप्टमन ने सेजान की कला के बारे में लिखा है "वान गो के समान सेजान वस्तुओं के साथ भावनात्मक तादात्म्य नहीं रखते; वे केवल रचना पर ध्यान केंद्रित करते व उनके रचनात्मक सृजन में वस्तु का उपयुक्ततावादी भाव नष्ट होकर उसको निरपेक्ष मूर्तभाव प्राप्त होता; सेजान के चित्रों की वस्तुएं नैसर्गिक की अपेक्षा ज्यामितीय आकारों से आकर्षक हैं"। सेजान ने स्वयं कहा था ""जैसे देखा जाये तो चित्र में रंगों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है; कहानी, मनोविज्ञान""ये सव वाद के विचार हैं"[7]। चार्लस होम्स ने लिखा है "सेजान के चित्रों में टेढ़े-मेढे मेजपोश को भी पहाड़ की भव्यता प्राप्त होती है"। आधुनिक चित्रकला के लिये सेजान की कला के महत्व को देखते हुए सेजान के निम्न विचारों का अध्ययन उद्वोधक है; सेजान कहते "रेखांकन व घनत्व दर्शन कोई पृथक् पद्धतियां नहीं हैं।''''''''रेखांकन व घनत्वदर्शन का रहस्य है—छाया व प्रकाश का विरोध व समन्वय"। "रेखांकन व रंगांकन भिन्न नहीं हैं। जैसे आप रंग लगाते जाते हैं वैसे रेखा वनती जाती है"। "रंगों की सहायता से समतलों को निश्चित करके उनको एकदूसरे में भिन्न छटाओं से गूंथनां पड़ता है"। इस पद्धति का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने गास्के के सामने अपने दोनों हाथों की उंगलियों को आपस में फंसा दिया और कहा "इस तरह मुझे चित्रण करना पड़ता है। इसमें जरासी भी ढील नहीं होनी चाहिये—न कोई जरासी ऊपर न कोई जरासी नीचे—एक भी धागा ढीला नहीं होना चाहिये"।

सूक्ष्म विचिकित्सावृत्ति के कारण सेजान आसानी से संतुष्ट नहीं होते व व्यक्ति चित्रण के समय सामने वैठे हुए व्यक्ति को निर्जीव वस्तु के समान निश्चल वैठने को कहते। अपनी शांत स्वभाव की पत्नी के उन्होंने वहुत व्यक्तिचित्र वनाये; पत्नी को वे कहा करते "सेव की तरह स्थिर वैठो। क्या सेव इधरउधर हिलता है?"। चित्रविक्रेता वोलार को अपने व्यक्तिचित्र के लिये सौ से भी अधिक वार वैठना पड़ा। इतने परिश्रम करके वनाये व्यक्तिचित्र से सेजान संतुष्ट नहीं हुए; उन्होंने इतना ही कहा "शर्ट की कालर कुछ ठीक वनी है" व चित्र को अधूरा ही छोड़ा।

दुराराध्य स्वभाव के कारण सेजान ने वाद में व्यक्तिचित्रण की जगह वस्तु-चित्रण पर ध्यान केंद्रित किया। अचल वस्तुएं न कभी थकतीं, न हलचल करतीं, न

अपनी बातों से चित्रकार की एकाग्रता में बाधा डालतीं एवं सेजान अपनी आकार संबंधी समस्याओं का तूलिका द्वारा हल करने में एकाग्रचित्त हो कर लगे रहते। वस्तुचित्रण की प्रेरणा उनको प्रख्यात वस्तुचित्रकार शार्दे से मिली; किंतु शार्दे के वस्तुचित्र पूर्णतया नैसर्गिकतावादी हैं जबकि सेजान के वस्तुचित्रण का लक्ष्य उनके शब्दों में था, "मुझे निसर्ग की प्रतिकृति करना नहीं है, मुझे उसका पुनर्निर्माण करना है"[8]। उनके शब्दों में कला की परिभाषा थी, "निसर्ग के सम्पर्क में प्राप्त किया ज्ञान व उसका प्रात्यक्षिक प्रयोग"[9] उनकी मान्यता थी कि प्रकृति के आंतरिक रहस्यों की सौंदर्यानुभूति किये बिना चित्रकार की आत्मा उसकी कला में नहीं बोल सकती। वे कहते "प्रकृति के बिना कला का विकास नहीं हो सकता; प्रकृति के संपर्क से ही आंखें संवेदनाशील होती हैं"। सेजान ने कला के बाह्य विरोधाभास के अंतर्गत सत्य रूप को पहचाना कि ऐंद्रिक ज्ञान व बौद्धिक विश्लेषण इन दोनों के सहयोग से ही श्रेष्ठ कलानिर्मिति हो सकती है। उन्होंने कहा था "चित्रण के लिये आंख व मस्तिष्क दोनों आवश्यक हैं; एक से दूसरे को बल मिलना चाहिये; निसर्ग के निरीक्षण से आंख का सामर्थ्य बढ़ना चाहिये, मस्तिष्क का तर्क व कलात्मक अनुभूति की सुरचना से"।

आलंकारिकता के दोष से बचने के लिये, सेजान वस्तु को चारों ओर से बाह्य रेखा से अंकित करना टालते व कुछ जगह आवश्यक बलरेखाएं खींचकर हलकी या गहरी छटाओं से आकार को स्पष्ट करते।

सेजान ने ज्यामितीय दूरदृश्यलघुता के नियमों में ऐसे परिवर्तन किये कि दर्शक की निगाह अग्रभूमि से पृष्ठभूमि की ओर फिसलने के बजाय पृष्ठभूमि से आकर अग्रभूमि में केन्द्रित हो जाती जहां वे सबसे तेज रंगों का प्रयोग करके प्रमुख आकारों को स्थापित करते। वस्तु के स्वाभाविक आकार का परिचय कराने व त्रिमिति के आभास को परिणामकारक बनाने के उद्देश्य से वे पड़े समतलों को उठा कर अंकित करते; जैसे कि वे सीधे रास्ते की दोनों भुजाओं को कुछ समानांतर व लंबाई बढ़ाकर अंकित करते एवं मर्तबान के मुख को कुछ वृत्ताकार बनाते जिससे अग्रसर झुकाव मिलकर उनकी आकार विशेषताएं स्पष्ट हो जातीं।

सेजान की कला में निरीक्षण व बौद्धिक विश्लेषण का सफल समन्वय होने से दर्शक दृश्य प्रभाव व रूपतत्व दोनों को उतनी ही तीव्रता से अनुभव कर लेता है। सेजान की कला में वस्तु के नैसर्गिक आकर्षण व विशुद्ध आकार सौंदर्य के बीच उचित संतुलन है। माध्यम की मर्यादाओं की वजह से वस्तु का चित्रित प्रतिरूप उतना परिणामकारक नहीं होता जितना कि उसका पुनर्निर्मित रूप जिसको सेजान 'चित्रित समरूप'[10] कहते। ज्योतो के बाद चित्रविषय व आकारसौंदर्य का इतना सुन्दर समन्वय प्रथम सेजान की कला में ही देखने को मिलता है जिसके उनके चित्र 'स्नानमग्न' 'ताश खेलनेवाले'[11] एवं बहुत से आत्मचित्र व व्यक्तिचित्र समुचित उदाहरण

हैं। कलासमीक्षक क्लाइव बेल ने लिखा है 'योरपीय चित्रकला में यदि सेजान सबसे महान् नहीं हैं तो वे हैं ज्योतो" । पुनर्जागरण के बाद सेजान की कला सबसे क्रांतिकारी सिद्ध हुई । ज्योतो, उच्चेलो, पायरोडेला फ्रान्सेस्का, वेरोनीस व पुसँ के चित्रों को सेजान बहुत पसन्द करते थे व वे स्वयं उन्हीं की परम्परा के चित्रकार थे; इस परम्परा के चित्रकारों की कृतियों में वास्तुतुल्य भव्यता होती है ।

वस्तु के आकारसौंदर्य के दर्शन पर घ्यान केंद्रित होते हुए सेजान ने छाया प्रकाश के प्रभाव को पूर्ण रूप से नहीं त्यागा जिसका उन्होंने पिसारो व अन्य प्रभाववादियों के साथ अध्ययन किया था । किंतु सेजान का प्रकाश प्रभाववादियों का वह प्रकाश नहीं था जो ऋतु व समय के साथ बदलता है, विज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार जिसके रंग का निर्णय किया जाता है और जिससे वस्तु दृश्यमान होकर अपना रूप बदलती है । सेजान का प्रकाश अपरिवर्तनशील एवं कालातीत था; उसका उद्गम सूर्य नहीं था बल्कि चित्रकार की प्रतिमा थी तथा वस्तु के आकारसौन्दर्य का दर्शन जिसका लक्ष्य था । सेजान यदि प्रकाश को काल्पनिक व निश्चित रूप नहीं देते तो वस्तु के निजी रंग का निर्णय करके उसके द्वारा वस्तु को उसके स्वाभाविक ठोस रूप में चित्रित करना असम्भव था । सेजान ने सभी प्राकृतिक दृश्यों को प्रत्यक्ष स्थान पर जाकर चित्रित किया एवं उनमें नैसर्गिक प्रकाश का अभाव होते हुए वे कितने प्रकृति सदृश बन गये हैं इसका अनुमान उन प्राकृतिक स्थानों के कैमरा से खींचे गये छायाचित्रों से हम कर सकते हैं । सेजान कहते "चित्रकार के लिए कोई प्रकाश नहीं होता; चित्रकार, देखने के अतिरिक्त पृथक्करण का कार्य करता है जिसके लिए प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती ।"

सेजान की अंकनपद्धति का जैसा विकास होता गया वैसे वे पृष्ठभूमि के गहरे रंगों को पतली परतों में लगाने लगे, जिससे पट का श्वेत रंग की चमक उनमें उतरती व वे अधिक सतेज बनतीं । बाद में वे जलरंगों में भी चित्रण करने लगे, किंतु उसका प्रयोग वातावरण की धूसर चंचलता का प्रभाव दिखाने के लिये उन्होंने नहीं किया जैसा की प्राय: जलरंगचित्रण में किया जाता है ।

सेजान ने फ्रांस के दक्षिणी भाग में एजां प्रोवान्स को कार्यक्षेत्र के रूप में चुना जहां के स्वच्छ भूमध्यप्रदेशीय प्रकाश में वस्तु के आकारसौंदर्य की स्पष्ट कल्पना देने की शक्ति थी । वहां के वातावरण ने सेजान के आदर्श चित्रकार पुसँ व ख्यातनाम इटालियन चित्रकारों के चित्रांतर्गत वातावरण का स्मरण दिला कर सेजान की कला की पुष्टि की । सेजान पुसँ को आदर्श चित्रकार मानते; वे कहते "मुझे पुसँ का अनुसरण करके प्रकृति को चित्र में पुनर्निर्मित करना है किंतु प्रकृति के सान्निध्य में"[12] पुसँ की कलाकृतियों में शास्त्रीय कला का आकारसौंदर्य होते हुए वे अनैसर्गिक व कृत्रिम दिखाई देती हैं । सेजान इस दोष से बचना चाहते थे और उन्होंने देखा कि इस समस्या का एक ही हल है कि प्रकृति को प्रत्यक्ष देख के किंतु शास्त्रीय नियमों

का पालन करके चित्रण करना। सेजान की आधुनिक कला को क्या देन है इस संबंध में जान कॅनडे ने लिखा है "सेजान से प्रकृतिसम्बन्धी नियमों की उपेक्षा करके स्वतंत्र विचार से प्रकृति को समरूप में चित्रित करने के चित्रकार के स्वातंत्र्य को प्रस्थापित किया........अपनी भावनाओं व चिकित्सा के अनुसार चित्रण करके विषयवस्तु के मूलभूत सारतत्व को व्यक्त करना, प्रकृति के वाह्यरूप से विचलित न होकर अभिव्यक्ति के पोषक भिन्न तत्वों को स्वीकारना। यही आधुनिक कला का सार हैं।"।

पौल सेजान का जन्म १८३९ में एजां प्रोवांस में हुआ। उनके पिता का टोपों का कारखाना था व वे सम्पन्न बैंकर थे। बचपन से ही सेजान की एमिल जोला से—जो बाद में साहित्यिक के रूप में प्रसिद्ध हुए—मित्रता थी। पिता ने पौल की कानून के अध्ययन में अरुचि को देख कर, एमिल जोला के साथ पैरिस जाकर कला का अध्ययन करने की अनुमति दी व वे १८६१ में पैरिस आये। वहां वे अकादमी स्विसे में भरती हुए व वहीं उनका मोने व पिसारो से परिचय हुआ। पिसारो ने उनका काफी मार्गदर्शन किया व अन्य प्रभाववादियों से परिचय कराया। पैरिस के जलपान-गृहों में होनेवाली उनकी चर्चाओं में सेजान उपस्थित रहते किंतु अधिकतर मौन रह-कर श्रोता की भूमिका अपनाते। वे अत्यधिक कोमलहृदय थे और यदि उनको विवश होकर वोलना पड़ता तो वे यकायक भावनावश होकर बोलते। सेजान के स्वभाव के बारे में जोला ने लिखा है कि वे दयालु किंतु बहुत ही स्वाभिमानी एवं जिद्दी थे। जरा सा सन्देह होते ही वे चुप हो जाते। जोला आगे लिखते हैं "किसी भी बात पर सेजान को विश्वसित करना उतना ही कठिन था जितना कि नोत्रदाम के मीनारों से नाच नचाना"।

सेजान को आरम्भ से वरोक चित्रकारों का घनत्वांकन वहुत पसन्द था। देलाक्रा के उन्मुक्त तूलिकासंचालन से वे वहुत प्रभावित थे व कुर्बे का अनुसरण कर के उन्होंने कई बार चित्रण चाकू से रंगांकन किया। उपर्युक्त कलात्मक गुणों का दर्शन हम उनके आरम्भिक काल के प्रसिद्ध चित्र 'चाचा दोमिनिक'[13] 'काली घड़ी' व 'पिता के व्यक्तिचित्र' में पाते हैं; चित्रों का रंगांकन मोटी परतों में किया है—कहीं चाकू से—, व काले, भूरे व मिश्रित रंगों का प्रयोग अधिक है; प्रभाववादियों की विशुद्ध रंगसंगति का प्रयोग इन चित्रों में नहीं है किंतु आकारों के ठोसपन व स्पष्टता के गुण सेजान के इन चित्रों में भी पाये जाते हैं जो बाद में सेजान की परिणत शैली की विशेषता के रूप में दृष्टिगोचर हुए।

१८६९ में सेजान का ओर्तांस से परिचय हुआ जो बाद में उनकी पत्नी व आदर्श चित्रविषय (मोडेल) वन गयीं। १८७२ से १८७७ तक उन्होंने प्रभाववाद का एकाग्रचित्त होकर अध्ययन किया। १८७२ में उन्होंने पिसारो के साथ पांत्वाज में प्रकृतिचित्रण किया। प्रभाववादी अंकनपद्धति में भी सेजान ने रंगों का मोटी परतों में प्रयोग किया है और जब १८७४ की प्रभाववादियों की प्रथम प्रदर्शनी में उनका चित्र

दिखाया गया तब एक समीक्षक ने 'पिस्तौल चित्रकार'[14] नाम देकर उनकी निंदा की। १८८० के करीब वे हलकी परतों में नियन्त्रित तूलिका संचालन से रंगांकन करने लगे। ओवर में बनाया हुआ चित्र 'फांसी दिये व्यक्ति का मकान'[15] उनकी प्रभाववादी काल की उत्कृष्ट कृति है। प्रभाववाद के पांच साल के अध्ययन से सेजान की रंगसंगति में विशुद्धता आ गयी और वे चमकीले रंगों का प्रयोग करने लगे किंतु प्रभाववाद की त्रुठियों को भी वे स्पष्ट रूप से समझ गये। पिसारो का प्रभाववाद पर निर्भर रहना उनको पसन्द नहीं था एवं वे कहते कि यदि पिसारो ने अपनी आरम्भिक शैली का विकास किया होता तो वे हम सब में सर्वश्रेष्ठ चित्रकार बन जाते। प्रभाववाद से असन्तुष्ट रहने पर भी वे पिसारो व मोने का बहुत आदर करते। प्रभाववादियों के विपरीत सेजान जबतक चित्रविषय का पूर्वनियोजन मस्तिष्क में नहीं होता तबतक चित्रण का आरम्भ नहीं करते। उनकी मान्यता थी कि—जैसे उन्होंने गास्के को लिखा था—दृश्य का प्रभाव नवजात शिशु की नेत्रपटलीय संवेदनाओं के समान, असंबद्ध व अर्थहीन होता है व उसको विचार व संशोधन से सुरचित, साकार व सार्थ बनाने का कार्य चित्रकार को करना पड़ता है। यह कार्य सेजान सफलता से कर सके क्योंकि–जैसे वर्नर हाफ्टमन ने लिखा है—"उनके विचारों की गतिविधि पूर्णरूप से चित्रमय थी"।[16]

सेजान लगातार अपने चित्रों को राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी के लिये भेजते किंतु वे अस्वीकृत होते। प्रभाववादियों की प्रदर्शनियों में उनके चित्रों की निंदा होने के बाद वे एजां प्रोवान्स चले गये और अन्त तक वहीं रहे जहां से वे बीच-बीच थोड़े समय के लिये पैरिस आकर रहते। पैरिस में वे अधिक समय तक नहीं रह सकते और इसके मुख्य कारण थे उनकी शांतिप्रिय वृत्ति व मानवस्वभाव का अविश्वास। यदि कोई उनकी कला की प्रशंसा करता तो उनको संदेह होता कि यह सब मजाक में किया जा रहा है। एक बार उनकी कला की प्रशंसा में आयोजित सम्मेलन में मोने ने उनकी कला की सराहना की तब वे नाराज होकर वहां से चल पड़े।

१८७८ के बाद उन्होंने प्रभाववादियों की प्रदर्शनियों में भाग नहीं लिया; एज के एकान्त में प्रकृति के संपर्क में अपने कलात्मक ध्येय की पूर्ति में वे अविरत परिश्रम करते रहे।

उनके प्रकृति-चित्र स्पष्ट रूप से ज्यामिति पर आधारित हैं जिसका उनका चित्र 'गार्दान का दृश्य'[17] अभ्यसनीय उदाहरण है। इस चित्र में व घनवाद के आरंभिक प्रकृतिचित्रों में इतनी समानता हैं कि सेजान की कला की घनवाद में कितनी स्वाभाविक रूप से परिणति हुई इसका ज्ञान इस चित्र द्वारा सरलता से होता हैं। यही बात उनके चित्र 'स्नानमग्ना युवतियां'[18] के बारे में कही जा सकती है; इसकी तुलना पिकासो के पहले घनवादी चित्र 'आविन्यों की स्त्रियां'[19] से करने पर दोनों चित्रकारों के दृष्टिकोणों की समानता की स्पष्ट कल्पना आती है। सेजान के चित्रां-

तर्गत वस्तुओं के आकारों में जैसी ज्यामितीयता है वैसी रंगांकन पद्धति में भी है; वे कहते "रंग दूरदृश्य लघुता है"[20]।

सेजान के कलासम्बन्धी विचारों को देख कर यह नहीं समझना चाहिये कि उनकी कला केवल सैद्धांतिक प्रदर्शन है। उनके व्यक्तिचित्रों में मानवता व व्यक्तित्व का दर्शन है एवं प्रकृतिचित्रों में निसर्ग के जन्म व विकास के नियमों का सचाई से पालन है, किंतु इन विचारों का उनकी कला में बहुत ही गौण स्थान है।

१८८६ में उनके पिता की मृत्यु हुई और वे उनके लिए काफी संपत्ति छोड़ गये। उस समय सेजान की आयु ४७ साल की थी व तब तक आर्थिक दृष्टि से वे अपने पिता पर ही निर्भर थे। उनका एक ही चित्र अब तक राष्ट्रीय प्रदर्शनी में स्वीकृत हुआ था और उसकी स्वीकृति भी उस वर्ष की चयनसमिति के सदस्य आन्त्वानग्वियेमे ने अपने मित्र जोला को खुश करने के लिये करवायी थी। सेजान का चित्र पहले पहल डॉ. गाशे ने खरीदा। आयु के चालीसवें साल तक सेजान ने अपने विवाह व पुत्रजन्म की हकीकत पिता से छिपाये रखी क्योंकि उनको भय था कि शायद नाराज होकर वे आर्थिक सहायता बंद नहीं कर दें। वे यदि संपन्न परिवार में पैदा नहीं होते एवं उनको अर्थार्जन के लिये अपने पैरों पर खड़े होना पड़ता तो उनकी क्या परिस्थिति होती इसकी कल्पना करना कठिन है। उनमें व्यवहारकुशलता बिलकुल ही नहीं थी व अत्यधिक संवेदनाक्षम होने से वे प्रापंचिक जिम्मेवारियों से पृथक् रहना चाहते। पैरिस में उनकी पत्नी ओर्तांस सब कार्यभार सम्हालतीं व एज में उनकी छोटी भगिनी मारी।

प्रभाववादियों की तीसरी प्रदर्शनी के बाद सेजान के चित्र पेर तांग्वी की चित्रों की छोटी सी दूकान में देखने को मिलते जहां चित्रों के व्यापारी आम्ब्राज वोलार ने उनके चित्रों को १८९२ में पहली बार देखा व बहुत पसंद किया। १८९५ में वोलार ने पिसारो की सलाह से सेजान के चित्रों की प्रदर्शनी की। यद्यपि प्रदर्शनी की कटु आलोचना हुई। सेजान की कला के सामर्थ्य को उनके प्रभाववादी मित्रों ने पहचाना, कुछ संग्राहकों ने उनके चित्रों की प्रशंसा की व उनके चित्र बिकने लगे। फ्रेंच कलाक्षेत्र के वातावरण में परिवर्तन हो रहा था एवं राष्ट्रीय कलासंस्था के अतिरिक्त स्वतंत्रवृत्ति के कलासमीक्षकों का प्रभाव बढ़ रहा था जिसके फलस्वरूप सेजान को कुछ प्रशंसक मिले।

सेजान ने अपने ध्येय की पूर्ति के लिये अथक प्रयत्न किये और कलानिर्मिति की। १९०६ में एक रोज प्रकृतिचित्रण के लिये वे बाहर गये थे। दो घंटों तक उन्होंने वर्षा में काम किया; लौटते समय थकान के कारण वे रास्ते में बेहोश हुए एवं एक गाड़ीवाला उनको घर ले आया। बीमार होते हुए दूसरे रोज उन्होंने बगीचे में काम शुरू किया किंतु चक्कर आने से उनको फिर बिस्तर पर लेटना पड़ा। चार रोज बाद उनका स्वर्गवास हुआ और उनकी इच्छा "मैं काम करते हुए मरना चाहता

हूं" की पूर्ति हुई।

१६०७ में उनकी जीवनभर की कलानिर्मिति को एक विशाल प्रदर्शनी द्वारा दर्शकों के सम्मुख रखा गया। इस प्रदर्शनी का नवकलाकारों पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। कलाक्षेत्र में नवनवीन विचार प्रवाह शुरू हुए एवं बीसवीं सदी की कला का आरंभ सेजान की कला से प्रेरणा पाकर हुआ।

सेजान का जीवन असीम आत्मविश्वास व ध्येयपूर्ण कलासाधना का अतुल्य उदाहरण है। प्रशंसा की जगह जीवनभर सभी ने उनकी कला का उपहास किया। उनके घनिष्ठ मित्र जोला ने आरंभ में उनको बहुत प्रोत्साहित किया और अन्त तक वे उनकी सहायता करते रहे किंतु सेजान को इस बात का दुःख हुआ कि जोला भी उनकी कला की महानता को समझने में असमर्थ रहे। सेजान में ऐसा दुर्दम्य आत्म-विश्वास था कि असफलता के कारण वे एकांतप्रिय व संशयी जरूर हुए किंतु निरुत्साही कभी नहीं हुए। अपनी कला के भविष्य के बारे में वे निश्चित थे और कहते "मैं एक नयी कला का आदिम कलाकार हूं"[21]। उनकी यह भविष्यवाणी सत्य हुई और आधुनिक कला के जन्मदाता के नाम से वे अमर हुए।

आत्मविश्वास होते हुए सेजान में दुरभिमान नहीं था व वे दूसरों को सलाह देते "संग्रहालयों में कलाकार विचार करना सीखता है व प्रकृति में देखना सीखता है। हमारी कला कुकुरमुत्ते की तरह पैदा नहीं होती। उसके पीछे पीढ़ियों के परि-श्रम होते हैं; उनसे क्यों न लाभ उठाया जाये"। उनके शब्दों में उनकी महत्वाकांक्षा थी "कला की महान् परंपरा में अपना योगदान करना"।

सेजान का बीसवीं सदी की कला पर इतना प्रभाव पड़ा कि सेजान की कला को छोड़ कर बीसवीं सदी की कला का विचार भी असंभव है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि सेजान ने किसी नयी शैली को जन्म दिया। बोदेलेर ने कलाकार के बारे में लिखा है "कलाकार केवल अपनी कलानिर्मिति के लिये ही उत्तरदायी है। वह अपनी कला को छोड़ जाता है और आगामी पीढ़ी उसकी कला को किस दृष्टिकोण से स्वीकारती है यह विचार उसकी कला के मूल्यांकन में गौण है। कलाकार की कोई संतान नहीं होती। वह अपनी ही कला का निर्माता, प्रभु, होता है"। इस विचार से सेजान की कला घनवाद, फाववाद या अन्य किसी वाद के अंतर्गत नहीं आती। वे ऐसे काल के कलाकार थे जिस काल में फ्लोबेर, बोदेलेर, जोला जैसे साहित्यकार व माने, मोने, पिसारो जैसे चित्रकारों ने सत्य पर नया प्रकाश डाला। 'कला के लिये कला' अमूर्तवाद, या किसी अन्य वाद के जरिये कला को सुनिर्णीत रूप देने का उनका विचार नहीं था। हर्बर्ट रीड ने लिखा है "यदि सेजान जीवित होते तो वे भी अपनी कला से प्रभावित होकर जिन नवीन भिन्न वादों ने जन्म लिया उनको देख कर विस्मित हो जाते"। सेजान का मुख्य विचार कला को आकारप्रधान व रचनात्मक बनाने का था; किन्तु इस विचार ने कला को परंपरागत बंधनों से मुक्त

किया एवं उसमें अपरिमित परिवर्तन हुए। वैसे गोग्वँ की कला भी कलाकारों को बंधनमुक्त करने में सहायक हुई और वे स्वतंत्र विचार से स्वच्छंद चित्रण करने लगे। किंतु केवल स्वच्छंद चित्रण से महान् कलाकृतियों का निर्माण असंभव है; उसके लिए कलांतर्गत नियमों की खोज भी आवश्यक है और यह गोग्वँ भी जानते थे। यह खोजकार्य सेजान ने किया।

वर्नर हाफ्टमन ने सेजान के बारे में लिखा है "सेजान ने एक बात को अच्छी तरह समझा कि तर्कशुद्ध, अपरिवर्तनशील रचना का हमेशा कठोर आकार के दासत्व में अन्त नहीं होता बल्कि उससे चित्र को ऐसा सामर्थ्य प्राप्त होता है जिस सामर्थ्य से हम प्रार्थना में हाथ जोड़ते हैं व जिससे नयी दुनिया का प्रवेशद्वार खुलता है, जिसको धार्मिक युगों में ईश्वरीय साक्षात्कार कहते थे। प्रकृति का सत्य रूप बाह्य सतह की गहराई में अप्रकट रहता है व बाह्य रंग उसके साक्षी हैं"। सेजान ने कला की परिभाषा की थी " कला प्रकृति सदृश सुसंगति है"।[22]

प्रभाववाद के ऐतिहासिक महत्व के बारे में हम जितना अधिक विचार करते हैं उतना स्पष्ट हो जाता है कि जो उत्तरप्रभाववादी चित्रकार उसकी त्रुटियों को देख कर उससे पृथक हुए, उन्होंने उससे लाभ उठा कर उसको जितना सार्थक किया उतना उसके अनुयायी नहीं कर सके। उनमें से सोरा व सेजान की कला आकार-निष्ठ है जबकि वान गो व गोग्वँ की कला आत्मनिष्ठ है। वान गो की कला में उनके भावनोद्वेग की अभिव्यक्ति है जबकि गोग्वँ की कला में उनके आंतरिक जीवन का कल्पना द्वारा किया गया दर्शन है। इन दोनों को जीवन में कठिनाइयों व आर्थिक विपन्नावस्था से जितना कड़ा संघर्ष करना पड़ा उतना कला के इतिहास में शायद ही किसी अन्य कलाकार को करना पड़ा होगा।

वान गो (१८५३–१८९०)

वान गो की कला व जीवन एकदूसरे से इतना घनिष्ठ संबंध रखते हैं कि दोनों का पृथक् अध्ययन नहीं किया जा सकता। वान गो ने अपने भाई थिओ को पत्र में लिखा था "मैं अपने सामने के दृश्य को हुबहू चित्रित करने का कभी प्रयत्न नहीं करता। मैं रंगों का प्रयोग पूर्ण स्वेच्छा से करता हूं जिससे मैं दृश्य के प्रति मेरी आंतरिक भावनाओं को प्रभावी रूप में अंकित कर सकूं"। इसी दृष्टिकोण को लेकर उन्होंने आजीवन कलानिर्मिति की व अभिव्यंजनावादी कला की यही संक्षिप्त समुचित परिभाषा है। उनकी कला ऐतिहासिक कलाशैलियों, कलासंबंधी सिद्धांतों या रचना के नियमों पर आधारित नहीं है। कला के इतिहास का परिशीलन करके उन्होंने अपनी कला का ध्येय निश्चित नहीं किया बल्कि पूर्ण मानवतावादी ध्येय से प्रेरित होकर उन्होंने कलानिर्मिति की। उनके लिये कला एक साधन मात्र थी। उनकी कला के बारे में कलासमीक्षक युइद ने लिखा है "उनकी कहानी

सौंदर्य चकित आंख, तूलिका या मिश्रणफलक की कहानी नहीं है, बल्कि एक ऐसे अकेले दिल की कहानी है जो अन्धेरे बंदिवास में धड़क रहा था, जानता नहीं था कि वह क्यों दुःखी है व क्या चाहता है"[23]। संसार में प्रेम व दुःख अभिन्न हैं। वान गो ने मानवता से अपार प्रेम किया व उसकी सेवा करना चाहा किंतु उसके बदले में उनको कष्ट व मानसिक यातनाओं के अलावा कुछ नहीं मिला। वान गो का प्रेम स्वार्थी व भोगलोलुप नहीं था। वे संसार के प्राणिमात्र के दुःख को देख कर तड़पते व जानना चाहते कि क्या किया जाये जिससे इस दुःख का अंत हो। वे अपनी आत्मा को सेवा की वेदी पर अर्पण करना चाहते। मानवता की सेवा के उन्होंने भिन्न मार्गों से प्रयत्न किये किन्तु भोलापन व निष्कपट वृत्ति के कारण वे असफल हुए और उनके लिये कला एकमेव साधन रही जिसके द्वारा वे मानवता के प्रति अपनी सद्भावना को व्यक्त कर के अप्रत्यक्ष सेवा कर सकते। मानवसेवा की उनकी उत्कंठा को समाज ने निर्दयता से ठुकरा दिया व दार्शनिक स्पाइनोजा के वचन "जो भगवान से प्यार करता है उसे यह आशा नहीं करनी चाहिये कि भगवान भी बदले में उसे प्यार करे" की सत्यता को उन्होंने अनुभव किया। उनके जीवन में उनको छोटे भाई थियो ऐसे देवतातुल्य व्यक्ति मिले जिन्होंने उनसे सच्चा प्यार किया, उनकी कला को सहानुभूति से समझा व उनकी अपरिमित मदद की।

वान गो ने 'कला के लिये कला' ध्येय का विश्वास नहीं किया। कलाकृति में, वे कला के सौंदर्यात्मक गुणों के विकास की अपेक्षा मानवीय दुःख, परिश्रम व पारमार्थिक आकांक्षाओं का भावनापूर्ण दर्शन कराना चाहते। वान गो का कार्यक्षेत्र फ्रान्स रहा किंतु उनको कोरो, कुर्बे व माने की परंपरा के कलाकार नहीं मान सकते। वैसे वे जन्म से डच थे।

विन्सट वान गो का जन्म १८५३ में हालेंड के ग्रूटज्युंडर्ट गांव में हुआ। उनके पिता पादरी थे व उनकी आर्थिक परिस्थिति साधारण थी। विन्सेंट का चेहरा बेतुका था। वे शुरू से ही एकांतप्रिय व भावनाप्रधान थे व उनको नियमबद्ध जीवन पसंद नहीं था। विन्सेंट व उनके छोटे भाई थियो में बहुत प्यार था। उम्र के १२वें साल में जेवेनबर्गेन के विद्यालय में शालेय अध्ययन के लिये उनको भेजा गया। वहां वे १६वें साल तक रहे किंतु उनके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उसके बाद उन्होंने पेरिस के चित्रों के व्यापारी गुपिल की हेग की शाखा में विक्रेता की नौकरी की उनको रेम्ब्रांट, कोरो, मिले व डच चित्रकारों के चित्र बहुत पसंद थे और उनको बड़ी प्रशंसा कर के वे बेचते। कार्यक्षमता को देख कर उनकी लंदन की शाखा में बदली की गयी। यहां पहली बार सुव्यवस्थित, नियमबद्ध रहन-सहन में उनकी रुचि पैदा हुई। वे अपनी मकानमालकिन की लड़की उर्सुला से प्रेम कर रहे थे। उर्सुला ने आरंभ में उनको प्रोत्साहन दिया किंतु जब वे उससे विवाह की बात करने गये तब उसने उनको जाने को कहा और उनके पीछे जोर से दरवाजा बंद किया। उनकी

मानसिक अवस्था पर प्रेमभंग का परिणाम होकर उनसे पहले की तरह काम नहीं होता। उनको लंदन से हटा कर पेरिस की शाखा में नौकरी दी गयी किंतु वे अब उस नौकरी से ऊब गये थे और उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उसके पश्चात् उन्होंने एक के बाद दूसरी इस तरह नौकरियां कीं। प्रथम वे लंदन जाकर किसी के निजी विद्यालय में फ्रेंच भाषा के शिक्षक रहे। वहां उनको विद्यार्थिओं के माता-पिता से भोजन व निवास का शुल्क वसूल करने का काम दिया गया व वे अभिभावकों की दरिद्रता से परिचित हुए। वसूली के काम में असमर्थ रहने से उनको नौकरी से हटा दिया गया। अब वे लंदन में ही एक मेथॉडिस्ट धर्मोपदेशक के विद्यालय में नौकरी करने लगे। वहां कभी धर्मोपदेश करने के वृथा प्रयत्न भी उन्होंने किये। धर्मोपदेशक से वे धर्मसंबंधी चर्चा करते जिससे असहाय व पीड़ित लोकों की धर्मोपदेश द्वारा मनःशांति करने के विचार ने उनके मस्तिष्क में जन्म लिया। वे डोड्रेश्ट में पुस्तकों के व्यापारी की दुकान में रहे; यहां वे धार्मिक पोशाक पहनते व ईश्वरभक्ति में व्यस्त रहते। कभी फुरसत में वे रेखाचित्रण करते किंतु उसमें वे विशेष रुचि नहीं रखते। अब उन्होंने पादरी बनने का निश्चय किया किंतु उसके लिये विश्वविद्यालयीन स्नातक होना आवश्यक था। १४ महिनों तक आमस्टरडाम में रह कर उन्होंने स्नातक परीक्षा के लिये मेहनत की किंतु उनको सफलता नहीं मिली तब धर्मोपदेशक बन कर वे बोरिनाज नाम के खानों के प्रदेश में गये। त्याग व सेवा के उनके विचार निष्कपट किंतु अव्यवहार्य थे। खान के मजदूरों के कामों में वे स्वयं मदद करते, संसर्गजन्य बीमारियों में रुग्णों की सेवा करते किंतु खुद फटे कपड़ें पहनते व खराब खाना खाते। उनके पिता व जिस धर्मसंस्था ने उनको यह कार्य सौंपा था उन्होंने इस अदूरदर्शित्व को देख कर उनको वापस बुला लिया।

बोरिनाज में उनकी कला का सत्य अर्थ में आरंभ हुआ। वे गरीबों की सेवा करते व उनके परिश्रमी व दुःखी जीवन के चित्र खींचते। वे कहते "ईसा सबसे महान् चित्रकार थे[24]। महात्मा गांधी ने भी ईसा को 'सर्वश्रेष्ठ कलाकार'[25] माना है। अब वान गो की धार्मिक आकांक्षाओं व कलात्मक सहज प्रवृति के बीच द्वंद्व शुरू हुआ। उन्होंने अपने भाई थिओ को लिखा "पांच साल से मैं इधर-उधर घूम रहा हूं। मैं चाहता हूं कि मेरे जीवन का कुछ सदुपयोग हो। मेरे अंतर्गत कोई प्रेरणा मुझे परेशान कर रही है। मैं नहीं जानता कि वह क्या है"। उसके बाद उन्होंने फिर दूसरे पत्र में लिखा "कुछ भी हो मैं फिर हाथ में पेन्सिल लेकर चित्रण करूंगा जो मैंने निराश होकर छोड़ दिया था"। एट्टेन जा कर वे थिओ से मिले जिन्होंने सब आर्थिक सहायता करने का वचन दिया। अब वान गो के तपस्यापूर्ण जीवन का आरंभ हुआ। कला के अध्ययन के हेतु वे हेग जाकर चित्रकार आंटोन मॉव जो उनके रिश्तेदार थे—के पास दो साल तक रहे। यहां के अध्ययन से न वे खुश थे न मॉव। संग्राहलयों में जाकर रेम्ब्रांट के चित्रों का अध्ययन करते। अब वे चित्र के धार्मिक

या सामाजिक महत्व के अतिरिक्त उसके कलात्मक गुणों की ओर भी ध्यान देने लगे। अपनी अल्प आमदनी से थिओ उनको जो कुछ पैसा भेजते वह वान गो चित्रकारी में लगा देते व सारा समय चित्रकारी में व्यस्त रहते। इस काल के उनके चित्र मिले के समान अंकनपद्धति में स्वच्छंद, सरल व प्रभाव में सामर्थ्यशाली हैं। १८८० से १८८६ तक के चित्रों के विषय पूर्णतया मानवतावादी दृष्टिकोण लिये हुए हैं—खान या खेत के मजदूरों के कष्टमय जीवन अनाथालयों, गरीब बस्तियों एवं रास्तों के दृश्य चित्रों के मुख्य विषय हैं। वे कोयले या क्रेयॉन से रेखांकन करते व डच चित्रकारों के समान भूरे, काले एवं गहरे रंगों का अधिक प्रयोग करते जिससे चित्र में दुःख व निराशा के भाव प्रतीत होते। थिओ उनको जो आर्थिक सहायता भेजते उससे उनका पूरा खर्च नहीं निभता। वे गांव के मजदूरों में घूमते, उनसे बातें करते व कभी घास में ही सो जाते। इसी समय उनकी धार्मिक व परोपकारी वृत्ति ने फिर उछाल खायी। उनका सिएन नाम की स्त्री से परिचय हुआ जिसने अबतक की जिंदगी वेश्यावृत्ति में गंवायी थी व जिसकी शारीरिक व मानसिक अधोगति पूरी तरह हो चुकी थी। वान गो उस गर्भवती स्त्री को व उसके बच्चों को घर ले आये व उन्होंने उसका व्यक्तिचित्रण किया। उस स्त्री का दुःख'[26] शीर्षक का रेखाचित्र प्रसिद्ध है; व उसमें शारीरिक व मानसिक पतन का परिणामकारक चित्रण है। उस स्त्री से विवाह करने की मनीषा वान गो ने व्यक्त की किन्तु सहायता करने के इस अनोखे विचार से घबड़ा कर वह चली गयी। वान गो उस स्त्री के खानेपीने, दवाइयों, शराब व धूम्रपान का खर्च उठाते व स्वयं भूखे रहते। उस स्त्री के बारे में उनकी क्या धारणा थी यह उनके निम्न वाक्य से स्पष्ट होता है जो उन्होंने लेखक मिचेले से उद्धृत करके उस स्त्री के रेखाचित्र के नीचे लिखा है "दुनियां में दुःखी, अकेली परित्यक्ताएं कैसी हो सकती हैं!" अब थिओ ने आकर वान गो को इस परिस्थिति से मुक्त किया व अपने पिता के पास न्युनेन में छोड़ आये।

वान गो की कला के आरंभिक काल (१८८०-१८८६) को 'डच काल' कहते हैं। इस काल का उनका चित्र 'आलुभक्षी'[27] बहुत ही प्रसिद्ध है। इस सामर्थ्यपूर्ण चित्र में डच कला के समान गहरे, भूरे व हरे रंगों का प्राचुर्य है। इस चित्र के संबंध में वान गो ने थिओ को पत्र में लिखा है "मैंने इस चित्र द्वारा यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि ये जो निर्धन लोक, दीपक के प्रकाश में, हाथ डाल कर आलू खा रहे हैं उन्हीं हाथों से धरती को खोद कर अपनी आजीविका चलाते हैं। सुशिक्षित लोकों से बिलकुल भिन्न रहनसहन का इसमें दर्शन है और मैं नहीं सोचता कि हरेक दर्शक इसको पसंद करे। व रूढ़िबद्ध पद्धति से इस चित्र को चिकना व आकर्षक बनाना अयोग्य होगा। कृषिजीवन के चित्र को सुगंध की क्या आवश्यकता है? ऐसे चित्र में यदि धुंए, गोबर व खाद की गंध आती है तो यह उचित ही है"। ऊबड़खाबड़ मानवाकृतियां, वक्रतापूर्ण रेखांकन, जोशीला तूलिका-संचालन एवं

हलके व गहरे रंगों का विरोधयुक्त प्रयोग इन से चित्र अभिव्यक्तिपूर्ण बन गया है।

मानवीय जीवन के सत्य दर्शन को ही वान गो कला की आत्मा मानते थे और इस विचार से उनके विचार महात्मा गांधी के सत्य व सौंदर्यविषयक विचारों से मिलते हैं। गांधीजी के अनुसार "सब सत्य......अत्यंत सुंदर है। जब मनुष्य को सत्य में सौंदर्य का साक्षात्कार होता है तब सच्ची कला की निर्मिति होती है।......सच्ची कला आत्मिक अभिव्यक्ति है"[28]। वान गो की कलाभिरुचि के पीछे यही भावना कार्यरत थी। वे कलाकृति के बाह्य रूप की अपेक्षा उसके विषय व अभिव्यक्ति का अधिक ख्याल करते। उनके प्रिय-चित्रकार थे कृषिजीवन के चित्रकार मिले व योसेफ इस्राएल्स यद्यपि उन चित्रकारों की अतिरंजना बान गो को पसंद नहीं थी। रेम्ब्रांट व दोमीय की कलाकृतियां भी उनको पसंद थीं चार्लस डिकन्स व जार्ज एलियट के गरीबों के जीवनसंबंधी उपन्यास व अमेरिकन लेखक स्टोव का प्रसिद्ध उपन्यास 'टॉम चाचा की कुटिया' उनके प्रिय साहित्य में से थे। वान गो कहते "यदि आप विकास चाहते हैं तो आपको जमीन की गहराई में पहुंचना होगा"[29] इसी विचार से प्रेरित होकर उन्होंने गरीब कृषकों, मजदूरों, पीड़ित व पतित लोकों के जीवन को चित्रण के लिये चुना व सत्य की खोज में उसका गहराई तक उत्खनन किया है।

आंटवर्प की कलासंस्था में कुछ समय तक वान गो ने अध्ययन किया जिस समय उनकी आयु ३१ साल की थी। वहां वे इतनी पर्याप्त मात्रा में रंग लेते कि रंग मिश्र फलक से नीचे वहता। गुस्से में उनके अध्यापक ने उनको नाम पूछा तब उन्होंने आवेश में जवाब दिया "मैं हूं डच आदमी वान गो"। तब उनको फौरन रंगांकन कक्षा से रेखांकन कक्षा में हटा दिया गया। आंटवर्प में ही वान गो ने रुबेन्स की कलाकृतियां व जापानी छापचित्र देखे व उनसे प्रभावित होकर वे गहरे रंगों की मात्रा कम करके हलके रंगों का अधिक प्रयोग करने लगे। होकुसाई की 'फूजियामा के सौ दृश्य 'चित्रमालिका के अध्ययन से वान गो की रेखा को अभिव्यक्ति के अनुकूल लचीलापन व निजी बल प्राप्त हुए। आंटवर्प में ३ महिनों तक अध्ययन करने के पश्चात् वे पैरिस में थिओ के साथ रहने गये व कोर्मों की चित्रशाला में भरती हुए जहां उनका तुलुज लोत्रेक व एमिल बर्नार से परिचय हुआ। यहां उनको देलाक्रा व प्रभाववादियों के चित्र देखने को मिले। गुपिल की कलावीथिका में वे गोग्वें से परिचित हुए व वहीं उनको देगा के चित्र देखने को मिले जो उनको पसंद नहीं आये। पेर तांग्वी की दुकान का चित्रसंग्रह उनको बहुत पसंद आया जिसमें पिसारो, सेजान, रेन्वा, सिसली, सोरा, ग्वियामें व सिन्याक के चित्र थे। थिओ से प्रेम व प्रोत्साहन पाकर वे पैरिस के कलापूर्ण वातावरण में नये जोश से चित्रण करने लगे। विन्सेंट की कला की महानता को अभीतक किसी को पहचान भी नहीं थी और थिओ के सम्मुख एक ही समस्या थी कि किसी तरह विन्सेंट को जो अब ३१ साल के थे व आदर्शवादी किंतु दुनियां की व्यवहारनीति से अनजान थे अर्थार्जन का कोई ऐसा मार्ग बतलाया

जाये जिससे वे अपनी रुचि के अनुकूल कार्य कर सकें व उनकी भौतिक एवं आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति होकर वे सुख व शांति से जीयें। विन्सेंट के कला द्वारा मान्यता व अर्थार्जन के लिये किये अथक किंतु विफल प्रयत्न व उसमें थिओ से की गयी सहानुभूतिपूर्ण सहायता की दर्दभरी कहानी का अब प्रारंभ हो गया। इस कहानी के आधार पर उपन्यास लिखे गये हैं किन्तु विन्सेंट के थिओ को आत्मीयता से लिखे पत्रों का संग्रह सब से चित्तवेधक व उद्‌बोधक है व उसमें विन्सेंट ने अपने कला संबंधी विचारों को व जीवन के ध्येय को प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है जो गुण उनकी बातों में शायद ही देखने को मिलते। ये पत्र विन्सेंट की आंतरिक तड़प व थिओ के असीम प्रेम व सहनशीलता के साक्ष्य हैं।

वान गो का प्रभाववादी चित्रकारों से परिचय होने पर ये उनकी चर्चाओं में भाग लेने लगे। अब उन्होंने कोर्मो की चित्रशाला को छोड़ दिया, प्रभाववादी चित्रकारों से सम्पर्क बढ़ा कर उनकी अंकनपद्धति को आत्मसात् किया एवं पैरिस के संग्रहालयों में जाकर प्रसिद्ध चित्रकारों की कलाकृतियों का अध्ययन किया। वान गो की रंगसंगति में बड़ा परिवर्तन हुआ व उनके डच-काल के भूरे, काले व गहरे रंगों का स्थान प्रभाववादी विशुद्ध रंगों ने ले लिया। पिसारो ने वानगो को प्रभाववाद एवं नवप्रभाववाद के सिद्धांतों व अंकनपद्धतियों का ज्ञान कराया। सोरा की अंकनपद्धति ने उनको विशेष रूप से आकृष्ट किया व उन्होंने सोरा के प्रसिद्ध चित्र 'ग्रांद जात द्वीप' का सूक्ष्म अध्ययन किया। गोग्वें व तुलुज लोत्रेक से उनका कलाविषयक विचारों का आदानप्रदान हुआ। लुव्र संग्रहालय में जाकर उन्होंने देलाक्रा की रंगांकनपद्धति व स्वच्छंद-तूलिका संचालन का निरीक्षण किया। पैरिस के मार्गों व मोंमार्त्र, शातो व बुगिवाल आदि उपनगरों के दृश्यों को उन्होंने पूर्ण रूप से नवीन अंकनपद्धति में चित्रित किया। पैरिस में वान गो की प्रतिभा रंग, रूप, सतह आदि सौंदर्यात्मक गुणों के प्रति जागरूक हुई जो अबतक चित्रविषय की आत्मिक अभिव्यक्ति पर मुख्य रूप से केंद्रित थी। पैरिस के जलपानगृहों के लाल, पीले व नीले रंगों का विशुद्ध प्रयोग करके उन्होंने बड़े ही प्रभावपूर्ण चित्र बनाये जो वहीं के रंगीले जीवन के परिचायक हैं। इन चित्रों के अलावा 'पैरिस काल' के चित्रों में वान गो के 'पीला वस्तुचित्र' व 'पेर तांग्वी' का व्यक्तिचित्र' बहुत प्रसिद्ध हैं। पेर तांग्वी चित्रों के व्यापारी थे व बहुत सहृदय व्यक्ति थे। उन्होंने प्रभाववादियों के चित्रों को अपनी दूकान में प्रदर्शित करके बेचने के प्रयत्न किये। उनकी दूकान में प्रभाववादियों की विचारगोष्ठी व चर्चाएं हुआ करतीं व उनमें पेर तांग्वी भी भाग लेते। वे रंग, तूलिका वगैरह कलाकारों को आवश्यक सामान बेचते व निर्धन चित्रकारों को चित्र के बदले में सामान दिया करते जिससे मोने, सिसली व वान गो जैसे गरजमन्द चित्रकारों को बहुत सहायता मिली। सेजान व वान गो की कलाकृतियों का चयन उनकी दूरदर्शी कलामर्मज्ञता का प्रमाण है। 'पेर तांग्वी के व्यक्तिचित्र' में चित्रविषय के व्यक्तित्व एवं चित्रकार के व्यक्तित्व दोनों का समन्वित

दर्शन है। इस व्यक्तिचित्र में चमकीले रंगों का प्रयोग है व प्रभाववादियों के समान छोटी-छोटी लकीरों में रंगांकन किया है। चित्र की पृष्ठभूमि जापानी छापचित्रों से अलंकृत है जिससे विदित होता है कि वान गो जापानी छापचित्रों से कितने प्रभावित थे। वान गो ने हिरोशिगे के कुछ प्रकृतिचित्रों की अनुकृतियां भी की थीं। वान गो के व्यक्तिचित्रों में व्यक्ति के वाह्य रूप की अपेक्षा चित्रकार की चित्रविषय के प्रति भावनात्मक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति को मुख्य स्थान था; अतः अंकनपद्धति व रंग-संगति प्रभाववादी होते हुए 'पेर तांग्वी का व्यक्तिचित्र' दर्शन में प्रभाववादी व्यक्ति-चित्रों से पूर्ण भिन्न प्रतीत होता है। वान गो के 'पैरिस काल' के अन्य चित्रों में उनकी आत्मिक अभिव्यक्ति इतनी उत्कंठित नहीं है जितनी कि इस चित्र में।

प्रभाववाद में अपनी कलानिर्मिति के लिए साधन के रूप में जो कुछ उपयुक्त था वह सब वान गो आत्मसात् कर चुके थे व वान गो ने देखा कि अब पैरिस में अधिक काल तक रहने में कोई मतलब नहीं था; उनके चित्र विकते नहीं थे व थिओ पर भार मात्र होकर रहना उनको असह्‌य हो गया था। इसके अलावा पैरिस जैसे रंगीले शहर का वातावरण उनकी अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल नहीं था। उन्होंने सेजान की तरह कहीं फ्रांस के दक्षिणी भाग में जाकर कलानिर्मिति करने का संकल्प किया। १८८८ में एक दिन जब थिओ काम से वापस आये तब उन्होंने देखा कि विन्सेंट ने दीवार पर अपने चित्रों को सुव्यवस्थित लगाया था व कमरे की सफाई करके मेज पर चित्र, विदाईपत्र व फूल रख दिये थे।

फ्रान्स के दक्षिणी भाग प्रोवान्स में आर्ल नाम के गांव को वान गो ने कला-निर्मिति के लिये अनुकूल देखा व निवासस्थान के रूप में निश्चित किया। यहां उनकी प्रतिभा वाह्य वंधनों से मुक्त हो गयी व आयु के उर्वरित दो साल में उन्होंने ध्येयपूर्ति में एकलक्ष्य होकर उन्मुक्त अवस्था में जो कलासृजन किया उससे उनका नाम कला के इतिहास में अमर हो गया। आर्ल में उनकी रंगांकनपद्धति में अनोखा सामर्थ्य आ गया व वे रंगों का विस्तृत क्षेत्रों में प्रयोग करने लगे जिससे उनके चित्रांतर्गत आकारों में स्पष्टता आ गयी। पैरिस-काल से भिन्न रंगसंगति का उन्होंने प्रयोग शुरू किया। वे चित्र की भावना को पोषक रंगों को चुनते व उद्देश्य के अनुसार रंगसंगति में परि-वर्तन करते। अंकनपद्धति में इस तरह कायापलट होते ही उनकी कला से प्रभाववाद समाप्त हो गया एवं रंगों की विशुद्धता के गुणों को साथ लेकर वान गो की कला दोमीय की कला के निकट आ गयी।

आर्ल में जलपानगृह के ऊपर की मंजिल का एक कमरा वान गो ने किराये पर लिया। इसमें एक पलंग व दो कुर्सियां थीं। वान गो ने दोनों कुर्सियों के दो चित्र बनाकर उनमें से एक को शीर्षक दिया है 'गोग्वँ की कुर्सी' जिससे उनके गोग्वँ के प्रति आदरभाव व प्रगाढ़ स्नेह का प्रमाण मिलता है।

जिस जमीन व सूर्य के प्यार से वेचैन होकर वे फ्रान्स के दक्षिणी भाग में

आये थे उस जमीन को सूर्य के प्रखर प्रकाश में चित्रित करने का कार्य उन्होंने तन्मयता से शुरू किया। वे अपना अस्तित्व भूल गये; वे दिनभर धूप में तपते व लगातार चित्र बनाते। जिस विनाशकारी आत्मसमर्पणवृत्ति से वान गो ने कलानिर्मिति की उसके पीछे मनोवैज्ञानिक तत्व थे व उसके परिणामस्वरूप वे अन्त में पागल हुए। चित्रकार क्ली ने इस वृत्ति को 'वान गो की शोकान्तिका वृत्ति'[30] नाम दिया था। वान गो ने एक प्रकार से सांसारिक दुःखों को आवाहन किया था "मुझे मेरी कला द्वारा मेरी आत्मा का साक्षात्कार हुआ है। अब मेरे शरीर का कुछ भी हो मुझे उसकी चिंता नहीं है"। वान गो की कलानिर्मिति के अन्तर्गत उन्माद की अग्नि थी जो उनकी अस्तित्ववादी[31] जीवनप्रेरणा को जला रही थी। बचे हुए दो साल की अवधि में वान गो ने अगणित चित्र बनाये जैसा कि उनकी अंतरात्मा को भविष्य का पहले ही ज्ञान हो चुका था। वान गो का जीवन एक दुःखी जीवन की आदर्श कहानी थी जो आधुनिक कलाकारों को बारबार प्रेरणा देती रही व जिससे किर्शनर, नोल्ड, कोकोश्का आदि अभिव्यंजनावादी कलाकारों को पथप्रदर्शन प्राप्त हुआ।

वान गो ने आर्ल के हरेभरे खेतों, सार्वजनिक बगीचों, वाटिकाओं, पुलों, रास्तों व चौराहों के दृश्यों को चित्रित किया। टोकरी में रखे फलों व पात्र में सजाये फूलों के वस्तुचित्र बनाये। पोस्टमैन रुलँ व उनके परिवार के सदस्यों, किसानों व आर्ल के परिचित आदमियों के व्यक्तिचित्र बनाये। समीपवर्ती गांव में जाकर सागरतट एवं नावों के चित्र बनाये। जिस मकान में वे रहते थे उसको व नीचे के जलपानगृह के अंतर्गत दृश्य को भी उन्होंने चित्रित किया। दिन-रात परिश्रम करके उन्होंने सैंकड़ों चित्र बनाये। शारीरिक थकान आने पर भी यंत्रवत् कार्य करते। जिससे उनके कुछ चित्र आलंकारिक बन गये हैं।

वान गो ने कमरे को सूर्यमुखी के फूलों के चित्रों से सजाया व वहां चित्रकारों के मित्रमंडल की प्रस्थापना करने का विचार किया। प्राचीन क्रिश्चन लोकों की सहजीवन की कल्पना उनके मन मे बारबार आती व वे सोचते कि वहां समाजसेवा के ध्येय से प्रेरित चित्रकार एकत्रित होकर चित्र बनायेंगे व उनको उचित मूल्य में बेचेंगे जिससे सामान्य लोक भी उनको खरीद कर अपने मकानों की शोभा बढा सकेंगे। वान गो की कला व कार्य के पीछे कोई न कोई भावनात्मक उद्देश्य सदैव प्रेरणा रूप रहता; विशुद्ध कलासाधना का वे कभी विश्वास ही नहीं करते। बस वे चराचर सृष्टि से प्यार करना जानते व बाकी सब विचार उनके लिये गौण थे।

रंग से सुखद ऐंद्रिक अनुभव प्राप्त करने से पहले उसका जन्म प्रतीक रूप में वान गो के मस्तिष्क में होता। वान गो ने रंगों के प्रतीकात्मक महत्व को जाना व देखा कि प्रत्येक रंग से किसी विशिष्ट भावना का उद्दीपन होता है जैसे कि नीले से शान्ति, लाल से क्रोध, पीले से स्नेह वगैरह। वे भावना के अनुकूल रंगसंगति का प्रयोग करते; यह एक प्रकार से उनका रंगों का प्रतीकवाद था। 'मदिरागृह के अंतर्गत दृश्य'[32]

के बारे में उन्होंने लिखा है "लाल व हरे रंग से मैंने चित्र में मानवीय वासना को जागृत करने का प्रयत्न किया है। मैं व्यक्त करना चाहता हूं कि मदिरागृह ऐसा स्थान है जहां आदमी स्वयं को भूल जाता है, गुनाह करता है व अपना सर्वनाश कर सकता है"। गुलाबी व हलके रंगों से युक्त उनके चित्र 'शयनकक्ष'[33] के बारे में उन्होंने कहा था "यहां रंगों का कार्य है। सादे व प्रसन्न रंगों के प्रयोग से विश्राम व निद्रा के पोषक वातावरण का निर्माण करना है"। किंतु उनकी रंगसंगति का ध्येय रोमांसवादी नहीं था; अपनी रंगसंगति के उद्देश्य के बारे में उन्होंने लिखा है "मेरी रंगसंगति का उद्देश्य शांति, रोचकता व सत्य के भाव को निर्माण करना है व भावनाओं के साथ······· संगीत के समान शांतिप्रद"। चित्रकला में रंगों की भाषा को समझने की आवश्यकता पर वान गो ने बल दिया। 'ओजेनबॉश'[34] के व्यक्तिचित्र की पृष्ठभूमि के संदर्भ में उन्होंने कहा "पृष्ठभूमि को मैं चमकीले नीले रंग से–जिसमें आकाश के अनंतत्व का भास है– अंकित करता हूं जिससे व्यक्ति का चेहरा ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि आसमान में सितारा"। मानवजाति के लिये सूर्य के महत्व को रूपायित करने के उद्देश्य से वे सूर्य को पीले रंग से चित्रित करते क्योंकि वे जानते थे कि पीले रंग में वही पावित्र्य व चैतन्य की भावना है जो सूर्य में है। पीले रंग को प्राधान्य देकर बनाये उनके 'सूर्यमुखी के फूल' चित्रों में पारलौकिक तेज व पावित्र्य है जिनसे वे साधारण वस्तुचित्रों से भिन्न व श्रेष्ठ दिखायी देते हैं। वान गो स्वयं कहते "मेरे सूर्यमुखी के फूलों के चित्रों पर गिरजाघरों के कांचचित्रों का प्रभाव है"।

वान गो के आत्मचित्रों व व्यक्तिचित्रों से वान गो की सहृदयता व चित्र-विषय के प्रति आत्मीयता का परिचय होता है। उन्होंने अपनी व्यक्तिचित्रण की आकांक्षा के बारे में लिखा है "महात्माओं के ऐसे चित्र बनाने की मेरी मनीषा है जिनमें चित्रविषय आधुनिक हो किंतु दर्शन में प्राचीन संतों की प्रतिमाओं के समान पवित्र व सहृदय"। किंतु वे निजी प्रबल भावनोद्वेग के सामने विवश थे व उनको सर्वत्र दुःख, कष्ट व अगतिकता का साम्राज्य फैला हुआ दिखायी देता एवं मुख्यतः इन्हीं भावनाओं का दर्शन हमें उनके व्यक्तिचित्रों में होता है। उनके आत्मचित्र उनकी दयालु किंतु किंकर्तव्यमूढ मानसिक अवस्था के दर्पण हैं एवं व्यक्तिचित्रों के मानव निष्कपट, परिश्रमी किंतु दुःखी व अकेले हैं। बचपन से ही वे फूलों से, सजीव प्राणियों के समान प्यार करते और उन्होंने फूलों के चित्र भी उतनी ही आत्मीयता से बनाये हैं जितने कि व्यक्तिचित्र।

उनके चित्रों का केवल संदेशात्मक महत्व नहीं है; उनमें हमें सौंदर्यात्मक गुणों का भी दर्शन होता है। अवकाश व स्थानांतर के परिणाम को अंकित करने के लिये वे जापानी कला के समान स्वाभाविक संयोजन करके वस्तुओं का समुचित स्थापन करते। लयबद्ध रेखाओं से उनके चित्रों को गतित्व प्राप्त होता। उनकी

पसंद के चित्रों में रेम्ब्रांट के 'लाजारस का उत्थान'[35], देलाक्रा के 'दयालु सेमेरिटन', दोमीय के 'शराबी' व मिले के 'बीज वोनेवाला' ये चित्र थे जो गतिमान रेखाओं से सचेत हैं। वस्तु की आकार-विशेषताओं को स्पष्टता देने के हेतु वे ज्योतो की तरह अनावश्यक बारीकियों को छोड़ देते व जापानी कला का अनुकरण करके आकारों को वाह्य रेखा से अंकित करके सरलीकृत रूप देते। रंगांकन के समान उनका रेखांकन भी भावदर्शी व सजीव है। जहां आवश्यक हो वहां गतिमान लयबद्ध रेखाओं का प्रयोग है—जैसे कि उनके चित्र 'सरोवृक्षों का मार्ग'[36] में। 'ओजेन बॉश,' 'नट' 'आर्मो रुलँ'[37] आदि व्यक्तिचित्रों में वाह्यरेखाओं को ऐंठन देकर उन्होंने चित्रित व्यक्ति की आंतरिक स्वभाव-विशेपता का दर्शन कराया है। उनका ऐंठनदार रेखांकन अभिव्यंजनावादी कला का प्रारम्भिक चरण था। वाह्य रेखा के अलावा छोटी छोटी लकीरों में रंगांकन करके वे पूरे चित्रक्षेत्र में गतित्व डालते। वे चित्रकला को संगीत के समान मानते और इस समानता के पारस्परिक सम्बन्धों को ज्ञात करने के हेतु कुछ समय तक उन्होंने एक पियानो-वादक से संगीत के पाठ लिये। उनके चित्रों की रंगसंगति में रंगबिरंगे पक्षियों, तितलियों व फूलों की मनोहारिता है।

वान गो के आयोजित 'चित्रकार-सदन'[38] में सम्मिलित होने का निमन्त्रण केवल गोग्वँ ने स्वीकारा। गोग्वँ उस समय ब्रित्तनी में रहते थे, व उनकी आर्थिक परिस्थिति वान गो से भी गयी बीती थी। गोग्वँ के स्वागत के लिये वान गो ने मकान को अच्छे ढंग से सजाया। गोग्वँ के आने पर दोनों के कलासम्बन्धी काफी वादविवाद होते जिनमें गोग्वँ अधिकारवाणी से प्रभुत्व जमाते एवं इसका संवेदनशील वान गो के मस्तिष्क पर विकृत परिणाम होता। गोग्वँ वान गो के कलात्मक दृष्टिकोण एवं समस्याओं को भलीभांति जानते और उनको आवेशपूर्ण किंतु कल्पनाहीन चित्रण करने से परावृत्त होने की सलाह देते। गोग्वँ की बुद्धिमता पर वान गो विश्वास करते एवं उनका बहुत आदर भी करते, किंतु अपनी भावनाओं की उमंगों को रोक कर गोग्वँ की सलाह से चलना उनके लिए असम्भव था। वे वस्तु के अन्तर्गत छिपी प्राकृतिक शक्तियों का—जिनसे जड़ वस्तुएं भी सचेत व स्वतन्त्र व्यक्तित्व लिये हुए प्रतीत होती हैं—साक्षात्कार करना चाहते। वस्तु के अंतर्गत चैतन्य को अनुभव करने के लिये आवश्यक था कि वस्तु को प्रत्यक्ष सम्मुख देखकर उसका आत्मीयता से निरीक्षण किया जाये और उसके साथ भावनात्मक ऐकात्म्य रखा जाये। भौतिक सृष्टि एक प्रकार से दर्पण है जिसमें देखे बिना आत्मा का दर्शन नहीं होता; अतः वान गो के लिये जड़ सृष्टि का सहाय आवश्यक था जिसके जरिये वे चित्शक्ति को अनुभव कर सकते। वान गो की इस मानसिक अवस्था को गोग्वँ समझ न पाये और वे उनको प्रत्यक्ष देख कर चित्रण करने से बारबार रोकने लगे। गोग्वँ की बुद्धिमत्ता पर अत्यन्त श्रद्धा होने से वान गो उनकी सलाह मानते किंतु उसको कार्यान्वित करने में असफल रहते। अचल वस्तुओं की चिन्मयता पर निष्ठा रख के उनकी आत्मिकता पर कला में बल देने की

वान गो की कल्पना का वाद में इटालियन 'आत्मतत्वीय कला' व 'अतियथार्थवाद' में अधिक स्पष्टता से प्रयोग किया गया।

गोग्वँ व वान गो के बीच का तनाव बढ़ता गया; एक दफे वान गो ने गोग्वँ के ऊपर कांच का प्याला फेंक दिया व दूसरी दफा उस्तरा ले कर उनके पीछे भागे। अन्त में किसी रहस्यमय घटना के फलस्वरूप वान गो ने अपना एक कान काट कर कागज में लपेट लिया व वेश्यागृह के दरवाजे पर छोड़ आये। गोग्वँ वहीं से चले गये और वान गो को चिकित्सालय में भरती करना पड़ा। थिओ उनसे मिलने आये व कुछ दिनों बाद उनकी चिकित्सालय से मुक्ति हुई। वान गो के इस आचरण से आर्ले के लोक उनको पागल समझ कर परेशान करने लगे और फिर उनके दिमाग में विकृति पैदा होकर उनको से रेमी के पागलखाने में भरती होना पड़ा। आर्ले के चिकित्सालय में उन्होंने अंतर्भागों के दृश्यों, निवासियों, बगीचों एवं स्वयं के कई प्रभावी चित्र बनाये। से रेमी में वे पुनश्च कुछ मानसिक शांति को अनुभव कर रहे थे और वहां उन्होंने बहुत चित्र बनाये जिनमें उनकी कुछ प्रसिद्ध कृतियां भी हैं। वहां के एक साल के निवास में उनको बीचबीच उन्माद के झटके आते एवं उस साल के उनके चित्रों का अंकन व तूलिका संचालन इतना सावेश और वृत्ताकार रेखाओं से गतिपूर्ण है कि ऐसा प्रतीत होता है कि ये चित्र उन्होंने उन्मत्तावस्था में बनाये हों। इन चित्रों में से 'घाटी', 'तारों भरी रात' [३९] व 'सरोवृक्षों का मार्ग' प्रसिद्ध हैं। चित्रों में सारी सृष्टि प्रलयग्रस्त सी प्रतीत होती है। वहां एक बार उन्मत्त होकर वान गो रंग पी गये।

उस वर्ष के अन्त के करीब थिओ ने उनको कुछ उत्साहदायक खबरें भेजी कि वान गो का एक चित्र बिक गया और थिओ के लड़का पैदा हुआ। वान गो का यह चित्र जो बिक गया था वह भी थिओ ने वान गो को उत्साहित करने के हेतु अपने मित्र से खरीदवाया था। अब थिओ की सलाह से वान गो ओवर में डा. गाशे की देखभाल में रहने गये। गाशे प्रभाववादियों के मित्र व उनके चित्रों के रसिक संग्राहक थे और सेजान का चित्र पहलेपहल उन्होंने ही खरीदा था। गाशे के स्नेहपूर्ण व्यवहार से वान गो में उत्साह पैदा हुआ और उन्होंने फिर से चित्रण शुरू किया, और गाशे के व्यक्तिचित्र, नदी किनारों व खेतों के दृश्यचित्र बनाये। किंतु यहां भी उनको बारबार उन्माद के झटके आने लगे। एक रोज बाहर दृश्यचित्र बनाते समय वान गो ने अपने ऊपर गोली चलायी। थिओ तुरन्त उनसे मिलने आये। दो रोज बाद इस महान् कलाकार की आयु के ३७वें साल में मृत्यु हुई। मरने से पहले उनकी थिओ से बहुत बातें हुईं जब उन्होंने कहा "मानवीय दुःख कभी मिट नहीं सकता"[४०]। अंतिम पत्र में उन्होंने लिखा था "मेरे कार्य की सिद्धि में, मैंने अपनी जान खतरे में डाली है और मेरे मस्तिष्क का संतुलन आधा नष्ट हो चुका है"। छः महिने बाद उनके प्रिय भाई थिओ का भी देहावसान हुआ। दोनों भाइयों के शव ओवर में पासपास दफनाए हैं और दफनभूमि के चारों ओर वान गो के प्रिय सूर्यमुखी के फूल लगाये हैं।

वान गो की कला में मौलिक गुण होते हुए उनमें घमण्ड नहीं था। वे बहुत ही विनयशील थे और जब १८६० में प्रतीकवाद के पुरस्कर्ता ओरिय ने वान गो की प्रशंसा में लेख प्रकाशित किया तब वान गो ने विनम्रता से उनको पत्र में निवेदन किया कि जिस कार्य की सराहना में उन्होंने वान गो की प्रशंसा की है उसका संपूर्ण श्रेय गोग्वँ को ही दिया जाना चाहिये। २० साल की अवधि में वान गो ने ७०० से अधिक रंगीन चित्र व १००० से अधिक रेखाचित्र बनाये किंतु जीवनभर में केवल एक दृश्यचित्र, एक व्यक्तिचित्र व करीब बीस रेखाचित्र बेच सके जिससे उनको कुल लगभग पांच सौ रुपयों की प्राप्ति हुई। मृत्यु के बीस साल पश्चात् उनका सूर्यमुखी के फूलों का चित्र लगभग तीन लाख रुपयों में बिका।

वान गो के जीवन एवं कला में द्वंद्वात्मक प्रेरणाएं कार्यान्वित थीं—एक ओर शारीरिक कष्ट व मानसिक असंतुलन और दूसरी ओर चराचर सृष्टि का प्रेम व अज्ञात की खोज। वान गो कहते "चित्रकला में अनाद्यनंत का दर्शन है"।

वान गो की कला के शैली की दृष्टि से तीन विभाग किये जा सकते हैं: १८८०-१८८५ रोमांसक यथार्थवाद, १८८६-१८८८ प्रभाववाद, १८८८-१८९० अभिव्यंजनावाद।

अभिव्यंजनावादी चित्रकारों की उद्वेगपूर्ण अभिव्यक्ति का आरम्भ जैसे वान गो की कला में दृष्टिगोचर है उसी प्रकार वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावादी चित्रकारों की सावेश अंकनपद्धति के पूर्वचिन्ह भी वान गो की कला में पाये जाते हैं एवं इन चित्रकारों की निष्ठा थी कि उनकी वस्तुनिरपेक्ष कला में भी मानवीय भावनाओं को उद्दीपित करने का सामर्थ्य है। आजकल कुछ चित्रकार जिसको साध्य मानते हैं वह वान गो के लिये साधनमात्र था जिसके द्वारा जीवन के अन्तिम आनन्द व सत्य की उन्होंने खोज की।

पौल गोग्वँ (१८४८–१९०३)

जिन कलाकारों की कला में नये क्रांतिकारी तत्व होते हैं उनको प्राय: मान्यता के लिये अपनी आयु की लंबी अवधि तक परम्परागत विचारशक्तियों से कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। समय के साथ उनके विचारों की सत्यता का लोकों को परिचय होता है कलाक्षेत्र में नये विचारप्रवाह को मान्यता मिलती है। उत्तरप्रभाववादी चित्रकारों को भी ऐसे ही आमरण संघर्ष करना पड़ा किंतु उनके प्रदत्त नये मूल्यों से बीसवीं शताब्दी की कला का कल्पनातीत रूपांतर हुआ। उनमें से गोग्वँ ने सिद्ध किया कि यदि रंगों व रेखाओं के सहजगुणों का विचार करके उनकी विशुद्ध रूप में व कल्पनापूर्वक योजना की जाये तो कलाकृति सृजनात्मक व परिणामकारक हो सकती है। वे नहीं चाहते कि रंगों का प्रयोग छायाप्रकाश का आभास दिखाने के लिये किया जाये या रेखा का प्रयोग वस्तु की बाह्याकृति को हूबहू अंकित करने के लिये किया जाये। वे प्रभाव-

वादियों के रंगांकन के संदर्भ में कहते "कोई भी निश्चय के साथ कह नहीं सकता कि प्रभाववादियों के ये रंग दृश्य के उसी समय के सही रंग हैं । ये सभी रंग झूठ हैं, निर्जीव हैं" । गोग्वँ ने सिद्ध किया कि सृजनात्मक कला में कलाकार के आंतरिक विचार महत्व रखते हैं, वास्तवसृष्टि का वाह्य रूप नहीं ।

पौल गोग्वँ का जन्म १८४८ में हुआ । उनके पिता फ्रेंच पत्रकार थे एवं माता किसी पेरू देश के वंश की थीं दोनों समाजवादी विचार के थे व नेपालियन के सत्तारूढ़ होते ही वे पेरू देश चले गये जहां पौल के पिता की मृत्यु हुई । आयु के २७ वें साल में पौल फ्रेंच व्यापारी जहाज पर नाविक की नौकरी करने लगे । सात साल के नाविक जीवन के वाद उनको पैरिस के स्टॉकब्रोकर के कार्यालय में नौकरी मिली एवं दो साल वाद उनका डेन्मार्क के एक सधन परिवार की लड़की से विवाह हुआ । अब सफल पारिवारिक जीवन के लिये आवश्यक सब साधन संपत्ति उनको प्राप्त हो गयी थी और सुखी सामाजिक जीवन के पथ पर वे प्रगतिशील हो गये थे । उनके भावी संघर्षमय कलापूर्ण जीवन का अस्पष्ट सा चिन्ह भी कहीं दिखायी नहीं दे रहा था ।

कामकाज यथाक्रम पूर्ण करके, फुरसत में गोग्वँ चित्रकला व हस्तकला में रुचि लैने लगे । उनका मकानमालिक मूर्तिकार था और उसके कार्यकक्ष में काम करने की गोग्वँ को सुविधा मिली । एमिल शुफानेक उनके एक सहकर्मचारी व शौकीन चित्रकार थे । कुछ समय तक नौकरी करके शुफानेक ने त्यागपत्र दिया और वे कला के अध्यापक व व्यावसायिक कलाकार वन गये । वे प्रभाववादियों के मित्र थे एवं उन्होंने गोग्वँ को प्रभाववादियों से परिचित कराया । कामीय पिसारो ने गोग्वँ का चित्रकला में मार्गदर्शन किया और १८७९ का ग्रीष्मकाल गोग्वँ ने पांत्वाज में पिसारो के साथ प्रकृतिचित्रण में बिताया । गोग्वँ को प्रभाववादी चित्र बहुत पसंद थे और उन्होंने माने, मोने, रेन्वा, ग्वियामँ, पिसारो, सेजान व योंकिंड के चित्र खरीदे थे । १८७६ की राष्ट्रीय प्रदर्शनी में गोग्वँ का एक चित्र स्वीकृत हुआ । १८८०, १८८१ व १८८२ की प्रभाववादियों की प्रदर्शनियों में उनके चित्र दिखाये गये । कलासमीक्षक युइमां ने उनके विवस्त्र स्त्री के चित्र की बहुत प्रशंसा की । प्रोत्साहित होकर नौकरी का समय छोड़ कर गोग्वँ सारा दिन कलाकार्य में व्यस्त रहने लगे ।

१८८३ में अपनी पत्नी व सहकर्मचारी मित्रों के विरोध के वावजूद गोग्वँ ने नौकरी छोड़ दी और संपूर्ण समय कलासाधना में लगाने का निश्चय किया । उनकी पत्नी ने पिसारो को दोषी ठहराया । गोग्वँ में आमूल परिवर्तन हो गया । सर्वमान्य प्रतिष्ठित जीवन को छोड़कर उन्होंने पूर्ण स्वच्छंद रहन-सहन अपनाया । अव गोग्वँ के साहसपूर्ण, रोमांचकारी व कलामय जीवन का आरम्भ हुआ जिससे मुग्ध होकर साहित्यकारों ने उनके जीवन पर कहानियां लिखीं ।

गोग्वँ सपरिवार रुएन रहने गये किंतु एक ही साल में उनकी वचत समाप्त हुई । पत्नी की सलाह से. वे कोपेनहागेन गये जहां पत्नी के रिश्तेदारों की जानपह-

चान से अर्थार्जन का कोई साधन उपलब्ध होने की वे आशा कर रहे थे। वहां उन्होंने चित्रों की प्रदर्शनी की किंतु डेन्मार्क की सरकार ने लोकों के विरोध को देख कर उसको बंद करवा दिया।

गोग्वँ एक अजनबी व्यक्ति थे जिनके स्वभाव के बारे में कोई निश्चित मत व्यक्त करना कठिन है। उनकी मुखाकृति स्पष्ट व दृढता के भाव लिये हुए थी। वे शरीर से मजबूत और स्वभाव से झगडालू थे। वे साहसपूर्ण व रहस्यमय जीवन को पसंद करते। कलाकार के रूप में प्रसिद्ध होने पर वे अक्सर विचित्र पोशाक पहन कर घूमते।

१८८५ में पत्नी के रिश्तेदारों से झगड़ा करके वे फिर अपने छः साल के बच्चे को लेकर पैरिस वापस आये। पैसा कमाने के लिये जो कोई छोटा-मोटा काम मिलता वे कर लेते किन्तु उससे उनका गुजारा नहीं होता। कई बार उनको भूखे रहना पड़ता व फटे कपड़े पहनते तब उनकी पत्नी बच्चे को ले गयीं और वे पारिवारिक जिम्मेवारियों से पूर्ण मुक्त हो गये। १८८६ की प्रभाववादियों की अन्तिम प्रदर्शनी में उनके १९ चित्र दिखाये गये। उसी साल वे पों आवां रहने गये जहां रहनसहन का खर्च कम था। जीवन शहरी कृत्रिमता से अलिप्त था एवं वातावरण प्राकृतिक सौंदर्य से ओतप्रोत था। ब्रित्तनी के चित्रों में गोग्वँ की प्रभाववाद से भिन्न निजी शैली का उदय स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। पों आवां में कुछ उत्साही नवकलाकारों का मंडल गोग्वँ के कलासंबंधी विचारों से आकर्षित हुआ। वे गोग्वँ से चर्चा करते और उनकी कलाकृतियों का अध्ययन करके उनसे प्रेरणा लेते।

आर्थिक स्थिति में कोई सुधार होने की आशा दिखायी नहीं दे रही थी। गोग्वँ की साहसवृत्ति व प्रवासी जीवन की अभिरुचि ने उनको कहीं उष्णकटिबंधीय प्रदेश में जाने की प्रेरणा दी। वे एक कलाकार मित्र के साथ जहाज पर सवार हुए व पनामा गये; वहां नहर खुद रही थी और कोई काम मिलने की आशा थी किन्तु उनको केवल गड्ढा खोदने का काम मिला जिसके लिये बहुत ही कम पारिश्रमिक मिलता था। कुछ सप्ताहों तक काम करके वे इष्ट स्थान मार्टिनिक द्वीप पहुंचे। यहां वे अधिक काल तक रह नहीं सके। गोग्वँ पेचिश से बीमार पड़े और उनके मित्र मलेरिया से हैरान हो गये। लगभग दो दर्जन चित्र बना कर गोग्वँ पैरिस लौटे। इन चित्रों पर उष्णकटिबंधीय प्रदेशों के सतेज रंगों व स्पष्ट आकारों का परिणाम है व चित्र पैरिस काल की प्रभाववादी शैली से भिन्न स्वतंत्र शैली में बनाये गये हैं। थिओ वान गों ने गोग्वँ के मार्टिनिक व ब्रित्तनी के चित्रों की प्रदर्शनी की और जो कुछ पैसा मिला उसको लेकर गोग्वँ फिर पों आवां में रहने लगे।

गोग्वँ ने अब आकारों को गहरी बाह्य रेखा से परिसीमित करके चमकीले समतल रंगों में चित्रण करना आरम्भ किया एवं यह उनकी स्वतन्त्र अंकनपद्धति की प्रमुख विशेषता बन गयी। वे संश्लेषणवाद पर जोर देते; और अपने विचारों को

सिद्धांत रूप देकर दृढ़ता से एवं सरलता व निर्णय के साथ कहते जिससे पों आवां के नवकलाकारों के वे प्रेरणास्थान वन गये। संश्लेषणवाद में वास्तविक रूप व कलाकार की कल्पना के समन्वय का विचार प्रमुख है; अपनी कल्पना को परिणामकारक रूप में चित्रित करने के उद्देश्य से संश्लेषणवादी चित्रकार वस्तु के नैसर्गिक आकार में परिवर्तन करते या उसको ऐंठन देकर अंकित करते एवं नैसर्गिक रंगों के स्थान पर प्रतीकात्मक रंगों का प्रयोग करते। गोग्वँ का प्रतीकवाद केवल सर्वमान्य प्रतीकों पर निर्भर नहीं था—जैसे कि कला की परंपरागत कल्पनाओं के अनुसार दुष्टता के लिये शैतान का चेहरा, निर्मलता के लिये फूल, निष्कपटवृत्ति के लिये बालक वगैरह प्रतीकों द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करने की अपेक्षा समुचित रंगों, आकारों व वातावरण द्वारा चित्र में इष्ट रस का निर्माण करना वे अधिक पसंद करते। प्रतीकात्मकता के विचार से गोग्वँ के चित्रों की तुलना भारतीय रागरागनियों के चित्रों से करना उद्बोधक है। गोग्वँ के ब्रित्तनी के चित्र विशुद्ध चमकीले रंगों का प्रयोग व स्पष्ट ऐंठनदार वाह्य रेखाओं के अंकन से सामर्थ्यवान वन गये हैं। इन चित्रों में ब्रित्तनी के निवासियों के असभ्य किंतु धार्मिक व निष्कपट जीवन का दर्शन है। ब्रित्तनी काल के गोग्वँ के चित्रों में 'जेकोव का देवता से द्वंद्वयुद्ध'[41] प्रसिद्ध है। चित्र का संयोजन वड़ा अनोखा है—वृक्ष के तने को कर्णवत् दिशा में चित्रित करके चित्रक्षेत्र को दो हिस्सों में विभाजित किया है जिनमें से ऊपरी हिस्से में द्वंद्वयुद्ध को व नीचे के हिस्से में श्रद्धा के भाव से द्वंद्वयुद्ध को देखते हुए भोली ब्रित्तनी की स्त्रियों के जमाव को उनकी सीधीसादी पोशाक में चित्रित किया है। अंकनपद्धति में बाह्यरेखायुक्त आलंकारिक शैली का प्रयोग है व अभिव्यक्ति धार्मिकतापूर्ण है। चित्रसंयोजन देगा के समान आकस्मिकता का प्रभाव लिये हुए हैं; रंगों में हरा, नीला, सफेद व लाल का विशुद्ध प्रयोग है व जहां तक संभव हो छायाप्रकाश का कम से कम प्रयोग है। गोग्वँ की स्वतन्त्र शैली का यह आरम्भिक सृजन है। अव गोग्वँ अनुभव करने लगे कि प्रभाववाद की धुंधली व कल्पनाहीन शैली को त्याग करके सेजान ने योग्य दिशा में कदम उठाया था और उन्होंने सेजान की प्रकट रूप से प्रशंसा की; किंतु संशयी स्वभाव की वजह से सेजान को संदेह हुआ कि शायद अपने विचारों एवं शैली का अनुकरण करने के उद्देश्य से गोग्वँ ने यह चाल चली है।

१८८८ के अन्त में वान गो के निमंत्रण को स्वीकार कर गोग्वँ आर्ल गये जहां दोनों में तनाव वढ़ कर उसका कैसा दुर्भाग्यपूर्ण अन्त हुआ यह हम पहले ही देख चुके हैं।

पों आवां के नवचित्रकारों में एमिल, वर्नार, लावाल, सेरूसिय, फिलिजे व सेग्वँ थे। गोग्वँ व एमिल वर्नार ने अभ्यास के प्रभाव से मुक्त होकर, वच्चों के समान चित्रण करने का अपना विचार घोषित किया। कुछ सीमा तक गोग्वँ की कला में वालचित्रकला के गुण पाये जाते हैं जैसे कि चमकीले विशुद्ध रंगों का प्रयोग, स्वाभा-

विक की अपेक्षा आलंकारिक आकारों का नियोजन, नैसर्गिक अनुपात की उपेक्षा एवं वस्तु के दृश्यरूप के स्थान पर काल्पनिक सरल आकारों का प्रतीकात्मक अंकन। परन्तु इन गुणों के अतिरिक्त गोग्वँ की कला में जो बौद्धिक ध्येयवाद है वह बालचित्र-कला में नहीं होता।

गोग्वँ हमेशा अपने ध्येय की पूर्ति के लिये अनुकूल वातावरण को पसंद करते और ऐसे निसर्गरम्य व कृत्रिम सभ्यता के बंधनों से मुक्त वातावरण को देख कर ही उन्होंने ब्रित्तनी को अपना निवासस्थान बनाया था। रंग, रेखा व आकार जैसे कला के मूल तत्वों के स्वाभाविक सौंदर्य एवं मानवीय भावनाओं के पारस्परिक संबंध के रहस्य को जानने को वे उत्कंठित थे और इसी कारण उनकी कला व समकालीन प्रतीकवादी साहित्य में घनिष्ठ समानता है। दोनों में भौतिक की अपेक्षा आत्मिक एवं ऐंद्रिक की अपेक्षा काल्पनिक पर बल दिया है। समकालीन प्रतीकवादी कवि मालार्मे ने साहित्य में प्रतीकवाद के महत्व को बताते हुए लिखा था 'किसी भी विचार को स्पष्ट शब्दों में लिखने से उसका सृजनात्मक आनन्द नष्ट हो जाता है……उसकी ओर अपरोक्ष ढंग से ही संकेत किया जाना चाहिये….इसी से ही कल्पना का सुख मिलता है"। उसी प्रकार गोग्वँ ने प्रभाववादियों की दृश्य को प्रत्यक्ष देख कर चित्रित करने की नीति की निंदा करते हुए लिखा "आंख के समीप जो वस्तु है उसकी वे खोज कर रहे हैं, विचार के गूढ केन्द्र में जो है उसकी नहीं……वे कल के पदारूढ चित्रकार हैं"[42]। प्रतीकवाद के मुख्य सिद्धांत के अनुसार 'कल्पना को कलाकृति में साकार करना'[43] कलाकार का मुख्य कार्य है। गोग्वँ की कला पर यह परिभाषा पूर्णरूप से लागू होती है। टाहिटी के चित्रों में उन्होंने 'आदिम स्त्री की आंखों में छिपे हुए रहस्य' व मानवीय जीवन के कूटप्रश्न को दृश्यरूप में दर्शकों के सम्मुख रखा है। सहजज्ञान पर निर्भर रह कर सृजन करने का प्रयत्न व रोमांसवादी प्रवृत्ति के बीच द्वंद्व होने से गोग्वँ की कला में 'नुवो कला' के तत्व दृष्टिगोचर हुए। नुवो कला का जन्म बेल्जियम में हुआ; उस पर फ्रेंच उत्तरप्रभाववादी चित्रकारों की कला एवं उत्तरी योरप के चित्रकार मुंख व होलडर की कला का प्रभाव है; आलंकारित्व, नाविन्यपूर्ण आकार व वृत्ताकार गतिपूर्ण रेखाएं आदि तत्वों का उसमें स्पष्ट दर्शन है। गोग्वँ का 'नुवो कला' से प्रत्यक्ष संबंध नहीं था किंतु नुवो कलाकारों ने सोरा, सिन्याक, वान गो, तुलुज लोत्रेक व गोग्वँ की कला से प्रभावित होकर उनके चित्रों को बेल्जियम में प्रदर्शित किया था जिससे उनकी कला को काफी पथप्रदर्शन हुआ। गोग्वँ की कला का जैसे विकास होता गया वैसे उसमें सर्पगति रेखाएं व वक्रतापूर्ण काल्पनिक आकारों का दर्शन बढ़ता गया जिससे उसको आलंकारित्व के साथ जैविक सामर्थ्य प्राप्त हुआ। गोग्वँ ने 'नुवो कला' के तत्वों का सीमित व आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जिससे उनकी कला 'नुवो कला' के समान केवल आलंकारिक बनने के धोखे से बची। 'नुवो कला' जर्मनी में 'युगेंटस्टिल' नाम से प्रसिद्ध हुई।

१८८८ में चित्रकार सेरुसिय ने ब्रित्तनी जाकर गोग्वँ के क्रांतिकारी सिद्धांतों का अध्ययन किया व उनका पालन करके 'तावीज'[44] नाम का एक चित्र सिगार की पेटी के ढकने पर बना कर बोन्नार व वुइलार को दिखाया। दूसरे साल गोग्वँ, उनके मित्र व कुछ अनुयायी एमिल बर्नार, लावाल, शुफानेक व मोंफ्री ने 'काफे वोल्पँय' में 'संश्लेषणवादी-प्रतीकवादी चित्रकारमंडल' नाम से प्रदर्शनी आयोजित की जिससे पैरिस के तरुण कलाकारों को गोग्वँ के सिद्धांतों का अधिक अध्ययन करने का मौका मिला। बाद में गोग्वँ ने संश्लेषणवादी चित्रकारों से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया क्योंकि वे अपनी कला को किसी वाद से सीमित नहीं रखना चाहते। वे कहते "मैं शैली या सिद्धांत के बंधन का विरोधी हूं। यह एक प्रकार से अपने पड़ोसी का अनुकरण करने के समान होगा। मेरा उद्देश्य केवल परम्परागत बंधनों से कला को मुक्त करना है"। सेरुसिय के नेतृत्व में कुछ चित्रकार 'नाबि' नाम से कलानिर्मिति करते रहे। गोग्वँ निकटवर्ती 'ल पुल्दु' नाम के सागरतट पर स्थित गांव में रहने लगे।

गोग्वँ व एमिल बर्नार मध्ययुगीन रंगीन कांचचित्रों से प्रभावित थे एवं अपने चित्रों में कांचचित्रों के समान चमकीली रंगसंगति का प्रभाव दिखाने के उद्देश्य से वे विशुद्ध रंगों का विस्तृत क्षेत्रों में प्रयोग करते। गोग्वँ कहते "यदि आप चित्र में हरा-पन चाहते हैं तो पहले जान जाओ कि हरे के छोटे धब्बे से एक एकड़ हरा अधिक हरा होता है"[45]। ऐसे घोषित करके उन्होंने प्रभाववादी एवं नवप्रभाववादी रंगांकन पद्धति को छोड़ दिया व अपने चित्रों को रंगीन कांचचित्रों का तेज प्रदान किया।

जापानी चित्रकला के प्रभाव से गोग्वँ वस्तु के आकार को बाह्यरेखा से अंकित करने लगे। समकालीन फ्रेंच चित्रकारों में 'जापानवाद' प्रिय हुआ था। जापानी छापचित्रों व मध्ययुगीन कांचचित्रों के समन्वय से गोग्वँ की शैली को नया रूप मिला— जो क्लाइसोनिजम कहलाता था। रेखा के महत्व को स्पष्ट करते हुए गोग्वँ ने कहा था "रेखाएं भी स्वभावविशेषता लिए हुए होती हैं—जैसे सहृदय रेखाएं, हीन रेखायें, कठोर रेखायें वगैरह; सरल रेखाओं से अनंत विशालत्व का आभास होता है व वक्र रेखाओं से संकोच पैदा होता है"। वे कहते "रेखा में रंगों का सामर्थ्य है"। चित्र में वस्तु का हुवहू सादृश्य दिखाने की निंदा करते हुए उन्होंने कहा था "कला का कार्य मूल तत्वों का पृथक्करण करना है"[46]। वे प्राकृतिक रूप का विचार नहीं करते बल्कि अपनी कल्पना को साकार करने के उद्देश्य से पट के सम्मुख चिंतन करते। 'आलिव के बगीचे में ईसा' चित्र के बारे में उन्होंने कहा था "इस चित्र में वस्तुनिरपेक्ष उदासीनता है व उदासीनता मेरे सृजन की आत्मा है"। वे पुनः पुनः कहते "आकारों व रंगों में विचारों को जागृत करने का कितना आश्चर्यजनक सामर्थ्य है"। बोदेलेर ने जिसको 'कलात्मक संवादित्व'[47] नाम दिया है उसका गोग्वँ की कला समुचित उदाहरण है। बोदेलेर के अनुसार संगीत, साहित्य, चित्रकला वगैरह कलाओं में भिन्न ऐंद्रिक अनुभूतियों द्वारा समान भावनाओं को उद्दीपित करने का सामर्थ्य है। गोग्वँ

को विश्वास था कि चित्रकला को संगीत के समान रूप प्राप्त होता जा रहा है। उनका मत था कि संगीत की भांति चित्रकला वास्तविकता से ऐंद्रिक अनुभूति को पृथक् करके, विशुद्ध वस्तुनिरपेक्ष रूप का दर्शन कराकर आत्मा पर प्रभाव डालती है; रंगसंगतियों की स्वर रचनाओं से घनिष्ठ समानता है।

मध्ययुगीन शिल्पिसंघों की कल्पना गोग्वँ को इतनी भाती कि उसी प्रकार के शिल्पकारों के मंडल की प्रस्थापना वे किसी उष्णकटिबंधीय प्रदेश में करना चाहते; ऐसे प्रदेश में—जो आधुनिक सभ्यता से अछूता हो—शिल्पकार आर्थिक चिंताओं से मुक्त होकर स्वतन्त्र विचार से सृजन करता व उसकी कला को भ्रष्ट होने का भय नहीं होता। कला में हस्तशिल्प का महत्व बढ़ाने के विचार से उन्होंने काष्ठखुदाई से चित्र बनाये। आधुनिक कला के प्रणेता मध्ययुगीन कला व शिल्पिसंघ की कल्पना से प्रभावित थे यह बात इस विचार की पुष्टि करती है कि कला परिवर्तनशील है। गोग्वँ व्यक्तिस्वातंत्र्य के पुरस्कर्ता थे किंतु उसके साथ संघ की प्रस्थापना करके कलाकारों में सामाजिक कर्तव्यबुद्धि को भी जागृत रखना चाहते।

ल पुल्दु में गोग्वँ ने कई महत्वपूर्ण चित्र बनाये जिसमें से 'पीला ईसा' विशेष प्रसिद्ध है। इस चित्र पर प्राचीन रोमानेस्क शैली का प्रभाव है। खेत में खड़े किये क्रॉस पर ईसा की पीली आकृति को एवं उनके आसपास उनको अभिवादन करते हुए भक्त स्त्रीगण को चित्रित किया है। घनत्व का परिणाम दिखाने के बजाय समतल आकारों को बाह्य रेखा से स्पष्ट किया है व दूरदृश्यलघुता के स्थान पर काल्पनिक रेखाओं से संयोजन किया है। उनके कहे अनुसार 'पीला ईसा' में उन्होंने ग्रामीण लोकों की सीधीसादी, निष्कपट किंतु कट्टर धर्मभावना को व्यक्त किया है। चित्रणपद्धति के बारे में अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने पत्र में लिखा हैं, "कला में गूढजीवन का प्रकटीकरण होता है; इस जीवन को अनुभव करने के लिये प्रकृति में जा सकते हो, किंतु वहां स्वप्न देखो व सृजनशील बनो"। 'पीला ईसा' में भी ऐसे ही स्वप्निल दृश्य का प्रभाव है।

गोग्वँ अपने विचारों को बहुत ही परिणामकारक ढंग से व्यक्त करते। प्रत्यक्ष देखकर चित्रण करने के बारे में वे कहते "आपके पास माडेल का होना बहुत अच्छी बात है किंतु यदि आप उसका चित्र बनाना चाहते हो तो उस पर पर्दा डालो जिससे बना हुआ चित्र आपका निजी होगा—उसमें आपकी भावनाएं चित्रित होंगी"। गोग्वँ के इस प्रकार के स्पष्टोक्तिपूर्ण वक्तव्य का उनके पों आवां के अनुयायिओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता और वे उनकी सलाह लेने को उत्सुक रहते। भावनाओं की अभिव्यक्ति में आदिम कला की स्वाभाविक अंकनपद्धति की व सरल आकारों की परिणामकारकता को गोग्वँ ने महसूस किया एवं आधुनिक कलाकारों को उससे प्रेरणा लेने की आवश्यकता पर बल दिया। यह भी एक कारण था जिससे दूरवर्ती आदिवासी असभ्य जीवन को वे पसंद करते। कलाकृति में कलाकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति के

महत्व को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था "यदि आप अपनी भावनाओं को ठीक ढंग से व्यक्त नहीं कर सकते तो जंगली आदमी की तरह बोलो, सहृदयता से बोलो"। उनकी स्पष्टोक्ति "इसमें जंगलीपन है किन्तु यह कला है"[४९] पैरिस व पों आवां के कलाकारों का ध्येयवाक्य बन गया था।

सेजान ने गोग्वँ के चित्रों को देखा व उनको यकीन हुआ कि गोग्वँ उनका अनुकरण नहीं करना चाहते थे। दोनों के दृष्टिकोणों व शैलियों में जमीन आसमान का अंतर था व गोग्वँ की मृत्यु के पश्चात् सेजान ने कहा "गोग्वँ मेरी कला को समझ नहीं पाये। कला में घनत्व का होना आवश्यक है। गोग्वँ कलाकार नहीं थे। उन्होंने केवल चीनी प्रतिमाएं बनायीं"। असल में सेजान आत्यंतिक विचारों के चित्रकार थे व गोग्वँ की कला में निजी विचारों का जरासा भी चिन्ह दिखायी न देने से उसकी महानता को समझने में असमर्थ रहे। गोग्वँ की कला का भी, सेजान की कला के समान, बीसवीं सदी की कला पर दूरगामी परिणाम होनेवाला था। गोग्वँ के प्रभाव के बारे में चित्रकार देनी ने लिखा है "गोग्वँ ने हमको प्रकृति का अनुकरण करने के विचार की गुलामी से मुक्त किया। अब हम हलकी सी लाल छटा से युक्त वृक्ष का रंगांकन सेंदूर से कर सकते हैं।.........सुडौल सम्मितियुक्त कंधों को ऐंठनदार बना सकते हैं"। १८९७ के पत्र में गोग्वँ ने लिखा है "ग्रीक कला, कितनी भी सुंदर क्यों न हो, सदोष है.........हमेशा ईरानी, काम्बोडियन व मिस्र की कला को ध्यान में रखना चाहिये। किसी भी वस्तु के रंग के बारे में पहले ही निर्णय लेना अज्ञान है। दर्शकों की आंखें कलाकृति को देख कर प्रसन्नता को अनुभव करना चाहती हैं इसका विचार करके रंगों की योजना करो"।

ब्रित्तनी में, गोग्वँ की आर्थिक परिस्थिति में कोई सुधार होने की आशा दिखायी नहीं दे रही थी। आधुनिक सभ्यता से दूर जाकर नैसर्गिक वातावरण की छाया में कलासाधना करने के विचार से वे तड़प रहे थे। इसके अतिरिक्त हो सकता है कि उनके शरीर में जो इंका वंश का खून बह रहा था उसके सुप्त प्रभाव से हो, वे विदेशगमन के लिये प्रेरित हुए। १८९१ में गोग्वँ ने टाहिटी जाने का निश्चय किया व अपने चित्रों को नीलाम किया।

टाहिटी आते ही वे शहर से दूर जंगल में झोंपडी में रहने लगे जहां से समुद्र व पहाडों के रमणीय दृश्य दिखायी देते। उन्होंने वहां के आदिवासियों में आनाजाना शुरू किया व एक आदिवासी स्त्री से वहां के रिवाजों के अनुसार विवाह किया। वहां का रहनसहन कमखर्चीला था व आदिवासी लोक स्वभाव के सरल व दूसरों की मदद करने में तत्पर थे। तेजस्वी सूर्यप्रकाश, चमकीले रंगों से नेत्रोद्दीपक प्राकृतिक वातावरण एवं गूढ शक्तियों का अंधविश्वास करनेवाले भोले-भाले आदिवासियों के अनोखे रीतिरिवाजों को देख कर गोग्वँ को ऐसा प्रतीत हुआ कि उन्होंने किसी ऐसी दुनिया में प्रवेश किया है जिसकी वे अब तक खोज कर रहे थे। वे सभ्य योरपीय जीवन को

भूल गये व वहां के आदिवासियों की सुडौल, सांवली आकृतियों, उनके रहन-सहन व रीतिरिवाजों व प्रकृति के सुहावने दृश्यों को चित्रित करने में व्यस्त हो गये। एक साल के अन्दर ही उन्होंने करीब ६० चित्र, कई रेखाचित्र व काष्ठखुदाई के चित्र पूर्ण किये। टाहिटी के चित्रों को गोग्वँ ने अपने पूर्वकथित सिद्धांतों के अनुसार ही बनाया है किंतु उनमें नया जोश, अनोखी चमक व रहस्यमयता आ गयी है। टाहिटी से गोग्वँ खुश थे व उन्होंने लिखा "यहां मैं अत्यानंद, शांति व कला पर जीवित रहा हूं व आसपास ऐसी शक्तियों के अस्तित्व को अनुभव कर रहा हूं जो मुझसे बहुत प्यार करती हैं"।

किंतु गोग्वँ बीमार पड़े व टाहिटी की राजधानी पापीटी के चिकित्सालय में उनको भरती होना पड़ा। स्वस्थ होने के बाद वे फिर कुटिया में रहने लगे किंतु अब उनके पास पैसा नहीं था। टाहिटी के चित्रों को पैरिस भेजते किंतु वे बिकते नहीं थे। दो साल के निवास के बाद वे फिर फ्रान्स जाने को उत्सुक हुए। मित्रों के प्रयत्नों व प्रार्थनापत्रों से फ्रेंच सरकार ने उनको फ्रान्स रवाना कर दिया। उनके एक रिश्तेदार की मृत्यु हुई व वे उनके लिए कुछ जायदाद छोड़ गये जो उनको फ्रान्स पहुंचते ही मिली।

गोग्वँ ने मोंपार्नास में किराये पर कलाकक्ष लेकर उसको टाहिटी स्मृतिचिन्हों, चीनी लटकनों व अजीब वस्तुओं से अनोखे ढंग से सजाया व दीवार पर लिखा "यहां आदमी प्यार करता है"। उनके साथ उनकी टाहिटियन सहचरी ॲना व एक पालतू बंदर थे। वे कुछ आदिवासियों के समान व कुछ आवारा जैसे संमिश्रित विचित्र पोशाक पहनते व हाथ में भारी लाठी रखते जिस पर नग्न स्त्री पुरुष के युग्म को आलिंगनावस्था में चित्रित किया था। पैरिस के साहित्यिक, कलाकार एवं कलाप्रेमी प्रतिष्ठित नागरिकों के उनके कार्यकक्ष में संमेलन होते। द्यु रां रुएल ने उनके टाहिटी के चित्रों की प्रदर्शनी की। अर्ध-विवस्त्र ताम्रवर्णी आदिवासियों के अद्भुत वातावरण के अंतर्गत बनाये चित्रों को सुंदर कलाकृतियों के रूप में स्वीकारना, बहुसंख्य दर्शकों, समीक्षकों व कलाकारों के लिये मुश्किल था। इसके अलावा गोग्वँ ने वस्तुओं के नैसर्गिक रंगों की जगह मर्जी आये जैसे अस्वाभाविक रंगों का प्रयोग किया था—कहीं गुलाबी रंग का घोड़ा था तो कहीं नीले रंग का कुत्ता; मनोहर व चमकीली रंगसंगति का लक्ष्य सामने रख के जगह-जगह अनैसर्गिक रंगों का प्रयोग था। मोने, रेन्वा व पिसारो को संदेह हुआ कि यह किस ढंग की कला है। प्रभाववादियों में से केवल देगा को गोग्वँ की कला में उज्ज्वल भविष्य दिखायी दिया एवं उन्होंने उनके कुछ चित्र खरीदे। कवि मालार्मे उनके चित्रों को देख कर मुग्ध हो गये एवं उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि गोग्वँ अपने चित्रों को इतने चमकीले व रहस्यपूर्ण कैसे बना सके। उनकी संपत्ति समाप्त हो रही थी, अतः वे फिर पों आवां जाकर रहने लगे। अजनबी व्यवहार व रहनसहन के कारण उनके बहुत से मित्र व ब्रितानी के निवासी उनको

टालते। एक दिन अॅना व बंदर को साथ लेकर वे घूमने निकले जब उन तीनों के अनोखे मेल को देखकर खलासियों की टोली ने उनका मजाक उड़ाया व झगड़ालू गोग्वँ मारपीट पर उतारू हो गये। मारपीट में उनके घुटने में जबरदस्त चोट आयी। उनकी सहचरी अॅना मौका देख कर सीधी पॅरिस पहुंची व सभी कीमती सामान को उठा कर अदृश्य हो गयी। पैर जरासा ठीक होते ही गोग्वँ पॅरिस गये और आधुनिक सभ्य जीवन से विदाई लेकर पुनश्च टाहिटी जाने का उन्होंने निश्चय किया। सब सामान व चित्रों को नीलाम करके वे फिर टाहिटी पहुंचे। वहां फिर कुटिया बनाकर अन्य आदिवासी सहचरी के साथ रहने लगे।

शुरू में ही अपने खर्चीले स्वभाव के अनुसार उन्होंने सारा पैसा फूंक दिया और उनको पॅरिस में कभीकभी बिकनेवाले चित्रों के मूल्य पर निर्भर रहना पड़ा। धन के अभाव से उनकी शक्ति व चित्रण करने की इच्छा कम हो गयीं। कई तरह की बीमारियों से ग्रस्त होने से उनका कुछ पैसा वैद्यकीय चिकित्सा पर खर्च होने लगा। फ्रान्स के अपने मित्रों से उन्होंने चित्रों को खरीदने एवं सहायता करने की याचना की उससे किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। उनका एक आध चित्र कभी बिकता व उनको कुछ पैसा मिलता। निराश अवस्था में उन्होंने महिनाभर परिश्रम करके 'हम कहां से आते हैं? हम क्या हैं? हम कहाँ जा रहे हैं?'[50] शीर्षक का विशाल (१२'×४$\frac{1}{3}$') चित्र बनाया, उसको झोंपड़ी में छोड़ कर वे पीछे की पहाड़ी पर चढ़ गये व आर्सेनिक खा गये; किंतु अधिक मात्रा में आर्सेनिक खाने से उसका कोई असर नहीं हुआ एवं आत्महत्या करने का उनका प्रयत्न असफल रहा। उनके इस चित्र की पृष्ठभूमि में समुद्र के किनारे पर जंगल का दृश्य चित्रित किया है व चित्रसंयोजन चित्रकार प्युनि द शावान के चित्र 'पवित्र कुञ्ज' के समान है। मध्य में खड़ी आदिम स्त्री शाखा से फल तोड़ते हुए चित्रित की है व दोनों तरफ स्त्रियों व बच्चों की आकृतियां मानव की भिन्न अवस्थाओं की ओर संकेत करते हुए चित्रित की हैं पृष्ठभूमि में नीले प्रकाश में चमकती हुई मूर्ति व दो गुलाबी रंग की अस्पष्ट आकृतियां हैं, एवं एक झुकी हुई विशाल आकृति आश्चर्य करते हुए दिखाई है कि 'ये मानव अपने भविष्य के बारे में सोच कैसे सकते हैं?'। मालार्मे ने इस चित्र के बारे में लिखा "यह संगीतमय काव्य है"। गोग्वँ ने इस चित्र के सन्दर्भ में आंद्रे फॉन्तेना से स्पष्टीकरण किया था" इसमें रूपक वगैरह कुछ नहीं है। यह मेरा अस्पर्शनीय स्वप्न है"। कैसे भी हो इस चित्र में गूढ अवर्णनीय भाव जरूर हैं।

एक साल तक गोग्वँ ने चित्रण नहीं किया व कुछ समय तक जब वे स्वस्थ थे उन्होंने सरकारी दफ्तर में लिपिक का कार्य किया। फ्रान्स से कुछ पैसा आते ही नौकरी छोड़ कर वे फिर चित्रण करने लगे। सरकारी फ्रेंच अधिकारियों के आदिवासियों के साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहार को देखकर वे संतप्त होते एवं अधिकारियों से झगड़ा करते। अब वे टाहिटी को छोड़कर मार्क्वेसास में हिवा-ओआ द्वीप में जा

कर रहे। पैरिस के चित्रों के व्यापारी वोलार आरम्भ में उनके चित्रों के बदले में नियमित रूप से पैसा भेजते थे; किंतु एक दो साल बाद वे कभी पैसा भेजते तो कभी नहीं भेजते। व गोग्वँ की आर्थिक समस्याएं फिर बढ़ गयीं। इसके साथ उनकी बीमारियों ने फिर उछाल खायी। १९०३ में उन्होंने फिर उपनिवेश के अधिकारियों से झगड़ा मोल लिया और उनको सजा हुई। किंतु सजा भुगतने से पहले ही उनकी मृत्यु हुई जिस समय उनके पास कोई भी नहीं था। मृत्यु से कुछ महीने पहले उन्होंने मोंफ्री को लिखा था "मैं अब शांति चाहता हूं, शांति बस केवल शांति ! मुझे अब शांति से विस्मृत मरने दो"। उनकी पहली इच्छा की पूर्ति ८ मई १९०३ को हुई, किंतु कलाजगत् को उनकी विस्मृति नहीं हुई; कला के इतिहास में वे अमर हुए।

गोग्वँ ने चित्रकला की आधारभूत प्रेरणाओं को पहचाना व देखा कि बच्चों के लकड़ी के घोड़े में जो काल्पनिक सुख व स्वप्निल आनन्द देने की शक्ति है वह पार्थेनोन के घोड़ों के शिल्प में नहीं। इसी कारण उन्होंने लिखा था "ग्रीक कला कितनी भी सुन्दर क्यों न हो, वह हमारी सबसे बड़ी गलती है।

पार्थेनोन के घोड़ों के शिल्प को देखने से पहले की मुझे याद आती है जब मैंने लकड़ी के डोलनेवाले खिलौने के प्यारे घोड़े को देखा था"। मानवीय जीवन के मूल प्रेरणास्रोतों को अनुभव करने के विचार से वे तड़पते व उसी विचार से वे योरप छोड़ कर जंगली लोकों में जा कर रहे जहां उनका फिर सभ्य फ्रेंच अधिकारियों से संघर्ष हुआ।

गोग्वँ की मृत्यु के बाद पैरिस के तरुण कलाकारों पर उनकी कला का प्रभाव बढ़ता गया व प्रभाववाद को त्याग कर वे नवीन दिशाओं में प्रयोगशील हुए। अपनी कला का अन्य कलाकारों के लिये क्या महत्व है इस सम्बन्ध में गोग्वँ ने मोंफ्री को लिखा था "मैंने यह प्रस्थापित करने का प्रयत्य किया है कि कलाकार को अपने विचारों के अनुसार कला में हरेक नवीन साहस करने का अधिकार है। प्रतिकूल परिस्थिति व सीमित सामर्थ्य के कारण मैं महान् सफलता को प्राप्त नहीं कर सका किंतु मैंने जरूर प्रारम्भ किया है। जनता मेरी ऋणी नहीं है क्योंकि मेरी कला का केवल सापेक्ष महत्व है किंतु जो कलाकार मेरे प्रयत्नों से बंधमुक्त हुए है उनको मेरा कुछ ऋण अवश्य मानना होगा"।

गोग्वँ के जीवन की संघर्षमयता को देखकर आश्चर्य होता है कि ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में भी उन्होंने न केवल कलानिर्मिति की बल्कि ऐसी कलानिर्मिति की जिसने आधुनिक कला को नई दिशा में मोड़ दिया। गोग्वँ कहते "मैं सत्यार्थ में आदिम हूं";[51] किंतु हम भूल नहीं सकते कि उनकी कला को परिपक्व विचारों का आधार था एवं उसके पीछे ध्येयनिष्ठ अभ्यास का सामर्थ्य था। वान गो के समान केवल भावनाओं पर निर्भर रह कर वे चित्रण नहीं करते। नये चित्र की कल्पना मन में सुनिश्चित होते ही उसके लिए आवश्यक जानकारी वे अभ्यास व निरीक्षण से प्राप्त

करते। उनके टाहिटी के चित्रों से स्पष्ट होता है कि वहां के लोकों के रीतिरिवाज, विचार, कल्पना, निष्ठाएं, पोशाक, रहनसहन एवं वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य के अंग-प्रत्यंग-वृक्ष, फूल-पौधे, फल वगैरह के चित्रण से पहले उन्होंने कितना गहरा निरीक्षण किया था। गोग्वँ के कलासम्वन्वी लेखों व मित्रों को लिखे पत्रों से उनकी अभ्यास-वृत्ति का परिचय होता है। सुस्थापन, संतुलन, संयोजन, लय, प्रावान्य, संपूर्ण प्रभाव वगैरह सभी कलात्मक गुणों का विचार करके बनाया गया उनका प्रत्येक चित्र उनके निर्माणकौशल का साक्ष्य है। उनकी कला को 'संश्लेषणवादी' कहना उचित होगा—यद्यपि वे अपनी कला को किसी वाद में सीमित नहीं रखना चाहते—क्योंकि उसमें सौंदर्यतत्व व कलाकार की सृजन कल्पना का मधुर मिलन है। उनके विख्यात चित्र "हम मेरी का स्वागत करते हैं"[52] का विषय बायबलसम्बन्वी एवं पूर्ण काल्पनिक है परन्तु चित्र का वातावरण टाहिटी के प्रकृतिसौंदर्य का स्मरण दिलाता है व चित्रांतर्गत मानवाकृतियां ऐसी प्रतीत होती हैं कि टाहिटी के कुछ आदिवासियों को प्रत्यक्ष देख के बनायी हों। बच्चे को कन्वे पर लिये हुए एक महिला को मेरी व बाल ईसा के रूप में चित्रित किया है व उनके सिरों के ऊपर तेजचक्र बनाये हैं। दो आदिवासी स्त्रियों को प्रार्थना करते हुए व एक सपक्ष देवता को मेरी की ओर से निर्देश करते हुए चित्रित किया है। प्रार्थना करनेवाली स्त्रियों की मुद्राओं में जावा के एक मन्दिर-शिल्प का अनुकरण है। चित्र 'संश्लेषणवाद' का सुन्दर व यथोचित उदाहरण है। इसी प्रकार हम गोग्वँ के अन्य चित्रों में भी कल्पना व यथार्थ का सुन्दर समन्वय पाते हैं जिसके 'रखवाला मृतात्मा', 'चन्द्रमा व पृथ्वी'[53] उदाहरण हैं। काष्ठखुदाई, मूर्तिकला एवं रेखाचित्रों में भी गोग्वँ के कलासम्वन्धी विचार प्रभावी रूप में साकार हुए हैं।

गोग्वँ की जीवन-प्रेरणा कल्पना थी व प्रत्यक्ष जीवन में नहीं सही तो कल्पना द्वारा कलासृष्टि में उन्होंने अपने स्वर्गीय स्वप्नों को साकार किया—यही उनकी कला का सारतत्व है।

गोग्वँ का टाहिटी में जाकर रहना पाखंडी आधुनिक सभ्यता के वैज्ञानिक विकास व बुद्धिवाद का निषेध था। वे सोचते कि ऐसे कृत्रिम विकास से मानव अपने नैसर्गिक जीवन की मूल प्रेरणाओं को नष्ट कर रहा है और आंतरिक सुख से वंचित हो रहा है। उनके इन विचारों की परिणति उनके प्राचीन क्रिश्चन धार्मिक कला के अनुसरण करने में हुई। पों आवां के अनुयायियों को वे धार्मिक विषयों के चित्र बनाने की सलाह देते। वहां उन्होंने स्वयं धार्मिक विषयों के चित्र बनाये। पों आवां में 'लोकों से व लोकों के लिये'[54] उनकी कला का ध्येय बन गया था। गोग्वँ से प्रभावित होकर बर्कांद कैथोलिक बन गये व सेरुसिय धार्मिक कला के पुनरुत्थान का प्रचार करने लगे। फ्रेंच नवकैथोलिकवाद को प्रोत्साहित करने का श्रेय अप्रत्यक्षरूप से गोग्वँ को देना चाहिये।

प्रभाववाद ने चित्रकला में विषय के महत्व को घटा दिया; इसके विपरीत

गोग्वँ ने मानवीय सहजप्रवृत्तियों के सामर्थ्य को जान कर उनकी पूर्ति के लिये कलाकृतियों को प्रतीक रूप में बनाने पर बल दिया। उनके चित्रों का प्रभाव भित्तिचित्रों के समान है। समतल रंगों का प्रयोग, आकारों का आलंकारित्व एवं गतिपूर्ण, ऐंठनदार व स्पष्ट रेखांकन वगैरह गुण उनके सहजप्रवृत्तियों पर निर्भर आदिम जीवन के आकर्षण का परिणाम था। टाहिटी के चित्रों के स्वप्निल प्रभाव के बारे में उन्होंने लिखा है "हां यह सब वहां विद्यमान है। टाहिटी के समृद्ध निसर्ग को एवं प्रशांत किंतु रहस्यमय वातावरण को यदि हम कला में देखना चाहते हैं तो उसका प्रतिरूप यही है"। वे कहते "अपनी प्रखर आंतरिक भावनाएं उत्कर्ष के स्फोटक बिंदु तक पहुंचती हैं व पश्चात् ज्वालामुखी के समान उनमें से लावा निकलता है—यह है कलासृजन—पाशवी किंतु महान् अति मानवीय"।

सोरा, सेजान, वान गो व गोग्वँ—इन उत्तरप्रभाववादी चित्रकारों ने कला के दृष्टिकोण में क्रांतिकारी परिवर्तन किये व कला निसर्ग की अनुकृतिमात्र नहीं रही। नवीन चित्रकारों को ज्ञात हुआ कि कला में यथार्थ अनुभूति का सृजनशील सहजप्रवृत्ति द्वारा रूपांतर किया जाता है; दृश्यजगत् के परिवर्तन से कलाकार की आंतरिक अनुभूतियों—रचनात्मक या भावनात्मक—का दर्शन होता है। संगीत के समान चित्रों की दुनिया नैसर्गिक दृश्य दुनिया से स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है व उसके नियम भी स्वतन्त्र होते हैं। इस दुनिया के निर्माण में सोरा व सेजान ने आकारों से सहायता ली एवं वान गो व गोग्वँ ने आत्मिकता से सहायता ली।

प्रतीकवाद व नाबि चित्रकार

१८८६ में प्रकाशित पत्रिका में फ्रेंच लेखक मोरेश्रा ने घोषित किया कि समकालीन सृजनात्मक प्रवृत्तियों को साहित्य व कला द्वारा व्यक्त करने का प्रतीकवाद एकमेव साधन है। १८९१ में आल्बेर ओरिय ने 'चित्रकला में प्रतीकवाद' शीर्षक के लेख में प्रतीकवाद के महत्व का स्पष्टीकरण किया और गोग्वँ को प्रतीकवादी चित्रकला के अग्रदूत का स्थान अर्पण किया। प्रतीकवाद का मुख्य सिद्धांत था 'चित्रकार की कल्पना को साकार करना[1]। यथार्थ दृश्य अनुभूति को स्वप्नसदृश रूपायित करना, प्राचीन, आदिम एवं अप्रसिद्ध शैलियों में प्रचलित उपयुक्त प्रतीकात्मक संकेतों का अपनी कलाकृतियों में प्रयोग करना वगैरह तरीकों से प्रतीकवादी चित्रकार अपनी अभिव्यक्ति को परिणामकारक बनाते। प्रतीकवादी चित्रकला के आधारभूत तत्व थे कल्पना, संश्लेषण प्रतीकात्मकता आत्मनिष्ठा व आलंकारित्व। उसके प्रमुख दार्शनिक व प्रचारक थे पौल सेरुसिय एवं कट्टर चित्रकार थे रेदों। ओरिय ने लिखा था" कला में आलंकारिकता का होना आवश्यक है, क्योंकि उससे–जैसे कि मिस्र व आदिम कलाओं में हैं—कला एक साथ प्रतीकात्मक, आत्मनिष्ठ व संश्लेषणात्मक होती है। प्राचीन काल में चित्रों का निर्माण मानवनिर्मित भवनों की दीवारों को सजाने के लिये, स्वप्नों, निष्ठाओं व कल्पनाओं की सहायता से किया गया था। तिपायी-चित्र सभ्यता के अध:पतन का लक्षण है व उसका निर्माण व्यापारिक दृष्टिकोण से एवं प्रतिष्ठित लोकों के मनोरंजन के लिये किया जाता है"।

सेजान, सोरा, वान गो व गोग्वँ ने कला के ध्येय में आमूल परिवर्तन किया था। अब इसके आगे विकास होने के लिये अवधि व पोषक वातावरण की आवश्यकता थी। ऐसे वातावरण का निर्माण करने का कार्य प्रतीकवाद ने किया। प्रतीकवाद संक्रमणकाल का वैचारिक आंदोलन था एवं उसने भौतिक व आत्मिक जगत के समन्वय का प्रयत्न किया। अबतक चित्रकला पर कुर्बे के जड़वादी विचारों का प्रभाव था; उन्होंने कहा था "चित्रकला पूर्णरूप से वस्तुनिष्ठ कला है, व उसका उद्देश्य एक ही हो सकता है 'वर्तमान व यथार्थ जगत् का सादृश्यपूर्ण चित्रण'......अज्ञात, काल्पनिक, आत्मिक या अदृश्य से चित्रकला का कोई संबंध नहीं है"। प्रतीकवाद ने

इसी अज्ञात व अदृश्य को चित्र का विषय बनाया। देलरोश ने लिखा है "चित्रकला के माध्यम से हम ऐंद्रिक व आत्मिक अनुभूतियों के बीच का अंतर तोड़ना चाहते हैं"।

प्रतीकवाद का जन्म बोदेलेर, युइस्मां, लोत्रेयमों व वर्लेन के साहित्य में हुआ। वर्लेन व मालार्मे प्रतीकवादी साहित्य के प्रणेता थे। बाह्य जगत की फिश्ट की परिभाषा 'संसार की निर्मिति का मूल स्थान है 'अहं,'[2] व शोपेनऔर की कल्पना संसार मेरी आत्मा की प्रतिमा है'[3] ने प्रतीकवाद को दार्शनिक आधार दिया। संगीत में वग्नर के प्रतीकवादी संगीत का अपरिमित प्रभाव पड़ा। गोग्वँ की कल्पना 'रंगों के संगीत' के समान प्रतीकवादी काव्य में 'काव्य के संगीत' की कल्पना ने जन्म लिया। कवि वर्लेन ने कहा "काव्य, सबसे अधिक, संगीतमय होना चाहिये"। गोग्वँ के चित्रकलासंबंधी विचारों एवं प्रतीकवादी संगीत में घनिष्ठ समानताएं प्रतीत होती हैं। योरपीय संगीत पर असभ्य जातियों के संगीत का प्रभाव दिखायी देने लगा। सभी सृजन कलाओं में रहस्यवाद, धर्म व आंतरिक जीवन के प्रति उत्कंठा बढ़ गयी। ब्रुनेतियर ने घोषणा की "विज्ञान का दीवाला हो गया है"। थिओसोफिस्ट लोक भारत के धर्मग्रंथों को उत्सुकता से पढ़ने लगे। योरपीय जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रतीकवादी दृष्टिकोण प्रबल हो गया। दार्शनिक बर्गसों के सौंदर्यविषयक विचारों में अंतः प्रेरणा पर बल दिया गया।

१८८८ में गोग्वँ ने प्रभाववाद की अंकन पद्धति को पूर्ण रूप से छोड़ दिया व एमिल बर्नार ने उनका अनुसरण किया। गोग्वँ के सिद्धांत व कलाकृतियां प्रतीकवाद से मिलतेजुलते थे। गोग्वँ आधुनिक सभ्यता से घृणा करते थे व उनके चित्रों में कल्पना व स्पप्नमय दर्शन को मुख्य स्थान था। उनको समाज का औद्योगीकरण पसंद नहीं था। किन्तु प्रतीकवादी विचार के कलाकार होते हुए वे विग्रर्डस्ले, प्युवि द शावान, मोरो व इंग्लिश प्रिराफेलाइट चित्रकारों के समान पलायनवादी नहीं थे। निसर्ग एवं मानव में पुनश्च संपर्क प्रस्थापित करके वे मानव के खोये हुए आत्मिक जीवन को प्राप्त करना चाहते थे जो औद्योगीकरण से नष्टभ्रष्ट सा हो गया था। उन्होंने अपनी कला में भित्ति-चित्रण की विशेषताओं का समावेश किया जो उनके विचारों के अनुसार चित्रों का सामाजिक महत्व बढ़ाने के उद्देश्य से आवश्यक था। उनके विचार से यद्यपि कलाकार सामाजिक भ्रष्टता को हटा नहीं सकता फिर भी परिणामकारक कलाकृतियों द्वारा वह अनुकूल वातावरण को बना सकता है। गोग्वँ के विचारों से कुछ नवीन कलाकारों को—जो स्वयं को नावि कहलाते थे प्रेरणा मिली। 'नावि' एक हिब्रू भाषा का शब्द है एवं उसका अर्थ है 'भविष्यवेत्ता'। यह नाम उन कलाकारों को कवि काजालि ने प्रदान किया था; उनमें सेरुसिय रान्सो, वुइलर, मोरिस देनी, बोन्नोर, वाल्लोतों व रुसेल सम्मिलित थे। समय-समय पर देनी भोजन सम्मेलन का आयोजन

करते व वहां कलाविषयक वादविवाद हुआ करते। बाद में ये सम्मेलन नातांसों की पत्रिका 'रिव्युब्लांश' के कार्यालय में होने लगे। यहां साहित्यिक भी आया करते किन्तु नावि कलाकारों को साहित्यिकों का कलाक्षेत्र पर आक्रमण पसंद नहीं था। वाल्लोतों, बोन्नार व वुइलार ने स्पष्ट शब्दों में साहित्यिकों की चित्रकला संबंधी धारणाओं की आलोचना की क्योंकि जोला, युइमां आदि साहित्यिकों ने चित्रकला पर भ्रममूलक लेख प्रकाशित करके चित्रकारों के प्रति कितना अन्याय किया था उसका उनको विस्मरण नहीं हुआ था।

जब गोग्वँ व सेरुसिय ब्रित्तनी में चित्रण करते थे तब गोग्वँ के रंगांकन के संबंध में किये निर्देशों से नावि चित्रकारों को काफी मार्गदर्शन मिला। गोग्वँ ने सेरुसिय से कहा था "यदि आपको वृक्ष हरा दिखायी देता है तो उसके रंगांकन में आप सब से तेज हरे का निस्संदेह प्रयोग करो। जब आपको छाया में नीले रंग की हल्की सी झलक प्रतीत होती है तो अल्ट्रामरीन रंग सीधा ट्यूब से निकाल कर छाया का रंगांकन करो"। यहां चित्रकारों को अमिश्रित चमकीले रंगों को काम में लेने व ऐसे रंगों के समीपीकरण से अधिक से अधिक परिणामकारक रंगसंगति का निर्माण करने की सलाह दी है। अब वास्तविक रंग की उपेक्षा करके काल्पनिक रंगों में चित्रण शुरू हुआ, जैसे कि आल्बेर ओरिय ने लिखा है "अब से बाह्य-रूप-सादृश्य को चित्रकला में स्थान नहीं है........ संसार में सबसे महान व दैवी जो है—कल्पना—उसको मूर्तरूप दिया जायगा"[4]। इस स्पष्टोक्ति से आगामी फाववाद व घनवाद की पूर्वसूचना मिलती है। चित्रकार के व्यक्तित्व के अनुरूप कल्पना में एवं अभिव्यक्ति में भिन्नत्व आता है। गोग्वँ, सेरुसिय व देनी की कलाकृतियों के प्रभावों में पर्याप्त अंतर है; बोन्नार, वुइलार, वाल्लोतों व रुसेल की कला बिल्कुल ही भिन्न दिशा में मार्गस्थ हुई एवं इन चित्रकारों ने घरेलू एवं दैनंदिन जीवन के विषयों को चित्रित करके नावि कला को कला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कराया।

मोरिस देनी जैसे एक प्रतीकवादी चित्रकार थे वैसे साहित्यिक भी थे और उन्होंने कलाविषयक ग्रंथ लिखकर प्रतीकवादी कला का काफी प्रचार किया। प्रतीकवादी विचार क्रांति का उपयुक्त कलाओं—साजसज्जा, हस्तकला, विज्ञापन, व्यंग्यचित्रण वगैरह पर काफी प्रभाव पड़ा। १८८८ में पों आवां में गोग्वँ के मार्गदर्शन में बनाये सेरुसिय के चित्र 'तावीज,' १८८९ में पैरिस में काफे वोल्पैंय में आयोजित गोग्वँ व उनके अनुयायियों की प्रदर्शनी, संश्लेषणवाद व क्लाइसोनिजम वगैरह भिन्न प्रभाव प्रतीकवाद के विकास में सहायक हुए। इसके अतिरिक्त प्रतीकवादी चित्रकारों में जापानवाद जापानी छापचित्रों के समान रेखाबद्ध, आलंकारिक, समतल आकारों में चित्रण—, कल्पनावाद-किसी कल्पना को पूर्वनियोजित रूप में प्रारंभ करना—, नवपरंपरावाद—मिस्र, ग्रीक, गोथिक या आदिम कला का अनुसरण—,वगैरह शब्द प्रचलित हो गये। प्रतीकवाद के दार्शनिक ओरिय ने काफे वोल्पैंय में जाहिर

किया "निसर्ग की प्रत्येक वस्तु एक कल्पना मात्र है"[5]। ओरिय के विचारानुसार गोग्वँ, मोरो, प्युवि द शावान, प्रिराफेलाइट्स सभी प्रतीकवादी चित्रकार थे। यद्यपि गोग्वँ के सिद्धांतों व कलाकृतियों ने प्रतीकवाद के विकास में काफी सहायता की, उनकी कला पूर्णरूप से प्रतीकवादी नहीं थी, जैसी रेदों की थी।

ओदिलों रेदों उम्र में मोने के वरावर के थे परन्तु वे प्रभाववाद में शामिल नहीं हुए। उनकी मान्यता थी, "चित्रकला में त्रिमितियुक्त नैसर्गिक वस्तुओं का सादृश्य नहीं होता, वल्कि उसमें मानवीय सौंदर्य पर विचारों की प्रतिष्ठा का मुकुट चढ़ाया जाता है"। किंतु 'विचार' शब्द का अर्थ चित्रकार के व्यक्तिगत दृष्टिकोण के अनुसार वदलता है व रेदों की कला के संदर्भ में 'विचार' शब्द का अर्थ है 'काव्य-मय भावना'। वे वॉश, आर्सिम्वोल्डो, ड्यूरर, गोया, ब्लेक व फ्यूसेलि की परंपरा के चित्रकार थे व इसी परंपरा में वाद में अतियथार्थवाद का जन्म हुआ।

वोर्दो के एकांत में रेदों ने अपनी कला का विकास किया। वचपन में कुछ समय तक गौर से देखने पर, उनको दीवारों, वादलों, पर्दों, खिड़कियों आदि में विचित्र अतिमानुप आकार दिखायी देते। प्रत्येक स्थान व प्रत्येक वस्तु उनको गूढ शक्तियों से सचेत दिखायी देती। उनके चित्रों में भी उन्होंने वृक्षों, फूलों, वादलों आदि वस्तुओं में गूढ शक्तियों को साकार चित्रित किया है जिससे उनके चित्र जादूनगरी जैसे प्रतीत होते हैं। चित्रकारों की अपेक्षा वे कवियों की मित्रता अधिक पसंद करते एवं वे मालार्मे व वालेरी के घनिष्ठ मित्र थे। उनकी कला का ध्येय था 'असंभाव्य को संभाव्य रूप में सजीव चित्रित करना'[6]। उन्होंने अपने कलासंवंधी विचारों को लेखों द्वारा स्पष्ट किया है। सहृदय कवि के समान उन्होंने जानवरों, वनस्पतियों व खनिजों को, जैसे कि मनोविश्लेषण करके, उनके अंतर्गत रहस्यों के साथ चित्रित किया और अपनी व्यक्तिगत दुनिया को प्रकाशित किया। उन्होंने अपनी कलात्मक प्रेरणा के वारे में लिखा है "जव हम अंतर्मन पर छोड़ देते हैं तव अपने आप सव कुछ साकार हो जाता है"[7]। उनके लिये संपूर्ण जीवन एक परिकथा थी जिसको चित्रित करके उन्होंने दर्शकों के सम्मुख रखा। जव चित्रकला पर विचारों का प्रभुत्व होता है तव चित्रों में कथनात्मक भाव पैदा होने का धोखा रहता है; किन्तु रेदों की कला में काव्य व चित्रकला का इतना प्रतिभापूर्ण समन्वय है कि दर्शक को एक दृश्य काव्य को अनुभव करने का आनंद मिलता है।

प्रतीकवादी चित्रकला में आलंकारित्व एक आवश्यक गुण माना जाता था जिससे वह दर्शन में भित्तिचित्रणकला के समान वन गयी। इस संवंध में प्रतीकवादी चित्रकार वर्काद के विचार चिंतनीय हैं; उन्होंने लिखा है "तिपायी-चित्रण वंद करो व इस निरुपयुक्त फर्नीचर को कार्यकक्ष से हटा दो। अन्य कलाओं से चित्रकला को पृथक् मत करो। जव वास्तुकलाकार का कार्य समाप्त होता है तव चित्रकार का कार्य शुरू हो जाता है। हमको चित्रों से सजाने के लिये दीवारें दो। दूरदृश्यलघुता

को चित्रकला से हटा दो। दीवार समतल पृष्ठभूमि के समान दिखायी देनी चाहिये व उसमें दूरवर्ती क्षितिजों को चित्रित करके वक्रता नहीं देनी चाहिये। चित्र नाम की कोई वस्तु नहीं होती; केवल साजसज्जा व अलंकरण होते हैं"।

नाबि चित्रकार प्रतीकवाद के सिद्धांतों से सहमत थे किंतु उनका उन्होंने शब्दशः पालन नहीं किया। उनकी कला में आलंकारित्व का गुण अवश्य था किंतु काल्पनिक विषयों को लेकर चित्रण करने के उन्होंने विशेष प्रयत्न नहीं किये व उनकी अंकनपद्धति प्रभाववादी अंकनपद्धति के काफी समान थी।

नाबि चित्रकारों में से मोरिस देनी, वोन्नार, वुइलार व वाल्लोतों विशेष प्रसिद्ध हुए एवं उनमें से मोरिस देनी की कला सबसे अधिक आलंकारिक व प्रतीकात्मक है। उनकी कला में नुवो कला के समान वक्राकार, गतिमान रेखांकन है। समकालीन कलाशैलियों के नवीन दृष्टिकोण को उन्होंने निम्न दृष्टांत से स्पष्ट किया है "हम नहीं भूल सकते कि कोई भी चित्र किसी घोड़े, विवस्त्र स्त्री, कहानी या किसी अन्य विचार का चित्रण होने से पहले, मुख्य रूप से, रंगों से आच्छादित समतल पृष्ठभूमि है।.........इस प्रकार हमको ज्ञात हुआ कि प्रत्येक कलाकृति ऐंद्रिक अनुभूति का भावनाओं द्वारा किया रूपान्तर है"। देनी ने अपनी कला का आरंभ प्रतीकवादी सिद्धांतों का पालन करके किया; उन्होंने लंबा सफेद चोगा पहने हुए युवतियों की आकृतियों से संयोजित कुछ चित्र बनाये जिन पर नुवो शैली का प्रभाव है। इन चित्रों में से 'अप्रैल' व 'कला के देवता'[8] प्रसिद्ध हैं। जब वे इटाली गये थे तब उन पर फ्लोरेंटाइन व सिएनीज कला का बहुत प्रभाव पड़ा। वे कलाकारों को आदिम कला का अनुसरण करने को कहते जो उनके विचार से, जीवन की मूल प्रेरणाओं से ओतप्रोत व प्रसन्न है। दोमिनिकन फादर जांविय के प्रभाव में आकर देनी ने अपनी कला को धार्मिक रूप दिया व देवालियर के सहयोग से 'पवित्र कला के कलाकक्ष'[9] की संस्थापना की। प्रतिभावान होते हुए अत्यधिक बौद्धिकता के कारण उनकी कला की स्वाभाविकता को हानि पहुंची हैं।

पियर वोन्नार (१८६७-१९४७) ने आरम्भिक शालेय शिक्षा प्राप्त करने के बाद पिता के आदेशानुसार तीन साल तक कानून का अध्ययन किया। १८८८ में उन्होंने 'एकोल द बोजार' व अकादेमी ज्युलिआं में कला का अध्ययन शुरू किया जहां उनका देनी वुइलार, सेरुसिय, रान्सों व वाल्लोतों से परिचय हुआ और वे नाबि कलाकार मडल के सदस्य बन गये। १८८९ में उनका 'फ्रान्स शाम्पेन'[10] नाम का विज्ञापन चित्र सौ फ्रांक में बिक गया जिससे प्रोत्साहित होकर उन्होंने अपना कानून का प्रशिक्षण छोड़ दिया एवं वे चित्रकार बन गये।

चित्रकला के व्यवसाय के आरम्भ में वोन्नार ने पर्दों के लिये अलंकरण व फर्नीचर के लिये पूर्वकल्पनाएं बनायीं। वे 'रिव्यु ब्लांश' पत्रिका के लिये लिथोग्राफ्स बनाते व 'रिव्यु ब्लांश' शीर्षक का उनका विज्ञापन-चित्र प्रसिद्ध है। उन पर जापानी

कला का प्रभाव था एवं अपने कलाकार मित्रों में वे 'जापानी नावि' नाम से प्रसिद्ध थे।

जिस विचार से प्रतीकवादी चित्रकार गूढ आत्मिकता की खोज में धार्मिक, अद्‌भुत या अपरिचित विपयों को चुनते वह आत्मिकता बोन्नार व वुइलार को दैनंदिन जीवन के सामान्य क्षणों में दिखायी दी। चायपान के समय मेजपर रखी हुई कप-तश्तरियां, खिड़की में से दिखायी देनेवाला बाह्य दृश्य, स्नानकक्ष, शृंगार, वाचन जैसे सामान्य क्षणों में मनुष्य के सुख-सर्वस्व व जीवनप्रीति कैसे ओतप्रोत हैं इसका अनुभव हमको बोन्नार के चित्रों से मिलता है। अतः हम देखते हैं कि गोग्वँ व प्रतीक-वाद से प्रभावित होते हुए बोन्नार की कला में यथार्थ जीवन का हृदयस्पर्शी दर्शन हैं। नावि चित्रकारों में से बोन्नार व वुइलार 'परिचयवादी' नाम से प्रसिद्ध हैं क्योंकि उनके चित्रों के विषय प्रायः घर के सुपरिचित व उल्लासपूर्ण वातावरण के दृश्य हैं। उनके चित्रों में घरेलू वातावरण की प्रसन्नता है; अंकनपद्धति एवं संयोजन साजसज्जायुक्त हैं; रंगसंगतियां हलकी, अतिकोमल किंतु सतेज व नयनरम्य हैं। सुखी परिवारों की गृहों की दीवारों को सजाने के लिये इनसे अधिक मनोहर चित्रों की कल्पना करना कठिन है। वुइलार व बोन्नार की चित्रकला का आरम्भ जिस समय हुआ उस समय प्रभाववाद अपनी उत्तरावस्था में था व प्रभाववादी अंकनपद्धति का दोनों की कला पर बड़ा प्रभाव पड़ा। प्रतीकवादी चित्रकारों के साथ दोनों चित्रण करते थे किंतु प्रतीकवाद के काल्पनिक या रहस्यपूर्ण विषयों के प्रति वे आकृष्ट नहीं हुए। परिणामस्वरूप उनकी कला में प्रभाववाद व प्रतीकवाद का मनोहर संमिश्रण प्रतीत होता है। प्रभाववाद के अनुकूल वास्तविकता से लिये हुए सामान्य घरेलू दृश्य उनके चित्रों के विषय थे, व अंकनपद्धति में भिन्न रंगों का प्रयोग व लकीरदार तूलिका संचालन के गुण थे; प्रतीकवाद के अनुसार आलंकारिक रचना व उद्देश्यपूर्ण रंगयो-जना ये विशेषताएं थीं। देनी की भांति उन्होंने चित्रविपय एवं रचना को पृथक् रूप से नहीं देखा। हिरोशिगे व होकुसाई के समान उन्होंने क्षणिक दृश्य के पीछे छिपे हुए जीवन के शाश्वत सत्य की अनुभूति को चित्ररूप किया। इस विचार से बोन्नार व वुइलार की कला देगा की कला से समानता रखती है। देगा का प्रभाव उनके विषय के चयन व चित्रसंयोजन पर स्पष्ट रूप से दिखायी देता है।

बोन्नार की कला का जैसे विकास होता गया वैसे वे प्रभाववादियों के अधिक निकट आ गये। आरंभ में गोग्वँ व उनके नवकलाकार अनुयायियों से एवं जापानी कला से वे प्रभावित थे। नवकलाकारों ने प्रभाववाद का स्पष्ट रूप से विरोध नहीं किया किंतु वे ऐसे विपयों को चित्रित करते जिनमें आत्मिकता व मानवीय शाश्वत मूल्य मुख्य तत्व थे व इस विचार से दृश्यांतर्गत प्रकाश व वातावरण के क्षणिक प्रभाव को अंकित करने का प्रभाववाद का कार्यक्रम प्रतीकवाद के लिये अनुपयुक्त था। बोन्नार उनके सभी विचारों से सहमत नहीं थे। असल में बोन्नार व वुइलार अन्य

चित्रकारों के सैद्धांतिक वादविवाद से पृथक् रह कर अंतः प्रेरणा से चित्रण करना अधिक पसन्द करते। वुइलार ने स्वयं कहा था "आजीवन मैंने सौंदर्यदर्शन के अतिरिक्त कुछ नहीं किया"[11]।

नावि कलाकारों ने अपनी सृजनात्मक प्रेरणा को केवल चित्रकला में ही सीमित नहीं रखा; अपनी भावनाओं को रूपायित करके संपूर्ण मानव-जीवन को अलंकृत, सुंदर व सफल बनाने का उनका व्यापक ध्येय था। अतः नावि कलाकारों ने कथाचित्रण, रंगीन कांचचित्र, लिथोग्राफी, नाटकगृहों की साजसज्जा आदि सब तरह का काम किया। बोन्नार व वुइलार भी इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए किंतु वे नहीं मानते थे कि अपने ध्येय की पूर्ति के लिये धार्मिक पौराणिक या काल्पनिक विषयों का होना आवश्यक है व उन्होंने समकालीन जीवन से घरेलू विषयों को चुन कर कल्पनारम्य, काव्यपूर्ण व आलंकारिक चित्र बनाये। उन्होंने यह भी देखा कि घरेलू विषयों को चित्रित करने के विचार से प्रभाववादी अंकनपद्धति के कुछ नियम बहुत उपयुक्त हैं। अतः उन्होंने प्रकाश, वातावरण व वस्तुओं के नैसर्गिक रंग रूप को अविच्छिन्न रखा एवं अपनी प्रतिभा व तादात्म्य से उनको ऐसे चित्रित किया कि दर्शक नैसर्गिक दृश्य के प्रति अपने अंतर्मन में छिपी भावनाओं के प्रतीकरूप को चित्रों में देखता है व उस गूढ प्रेरणास्रोत को अनुभव कर लेता है जिससे वह जीवन के छोटे-छोटे क्षणों से असीम प्यार कर लेता है। प्रभाववाद के सिद्धांतों को प्रयोगान्वित करने के बाद उनको विश्वास हुआ कि गोग्वँ की कला में वैचारिकता है जबकि प्रभाववाद में उत्साह व मुक्ति का आनंद है। प्रभाववादी अंकनपद्धति का अनुसरण करते ही उनका आरंभिक संश्लेषणवाद समाप्त हो गया और नुवो कला के समान आलंकारिक समतल रंगों से अंकित आकृतियों में घनत्व की छटा दृष्टिगोचर हुई; भिन्न रंगों की छोटी लकीरों से पच्चीकारी रंगांकन करने से उनके चित्रों के वातावरण को चंचलता व प्रकाश का परिणाम प्राप्त हुए। किंतु मोने के समान चंचल प्रकाश के प्रभाव को अंकित करना बोन्नार का ध्येय नहीं था बल्कि रेन्वा के समान—जिनका उनकी कला पर सब से अधिक प्रभाव था—उनकी कला का लक्ष्य था चित्रविषय को उज्ज्वल भावस्पर्शी व आत्मिक रूप प्रदान करना। बोन्नार के आरंभिक प्रभाववादी चित्रों में पैरिस के रास्तों, सेन नदी के किनारों, पुलों व बाजारों के दृश्य हैं। चित्रों में चित्रकार की विषयवस्तु के प्रति घनिष्ठ आत्मीयता साकार हो उठी है और चित्रों को मनोवैज्ञानिक गहराई प्राप्त हो गयी है। बोन्नार ने कृत्रिम एवं नैसर्गिक प्रकाश की अनोखे दृष्टिकोण से योजना की है। उनकी पूर्ण विकसित शैली में अधिक चमकीले रंगों का प्रयोग है एवं चित्रांतर्गत प्रकाश को प्रकाश कहने के बजाय संपूर्ण वस्तुसमूह को एकत्रित बांधनेवाला रंगबिरंगा पारदर्शक आवरण कहना उचित होगा। रंगसंगति चमकीली होते हुए उसमें कठोरता नहीं है; वस्तुएं अस्पष्ट दिखायी देती हैं व गूढ वातावरण से परिवेष्टित वस्तुसमूह में रहस्यपूर्ण स्थायीभाव है। अब बोन्नार ने सुपरिचित घरेलू दृश्यों

को चित्रित करना शुरू किया क्योंकि उनके विचार से संसार में मनुष्य को अपने घर से अधिक प्रिय वस्तु क्या हो सकती है ? वही उसका सुखसर्वस्व, साकार स्वप्न, उसकी आशा-आकांक्षाओं का केंद्रस्थान होता है और वहीं उसकी आत्मा चिरनिद्रा चाहती है। उनके इस विषय के चित्रों में मानवाकृति, पालतू बिल्ली या कुत्ता कहीं कोने में गूढ शक्तियों की तरह धुंधले से प्रतीत होते हैं; सुंदर व सुखदायक वातावरण में प्रसन्नता है किंतु बीच में अस्पष्ट सा दर्द दिल को स्पर्श कर जाता है कि यहां जरूर कोई गूढ आत्माएं निवास करती होंगी—हां ऐसे ही है, प्रत्येक घर मानवीय आत्मा की अतृप्त इच्छा का प्रतीक है।

एद्वार वुइलार (१८६८–१९४०) के पिता सेवानिवृत्त सेना अधिकारी थे। वुइलार जब ६ साल के थे तब उनके पिता की मृत्यु हुई व उनकी माता ने सहायिकाओं के साथ सिलाई की दूकान खोली। कला के अध्ययन के लिए वुइलार को प्रथम एकोल द बोजार्स में व बाद में अकादमी ज्युलिआं में भरती कराया जहां उनका अन्य भावी नावि कलाकारों से परिचय हुआ। रिव्यु ब्लांश के संचालक नातांसों ने वुइलार का प्रतीकवादी कवि मालार्मे से परिचय कराया। मालार्मे के काव्यग्रंथ के लिये वुइलार ने चित्र बनाये व नातांसो के लिये पर्दाचित्रों की प्रथम मालिका तैयार की। रेन्वा, मार्क्वे, रुओल व देनी के सहयोग से उन्होंने कलाक्षेत्र में नवीन प्रयोगों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से, 'सलों दातोम' की संस्थापना की।

गोग्वँ, तुलुज लोत्रेक व वान गो के समान वुइलार की जीवन कहानी में कोई रोमांचकारी घटनाएं, संघर्ष, या आर्थिक कठिनाइयां नहीं थे। उन्होंने अपने जीवन के सुपरिचित प्रसंगों को चित्रित किया जिनमें अपनी माता की सिलाई की दूकान, मित्रों के परिवार, पैरिस के बगीचों के दृश्य वगैरह हैं। स्वभाव व अभिरुचि में पर्याप्त भिन्नता होते हुए गोग्वँ से वे बहुत प्रभावित हुए किंतु उनको चित्रकला में प्रतीकवाद को स्थान देना पसन्द नहीं था। अतः वे नावि कलाकारों की चर्चाओं में विशेष भाग नहीं लेते थे यद्यपि अपने विचारों को तर्कशुद्ध भाषा में वे स्पष्ट कर सकते थे जिसका उनका देनी को लिखे हुए पत्र प्रमाण हैं; इस पत्र में उन्होंने लिखा है "चित्रण के समय मैं अपनी अंकनपद्धति के बारे में विचार नहीं कर सकता...चित्रण में मुझे इस वजह से आनन्द मिलता है कि उस समय मेरे मस्तिष्क में एक ऐसी कल्पना फलीभूत होती है जिस पर मेरी अपार श्रद्धा है"।

बोन्नार के समान, वुइलार की कला प्रभाववाद से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। प्रभाववाद की प्रशंसा में लिखे हुए द्युरांति के निबन्ध 'नयी चित्रकला'[12] से उनको एक आधुनिक दृष्टिकोण मिला। द्युरांति ने लिखा है "चित्रकार को चाहिये कि वह सौंदर्य के अनंत स्रोत—दैनंदिन, स्नेहपूर्ण पारिवारिक व नागरिक जीवन—को स्वा-

नुभव से चित्रित करें। गृहों के कमरों से भी निवासियों की स्वभाव-विशेषताओं व आदतों का परिचय होता है। मानव को उसके घर व नगर के वातावरण से पृथक् नहीं कर सकते।" घर की प्रत्येक वस्तु पारिवारिक जीवन का सचेत व अभिन्न अंग है व मानवीय विचार का दर्पण है। वुइलार के चित्र उपर्युक्त विचार के समुचित व मनोहर उदाहरण हैं। उन्होंने गहरे निरीक्षण व आत्मीयतापूर्ण स्वानुभूति से अपने चित्रों में पारिवारिक स्नेह की जान डाली है।

वुइलार को व्यवसायसम्बन्धी मार्गदर्शन अधिकतर अपने मित्रों से ही मिला। विद्यार्थी अवस्था के मित्र रुसेल ने उनको चित्रकार बनने की सलाह दी। १८९१ में पिअर वेब ने उनको नातांसों के 'रिव्यु ब्लांश' मंडल से परिचित कराया; नातांसों ने उनको आलंकारिक चित्रण में प्रोत्साहित किया व कवि मालार्मे से परिचित कराया। अन्य नाबि कलाकारों से वुइलार नाटकगृह की साजसज्जा में अधिक रुचि लेते थे व रंगमंच के परिचय से वे अनोखे दृष्टिकोण से चित्रण करने में अभ्यस्त हुए। वुइलार के गृहांतर्भागों के दृश्यों के चित्र मनोहर रंगसंगति व आलंकारित्व के गुणों से बहुत ही आकर्षक व प्रसन्नतापूर्ण बन गये हैं; समतल रंगों में चित्रित मानवाकृतियां पृष्ठभूमि में विलीन हो गयी हैं; चित्रों का आलंकारित्व इतना परमोत्कर्षबिंदु तक पहुंचा है कि मानवाकृतियां अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व उसमें खो बैठी हैं, किंतु मनोहर रंगसंगति व कुशल संयोजन के विचार से चित्र अद्वितीय हैं। उनके चित्रों में पर्दों का आलंकारित्व व संयोजन की स्वाभाविकता के गुणों का इतना विकास होने का कारण था उनकी माताजी की सिलाई की दूकान जहां वे हमेशा विविध रंग-संगतियों में अलंकृत कपड़े व पर्दे देखा करते व जिसका उनकी कला पर अमिट प्रभाव पड़ा था।

आयु के अन्तिम पचीस वर्षों में उन्होंने कुछ व्यक्तिचित्र बनाये जिनमें डॉ वाक्वे, डॉ. गोसे व फांतेन के व्यक्तिचित्र प्रसिद्ध हैं। किंतु इन चित्रों में भी पृष्ठभूमि को बारीकियों व अलंकरण के साथ चित्रित किया है व व्यक्ति के स्वभावदर्शन से, सुन्दर रंगसंगति व आलंकारित्व के प्रभाव को अधिक महत्व दिया है। वुइलार स्वयं कहते "मैं व्यक्तिचित्र नहीं बनाता बल्कि व्यक्ति को घर के वातावरण के अन्तर्गत चित्रित करता हूं"[13]। प्रभाववादियों के समान चित्र का सम्पूर्ण प्रभाव वुइलार का लक्ष्य था किंतु उनके चित्रों में प्रभाववादियों के प्रकाश का स्थान सुन्दर रंगसंगति व आलंकारित्व ने ले लिया था। चित्र का आलंकारिक प्रभाव बढ़ाने के हेतु वे पृष्ठभूमि में दीवार-कागजों या अलंकृत पर्दों को उनके बारीक अलंकरण के साथ चित्रित करते या भिन्नभिन्न रंगों के छोटे धब्बों से नवप्रभाववादी पद्धति का रंगांकन करते। किंतु उन्होंने नवप्रभाववादी रंगांकन का प्रयोग केवल वहीं किया जहां भिन्न रंगों के समीपीकरण का प्रभाव सम्पूर्ण रंगसंगति को पुष्टिकर था; प्रकाश व वातावरण का

उसमें विचार नहीं था । अतः उनके चित्रों की रंगबिरंगी पृष्ठभूमि में चंचलता होते हुए, प्रकाश, वातावरण या गहराई का आभास नहीं है।

वुइलार की मृत्यु १९४० में हुई व वोन्नार की मृत्यु १९४७ में हुई व उनके साथ ही प्रभाववाद का अन्तिम दौर समाप्त हो गया।

फाववाद

१९वीं शताब्दी के अंत के करीव उत्तरप्रभाववादी चित्रकारों की एकल प्रदर्शनियां हुईं। १८९९ में वोलार ने सेजान के चित्रों को प्रदर्शित किया। १९०० में सोरा, १९०१ में वर्नीमजोन कलावीथिका में वान गो व १९०३ में 'सलों दातोम' में गोग्वँ के चित्रों की प्रदर्शनियां हुईं। १८९९ में ही नाबि चित्रकारों ने द्यु रां रुएल कलावीथिका में अपनी अंतिम प्रदर्शनी आयोजित की व उसको 'ओदिलों रेदों—चित्र-कला का मालार्मे' के सम्मान में अर्पित किया। इन सभी प्रदर्शनियों से तरुण चित्रकारों में विचार-जागृति हुई एवं वे नये क्षितिजों की खोज में लगे। वीसवीं शताब्दी में भिन्न प्रयोगों द्वारा अनेक शैलियों का जन्म हुआ और कुछ समय तक कलानिर्मिति करके वे समाप्त हो गयीं। प्रयोगों द्वारा नवनवीन शैलियों का निर्माण करते रहना वीसवीं शताब्दी के कलाकारों का अलिखित धर्म हो गया एवं इसी कारण कुछ समीक्षक वीसवीं शताब्दी की कला को निंदाजनक अर्थ में 'प्रयोगवादी' कहते हैं।

१९०३ में वास्तुकलाकार फ्रान्सि जुर्दे की अध्यक्षता में वुइलार, देवालियर, रुओल, देनी, वोन्नार, मार्क्वे व मातिस ने सम्मिलित होकर 'सोसिएते द्यु स लों दातोम' संस्था की प्रस्थापना की। नवीन कलाशैलियों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से प्रस्थापित की गयी इस संस्था द्वारा पुराने ख्यातनाम कलाकारों की प्रदर्शनियों का भी आयोजन होता। १९०३ में 'सलों दातोम' द्वारा गोग्वँ के चित्रों की प्रदर्शनी की गयी व उसके पश्चात् क्रमशः १९०४ में सेजान, तुलुज लोत्रेक, रेन्वा व प्युवि द शावान, १९०५ में माने व अँग्र, १९०६ में पुनश्च गोग्वँ के चित्रों की प्रदर्शनियां की गयीं।

१९०५ में 'सलों दातोम' में मातिस के नेतृत्व में एक नवकलाकारों के मंडल ने अपने चित्रों की प्रदर्शनी की। इन प्रदर्शकों में मातिस, मार्क्वे, रुओल, देरें, व्लामिक, फ्रिज, वान डोन्जेन, मांग्वँ प्वुय व वाल्ता थे। प्रदर्शनी के जिस कक्ष में इन कलाकारों के चित्र रखे गये थे उसी कक्ष में मूर्तिकार मार्क्वे की १४ वीं शताब्दी की शैली में वनायी एक छोटे वच्चे के शीर्ष की मूर्ति थी। नवकलाकारों के चित्र विलकुल ही अनोखे ढंग से वनाये गये थे एवं उनके वीच मार्क्वे की प्राचीन शैली की मूर्ति अजीव सी दिखायी दे रही थी। इस विरोध को देखकर कलासमीक्षक वोक्सेल ने कहा "देखो

जंगली जानवरों के बीच डोनाटेलो"[2]। डोनाटेलो एक प्रसिद्ध प्राचीन मूर्तिकार थे। दूसरे दिन वोक्सेल ने अपनी पत्रिका 'गिल ब्ला' में अपने विधान की पुष्टि की। अब ये नवकलाकार 'फाव' या जंगली जानवर नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रदर्शनी ने कलाक्षेत्र में भिन्न प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया। नाबि चित्रकारों के नेता सेरूसिय ने आश्चर्य के साथ वर्कांद को लिखा "चित्रकारों का एक नया मंडल अग्रसर हो रहा है। ये चित्रकार अपनी भावनाओं को विशुद्ध रंगों द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं। इनके चित्र अच्छे नहीं हैं किंतु जिस दिशा में ये खोज कर रहे हैं उसको देखते हुए मुझे विश्वास है कि ये भविष्य में जरूर सफल होंगे"। फाव चित्रकारों की बहुत कटु आलोचना हुई यद्यपि उन्होंने आंद्रे गिद, गुस्नाव जेफ्राय जैसे रसिक व सूक्ष्मग्राही रसिकों का ध्यान जरूर आकर्षित किया था। जे. वी. हॉल ने प्रदर्शनी की निम्न शब्दों में आलोचना की "दृष्टि-दोष-पूर्ण चित्रण, रंगों का पागलपन, मनमौज........"[3]। कामीय मोक्ले ने रस्किनकृत विसलर की निंदा को दोहराया "इन चित्रकारों ने जनता के मुंह पर रंगों के डिब्बे खाली किये हैं"। किंतु आन्द्रे गिद ने अपनी आलोचना में लिखा "मातिस के चित्रों के सामने मैंने किसी को अस्पष्ट शब्दों में बोलते हुए सुना 'यह पूरा पागलपन है और मेरे मन में विचार आया 'नहीं यह तर्कशुद्ध विचारों का परिपाक है'। मुझे कोई संदेह नहीं है कि स्त्री के भाल पर हरा व वृक्ष के तने पर लाल रंग लगाने में मातिस का कोई विशेष उद्देश्य है। कलाकृति के पीछे प्रतिभा है"। कुछ साल बाद फाव चित्रकारों की मानसिक चिकित्सा कराने के हेतु मोंमार्त्र का मजाकिया रोलां दोर्जेले एक मनःचिकित्सक को सलों दातोम में फाव चित्र को दिखाने के लिये ले आया।

इस समय फ्रान्स का बुद्धिजीवी मध्यमवर्ग कला को लेकर सभी क्षेत्रों में नवीनता का विरोधी हो गया था। जब चित्रों के व्यापारी बोलार गोग्वँ के चित्र को बेचने के हेतु किसी प्रतिष्ठित सज्जन से मिले तब उनको जवाब मिला "मैं ऐसे चित्रकार के चित्र नहीं खरीद सकता जिसने अपनी पत्नी व बच्चों का त्याग किया है"। प्रभाववादियों को अब तक कुछ ख्याति जरूर मिली थी किंतु वह सम्मान अभी नहीं मिला था जो राष्ट्रीय कलासंस्था द्वारा पुरस्कृत परम्परावादी कलाकारों को मिला करता था। वान गो को पागल समझते थे व एमिल जोला जैसे साहित्यिक-समीक्षक व सेजान के परम मित्र सेजान की कला के महत्व को समझने में असमर्थ रहे थे। बहुसंख्य दर्शक व संग्राहक अभी कहानी-चित्र पसन्द करते। परम्परावादी चित्रकार बोन्ना, बुग्वेरों, देतेय व कोर्मों लोकप्रिय थे एवं उनके चित्र ऊंचे मूल्य में बिकते। ऐसी परिस्थिति में फाव चित्रकारों की हसी उड़ायी गयी इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

फाव चित्रकारों के चित्रों के विषय अधिकतर समुद्रकिनारों, सार्वजनिक स्थानों, समारोहों व पर्यटनस्थलों के दृश्य थे जिनमें उनको चमकीले रंगों का प्रयोग व गति-

पूर्ण चित्रण करने का मौका मिलता। फाव रंगों की चमक, तूलिकासंचालन का आवेश व रेखाओं की अनोखी ऐंठन के सामर्थ्य को दर्शकों ने पहचाना जरूर किंतु फाव चित्रकारों की साधन-सम्पत्ति का साध्य क्या है यह समझना उनके लिए दुर्बोध था।

फाव विस्फोट के पीछे, नैसर्गिक मानवीय भावनाओं व सहजप्रवृत्तियों को कार्यान्वित करके कला में चैतन्य व नया जीवन डालने का उद्देश्य था। १९वीं शताब्दी के अन्त में योरप का बुद्धिजीवीवर्ग आधुनिक सभ्यता के कृत्रिम रहनसहन व नकली जीवन से ऊब गया था और अपनी दवी हुई भावनाओं को मुक्त करके खुले वातावरण में सांस लेना चाहता था। नैसर्गिक जीवन के प्रति बढ़ती हुई लिप्सा को आंद्रे गिद एवं फैलते हुए निसर्गवाद ने उत्तेजित किया। रोमांसवाद के विरोध में मोरिस ब्लां ने लिखा "हमारे वयोवृद्ध साहित्याचार्यों ने कला में साहस, कल्पना व स्वप्नवाद की प्रशंसा की है। किंतु हम काल्पनिक अज्ञात का विश्वास नहीं करते। समस्त सृष्टि हमारे लिए ईश्वर है"। उपन्यासकार शार्ल लुई फिलिप ने १८९७ के पत्र में लिखा "अब हमारी आवश्यकता है नैसर्गिक जीवन। आज से भावनाओं का युग आरम्भ होगा"। फाववाद का जन्म इसी निसर्गवादी प्रतिक्रिया में हुआ; चैतन्यपूर्ण नैसर्गिक आनन्द की प्राप्ति उसका लक्ष्य था। फाव कृतियों में दृष्टिगोचर आकारों की ऐंठन व मूल रंगों के प्रयोग के पीछे कोई बौद्धिक विचार नहीं थे; सहजप्रवृत्तियों पर निर्भर रह कर चित्रण करने का वह स्वाभाविक परिणाम था। प्रभाववादी व बिंदुवादी चित्रों में वास्तविकता से सादृश्य था किंतु उनके कलात्मक गुणों में चेतना नहीं थी। फाव चित्रकारों के विचार से कला में मूल चैतन्य को जागृत करने के लिए आवश्यक था कि रंगों का विशुद्ध अवस्था में प्रयोग किया जाय एवं अंकनपद्धति में स्वाभाविक जोश हो।

१९वीं शताब्दी के अन्त के करीब वान गो, गोग्वँ व सेजान की जो प्रदर्शनियां हुईं उनसे फाव चित्रकारों को काफी प्रेरणा मिली। 'सलों दातोम' व 'स लों द अंदेपांदां' संस्थाओं से उनको प्रोत्साहन व विकासक्षेत्र प्राप्त हुए। नवीन कलासम्बन्धी प्रयोगों में सफल होने के लिए कलाकारों को विगत कला का परिशीलन करना पड़ता है; फाव कलाकार इसके लिये अपवाद नहीं थे। फाववाद के रंगो के विशुद्ध प्रयोग के व स्वच्छंद शैली के बीज हमको देलाक्रा व दोमीय की कला में प्रतीत होते हैं यद्यपि उनके निकट के प्रेरणास्रोत थे वान गो व गोग्वँ। एक बार रुओल अपने चित्रों को लेकर मार्गदर्शन के लिये देगा से मिलने गये और अपने चित्रों से असन्तोष, खेद व्यक्त किया तब देगा ने उपदेश किया "हरेक के मातापिता होते हैं" एवं पूर्वगामी चित्रकारों का अध्ययन करने को कहा।

फाववाद कोई विशिष्ट शैली नहीं थी; प्रभाववाद, घनवाद या अतियथार्थवाद के समान उसके कोई पूर्वनिश्चित सिद्धांत नहीं थे। संयोगवश मातिस को फाववाद

का नेतृत्व करना पड़ा किंतु उनके सभी अनुयायियों की कला मुख्यतया प्रतिक्रियात्मक थी; वे प्रभाववाद की प्रकाश व वातावरण से युक्त नैसर्गिकता व नाबि कला की वैचारिक आलंकारिकता के दासत्व से मुक्त होना चाहते थे। वे चाहते कि कलाकृति पूर्णरूप से कलाकार के व्यक्तित्व की सच्ची प्रतिभा हो; अर्थात् प्रत्येक फाव चित्रकार ने अपने व्यक्तित्व के अनुकूल अंकनपद्धति की निजी शैली का आधार बना कर अपनी कला का विकास किया। शैली के विचार से फाव चित्रकारों में कोई समानता नहीं थी; उससे तो उनकी अंकनपद्धतियों की भिन्नताएं स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। संक्षेप में, फाववाद एक क्रांतिकारी दृष्टिकोणमात्र था, न कोई सिद्धांत-शासित शैली। विषयनिष्ठ नहीं होने के कारण फाववाद में चित्रकार अपने कलात्मक व्यक्तित्व के परमोत्कर्ष तक पहुंच सकता था। द्यु फि ने विस्मित हुए एक खरीददार से कहा "कला में प्रकृतिचित्रण एक बहाना मात्र है"। मोरिस देनी ने फाववाद की परिभाषा की "यह ऐसा चित्रण है जिसका कोई बाह्य लक्ष्य नहीं है; यह केवल विशुद्ध चित्रण है। इन कलाकृतियों में कोई व्यक्तिगत विचार, दर्शन या कथन नहीं है। ये चित्रकार विशुद्ध निरपेक्ष की खोज में हैं। किंतु इस विशुद्ध खोज की एक मर्यादा है जो सापेक्ष है; वह है *व्यक्तिगत भावना"* । *मातिस ने प्रकाशक तेरियाद को स्पष्टीकरण किया* "हमारे विचार थे: रंगीन आकारों से रचना, रंग की स्वाभाविक चमक की सुरक्षा, व प्रकाश के प्रभाव को चित्रित करने के हेतु वस्तु के निजी रंग की उपेक्षा करने के सिद्धांत का विरोध। मेरे चित्र 'संगीत' में मैंने आसमान को सबसे तेज नीले रंग से, वृक्ष को सबसे तेज हरे से व मानवशरीरों को सेंदुर से चित्रित किया है; इन तीनों रंगों से मैंने प्रकाश के प्रभाव के साथ रंगों की सुसंगति की भी रक्षा की, जिसके लिये रंगों का विशुद्ध रूप में प्रयोग आवश्यक था। चित्र का सम्पूर्ण प्रभाव रंगों के भिन्न क्षेत्रों की सुसंगति से बनता है जो दर्शक समझ लेते हैं। प्रकाश को हमने हटाया नहीं बल्कि भिन्न विशुद्ध रंगों से उसको अधिक सतेज बनाया है"

फाव चित्रकार आकारों को अधिक से अधिक सरलीकृत रूप देकर समतल चमकीले रंगों द्वारा भावनोद्दीपन करना चाहते, किंतु आकारों के सरलीकरण से उन्होंने रंगों के चमकीलेपन पर अधिक बल दिया। वे सीधे ट्यूब से रंगों को निकाल कर पट पर लगाते। कुछ फाव चित्रकारों ने शुरू में बिंदुवादी अंकनपद्धति का प्रयोग किया यद्यपि बिंदुवाद के प्रकाश व वातावरणसम्बन्धी सिद्धांतों से वे असहमत थे; किंतु गोग्यँ के रंगांकन संबंधी विचारों का ज्ञान होते ही उन्होंने रंगों का विस्तृत क्षेत्रों में प्रयोग शुरू किया। नयी रंगांकनपद्धति को अपनाते ही प्रभाववाद व बिंदुवाद के अंकनपद्धति सम्बन्धी कुछ नियमों का उनको त्याग करना पड़ा जैसे कि रेखात्मक एवं वातावरणीय दूरदृश्यलघुता, घनत्व का आभास, बारीकियों का अंकन वगैरह। लेखक क्रेस्पेल के शब्दोंमें "फाव चित्रकारों ने चित्रण के विशुद्ध परिणाम को बढ़ावा देने के हेतु माध्यम के सुलभ प्रयोग पर बल दिया। अंकनपद्धति की नवीनता एवं वैचित्र्य

उनकी कला के आकर्षण का प्रमुख व महत्वपूर्ण अंग बन गये"।

फाव चित्रकारों की कुछ व्यक्तिगत विशेषताएं उल्लेखनीय हैं। करीब सभी सुदृढ़ व मजबूत शरीर के थे। साहित्य, नाटक या काव्य में वे विशेष रुचि नहीं रखते न वे साहित्यिकों से सम्पर्क रखने में उत्सुक रहते। उनमें स्वाभाविक संगीतप्रेम था एवं उनमें से ब्राक, व्लामिंक, द्यु फि, मातिस व देरें स्वयं अच्छे वादक भी थे। बहुत से फाव चित्रकार अराजकता के पक्ष में थे या अराजकतावादियों से सहानुभूति रखते थे। मातिस को छोड़ कर अन्य फाव चित्रकारों की प्रचलित से भिन्न, आकर्षक पोशाक पहिनने में बड़ी दिलचस्पी थी। फ्रान्स के उत्तरी भाग से आये हुए मातिस व व्लामिंक अधिक जोशीले व निश्चयवृत्ति थे, और वे चटकीले रंगों को पसन्द करते। सभी ने प्रभाववाद का अध्ययन करके उसकी कमजोरियों को अनुभव किया एवं उनको वान गो व गोग्वँ की महानता का यकीन हो गया। वैसे कला की स्वयंपूर्णता की कल्पना उनको गोग्वँ से मिली जैसे कि ज्यां कास्सु ने लिखा है "गोग्वँ ने संशोधन करके कला के स्वाभाविक व आवश्यक कार्य पर प्रकाश डाला जो कार्य है समतल पृष्ठभूमि पर लचीले अभिव्यक्तिपूर्ण आकारों का निर्माण। उन्होंने कला की स्वयंपूर्णता को सिद्ध किया"।

गोग्वँ की कला से प्रेरणा पाकर प्रथम नाबि कला का विकास हुआ; किंतु नाबि कलाकृतियां कभी नुवो कला के समान कृत्रिम व कठोर बन जातीं व हम यह भी नहीं कह सकते कि नाबि कला ने कोई क्रांतिकारी परिवर्तन किये। नाबि कला एक दृष्टि से प्रभाववाद का ही विकसित रूप थी एवं पारिवारिक जीवन का इतना प्रसन्न व रमणीय दर्शन किसी अन्य कला में नहीं मिलता। किंतु नाबि कला में कोई असाधारण जोश नहीं था और उसके पश्चात् आये हुए फाव चित्रकारों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। फाव चित्रकारों ने उनको प्रभाववादियों के समान नगण्य समझकर उनकी कला की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। केवल मार्के का देनी व वुइलार से सम्पर्क रहा क्योंकि जिस अकादमी रान्सो में मार्को अध्ययन कर रहे थे वहीं दोनों अध्यापक थे। बहुसंख्य नाबि चित्रकारों ने अपनी कला का विकास करके कलाक्षेत्र में सम्मान का स्थान प्राप्त कर लिया था; अतः उन्होंने फाव कला को केवल आतिशबाजी समझ कर उसका गम्भीरता से कोई विचार नहीं किया। उनमें से केवल देनी व सेरुसिय ने फाव कलाकृतियों का उत्सुकता से अध्ययन किया। फाव चित्रकारों ने गोग्वँ के विचारों का अध्ययन नाबिकला द्वारा करने के बजाय स्वतंत्र रूप से किया था जहां उनको संदेश मिला था "कलाकृति का उद्देश्य उसके अंतर्गत ही होता है"। गोग्वँ के समान, फाव चित्रकारों ने भी आदिम कला का अध्ययन किया और वे आदिम कला के रूपसम्बन्धी गुणों से प्रभावित हुए; गोग्वँ आदिम कला की प्रतीकात्मकता से आकृष्ट थे। सभी फाव चित्रकारों पर गोग्वँ का समान रूप से प्रभाव नहीं पड़ा। मातिस ने गोग्वँ के अन्तिम चित्रों को मोंफ्री के निवासस्थान पर देखा और उनके

अविभाजित रंगांकन के निर्भीक प्रयोगों में उनको नवप्रभाववाद की यांत्रिक रंगांकन पद्धति से मुक्त होने का मार्ग दिखाई दिया। व्लामिक को गोग्वँ की कला पसन्द नहीं थी और उन्होंने लिखा "गोग्वँ की कला कठोर व अस्वाभाविक है, उसमें कलाकार की नैसर्गिक भावनाओं के लिए स्थान नहीं है। उनकी कला में सब कुछ है किंतु कलाकार नहीं है"। वान गो की कला से व्लामिक बहुत प्रभावित थे व उन्होंने लिखा है "वान गो की कला मानवतापूर्ण, संवेदनाशील व सजीव है; इसके विपरीत गोग्वँ की कला बुद्धिनिष्ठ व रीतिवादी है"।

सर्वसाधारण रूप से मातिस, मार्क्वे, फ्रिज, द्यु फि व ब्राक गोग्वँ से प्रभावित थे जबकि व्लामिक, देरें व वान डोन्जेन वान गो से प्रभावित थे यद्यपि इस वर्गीकरण की कुछ स्पष्ट मर्यादा नहीं है; देरें ने गोग्वँ की आलंकारिक शैली का अनुकरण करके कुछ चित्र बनाये हैं और मातिस ने भी कुछ चित्रों में वान गो के गतिपूर्ण तूलिका-संचालन का अनुकरण किया है। कुछ फाव चित्रकारों को वान गो का जोशीला रंगांकन, गतित्व एवं अपनी भावनाओं को रंगों द्वारा व्यक्त करने की स्वाभाविक पद्धति बहुत पसंद थी और वे गोग्वँ के आलंकारिक व बुद्धिनिष्ठ प्रतीकवाद को अस्वाभाविक मानते। वर्नीमजोन कलावीथिका में आयोजित वान गो की चित्रप्रदर्शनी को प्रथम बार देखकर देरें, मातिस व सबसे अधिक व्लामिक प्रभावित हुए। इस अनुभव के बारे में व्लामिक ने लिखा है "चित्रों को देखते समय मैंने महसूस किया कि मैं वान गो से इतना प्यार कर रहा हूं जितना मैंने अपने पिता से भी कभी नहीं किया"। वान गो का एक चित्र खरीदने की उन्होंने बहुत कोशिश की किंतु अत्यंत विपन्नावस्था के कारण वे खरीद नहीं सके। व्लामिक की धारणा हो गयी थी कि वान गो ने पूर्णतया सहज सृजन प्रवृत्ति पर निर्भर रह कर चित्रण किया; किंतु वान गो की कलानिर्मिति के पीछे पर्याप्त अध्ययन एवं विचार भी थे और व्लामिक की उपर्युक्त धारणा सत्य स्थिति पर आधारित नहीं थी।

संक्षेप में गोग्वँ की कला ने फाव चित्रकारों को रंगों के काव्य व प्रतीकात्मक महत्व की ओर निर्देशित किया तो वान गो ने आत्मिक अभिव्यक्ति व भावनापूर्ण अंकनपद्धति के कलात्मक महत्व पर बल दिया। वान गो ने उनकी निष्ठा को दोहराया कि कलाकार की कलावस्तु की ओर मौलिक प्रतिक्रिया सर्वश्रेष्ठ है, कलाकार के व्यक्तित्व व उसकी भावनाएं उसके विचार व विश्लेषण से अधिक मूल्यवान हैं। वान गो ने १८८८ में थिओ को लिखे पत्र में भविष्यवाणी की थी "मुझे स्पष्ट दिखायी देता है कि समकालीन चित्रकला मूर्तिकला के समरूप न रह कर, संगीत के निकट आयेगी, अंतर्मुख होगी; उसमें रंगों के विशुद्ध परिणाम का महत्व बढ़ेगा और वह अधिक सूक्ष्म होगी"[४]। वान गो की यह भविष्यवाणी फाव कला के रूप में साकार हुई। फाव कला में घनत्व के आभास का कोई महत्व नहीं था; वह ध्येय व कलात्मक अनुभूति के विचार से स्वयपूर्ण थी; एवं व्यक्तिगत भावनाओं की पूर्ति के उद्देश्य

से फाव चित्रकारों ने रंगों का चरम सीमा तक विशुद्ध प्रयोग किया।

अधिकतर फाव चित्रकारों का कला का अध्ययन पैरिस के एकोल द बोजार में हुआ जहां गुस्ताव मोरो एक अध्यापक थे। वे बहुत ही सहृदय व गुणग्राही अध्यापक थे और उनके अध्यापन कौशल के बारे में वोक्सेल ने लिखा है "उन्होंने विद्यार्थियों का मनोविकास किया"। उनके विद्यार्थी उनका बहुत आदर करते। उनके विद्यार्थियों में मातिस, मार्क्वे, देवालियर, मार्ग्वे, काम्वाँ, फ्लाद्रँ आदि थे जो बाद में फाव चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। प्रतीकवादी कलाकारों में मोरो का सम्माननीय स्थान था और युइमां ने उनका 'प्रतीकवाद के प्रतिनिधि' उपाधि से गौरव किया किंतु परंपरावादी तथा क्रांतिवादी चित्रकार उनका उपहास करते। बाद में अतियथार्थवादी कलाकारों ने उनको अतियथार्थवाद के पूर्वगामी कलाकार के रूप में सम्मानित किया। कैसे भी हो, श्रेष्ठ व प्रभावी अध्यापकों में मोरो का स्थान वादातीत है यद्यपि उनकी कला की महानता के बारे में मतभिन्नता है। मातिस व मार्क्वे को मार्गदर्शन में किये मोरो के उपदेश से फाव कला पर प्रकाश पड़ता है "निसर्ग क्या है ? वह कलाकारों को अभिव्यक्ति के लिये एक बहाना मात्र है; अपनी आंतरिक भावनाओं को व्यक्त करने के उद्देश्य से समुचित रूप की निरन्तर की गयी खोज को ही कला कहते हैं"। "मुझे जो दिखायी देता है या जिसको मैं स्पर्श कर सकता हूं उसका मैं विश्वास नहीं करता; मैं उसका विश्वास करता हूं जो मुझे दिखायी नहीं देता किंतु जिसको मैं आंतरिक भावनाओं से अनुभव करता हूं।" "वे अमर चित्रकार हैं जो निसर्ग के सत्य अर्थ को प्रकाशित करते हैं, जो चित्रकार बनने के लिए आवश्यक बहुरंगी कल्पना को अपनी कृतियों में साकार करते हैं"। अपने अध्यापन कौशल पर मोरो का पूर्ण विश्वास था और वे विद्यार्थियों को कहते "सामने के किनारे" पर पहुंचने के लिये आप मेरा पुल की तरह उपयोग करेंगे "और यह भी कहते" आप मेरे जितने योग्य तभी बनेंगे जब आप मुझे अस्वीकार करके मुझसे भिन्न बन जायेंगे"। मातिस बहुत कृतज्ञता से मोरो का ऋण मानते और उनके एक वचन को बार-बार उद्धृत करते "कला में माध्यम का प्रयोग जितना विशुद्ध रूप में होगा उतनी भावनाओं की अभिव्यक्ति तीव्र होगी"। मोरो के स्नेह एवं सहानुभूतिपूर्ण मार्गदर्शन से मातिस की कला उत्कर्ष के शिखर तक पहुंच सकी। मातिस को वे प्यार से 'सुपरिचित दुश्मन'[5] कहते और उन्होंने भविष्यवाणी की थी "तुम चित्रकला को सरल रूप दोगे"। उन्होंने मातिस के पिता को विश्वास दिलाया कि मातिस होनहार विद्यार्थियों में से है और उनके विरोध को शान्त किया।

फाव कला की १९०५ में हुई प्रथम प्रदर्शनी के दो साल के अंदर ही उसका आरंभिक जोश समाप्त सा हो गया; फाव मंडल के सभी चित्रकार अपने व्यक्तित्व के अनुकूल अंकन पद्धति से निजी शैली का विकास करने में व्यस्त हो गये। भावनाओं का जोश फाववादी चित्रकारों का निषेध प्रदर्शन मात्र था एवं केवल उसी पर निर्भर

रह कर महान् कृतियों का निर्माण सुतरां असंभव था और न उससे चित्रकार की आत्मिक अभिव्यक्ति की पूर्ति होने वाली थी। १९०६ में आयोजित फाव चित्रकारों की दूसरी प्रदर्शनी में ही परिवर्तन के प्रमाण स्पष्ट रूप से दिखायी दिये; मातिस की कृतियों में आकारों को सरलीकृत व सुगठित रूप देने के प्रयत्न थे; द्यु फि, व्लामिंक व देरें की कृतियों में रचना व विषय प्रतिपादन पर ध्यान दिया गया था। फाववाद को पूर्वनियोजित विचारों का आधार नहीं था। व्लामिक अब महसूस करने लगे कि उनकी कृतियां केवल आलंकारिक व एकसी बनती जा रही थीं। शास्त्रशुद्ध कलाकृतियों के सामर्थ्य को देख कर देरें फिर विचार करने लगे "हलके रंगों में भी प्रक्षोभक सामर्थ्य हो सकता है। प्राचीन महान् चित्रकारों की कृतियों में भी भावनोद्दीपन का सामर्थ्य है जो हमारे ध्येयशून्य चित्रण के परे हैं"। अब फाव चित्रकारों को यकीन हुआ कि केवल इंद्रियजनित आनंद कला का सर्वाधार नहीं हो सकता; कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये आत्मिकता एवं विचार का होना अनिवार्य हैं।

इसी समय कलाक्षेत्र में नये आंदोलन जोर पकड़ रहे थे; सेजान की कला, लोककला एवं दुनिय रूसो जैसे सहजसिद्ध चित्रकारों की कला के सामर्थ्य ने नवीन चित्रकारों को आकर्षित किया था; घनवाद के जन्म से चित्रकारों को कलात्मक प्रयोग करने को एक नयी दिशा मिली थी। घनवाद की ओर सभी फाव चित्रकार आकर्षित नहीं हुए यद्यपि सेजान की कला ने सबको निरपवाद प्रभावित किया था। ब्राक व देरें घनवाद की दिशा में प्रयोगशील हुए। मार्क्वे व फिज ने कलाकृति को आकर्षक बनाने की दिशा में विषय के महत्व को पहचाना, और वे विषय के चयन व चित्रण की ओर विशेष ध्यान देने लगे। वान डोन्जेन ने फाव रंगसंगति में आकर्षक मानवचित्रण शुरू करके उसको लोकप्रिय बनाने के प्रयत्न शुरू किये। केवल मातिस, व्लामिक व द्यु फि ने फाव अंकनपद्धति को अभ्यासपूर्ण नियंत्रण से, चमकीले रंगांकन को सौम्य व मनोहारी रंगसंगति से व ऐंठनदार रेखाओं को लयबद्ध गतित्व देकर सृजनशील व अर्थपूर्ण बनाया व फाववाद जो १९०७ में ही समाप्त हो चुका था—के जन्म को सफल बनाया। १९०८ के पश्चात् फाव चित्रकारों ने व्यक्तिगत विचारों के अनुकूल भिन्न दिशाएं अपनायीं। पिकासो के साथ ब्राक घनवाद के एक प्रणेता बन गये। द्यु फि ने गतिपूर्ण रेखाओं से सचेत किंतु आलंकारिक शैली का विकास किया। व्लामिक ने पैरिस के उपनगरों के कालिमा छाये हुए, अनोखे वातावरण से परिवेष्टित दृश्यों के एवं फूलों के चित्र बनाये। देरें ने घनवाद से प्रभावित किंतु बिलकुल नयी शैली में व्यक्ति, वस्तुसमूह, प्राकृतिक दृश्य जैसे यथार्थ विषयों को चित्रित किया। रुओल केवल संयोगवश फाव चित्रकारों में सम्मिलित हुए थे। उनके रेखांकन में फाववाद का जोश जरूर था किंतु आरम्भ में ही उनकी कला में फाव कला के चमकीले रंगों का स्थान गहरे रंगों के प्रयोग ने व विषयवस्तु के प्रति सहानुभूतिपूर्ण अभिव्यंजना ने ले लिया था।

फाववाद के नेता मातिस सवसे अधिक अध्ययनशील थे। उन्होंने संशोधकवृत्ति से सेजान की कला, इस्लामी कला, पर्शियन कला व घनवाद की चिकित्सा करके उनके मौलिक गुणों को पृथक् रूप से परखा व अपनी शैली का विकास करके वे विश्वविख्यात हुए।

फ्रान्स में फाववाद जल्द ही समाप्त हो गया परन्तु उसका अन्य देशों की कला पर काफी प्रभाव पड़ा। वेल्जियम में रिक वुटर्स के नेतृत्व में कुछ चित्रकार फाव ढंग के चित्रण करने लगे। किन्तु फाव कला का सवसे अधिक प्रभाव जर्मन कला पर पड़ा, व ड्रेस्डेन व म्युनिक में नयी कलाशैलियों ने जन्म लिया। ड्रेस्डेन में 'डी व्यूके' नाम से एक कलाकारमंडल की संस्थापना हुई जिसके नेता किर्शनर थे। म्युनिक में कान्डिन्स्की, क्ली, मार्क, यालेन्स्की आदि कलाकारों ने मिलकर 'डेर् ब्लौ राइटेर' नाम के कलाकारमंडल की संस्थापना की। दोनों मंडलों के चित्रकार मुख्य रूप से अभिव्यंजनावादी थे और उनकी अंकनपद्धतियों पर फावकला का घनिष्ठ प्रभाव था।

आंरी मातिस (१८६९–१९५४) आंरी मातिस का जन्म ल सातो में हुआ। उनके पिता अनाज के व्यापारी थे और उन्होंने आंरी को कानून की शिक्षा देने का विचार किया। चित्रकला में कोई रुचि नहीं होने से आंरी ने इस विचार का कोई विरोध नहीं किया और प्रात्यक्षिक अनुभव के लिये वे सॉलिसिटर के कार्यालय में लिपिक वन गये। अपेंडिसाइटिस से विकारग्रस्त होने से मातिस को काफी समय रुग्णालय में विताना पड़ा। पास में ही एक रोगी को मनोरंजन के लिये चित्रण करते हुए देखकर, मातिस ने मानसिक उदासीनता को हटाने के उद्देश्य से चित्रण करने का इरादा किया एवं उनकी माताजी ने उनको एक तैलरंग की डिविया, पट व गुपिल द्वारा प्रकाशित चित्रकारी संवंधी पुस्तक ला दिये। चित्रकारी के इस प्रथम अनुभव के वारे में मातिस ने लिखा है "मैंने अनुभव किया कि मुझे कोई स्वर्गप्राप्ति हुई है"। रुग्णालय से छुट्टी होने के वाद मातिस ने फुरसत के समय में चित्रशाला में जाकर मूर्तियों से अध्ययन शुरू किया। कुछ समय वाद मातिस ने चित्रकला की नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा अपने पिता के सम्मुख व्यक्त की। मातिस प्रथम वुग्वेरो की चित्रशाला अकादेमी ज्युलिआं में दाखिल हुए किंतु वहां उनको निराशा हुई। मातिस के कुछ रेखाचित्रों को देख कर एकोल द वोजार के अध्यापक मोरो ने उनको अपनी चित्रशाला में विना प्रवेशपरीक्षा के दाखिल कराया। वहां उनका रुओल, मांग्वँ आदि कुछ भावी फाव चित्रकारों से परिचय हुआ। मोरो विद्यार्थियों को अध्ययन के लिये लुव्र संग्रहालय ले जाते जहां मातिस ने पुसँ, ज्योर्जिओन, राफेल, शार्दं, देलाक्रा वगैरह कलाकारों के चित्रों की अनुकृतियां वनायीं जिनमें से कुछ विकीं। मातिस के आरंभिक चित्रों पर शार्दं का प्रभाव है और चित्रों के विषय अधिकतर वस्तुसमूह व गृहांतर्गत भागों के दृश्य हैं। इस समय उनको प्रभाववाद एवं गोग्वँ, वान गो व सेजान के वारे में ज्ञान नहीं था।

प्रभाववादियों के मित्र व आस्ट्रेलियन चित्रकार जॉन रसेल ने मातिस की विशुद्ध रंगांकन में रुचि पैदा की। पिसारो ने उनको प्रभाववाद के सिद्धांतों से अवगत कराया और वे प्रभाववादी अंकनपद्धति में चित्रण करने लगे। रंगों के विशुद्ध प्रयोग के साथ उनके रंगांकन में स्वच्छंद व आकारों में सरलीकरण दिखायी देने लगे। १६०१ तक उनकी कला इस दिशा में संयम के साथ विकसित हुई। १८९८ में उन्होंने लंदन में टर्नर के चित्र देखे। उसके पश्चात् उन्होंने फ्रान्स के दक्षिणी भाग की यात्रा की और मध्यसागरीय दृश्यों को चित्रित किया जिससे उनकी चमकीले रंगों के प्रति स्वाभाविक रुचि को बढ़ावा मिला।

पिसारो के प्रयत्नों से सेजान की कला की महानता पर, उनको इतना दृढ़ विश्वास हुआ कि प्रतिकूल आर्थिक परिस्थिति के बावजूद उन्होंने सेजान का चित्र 'तीन स्नानमग्नाएं'[6] खरीदा जो उनके पास १९३६ तक था। उसको लुव्र संग्रहालय को दान करते समय उन्होंने पत्र में लिखा "मेरी चित्रकला के व्यवसाय के निर्णायक क्षणों में इस चित्र ने मुझे आत्मिक बल दिया; इससे मैंने श्रद्धा व प्रयत्नशीलता प्राप्त की"। सेजान का अध्ययन करके आकारों को सामर्थ्यपूर्ण बनाने पर मातिस विशेष ध्यान देने लगे। सेजान की कलाकृतियों को देखकर उनको पूर्ण यकीन हुआ कि स्वभावतः रंग चित्रकला के बहुत ही शक्तिशाली अंग है एवं उनमें सतुलन व सुसंगति प्रस्थापित करना चित्रकार का प्रमुख कार्य है।

१८९८ में उनका विवाह हो गया था और उनकी पारिवारिक आर्थिक परिस्थिति बड़ी चिंताजनक थी। उनकी पत्नी ने सहायता करने के हेतु महिलाओं के टोपों की दूकान खोली व मातिस ने निश्चय के साथ, व्यक्तिगत विचारों की दिशा में नयी कला की खोज जारी रखी। मानव चित्रण के अध्ययन के लिए रुएद रेन्न में स्थित कारियर की चित्रशाला में मातिस व मार्क्वे भरती हो गये जहां प्युय, लाप्राद व देरें भी आते थे। रोदँ व बेरिय से प्रेरणा पाकर उन्होंने मूर्तिकला का भी अभ्यास किया; उनकी 'गुलाम'[7] शीर्षक की मूर्ति व रोदँ की मूर्ति 'चलता हुआ आदमी' में काफी समानता है। मातिस ने अपनी कलाकारी के काल में कई मूर्तियां बनायीं जो गठन; संतुलन व ढलाव के गुणों से उत्कृष्ट हैं। १९०१ से मातिस 'सलों द अँदेपांदां' में व १९०३ से 'सलों दातोम' में हर साल प्रदर्शनी के लिये चित्र भेजते रहे। १९०४ में मातिस की प्रथम एकल प्रदर्शनी हुई जिसकी प्रस्तावना में रोजर मार्क्स ने लिखा "यहां चित्रकार ने अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति में कड़ा रुख अपनाया है और कठिन परिश्रम से अपने रंगों के प्रभुत्व को सिद्ध करने के प्रयत्न किये हैं"। मातिस की कला का रंगसामर्थ्य उनके फाव काल में (१९०५–१९०८) विकास की चरम सीमा तक पहुंचा। उससे पहले कुछ समय तक उन्होंने सिन्याक व क्रॉस के सम्पर्क में आकर कुछ बिंदुवादी चित्र बनाये जिनमें से १९०५ की 'सलों द अँदेपांदां' में रखा गया उनका चित्र 'विलास'[8] प्रसिद्ध है।

१९०५ में मातिस व देरें कोलिउर गये थे जहां मोंफ्री ने उनको गोग्वँ के टाहिटी के चित्र दिखाये एवं फलस्वरूप मातिस ने विंदुवादी अंकनपनपद्धति को छोड़ कर विशुद्ध रंगों के अविभाजित क्षेत्रों में रंगांकन आरम्भ किया। संपूर्ण फाव दृष्टिकोण का उनका विख्यात चित्र 'हरी पट्टी'[9] फाव चित्रकारों की 'सलों दातोम' में आयोजित प्रथम प्रदर्शनी में दिखाया गया। यह चित्र मादाम मातिस का व्यक्तिचित्र है जिसमें चेहरे के बीचोंबीच हरे रंग की पट्टी को अंकित करके चेहरे को दो स्पष्ट हिस्सों में विभाजित किया है, और उससे छायाप्रकाश का प्रभाव नहीं होते हुए चेहरे को उभार आ गया है; नीले, लाल, पीले, गुलाबी व सिंदुरी रंगों के क्षेत्रों को स्पष्ट व पृथक् रूप से अंकित किया है और उससे चित्र में चटकीलापन आ गया है। फावकाल की निजी कलानिर्मिति के बारे में उन्होंने लिखा है "मेरे लिये फाववाद एक प्रयोग मात्र था। हरे, लाल, व नीले रंगों के समीपवर्ती क्षेत्रों से मैं अभिव्यक्तिपूर्ण रचना करना चाहता। यह मैंने सोच समझ कर नहीं किया, वलिक उसका जन्म आंतरिक आवश्यकता की पूर्ति में हुआ"।

१९०६ में मातिस की द्वितीय एकल प्रदर्शनी हुई जिसमें चित्र, रेखांकन, लिथोग्राफ्स, छापचित्र, मूर्तियां आदि विविध कलाकार्य प्रदर्शित हुआ। उसी साल मातिस ने अपना एक महत्वपूर्ण चित्र 'जीवन का आनन्द'[10] सलों द अँदेपांदां में प्रदर्शित किया। इस प्रदर्शनी के बाद उन्होंने उत्तरी अफ्रीका की यात्रा की। देलाक्रा, व रेन्वा को लेकर सभी रंगप्रेमी चित्रकारों को उत्तरी अफ्रीका ने आकर्षित किया था। प्रखर सूर्यप्रकाश में चमकते हुये नेत्रदीपक रंगों व इस्लामी कला के आकर्षण से मातिस कई बार यहां आये और उनकी कला पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। लौटते समय वे इस्लामी पर्दे, गलीचे, वस्त्र एवं मिट्टी के बर्तन ले जाते और अपने चित्रों की पृष्ठभूमि में उनका समावेश करके चित्रों को आलंकारिक छटा देते।

१९०८ में 'ल ग्रांद रिव्यु' पत्रिका में 'चित्रकार के स्मरणपत्र'[11] शीर्षक से लेख प्रकाशित करके मातिस ने फाव चित्रकारों के दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला। उनके विचारों को संक्षेप में, निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है "फाव आंदोलन के पीछे मुख्य उद्देश्य थे : प्रकाश के स्थान पर रंगों का समरूप प्रयोग, रंगों द्वारा अवकाश में रचना, घनत्व के स्थान पर समतल क्षेत्रों का प्रयोग; संयोजन, अंकन एवं अभिव्यक्ति के बीच सुसंवादित्व"। उसी लेख में उन्होंने लिखा है "मेरा लक्ष्य आत्मिक अभिव्यक्ति है।

जीवन से प्राप्त भावनाओं की अनुभूति व उनको व्यक्त करने की मेरी कलात्मक पद्धति के बीच मुझे कोई अन्तर नही दिखायी देता। मानव चेहरे पर अंकित किये गये विकार या नाटकीय अभिनय को मैं अभिव्यक्ति नहीं कहता........मेरे चित्र की संपूर्ण रचना अभिव्यक्तिपूर्ण है। अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये कला के सभी अंगों की समुचित रचना यही चित्रसंयोजन है"। कलासम्वन्धी उनका निम्न

विचार अर्थपूर्ण है "वस्तु के वाह्य रूप से आंतरिक सत्य को पृथक् करना आवश्यक है। इस सत्य के अतिरिक्त सब कुछ निरर्थक है"।[12] आधुनिक कला के विकास का यही मुख्य सिद्धान्त है।

१९०७ के 'सलों दातोम' में सेजान की कलाकृतियां प्रदर्शित की गयीं और उनके अध्ययन से मातिस की कला में गोग्यँ की आलंकारिकता के साथ सेजान की रचनात्मकता व आकारों के सरलीकरण ने प्रवेश किया। १९०८ में बनाया चित्र 'कछुआ व तीन स्नानमग्नाएं'[13] स्पष्ट रूप से सेजान के चित्र 'स्नानमग्नाएं' से प्रभावित है। फाव चित्रकारों में मातिस अधिक सावधान व विचक्षण थे; अतः सेजान की महानता को वे तुरन्त पहचान गये। सेजान की रचनाप्रधान शैली एवं फाव कला के विशुद्ध रंगांकन के बीच की विसंगति के बारे में जब मातिस से पूछा गया तब उन्होंने स्पष्टीकरण किया "विशुद्ध रंग ? पूर्ण विशुद्ध रंगों का प्रयोग ? मैं कहूंगा, नहीं। सेजान ने सफेद व काले रंगों से भी आकारों को सामर्थ्य प्रदान किया है"। मातिस ने भी रंगों के स्वाभाविक रचनासामर्थ्य को अनुभव किया और उसी रूप में उनको प्रयोगान्वित किया। इस समय पिकासो व उनके घनवादी अनुयायियों के प्रयत्नों से कला में रचना का महत्व बढ़ता जा रहा था और मातिस भी अनुभव कर रहे थे कि केवल आंतरिक भावनाओं पर निर्भर रह कर स्थायी महत्व की कलानिर्मिति नहीं की जा सकती; उसके लिये तर्कशुद्ध रचना आवश्यक है।

१९०८ में मातिस ने चित्रशाला खोली। अब उनके चित्र भी बिकने लगे व उनकी आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ। उनके जो विद्यार्थी फावकला द्वारा अविलम्ब चित्रकार बनने की आशा करते उनको वे उपदेश किया करते "पहले निसर्ग के नियमों को समझ लो; बाद में उनको तोड़ दो। रस्सी पर चलने का प्रयत्न करने से पहले जमीन पर चलना सीखो"। सेजान की कला के अतिरिक्त पर्शियन कला, १९२० में म्युनिक में हुई इस्लामी कला की प्रदर्शनी, १९११ में मास्को में देखे हुए बिजांटाइन प्रतिमाचित्र एवं मोरोक्को की यात्राएं आदि विभिन्न प्रभावों से लाभ उठा कर मातिस ने अपनी आरम्भिक खलबलीयुक्त, आवेशपूर्ण फाव अंकनपद्धति को शास्त्रशुद्ध रूप दिया और स्थायी महत्व की कलाकृतियां बनायीं। अब उनकी कलाकृतियों में आकर्षक, मनोहर रंगसंगति, लयबद्ध वाह्यरेखा से अंकित, सरलीकृत, सुगठित आकार, अनोखा, निर्दोष संयोजन—जो उनकी शैली की विशेषताएं हैं—ये गुण दृष्टिगोचर हुए और वे बहुत ही आकर्षक व प्रसन्न बन गयीं। उनको भित्तिचित्रण का बहुत सा काम मिला; उसके अनुभव से एवं बिजांटाइन व एशियाई कला के अध्ययन से उनके चित्रों को भित्तिचित्रों की भव्यता प्राप्त हुई।

अमेरिकन चित्रसंग्राहक लिओ स्टेन व उनकी साहित्यिक भगिनी गर्ट्रूड स्टेन ने मातिस को उनके चित्रों को खरीद कर प्रोत्साहित किया। इसके अतिरिक्त रशियन पूंजीपति शुकिन व सेम्वा उनके चित्रों के शौकीन संग्राहक थे। शुकिन के

लिये मातिस ने 'संगीत' व 'नृत्य' शीर्षक के दो फलक-चित्र वनाये जिनसे उनको रशिया में ख्याति प्राप्त होकर वहां उनके बहुत चित्र विके । संप्रति उनके उत्कृष्ट चित्रों में से कई चित्र रशियन संग्रहालयों में हैं । १९१० से लेकर करीव १९२० तक मातिस की शैली स्थिरता व रचना के भाव लिये हुए थी एवं इस काल के उनके चित्र वहुत ही प्रसन्न हैं; इन चित्रों में से 'लाल चित्रकलाकक्ष' (१९११), 'पियानो-वादन का अभ्यास' (१९१६), 'गृहांतर्भाग व वायोलिन' (१९१८), 'सफेद पर' (१९१९)[14] विशेष प्रसिद्ध हैं । वहुत से चित्रों में गृहांतर्भागों के दृश्य हैं व रंगसंगति पर मोरोक्को के रंगविरंगे वातावरण का प्रभाव है । १९२० के करीव उनकी कलाशैली पुनरुत्साहित हुई और रचनात्मकता के साथ उनकी अंकनपद्धति में एक नया जोश आ गया; किंतु अंकनपद्धति सावेश होते हुए रचना में कहीं ढीलढाल नहीं है । तुर्की जनानखाने की अर्धवस्त्र या विवस्त्र स्त्रियों के कई चित्र 'ओदालिस्क[15] इस नयी शैली के सुन्दर उदाहरण हैं । पृष्ठभूमि में अंकित पर्दों, जालियों एवं जनानखाने के अंतर्गत रंगविरगे वातावरण से चित्र आलंकारिक व रंगसंगति में वहुत ही अनोखे व आकर्षक वन गये हैं । १९२५ में फ्रेंच सरकार ने उनको राष्ट्रीय सम्मान से विभूषित किया; तव तक वे विश्वख्याति प्राप्त कर चुके थे । १९२७ की पिट्स्ववर्ग की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी[16]में उनको प्रथम पुरस्कार मिला । १९३० में दुनिया की सैर कर के टाहिटी में उन्होंने गोग्यँ का निवासस्थान देखा । उनके अन्तिम २० साल के चित्र पूर्णतया द्विमितियुक्त व रेखात्मक हैं; उनमें कमाल का सरलीकरण है व कहीं पर्याप्त वस्तुनिरपेक्षता आ गयी हैं ।

१९४३ में मातिस ने वान्स को निवासस्थान वनाया । यहां उन्होंने कागजों को काट कर चित्ररचनाएं की एवं पुस्तक चित्रण किया । १९४८ से १९५१ तक उन्होने वान्स के गिरजाघर की साजसज्जा के लिये भित्तिचित्र, रंगीन कांचचित्र, पवित्र वस्त्रों के अलंकरण आदि कलाकार्य किया जो उनकी कला के उत्कर्ष का मान विंदु है । १९५२ में ल सातो में मातिस संग्रहालय का उद्घाटन हुआ । वृद्धावस्था में जव वे खड़े होने में असमर्थ हुए तव लंवी डंडी में कोयले के टुकड़े को फंसाकर वे भित्तचित्रण करते, कभी कागजों को काट कर चित्र वनाते व नौकर से दीवारों पर चिपकाते । १९५४ में इस महान् चित्रकार का नाइस में स्वर्गवास हुआ, जव तक उनका स्वप्न साकार हुआ था जो उनके शब्दों में था "मैं जिसको स्वप्न में देखता हूं वह ऐसी कला है जिसमें संतुलन, विशुद्धि व प्रसन्नता हैं.......जो आराम कुर्सी के समान विश्रामदायिनी है" ।[17] उनकी निजी कला ऐसी ही है । उन्होंने यह भी लिखा था "कलाकृति प्रत्यक्ष का प्रतिरूप नहीं होती । उसका जन्म कलाकार के मन में होता है । उसमें स्थायी कलात्मक गुण व विचार होने चाहिये एवं इसके अतिरिक्त प्रसन्नता । यह सव अभिव्यक्ति सवंधी समस्याओं का सुदीर्घ चिंतन कर के प्राप्त किया जा सकता है" ।[18] मातिस ने स्वयं ऐसी ही अविरत साधना की ।

मौरिस व्लामिंक (१८७६-१९५८)

१९०० में आयोजित वान गो की चित्रप्रदर्शनी में व्लामिंक का मातिस से परिचय हुआ किंतु १९०५ तक उनमें विशेष संपर्क नहीं रहा और व्लामिंक ने अपनी कला का विकास पूर्णतया आत्मप्रेरणा से किया। वे कला को अभिव्यक्ति का एवं दबी हुई भावनाओं को मुक्त करने का साधन मात्र समझते थे। वे कहते "मेरे विचारों को स्पष्ट करने के हेतु मैं चित्रण करता हूं।.... अराजकता, प्रेम करना, ख्वाब देखना ये जैसे व्यवसाय नहीं हो सकते उसी प्रकार चित्रण कोई व्यवसाय नहीं हो सकता....यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति मात्र है"।[19]

व्लामिंक का जन्म १८७६ में पैरिस में हुआ। उनके पिता संगीतज्ञ थे। व्लामिंक का जीवन उपन्यास के समान मनोरंजक है। उम्र के १८ वें साल में उनकी लंबाई छः फीट से अधिक थी व वे असाधारण शक्ति के लिये प्रसिद्ध थे। वे कुश्ती, साइकिल-रेस आदि प्रतियोगिताओं में भाग लेते व उससे उनको अर्थप्राप्ति भी होती। उनके माता-पिता दोनों संगीत में निपुण थे और उन्होंने बच्चों को अपने भवितव्य को निर्धारित करने का पूर्ण स्वातंत्र्य दिया था। व्लामिंक ने अपने पिता से संगीत की शिक्षा प्राप्त की व आयु के ३० वें साल तक वायोलिन का अध्यापन कर के अर्थार्जन किया। वे अपने बचपन के बारे में कहते "मैंने जन्मते ही संगीत सुना व उसको सुनते-सुनते ही मैं बड़ा हो गया"।

व्लामिंक में मातिस की बौद्धिकता व गांभीर्य नहीं थे और वे सहजप्रवृत्ति पर निर्भर रह कर चित्रण करते। वे एकोल द बोजार को जला देने की बात करते तो मातिस वहां के अध्ययन से हुए लाभ को कृतज्ञता से स्पष्ट करते। व्लामिंक कहते कि उन्होंने दूसरे चित्रकारों की कलाकृतियों को देखने में दिलचस्पी नहीं ली न वे कभी संग्रहालयों में गये। वे कहते "मैंने संग्रहालयों को इस तरह देखा जैसे कि वेश्यागृहों को— मैं जीना चढ़ कर ऊपर नहीं गया"।[20] किंतु यह पूर्ण सत्य नहीं था व बाद में उन्होंने स्पष्टीकरण किया "मेरे कहने का मतलब यह नहीं था कि पुसँ व कुर्बे के चित्रों का अध्ययन समय की खराबी है। वान गो व रूसो के चित्रों से मुझे कितनी प्रेरणा मिली इसका मुझे स्मरण है। किंतु मैं जरूर कहता हूं कि दूसरे कलाकारों की कृतियां देखने में बड़ा धोखा है, खास तौर से उनका अनुकरण करने में"।

उम्र के १२ वें साल में व्लामिंक ने सेन नदी के प्रकृति चित्रों की अनुकृतियां की थीं। चित्रकार बनने के पश्चात् उन्होंने इस विषय के प्रत्यक्ष देख कर चित्र बनाये। स्थानीय चित्रकारों से उनको कुछ मार्गदर्शन मिला। स्वतंत्र रूप से उन्होंने प्रभाववाद का अध्ययन किया व उनको मोने के चित्र बहुत पसंद आये। उनकी माता ने उनको चित्रकला के अध्ययन में प्रोत्साहन दिया किंतु उनके पिता सोचते थे

कि यदि मोरिस साइकिल-रेस का व्यवसाय करेंगे तो अच्छा होगा क्योंकि उम्र के १८ वें साल में ही वे साइकिल-रेस से सप्ताह में करीव ४०० फ्रांक कमाते थे। उम्र के २३ वें साल तक व्लामिक ने शौक के रूप में चित्रकारी की।

१६०० में व्लामिक का संयोगवश देरें से रेलगाड़ी में परिचय हुआ जो अपना रंग सामान लेकर प्रकृति-चित्रण के हेतु घूम रहे थे। देरें से प्रेरणा पा कर व्लालिक ने चित्रकार वनने का निश्चय किया। दोनों ने शातु में किराये पर चित्रकलाकक्ष ले लिया। १६०१ में वर्नीमजोन कलीवथिका में आयोजित वान गो के चित्रों की प्रदर्शनी दिखाने के लिये देरें व्लामिक को ले गये और वहां उनको मातिस से परिचित कराया। वान गो के रंगों की चमक व अंकनपद्धति की निर्भीकता का व्लामिक पर अनपेक्षित प्रभाव पड़ा। अव वान गो के समान वे चमकीले रंगों का प्रयोग, आवेश-पूर्ण रेखांकन और मुक्त तूलिका संचालन उनकी अंकनपद्धति के प्रमुख तत्व वन गये। उन्होंने देरें के समान विंदुवादी पद्धति से या मातिस के समान समतल रंगों से चित्रण कभी नहीं किया। तीन साल की सैनिक सेवा के पश्चात् वे अराजकतावादी वन गये और उन्होंने कुछ लेख प्रकाशित किये। वे साहित्यिक भी थे व जीवन में उन्होंने २० से अधिक उपन्यास, कविताएं व स्मृतिलेख लिखे। उनके सर्वप्रथम उपन्यास के लिये देरें ने ३२ रेखाचित्र वनाये। १६०६ तक व्लामिक को आर्थिक विपन्नावस्था से कड़ा मुकाविला करना पड़ा; इस काल में संगीत-वादक का काम कर के वे कुछ कमाते थे।

१६०५ से व्लामिक ने 'वातो लाव्वा' के कलाकारमंडल में जाना आरम्भ किया जहां वान डोंजेन, पिकासो, मावस याकोव व ग्वियोम अपोलिनेर से वे परिचित हुए। इसी साल मातिस के प्रोत्साहन से देरें व व्लामिक से 'सलों द अँदेपांदां' में अपने चित्र को प्रदर्शित किया। प्रत्येक का एक चित्र विक गया किन्तु कहते हैं कि जिस धनी व्यक्ति ने ये चित्र खरीदे थे वह आधुनिक कला से घृणा करता था और अपने दामाद को सवसे खराव चित्र भेंट करके, उसका मजाक करने के उद्देश्य से उसने यह चित्र खरीदे थे। १६०५ में देरें ने फिर व्लामिक व मातिस की मुलाकात करायी। व्लामिक के रंगों की चमक व अंकनपद्धति का साहस देख कर मातिस विस्मित हुए। १६०५ में हुई फाव चित्रकारों की प्रथम प्रदर्शनी में मातिस व देरें के साथ व्लामिक भी निंदा के शिकार हो गये; एक आलोचक ने लिखा "चित्रकार ने पट पर रंगों के गोले वरसाये हैं और उसको शीर्षक दिया है। ये लाल गोले क्या हैं? मकान कहां हैं? यह सव गूढ है"। इस आलोचना से हतप्रभ एवं निरुत्साहित होने के वजाय वे द्विगुणित उत्साह से चित्रण करने लगे। अव वे वड़े जोश से शुद्ध रंगों को सीधे ट्यूव से पट पर दवा देते। इस समय चित्रों के व्यापारी वोलार ने अकस्मात् आकर व्लामिक के कार्यकक्ष में पड़े करीव ३०० चित्रों को ६००० फ्रांक मूल्य देकर खरीदा और भविष्य में उनका प्रत्येक चित्र खरीदने का आश्वासन दिया। व्लामिक को

आश्चर्य हुआ व वे सोचने लगे कि बेचारा वोलार ठगाया जा रहा है। अब उन्होंने संगीत वादक का व्यवसाय छोड़ दिया और जोन्शेर के वन में छोटासा मकान लिया। वे नैसर्गिक कृषिजीवन पसंद करते व पैरिस के कृत्रिम शहरी जीवन से बिलकुल घृणा करते। वे अंत तक शहरी भीड़भाड़ से दूर रहे। अनुकूल एकांत वातावरण मिलने से यहां उनकी सहज प्रवृत्तिजनित वैयक्तिक शैली पूर्ण विकसित हुई। व्लामिक वहुत वाचाल थे किन्तु कला पर वादविवाद करना उनको बिलकुल पसंद नहीं था। उनके लिये चित्रण व भोजन एक समान थे; वे कहते "इन पर कोई भाषण नहीं देते; इनसे संतृप्त होते हैं"। बुद्धिवादी एवं विफल वादविवाद करनेवालों से तिरस्कार व्यक्त करने के उद्देश्य से वे विचित्र गंवार पोशाक पहिनते। जब व्लामिक के वनाये एक व्यक्तिचित्र को देख कर एक दर्शक ने असंतोष व्यक्त किया कि चित्रित आकृति आदमी की तरह दिखायी नहीं देती तब व्लामिक ने सीधा जवाव दिया "यह आदमी नहीं है। यह चित्रण है"।

चित्रकला व्लामिक का जीवनसर्वस्व थी। अपने कलाविषयक विचारों को बाद में उन्होंने निम्न शब्दों में व्यक्त किया, "मैंने शास्त्रीय, ग्रीक या इटालियन कला का कभी विचार नहीं किया। मैंने वर्मिलियन व कोवल्ट से 'एकोल द बोजार' को जला चाहा व पूर्वगामी कलाकारों ने क्या किया इसका जरासा भी विचार किये बिना मेरी सृजनात्मक अनुभूति को जगाना चाहा। ऐसा था मैं और मेरा जीवन, मेरा जीवन और मैं। कला में हरेक पीढ़ी को पुनः प्रारम्भ करना पड़ता है। चित्रकला चित्रकार की प्रतिभा है। चित्रकार के बारे में, उसके चित्रों को देखकर—हस्तरेखाओं से भी अधिक सरलता से—सब कुछ बताया जा सकता है—उसका जन्म, उसका वातावरण उसके प्रभाव, उसके दोष, उसका ज्ञान, उसकी मूर्खता सब कुछ उनमें हैं"।

१९०६ में देरें लंदन की यात्रा से वहुत से फाव दृष्टिकोण के चित्र वना लाये। किन्तु अब वे अपने विचिकित्सक स्वभाव के अनुसार संदेह करने लगे कि केवल विशुद्ध रंगों से सफल कलाकृति का निर्माण कैसे किया जा सकता हैं। वे सोचते व व्लामिक से कहते "यह तो कपड़ों पर रंगों से छपाई का काम हो गया। रंगों के व्यापारी से मिलने वाले लाल रंग से अधिक लाल या नीले रंग से अधिक नीला तो कहीं लगाया जा नहीं सकता।·······तो क्या ?"। व्लामिक ने वादविवाद करने से इन्कार कर दिया किन्तु वे मन में सशंक हो गये। उन्होंने देखा कि केवल सहज़-प्रवृत्ति पर निर्भर रहने से उनके चित्र एक से वनते जा रहे हैं और चित्रण में यांत्रिकता आ रही है; तब वे नयी प्रेरणा की खोज में लगे। उन्होने लिखा "सीधे ट्यूब से रंगों को निकाल कर चित्रण करने में सरलता है; इससे हर वार चित्र के पूर्ण किये जाने में कोई रुकावट नहीं आती; किन्तु इसके आगे हम वढ़ नहीं सकते। मैं अव उदास हो गया कि मैं इसके आगे वढ़ नहीं सकता क्योंकि मैं रंगों की चमक व अंकन के जोश की अंतिम सीमा तक पहुंच चुका था। यह फेंफड़े फटने तक सींग

वजाने के समान था—[इससे संगीत का निर्माण नहीं हो सकता था] । मैं वास्तविक सत्य तक नहीं पहुंच रहा था । मुझे अब अधिक दूरगामी साधन चाहिये था" । यह साधन उनको सेजान की कला के अध्ययन से प्राप्त हुआ ।

१९०७ में 'सलो दातोम' में हुई सेजान की एकल प्रदर्शनी के अध्ययन से व्लामिक की कला को आकारसामर्थ्य व रंगों का सौहार्द प्राप्त हुए । १९२० के करीब उनकी कला में फिर से सहजप्रवृत्ति ने उछाल खायी एवं फावकालीन लाल, पीले, हरे रंगों के स्थान पर सफेद, काले व हलके रंगों को चुन कर फाववाद, सेजान व वाग गो के संमिश्र प्रभाव से विकसित नयी शैली में उन्होंने चित्रण किया । व्लामिक एक ही ऐसे चित्रकार थे जिनकी कला में फाववाद का प्रभाव अन्त तक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर रहा ।

व्लामिक की पूर्ण विकसित कला में कालिमा छाये हुए वातावरण के अन्तर्गत पर्णहीन वृक्षों, झोंपड़ियों, अस्थिर जलसतहों पर गतिमान नावों, वर्फ से ढके निर्जन रास्तों आदि के रहस्यपूर्ण, वीरान, देहाती दृश्यों के चित्र एवं फूलों के चित्र प्रचुर मात्रा में हैं व इन्हीं चित्रों ने उनको लोकप्रिय व महान् चित्रकार वना दिया । एकांतप्रिय होने से वे फ्रान्स के उत्तरी भाग में शहर से दूर रहे जिसके संदर्भ में उन्होंने लिखा है "मैं देहात में रहता हूं । एकांत में कितने विशाल भाव हैं । मैं कृतज्ञ हूं कि ऐसे प्राकृतिक स्थानों में जीवन के आंतरिक मूल्यों को मैं पहचानता हूं व प्रगाढ़ शांति को अनुभव कर लेता हूं" । वे अपने को किसान कहलवाना पसन्द करते । उन्होंने कार्नेजी पुरस्कार के अतिरिक्त कई अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किये । चित्रकला के साथ उन्होंने काष्ठखुदाई, लिथोग्राफ्स, एचिंग, चीनी मिट्टी के वरतन के अलंकरण आदि कलाकार्य भी किया ।

यद्यपि व्लामिक की शैली में कुछ परिवर्तन होते गये, उनके फावकालीन जोश में विशेष अंतर नहीं पड़ा व वे अंत तक फाव चित्रकार कहलाये । उनकी कला की इस अपरिवर्तनशीलता की आलोचना होने पर उन्होंने लिखा "यह एक तरह से हमेशा वॅग्नर के समान संगीतरचना करने के कारण वॅग्नर की या हमेशा बीटोवेन के समान संगीत रचना करने के कारण बीटोवेन की निन्दा करने के समान है" ।[21]

आन्द्रे देरें (१८८०–१९५९)

आन्द्रे देरें का जन्म शातो में हुआ । उनके पिता की दूकान थी व वे चाहते कि आन्द्रे इंजीनिअर वने, किन्तु आन्द्रे की चित्रकला के प्रति रुचि को देख कर उनको अकादमी कारिय में भरती कराया गया जहां मातिस भी पढ़ते थे । १९०० में उनका व्लामिक से आकस्मिक परिचय हुआ और उनमें वहुसाल तक घनिष्ठ मित्रता रही यद्यपि दोनों के स्वभाव में जमीन आसमान का अन्तर था व्लामिक पूर्णतया अपने विचार से चलते जबकि देरें जहां कहीं कुछ सीखने को मिलता वड़ी उत्सुकता

से सीख लेते। देरें बहुत ही विचिकित्सावृत्ति थे व संदेह होते ही चित्रण को पुनः प्रारम्भ कर लेते। उम्र के १८वें साल तक उन्होंने बहुत से प्रसिद्ध चित्रों की प्रतिकृतियों का संकलन किया; वे कहते 'अज्ञानी रहने में क्या लाभ है ?" उनके ज्ञान-पिपासु स्वभाव के संदर्भ में रॉबर्ट रे ने लिखा है "वे दुनिया में सब कुछ जानना चाहते व स्वयं को भी जानना चाहते। वे अपनी कृतियों का निरहंकार बुद्धि से निरीक्षण करते; उनके बारे में दूसरों के विचारों को सुधार करने के उद्देश्य से उत्सुकता से सुनते व कठोरता से आत्मपरीक्षण करते। अपनी कमजोरियों को ढूंढ निकालने में ही उनको संतोष मिलता"। देरें भी अपने स्वभावदोष को भलीभांति जानते व कहते "बहुत अधिक ज्ञान कला के लिए सबसे अधिक हानिकारक है"।[22]

फाव काल में उन्होंने वान गो के प्रभाव में आकर चित्रण किया, किन्तु चमकीले रंगों के विरोध को, बीच-बीच हलकी छटाओं को अंकित करके, वे सौम्य करते। १९०५ में वोलार ने उनके सभी चित्र खरीदे और उनको लंदन व टेम्स नदी के दृश्यों को चित्रित करने को कहा। ये चित्र देरें के फाव काल के चित्रों में सबसे सुंदर बन गये हैं। व्लामिंक की तुलना में देरें के चित्रों में ठंडापन है व रंगसंगतियां अधिक आकर्षक व प्रसन्न हैं। लंदन से वापस आते ही देरें मोंमार्त्र के कलाकार मंडल में शामिल हुए। घनवादी चित्रकार पिकासो, ब्राक, ग्लेज व मेंजिजे एवं कलासमीक्षक अपोलिनेर व माक्स याकोव से उनका परिचय हुआ। अब उनका व्लामिंक से संपर्क कम हो गया; पिकासो व ब्राक से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध अन्त तक बना रहा।

१९०७ में वे सरलीकृत आकारों में चित्रण करने लगे। इस काल में वे अफ्रीकन मूर्तिकला के प्रभाव में आ गये। जिसका उनकी इस काल में बनायीं मूर्तियां उदाहरण है। १९०८ में उनका फाववादी दृष्टिकोण पूर्ण रूप से समाप्त हो गया। उन्होंने चटकीले रंगों को त्यागा एवं सेजान व घनवाद से प्रभावित होकर, घनवादी शैली से मिलतेजुलते चित्र वे कई साल तक बनाते रहे यद्यपि उनको कट्टर घनवादी चित्रकारों में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। उनके प्रकृति-चित्रों में सेजान का सामर्थ्य है किन्तु वे अधिक सरलीकृत हैं। उनके व्यक्तिचित्र व वस्तुचित्र घनवादी होते हुए उनमें सादृश्य का विचार है। देरें घनवाद से पूर्ण संतुष्ट नहीं थे किंतु वे अपने चित्रसंयोजन को आकारसामर्थ्य प्रदान करना चाहते—जिसका फावकला में अभाव था—और उसी उद्देश्य से वे घनवाद का अध्ययन करने को उद्यत हुए। घनवाद के प्रभाव में आकर उन्होंने मानवाकृति की नैसर्गिक विशेषताओं की उपेक्षा नहीं की बल्कि १९११ के बाद सिएनीज चित्रकला का अध्ययन करके अपनी कला को वस्तुनिष्ठता की ओर मोड़ दिया। फाववाद को वे केवल अपनी जवानी का जोश मानते। १९१४ के बाद उन्होंने घनवादी शैली के चित्र नहीं बनाये। घनवादी शैली के चित्रों में से 'अंतिम भोजन',[23] 'दो बहनें', 'शराबी' व 'शनिवार' ये चित्र

प्रसिद्ध हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उन्होंने स्वतन्त्र शास्त्रशुद्ध शैली का विकास करके अपने सबसे लोकप्रिय चित्रों का निर्माण किया। इस विकसित शैली में कभी देलाक्रा का रोमांसवाद एवं कभी कुर्बे का रोमांसक यथार्थवाद प्रतीत होते हैं; मानवाकृतियों में घनवाद की कठोरता की एवं प्रकृतिचित्रण में सेजान के प्रभाव की अस्पष्ट झलक हैं। १९२० तक पैरिस के युवा कलाकार उनका पिकासो से अधिक सम्मान करते थे व उनसे मिलकर कलासंबंधी मार्गदर्शन लेते। १९२८ में उनको 'पिट्स्बर्ग इंटरनेशनल' प्रदर्शनी में कार्नेजी पुरस्कार मिला। १९४५ में उन्होंने रावेले की पुस्तक 'पांता-ग्रुएल'[24] के लिये काष्ठखुदाई से छापचित्र बनाये। १९५४ में मोटर दुर्घटना में उनकी मृत्यु हुई।

रौल द्युफि (१८७७-१९५३)

द्युफि को विशेष प्रतिभासंपन्न चित्रकार नहीं मान सकते किन्तु उनकी व्यक्तिगत कलाशैली इतनी आकर्षक व सुबोध है कि उसमें नवीनता होते हुए वह जल्द ही लोकप्रिय हुई। उनकी विकसित शैली पूर्णतया रेखात्मक है और उसमें वातो का गतित्व है।

रोल द्युफि का जन्म ल आव्र में हुआ। उम्र के १५ वें साल में उन्होंने स्थानीय 'एकोल द बोजार' की सायंकालीन कक्षाओं में कला का अध्ययन आरम्भ किया। वहां के निर्देशक शार्ल लुलिय, गुस्ताव मोरो के समान, कुशल अध्यापक व अँग्र के प्रशंसक थे। द्युफि के पिता व दोनों भाई संगीत में प्रवीण थे व इस संगीतमय वातावरण में वे स्वयं शौकिया संगीतकार बने। ल आव्र के प्राकृतिक सागर-सौंदर्य का व घर के संगीतमय वातावरण का उनकी कला पर अमिट प्रभाव पड़ा एवं उन्होंने सागरी दृश्यों व संगीत से संबंधित विषयों को लेकर आजीवन असंख्य आत्मीयतापूर्ण कृतियां बनायीं। घर की आर्थिक स्थिति चिंताजनक होने से बचपन में ही उनको कॉफी के व्यापारी की दूकान में नौकरी करनी पड़ी। बाहर से आया हुआ सामान लाने के लिये उनको बंदरगाह जाना पड़ता, जहां वे समुद्र के किनारे पर घंटों बिताते व मालिक के दिये हुए बिलों पर रेखाचित्र बनाते।

१९०० में छात्रवृत्ति प्राप्त करके वे पैरिस के 'एकोल द बोजार' में भरती हुए जहां चित्रकार बोन्ना उनके अध्यापक थे। पैरिस में रहते हुए वे लुव्र संग्रहालय देखने को शायद ही कभी गये होंगे। शुरू में ही वे प्रभाववाद की ओर आकृष्ट हुए; उनको मोने, पिसारो व रेन्वा के चित्र बहुत पसन्द थे। १९०४ तक उन्होंने प्रभाववादी पद्धति के प्राकृतिक चित्र बनाये। १९०५ के सलों द अँदेपांदां में उन्होंने मातिस का चित्र विलास' देखा जिससे उनको एक नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। इस चित्र के प्रभाव के बारे में उन्होंने लिखा है "जब मैंने यह चित्र देखा तब मेरा प्रभाववाद की

ओर आकर्षण समाप्त हो गया; मैं रंग व रेखा की सहायता से निर्मित, कल्पना के सृजन चमत्कार के बारे में चिंतन करने लगा। मुझे चित्रकला-संबंधी नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ"। उन्होंने मार्क्वे के साथ फाव ढंग का प्रकृति-चित्रण करना आरम्भ किया। उत्साही, प्रसन्नचित व विनोदप्रिय द्यु फि की कला को फाववाद पोषक सिद्ध हुआ। आरम्भ में वे कुछ मोटी रेखा से आकारों को बांध लेते थे व उनके चित्रों के प्रसन्न, चित्तग्राही विषयप्रतिपादन के सामने अन्य फाव चित्रकारों के चित्र केवल रंगों का उत्पात या रंगांकन का अभ्यास जैसे प्रतीत होते। उनकी रंगसंगति भी प्रशांत व विविधतापूर्ण थी। दो तीन साल तक फाव दृष्टिकोण के चित्र बनाने के पश्चात् वे सेजान से प्रभावित होकर चित्रण करने लगे। १६०८ में लेस्ताक में ब्राक के साथ बनाये प्रकृति-चित्र घनवादी शैली के हैं। अब उन्होंने चमकीले व शुद्ध फाव रंगों के स्थान पर ओकस्, अर्थस्, प्रशियनब्ल्यू व हलके रंगों का प्रयोग शुरू किया। इन घनवादी चित्रों से भी उनकी कला के यथार्थवादी रूप व आलंकारिक रेखांकन के स्वाभाविक गुण छिपे नहीं रहते व इन गुणों की वजह से ही उनसे अधिक काल तक घनवादी चित्रण नहीं हो सकता था। घनवादी चित्रण से वे स्वयं असंतुष्ट थे। उनके आरम्भ में प्रशंसकों ने भी नाराज होकर उनके चित्र खरीदना बन्द कर दिया था। अब उन्होंने अविलम्ब बाह्य प्रभावों से मुक्त होकर अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्र शैली का विकास किया जिसके प्रमुख गुण हैं—गतिपूर्ण रेखात्मक, आलंकारित्व व यथार्थ विषयों का प्रसन्न व सुखद दर्शन।

आरम्भ से ही द्यु फि का जीवन के प्रति कृतज्ञ व आशावादी दृष्टिकोण था; अतः उनकी कला केवल रचनात्मक या वस्तुनिरपेक्ष नहीं बन सकती थी। उन्होंने आसपास के जीवन से आनन्द व उत्साह के क्षणों को चुना एवं आत्मीयता से उनको रूपायित किया। उनके चित्रों के प्रमुख विषय हैं: समुद्र किनारों पर एकत्रित हुआ जनसमुदाय, भूमध्यसागरीय किनारों के दृश्य, सागर परिवेष्टित जलपानगृह, नावों व जहाजों के दृश्य, घुड़दौड़ के मैदान, बगीचा व संगीत भवनों के अन्तर्गत दृश्य। उनकी रंगसंगति सदैव विषयानुकूल, सौम्य व चित्ताकर्षक होती है। इन्हीं कारणों से आधुनिक चित्रकारों में से उनकी कला भिन्न रुचियों के दर्शकों को समान रूप से प्रसन्न कर सकती है। उनके संगीतसम्बन्धी विषयों पर बनाये चित्रों में संगीतरचना के भावों का विचार करके उन्होंने समुचित रंगसंगति व संयोजन का प्रयोग किया है। जिसके 'नीला मोजार्ट', 'लाल वाद्यवृंद'[25] आदि प्रसिद्ध उदाहरण हैं। १६११ में अपोलिनेर की एक पुस्तक के लिये उन्होंने काष्ठखुदाई से छापचित्र बनाये। १६११ से १६३२ तक उन्होंने पुस्तकचित्रण, कपड़े के अलंकरण, पर्दों के अलंकरण, छापचित्र, नृत्यगृहों व रंगमंच की साज-सज्जा वगैरह विविध कलाकार्य किया। १६३७ में उन्होंने पैरिस की विश्वप्रदर्शनी के लिये २००'×३५' आकार का बड़ा चित्र बनाया। १६११ के बाद उन्होंने अपनी मौलिक शैली में जलरंग, तैलरंग व रेखांकन में जो चित्र बनाये वे

योरप व अमेरिका में लोकप्रिय होकर काफी तादाद में बिके। उनकी १९५३ में मृत्यु हुई।

फाववाद के विशुद्ध रंगों से द्युफि अन्त तक एकनिष्ठ रहे यद्यपि गतिपूर्ण रेखाओं द्वारा चित्रण करने की नयी पद्धति को उन्होंने अपनाया था। विशुद्ध रंगों के आकर्षण के सामने उन्होंने वस्तु के निजी रंग रूप की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। अपने सौंदर्य-वादी ध्येय को निश्चित करने के पश्चात् उन्होंने कहा "जो वस्तुएं हमको दिखायी नहीं देतीं ऐसी वस्तुओं की सृष्टि का निर्माण मेरी कला का प्रधान उद्देश्य है"। वस्तु को नैसर्गिक रूप का निरीक्षण करके उसको सुंदर बनाने का उन्होंने प्रयास नहीं किया बल्कि स्वतन्त्र प्रतिभा से ऐसी नयी, सर्वांगसुंदर व प्रसन्न चित्रसृष्टि का उन्होंने निर्माण किया कि जिस पर भिन्न रुचियों के दर्शक लुब्ध होते हैं। यही द्युफि की कला की महानता है।

जॉर्ज रुओल (१८७१–१९५८)

द्युफि के चित्र प्रसन्न, चित्ताकर्षक व भौतिकवादी हैं, जिसके विपरीत रुओल के चित्र धार्मिक हैं, व उनमें सांसारिक दुःख, अन्याय व भ्रष्टाचार का निषेध है। जार्ज रुओल का जन्म १८७१ में पैरिस में हुआ व उनके नानाजी ने उनका पालन-पोषण किया। उनके नानाजी को कुर्बे, माने व दोमीय के चित्र बहुत पसंद थे और छोटे जार्ज को भी वे उनके चित्रों को दिखाया करते। उम्र के १४ वें साल में रंगीन कांच-चित्रों का काम करने वाले हर्श नाम के कलाकार के यहां रुओल नौसिखिया सहायक बने जहां वे पुराने कांचचित्रों को सुधारते का काम करते। कला के अध्ययन के लिये वे 'एकोल द आर देकोरातिफ'[26] की सायंकालीन कक्षा में भरती हुए। उम्र के २० वें साल में पूरा समय अध्ययन करने के हेतु वे नौकरी छोड़ कर 'एकोल द बोजार' में प्रविष्ट हुए जहां उनका मातिस से परिचय हुआ एवं मोरो के मार्गदर्शन में काम करने का उनको मौका मिला।

रुओल धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। बचपन में धार्मिक रंगीन कांचचित्र के किये कार्य का उनकी कला के विकास पर बड़ा प्रभाव पड़ा, बाद में अपनी विकसित शैली में वे जो चमकीले, अविभाजित रंगों के आकारों को गहरी, मोटी रेखा से परिसीमित करने लगे उसके पीछे शायद इसी कार्य का सुप्त प्रभाव मूल कारण रहा होगा। १८९२ में उन्होंने धार्मिक विषयों की चित्रमालिका बनायी जिस पर उनको एकोल का प्रथम पुरस्कार मिला। १८९८ में गुस्ताव मोरो की मृत्यु से वे बहुत दुःखी हुए। मोरो संग्रहालय के अध्यक्ष के स्थान पर उनकी नियुक्ति हुई किंतु यहां उनको बहुत कम तनखा मिलती थी। इस समय वे बीमार पड़े; रुग्णावस्था में उन्होंने रेम्ब्रांट के समान काले व भूरे रंगों से युक्त व लयबद्ध बाह्य रेखा से अंकित वेश्याओं एवं सर्कस के विदूषकों के चित्र बनाये। इन चित्रों में उनके जीवन की दुःख-

मयता को स्पष्ट करने के हेतु विरोधी छटाओं एवं अंधेरी पृष्ठभूमि का प्रयोग किया है। सलों दातोम की प्रस्थापना में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान किया और १९०३ की उसकी प्रदर्शनी में भाग लिया। १९०५ की फाव चित्रकारों की प्रथम प्रदर्शनी में उन्होंने अपनी नयी शैली में बनाये ३ महत्वपूर्ण चित्र प्रदर्शित किये। रुओल की अंकनपद्धति के जोश को एवं अभिव्यक्ति के अनोखेपन को देख कर, आलोचकों व दर्शकों ने उनको फाव चित्रकारों में शामिल किया यद्यपि उनके चित्र फाव चित्रकारों से पृथक् कक्ष में रखे गये थे। वैसे रुओल की कला का ध्येय फाववाद से बिलकुल भिन्न था; केवल घनिष्ठ मित्रता के कारण उन्होंने फाव चित्रकारों के साथ अपने चित्रों को प्रदर्शित किया था। फाव चित्रकारों के समान उन्होंने केवल चमकीले मूल रंगों का प्रयोग नहीं किया। उनकी रेखा अभ्यासपूर्ण थी और उनकी कला का ध्येय था विषयजनित आत्मिक अभिव्यक्ति जबकि फाव चित्रकार विषय की पूर्ण उपेक्षा करते थे।

१९०४ में रुओल केथोलिक लेखक युइसमां व लिओं ब्लाय से परिचित हुए। उइसमां केथोलिक चित्रकारों के भ्रातृमंडल की स्थापना करके कला में धार्मिकता लाना चाहते; ब्लाय सोचते कि दुःख व अनीति में डूबे समाज की रक्षा प्राचीन ईसाई धर्म के पुनरुज्जीवन से ही की जा सकती है। दोनों में घनिष्ठ मित्रता हुई एवं रुओल धार्मिक अभिव्यक्ति के चित्र बनाने लगे जिनमें शारीरिक अधोगति की पराकाष्ठा तक पहुंची हुई वेश्याओं, बेतुके विदूषकों—जो ऊपरी हास्यविनोद से अपनी असम्मानजनक घृणित अवस्था को भूल नहीं सकते थे—एवं वृथाभिमान से फूले हुए किंतु अपने चेहरों के मूर्खता के स्पष्ट भावों को छिपाने में असमर्थ न्यायाधीशों के चित्र प्रसिद्ध हैं। वास्तव में रुओल की कला फ्रेंच कला परम्परा में अपवाद सी है और अभिव्यंजना के विचार से वह जर्मन कला के अधिक निकटवर्ती है। उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त उन्होंने सायंकालीन वातावरण के काल्पनिक प्रकृतिचित्र, किसानों व मजदूरों के जीवन के चित्र एवं कुछ व्यक्तिचित्र बनाये। उनके व्यक्तिचित्रों में से 'मिस्टर एक्स' विशेष प्रसिद्ध व अभिव्यंजनावादी शैली का चित्र है।

रुओल मानव व सुख-दुःखों एवं आत्मिक आकांक्षाओं के प्रति जागरूक थे; अतः हम उनको मध्ययुगीन धार्मिक परम्परा के चित्रकार मान सकते हैं। किन्तु रुओल की धार्मिक कला में एवं मध्ययुगीन धार्मिक कला में पर्याप्त अन्तर है। रुओल स्वयं केथोलिक थे और उनकी निष्ठा थी कि मानवता को शांतिप्राप्ति के लिये धर्म एकमेव साधन है; किन्तु उनके चित्रों में मध्ययुगीन धार्मिक चित्रों की श्रद्धा व उससे प्राप्त संकटों से सामना करने के सामर्थ्य का कहीं भी दर्शन नहीं है। इसके विपरीत मानसिक व शारीरिक अधःपतन, आत्मविश्वास का अभाव व लाचारी के भाव के लिये हुए उनके चित्र मानव के दारिद्र्य, कष्ट व अनीतिपूर्ण जीवन की निराशामय यथार्थ प्रतिमाएं हैं। मोरो की कल्पनाशक्ति का उन पर प्रभाव था किन्तु उससे उनकी कला

में दैवी या अतिमानवीय गुण आने के वजाय वे अपनी सहृदय, संवेदनाशील कल्पना से मानव-जीवन की घृणित स्थिति का अतिरंजित चित्रण करने को उद्यत हुए। एक तरह से उन्होंने वाह्य जीवन का निषेधात्मक वीभत्स चित्रण करके आत्मिक जीवन व धर्म की अनिवार्यता पर वल दिया है। वान गो के समान वे मानव-जीवन के प्रति सचेत थे व मानव के दुःख व अगतिकता को भूल नहीं सकते थे। मानव के मानव के प्रति व्यवहार को देखकर वे तड़पते। उनके धर्म में चमत्कार व दैवी शक्ति को स्थान नहीं था; उनका धर्म था मानवता। केवल वायवल व पुराणों की कथाओं का चित्रण करके उनकी धर्मभावना की पूर्ति नहीं हो सकती थी। व्यक्तिगत व पूर्ण मानवतावादी चित्रण उनकी कला की आंतरिक आवश्यकता थी। इन सव वातों का विचार करने से स्पष्ट होता है कि वे सही अर्थ में वान गो व जर्मन अभिव्यजनावादी कलाकारों की परम्परा के चित्रकार थे। फाव चित्रकारों का आनंदोत्साह उनकी कला में नाम मात्र भी नहीं था।

१९११ के करीव रुओल की व्यक्तिगत अभिव्यंजनावादी शैली का पूर्ण विकास हो चुका था। वे काले व भूरे रंगों का छाया के हिस्सों में प्रयोग करते एवं चित्र की पूरी पृष्ठभूमि पर उन रंगों की न्यूनाधिक छटा फैला देते जिससे दुःख व निराशा की अभिव्यक्ति के अनुकूल मलिन वातावरण वन जाता; कज्जल जैसे वातावरण में हलके ठंडे रंगों में अंकित मानवाकृतियां अस्पष्टसीं चमकतीं जैसे कि घने अंधेरे में टटोलती हुई अतृप्त आत्माएं; परिणामस्वरूप चित्र में भयानकता व कारूण्य का अनोखा हृदय-वेधी संगम प्रतीत होता। जिन विषयों को लेकर अन्य चित्रकारों ने काव्यमय व कल्पनारम्य कलानिर्मिति की ऐसे विषयों में भी रुओल को मानव की आत्मवंचना के अतिरिक्त और कुछ दिखायी नहीं दिया। उनके चित्र 'गंधर्वकन्याएं'[27] में गंधर्वकन्याओं के शरीरों को ऊवढ़खावड़ व आकारहीन एवं उनको वेतुके चेहरों को भावशून्य व यांत्रिक वनाकर उन्होंने मानवीय कल्पनासृष्टि का निर्घृण उपहास किया है; गहरे रंगों की पृष्ठभूमि में हलके जामुनी, नीले व हरे रंग चमक रहे हैं और इस प्रकार दो विवस्त्र वेश्याओं के शरीरों का वीभत्स चित्रण करके रुओल ने अपनी आंतरिक भावनाओं को व्यक्त किया है। कुछ विचारों से रुओल की कला मध्ययुगीन कला से स्पष्ट समानता रखती है। उनके चित्रों के मोटी व गहरी रेखा से अंकित आकारों का सामर्थ्यपूर्ण सौंदर्य रोमानेस्क मूर्तियों एवं रंगीन कांचचित्रों का स्मरण दिलाता है; किंतु दोनों में वही आदिम सामर्थ्य होते हुए अभिव्यंजनावादी दृष्टिकोण से रोमानेस्क रेखा से रुओल की रेखा में अधिक आवेश, चित्रभूमि में अधिक चंचलता है एवं चित्रों का संपूर्ण प्रभाव मनोवैज्ञानिक है। उनके चित्र 'दुःखी विदूषक' एवं 'ईसा का आत्मसर्पण'[28] इसके समुचित उदाहरण हैं। असल में मध्ययुगीन कला एवं रुओल की कला के वीच की समानताएं केवल कलात्मक गुणों से सीमित नहीं हैं; प्रमुख समानता है दोनों की आत्मिकता, मानव-दुःखों के प्रति अपार सहानुभूति व श्रद्धा का

संदेश।

केवल धार्मिक विचार से प्रेरित होकर रुग्रोल गरीवों व परिश्रमी लोकों की सत्य परिस्थिति को नहीं भूले। १९०५ से १९०७ तक बनाये उनके वेश्याओं व विदूपकों के चित्रों की तुलना इसी विषय के तुलुज लोत्रेक के चित्रों से एवं पिकासो के 'नीले काल'[29] में बनाये चित्रों से करने पर तीनों चित्रकारों के दृष्टिकोणों की भिन्नताएं स्पष्ट हो जाती हैं। तुलुज लोत्रेक के चित्रों में केवल 'मैंने यह देखा' यानि आलोचनाहीन सत्यचित्रण का भाव है जवकि पिकासो के चित्रों में अभिव्यक्ति से रचना व आकारसामर्थ्य पर अविक बल दिया है; रुग्रोल के चित्रों का भाव है पीड़ितों के प्रति अपार सहानुभूति एवं उनकी परिस्थिति में सुवार होने के लिये कलाकार की असहनीय आंतरिक तड़प। वान गो, लोत्रेक पिकासो व रुग्रोल ने समान रूप से, इस विषय के चित्रण के लिये रेखात्मक अङ्कनपद्धति को सब से प्रभावी मानकर अपनाया; इनमें से रुग्रोल की रेखा सवसे अविक अभिव्यंजनायुक्त है। १९०८ में उन्होने न्यायाधीशों के चित्र वनाये जिनमें न्यायावीशों के चेहरों पर पशुतुल्य निर्घृणता व अहँकार के भावों को चित्रित करके मानों उन्होने सवाल किया है कि इन सत्तांध उच्चपदस्थों को क्या नैतिक अविकार है कि वे ईश्वरनिर्मित मानवों के प्रति मनमाना फैसला सुनाते हैं ? इनमें ऐसी क्या दैवी शक्ति है कि वे सत्य जानने की क्षमता रखते हैं ? १९११ के वाद उन्होंने किसानों व मजदूरों के परिश्रमी पारिवारिक जीवन का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया। १९१३ के पश्चात् वायवलसम्बन्धी विषयों को लेकर उन्होंने चित्रण किया।

समय के साथ उनकी रेखा अधिक सशक्त, गहरी व एकसी वन गयी; हलके रंगों के स्थान पर गहरे रंगों का प्रयोग किया जाने लगा। कांचचित्रों के सीसे के जोड़ों के समान रेखा मोटी व स्पष्ट दिखायी देने लगी व रंगों के क्षेत्र रंगीन पारदर्शक कांचों के समान चमकने लगे। उनके चित्र पूर्णरूप से रंगीन-कांचचित्र के समरूप वन गये एवं अन्त तक उनकी इस शैली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इस शैली के चित्रों में 'जोन ऑफ आर्क' व 'वायवल के काल्पनिक प्रकृतिचित्र' प्रसिद्ध हैं।

१९१६ में वोलार उनके एकमेव व्यापारी प्रतिनिधि वन गये। उन्होंने रुग्रोल को चित्रग्रन्थ तैयार करने की सलाह दी। रुग्रोल ने 'युद्ध व दुर्गति'[30] नाम की ५८ चित्रों की मालिका वनायी जिसमें एचिंग व एक्वाटिंट पद्धतियों से युद्ध व मानव के मानव के प्रति अन्यायपूर्ण, अमानुप व्यवहार का निर्भीक कटुतापूर्ण चित्रण है। आलेखनकला के ये अत्युत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें चित्रकार की प्रभावी अभिव्यक्ति के अतिरिक्त आलेखन की पद्धति में नवनवीन प्रयोग किये हैं एवं इस विचार से गोया के वाद ये अपने ढंग के अनोखे छापचित्र हैं। प्रचलित पद्धति के अनुसार, तांवे की चादर की

सुई से खुदाई करने के अतिरिक्त वे रेती, रेगमाल, स्क्रेपर आदि साधनों से चादर की पृष्ठभूमि को अभिव्यक्ति को पोषक वैचित्र्य प्रदान करते। इस चित्रमाला के अलावा उन्होंने करीब २० साल तक लिथोग्राफी, मोनोटाइप आदि कार्य भी किया। १६२४ में फ्रेंच सरकार ने उन्होंने मोरो संग्रहालय के क्युरेटर के रूप में किये कार्य को देख कर उनको राष्ट्रीय सम्मान से पुरस्कृत किया। १६२६ में उन्होंने डिग्राघिलेव के समूहनृत्य के लिए कपड़ों के डिजाइन्स व साजसज्जा का काम किया। उन्होंने दीवार के आलंकारिक पर्दों के डिजाइन्स भी बनाये। १६४० से उन्होंने फिर तैलरंगों में धार्मिक विषयों को चित्रित करना आरम्भ किया। १६४६ में उन्होंने आस्सी के गिरजाघर की खिड़कियों के रंगीन कांचचित्र बनाये।

रुओल अभिव्यंजनवादी शैली के एक प्रतिभासम्पन्न चित्रकार थे और इस दृष्टि से उनका आधुनिक फ्रेंच कला में स्वतन्त्र स्थान है। आधुनिक चित्रकला में रुओल एक ऐसे चित्रकार थे जिन्होंने मानव को परमेश्वर का साकार रूप मान कर सहृदयता से चित्रित किया।

अन्य फाव चित्रकारों में से ब्राक का आधुनिक कला में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है किंतु यह स्थान उन्होंने घनवाद के प्रणेता के रूप में किये कार्य के कारण प्राप्त किया अतः उनकी कला का विचार घनवाद के अध्ययन के अन्तर्गत करना उचित होगा।

फाव चित्रकारों में मार्क्वे, वान डोन्जेन, फ्रिज, वाल्ता, मांग्वँ, काम्वां, प्वुय, फ्लांद्रं, लाप्राद, ग्वेरें, आदि चित्रकार सम्मिलित थे जिनमें से मार्क्वे, वान डोन्जेन व फ्रिज विशेष प्रसिद्ध हुए।

मार्क्वे (१८७५–१९४७) की मातिस के साथ आजीवन घनिष्ठ मित्रता थी व विद्यार्थी दशा में दोनों ने एक साथ अध्ययन किया। मार्क्वे सैद्धांतिक बातें करने के आदी नहीं थे और पूर्ण विचार करके अपना अन्तिम निर्णय स्पष्ट व्यक्त करते। मातिस व व्लामिंक के समान उन्होंने केवल मूल रंगों में चित्रण नहीं किया और उनके पूर्ण रूप से फाव चित्र बहुत ही कम हैं। फाव चित्रकारों में से उनकी कला प्रभाववाद से अधिक मिलतीजुलती है। उनके ल आव्र के समुद्रकिनारों व सेन नदी के पुलों के दृश्यचित्र एवं व्यक्तिचित्र हलकी, मनोहर रंगसंगति, प्रकाश व वातावरण के प्रभाव एवं यथार्थचित्रण के विचारों से आकर्षक हैं।

वान डोन्जेन (१८७७–१९६८) अपने सहवासप्रिय व आनन्दी स्वभाव से पैरिस के सामाजिक जीवन में बहुत लोकप्रिय हुए। उनकी चित्रांतर्गत मानवाकृतियां भी वैसे ही खुशदिल व सुखासीन हैं। आरम्भ में उनको कुछ समय तक आर्थिक कठिनाइयों से सामना करना पड़ा किंतु उनके मानवचित्र जिनमें फैशनेबल महिलाओं के

चित्र बहुसंख्य हैं—जल्द ही लोकप्रिय हुए व उन्होंने अपनी लम्बी आयु खुशी व सफलता के साथ वितायी। १९१२ के बाद उन्होंने विशुद्ध रंगों के साथ मिश्रित रंगों का प्रयोग शुरू किया व अपनी रंगसंगति को अधिक आकर्षक बनाया। वे अन्ततक फाव अंकन-पद्धति से पर्याप्त निष्ठावान रहे।

घनवाद

१९०७ में घनवाद का उदय हुआ, १९१४ तक विभिन्न अवस्थाओं को पार करते हुए वह विकसित हुआ, उसको बहुत अनुयायी मिले और १९२५ तक उसने कलाक्षेत्र में सबसे सामर्थ्यशाली एवं प्रेरणादायक कलाशैली के रूप में कार्य किया। वास्तुकला, उद्योग-कला, विज्ञापन, शिल्प, हस्तकला, अलंकरण आदि सभी मानवीय निर्माणक्षेत्रों पर उसने जो प्रभाव छोड़ा वह अब तक दृढ़मूल है। १९१२ तक घनवाद पैरिस के कलाक्षेत्र में सीमित था। योरप के मध्य में स्थित पैरिस कला व संस्कृति का केन्द्र माना जाता; वहां ज्ञानार्जन, आर्थिक सफलता या मान्यता प्राप्त करने के हेतु देशविदेशों से कलाकारों, साहित्यिकों एवं कलाप्रेमियों का आनाजाना रहता। अल्प-काल में ही घनवाद ने सबको प्रभावित किया और उसका अन्य देशों में प्रचार होकर उसको अन्तर्राष्ट्रीय वाद का स्थान प्राप्त हुआ जो किसी भी अन्य वाद से अधिक अवधि तक टिका रहा।

घनवाद को जन्म देने में कौनसी प्रेरणाएं कारणीभूत हुईं यह प्रथम देखना होगा। १९०४ से लेकर फाव चित्रकारों ने उन्मुक्त होकर, विशुद्ध रगों व गतिमान, सरलीकृत, स्पष्ट रेखाओं का प्रयोग करके चित्रण किया; वान गो की भावनाप्रधान शैली, गोग्वँ का आलंकारित्व व नवप्रभाववाद के रंगों की चमक का फाववाद समन्वित रूप था। १९०६ में मातिस ने 'जीवन का आनन्द'[1] चित्रित करके फाववाद को अंतिम रूप प्रदान किया। आकारों के सरलीकरण व माध्यम के विशुद्ध प्रयोग के फाववाद के विचार घनवाद के प्रणेताओं के सम्मुख थे व इसके अतिरिक्त वे अफ्रीकी नीग्रो कला व वन्य जमातियों की कला से परिचित हो गये थे; फाववाद व नीग्रो कला से घनवाद को काफी प्रेरणा मिली। नीग्रो कलाकृतियों के अनोखे सौंदर्यगुणों को प्रथम मातिस, व्लामिंक व देरें ने परखा व उनके द्वारा पिकासो व ब्राक नीग्रो कला की ओर आकृष्ट हुए और वे नीग्रो कलाकृतियों का सग्रह करने लगे। १९०५, १९०६ व १९०७ में सेजान की कृतियों की प्रदर्शनियां हुईं व १९०७ में उनका एमिल वर्नार से हुआ पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ जिसमें सेजान के कलाविषयक विचार व्यक्त किये थे। सेजान की चित्र प्रदर्शनियां एवं उनके विधान "प्रकृति को वृत्तचिति, गोल व शंकु के आकारों में देख कर चित्रित करना चाहिये" ने घनवादी चित्रकारों को रचना

पर बल देकर चित्रण करने का नया दृष्टिकोण मिला व घनवाद के विकास में गति आ गयी।

पाब्लो पिकासो ने १९०७ में अपना सुविख्यात चित्र 'आविन्यों की स्त्रियां'[2] पूर्ण किया जो घनवाद का सर्वप्रथम चित्र माना जाता है। विषय की दृष्टि से मातिस के चित्र 'जीवन का आनन्द' से मिलताजुलता यह चित्र अवकाश का स्थापन व आकारों की ज्यामितीयता से अनोखा है। इस चित्र द्वारा कुछ कलासम्वन्धी समस्याओं का हल किया है तो कुछ नवीन समस्याओं को प्रकाशित किया है जिनके हल करने में घनवाद ने भिन्न अवस्थाओं में से संक्रमण किया। इस वेश्यागृह के अंतर्भाग के चित्र से आधुनिक कलाकारों को नया दृष्टिकोण मिला। अवतक देगा, तुलुज लोत्रेक, रुओल आदि उन्नीसवीं शताब्दी के चित्रकारों ने वेश्यागृह के अन्तर्भाग का चित्रण किया था किंतु उनके दृष्टिकोण भिन्न थे; तुलुज लोत्रेक के चित्रों में वेश्याओं के जीवन का यथार्थ चित्रण है तो रुओल के चित्रों में घृणा व अनुकंपा की भावना है। पिकासो के चित्र में विषय को केवल निमित्तमात्र स्थान है। इस चित्र द्वारा पिकासो ने आकारसौंदर्य की परम्परागत एवं प्रचलित कल्पनाओं पर कुठाराघात किया। पिकासो ने सिद्ध किया कि कला में सौंदर्यनिर्मिति के लिये मानवीय शरीररचना के नियमों का पालन आवश्यक नहीं है बल्कि कलांतर्गत आकार-सौंदर्य व वस्तु के दृश्य रूप-सौंदर्य भिन्न तत्वों से संचालित हैं। पुनर्जागरणकाल से रूढ़ मानव-शरीर-सौंदर्य की कल्पना व ज्यामितीय दूरदृश्यलघुता के नियमों को पिकासो ने पूर्ण रूप से त्यागा। आकारों के मूल-सौंदर्य की खोज में पिकासो को इवेरियन मूर्तियों[3] से सबसे अधिक प्रेरणा मिली। इसके अतिरिक्त एल्ग्रेको की लम्बी ऐंठनदार मानवाकृतियों व गोग्वँ की मूर्तिकला का भी 'आविन्यों की स्त्रियां' पर प्रभाव है। पिकासो ने मानवीय शरीर के दृश्य रूप की पूर्ण उपेक्षा करके, उसके भिन्न अंगों को चित्रकार की आदिम सृजनशक्ति द्वारा निर्मित मूल आकारों में विठाकर समरूप में चित्रण करना आरम्भ किया एवं चित्रकार को शरीररचनाशास्त्र के वाह्य वंधन से मुक्त किया। अब चित्रकार मौलिक आकारों से रचना करके स्वतन्त्र सृष्टि का—जिसमें वास्तव सृष्टि का स्मृति रूप आभास मात्र है—निर्माण करने में समर्थ हुआ और उसकी चित्रसृष्टि ऐसी दिखायी देने लगी जैसी कि कांट के दर्शन में की गयी परिभाषा के अनुसार, सत्यसृष्टि जो केवल इन्द्रियों से ज्ञात सृष्टि से भिन्न है किन्तु जो अनुभूति व सत्य के अधिक निकट है। पिकासो का दूसरा आविष्कार था अवकाश का सृजनपूर्ण प्रस्थापना व दूरदृश्यलघुता के नियमों का रचनात्मकता की दिशा में नवीनीकरण। इस दिशा में सेजान ने आरम्भिक कदम उठाये थे किंतु पिकासो उसके कल्पनातीत आगे वढ़े; पिकासो के चित्र 'आविन्यों की स्त्रियां' की तुलना सेजान के चित्र 'स्नानमग्नाएं' से करने से यह वात स्पष्ट हो जाती है। भिन्न दृष्टिकोणों को सम्मिलित कर, वस्तु के आकार का सत्य ज्ञान कराने के सेजान के तरीके को पिकासो ने अपनाया किंतु स्थानांतर व आकारों की मौलिकता

पिकासो की असाधारण प्रतिमा के आविष्कार थे। १९०६ में ही पिकासो ने मुखाकृति के पक्षीय व सम्मुख दृश्य-रूपों को संमिश्र चित्रित करना शुरू किया था जिसका 'आविन्यों की स्त्रियां' में नीचे बैठी हुई आकृति उदाहरण है। चित्र में फाववाद के चमकीले विशुद्ध रंगों का प्रयोग है यद्यपि आकारदर्शन में चित्र फाववाद से पूर्ण भिन्न है। रंगों की हलकी व गहरी छटाओं से आकृतियों का स्पष्ट विभाजन करने की पद्धति को पिकासो ने अपनाया है जो पद्धति हमको विजांटाइन कला, मध्ययुगीन सिएनीज कला व सेजान की कला में देखने को मिलती है; किंतु पिकासो का विभाजन अधिक स्पष्ट, ज्यामितीय व भिन्न दृष्टिकोणों को लिये हुए है। अबतक पिकासो ने आकारों के घनत्व का त्याग नहीं किया था जो बाद में उन्होंने कोलाज-पद्धति का आविष्कार करके किया। इस प्रकार 'आविन्यों की स्त्रियां' सेजान, फाववाद, इबेरियन मूर्तियां, एल्ग्रेको, गोग्वँ, अफ्रीकी कला व पिकासो की मौलिक प्रतिभा का समन्वित रूप था; आधुनिक कला के इतिहास में उसका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

१९०७ में कवि अपोलिनेर ने पिकासो से समवयस्क ब्राक का परिचय कराया और यह घटना घनवाद के विकास में बहुत सहायक हुई। ब्राक ने नीग्रो मूर्तियां देखी थीं और वे उनके मौलिक आकारों से प्रभावित हुए थे। घनवाद के आरम्भिक काल में ब्राक व पिकासो में घनिष्ठ मित्रता थी और एक दूसरे से मिलकर एवं विचारविमर्श करके दोनों ने उसके विकास के लिये बहुत परिश्रम किया। १९०८ में पूर्ण किया हुआ ब्राक का चित्र 'विवस्त्र स्त्री' घनवाद की दिशा में उनका प्रथम चरण था। १९०८ में पिकासो ने सेजान से प्रेरणा लेकर पैरिस व 'ल रुए दव्वा'[4] के प्रकृति-चित्र एवं कुछ वस्तुचित्र बनाये। इसी समय ब्राक ने लेस्ताक में—जहां सेजान ने भी प्रकृतिचित्रण किया था–सेजान के कलासम्बन्धी विचारों का अनुसरण करके कुछ प्रकृति-चित्र बनाये। दोनों के इन चित्रों में आश्चर्यजनक समानताएं हैं। क्षेत्रों के विभाजन में दोनों सेजान से आगे बढ़े हैं और भिन्न आकारों की मूल ज्यामितीयता को उन्होंने काफी स्पष्ट किया है। सेजान ने दृश्य की वास्तविक बारीकियों का पूर्ण रूप से त्याग नहीं किया था अतः उनके चित्रों में काफी स्थान-सादृश्य था किन्तु ब्राक ने दृश्यांतर्गत आकारतत्वों को पृथक् करके उनकी स्वतन्त्र विचार से पुनर्रचना की जिससे उनके घनवादी प्रकृतिचित्रों का वास्तविकता से संपर्क टूट गया। ब्राक ने लेस्ताक में बनाये ७ प्रकृतिचित्रों को 'सलों दातोम' में प्रदर्शनी के लिये भेज दिया जिनमें से ५ अस्वीकृत हुए। चयनसमिति के मातिस एक सदस्य थे वे कहते हैं कि उन्होंने 'गिय ब्ला' पत्रिका के कलासमीक्षक लुई वोक्सेल से कहा कि ब्राक के चित्रों में छोटे-छोटे घनों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ब्राक ने अपने सभी चित्रों को वापस लेकर उनको कानवैलर की कलावीथिका में प्रदर्शित किया। लुई वोक्सेल ने प्रदर्शनी की आलोचना में ब्राक के चित्रों को नाम दिया 'घनाकारों का वैचित्र्य'[5]। अब इस आकार–रचना–प्रधान नये कलासम्बन्धी वाद का नाम निश्चित हुआ

'घनवाद'।

१९०८ से कुछ समय तक ब्राक व पिकासो ने एक साथ कार्य किया और इस काल के उनके चित्र इतने एक समान बन गये हैं कि उनको पृथक् करना कठिन है; किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण से ज्ञात होगा कि पिकासो के चित्रों में गतित्व व कल्पनारंजना पर बल है जबकि ब्राक के चित्रों में नियंत्रण व स्थायीभाव के साथ रंगसंगति व आकारों के आलंकारित्व का विचार किया है। घनवाद के आरंभिक काल में दोनों ने प्रत्यक्ष वस्तु या प्राकृतिक दृश्य के अन्तर्गत आकारों का विश्लेषण करके घनवादी चित्ररचनाएं की हैं; अतः इस काल के घनवाद को 'विश्लेषणात्मक घनवाद'[6] कहते हैं। वस्तुओं के घनत्व की चित्रों में रक्षा की है एवं कई जगह ज्यामितीय मूल आकारों की सहायता से अतिशयोक्त रूप देकर घनत्व को बढ़ावा दिया है। अवकाश के शून्य-स्वरूप को हटा कर उसको भी क्षेत्रों के विभाजन द्वारा रचनात्मक अस्तित्व[7] प्रदान किया है। चित्ररचनाएं ऐसी प्रतीत होती हैं मानो वृत्तचिति, गोल व शंकु की सहायता से नयी स्वयंपूर्ण, स्वतन्त्र दुनिया का निर्माण हुआ है। छोटे बच्चे जैसे लकड़ी के गुटकों से मकान, पुल आदि बनाते हैं उसी तरह पिकासो व ब्राक ने घनवादी चित्ररचनाएं की हैं; किन्तु वे केवल निरुद्देश्य रचनाएं नहीं हैं; उनमें वास्तविक रूप के विश्लेपण से चित्रकार की वैयक्तिक धारणाओं को जीवित रखा है एवं त्रिमितियुक्त जड़सृष्टि का द्विमितियुक्त पृष्ठभूमि पर सफल अंकन करने की समस्या का प्रतिभापूर्ण हल है। इस सम्बन्ध में पिकासो का निम्न विधान महत्वपूर्ण है, "राफेल के चित्रों में नाक का उभार नापा नहीं जा सकता। मैं चाहता हूं कि मैं ऐसे चित्र बना सकूं जिसमें यह संभव हो"।

१९०९ में पिकासो ने अपना चित्र 'तीन स्त्रियां' पूर्ण किया जो 'आविन्यों की स्त्रियां' का विकसित रूप है। १९१० तक पिकासो व ब्राक के चित्रों में स्थानांतर, पारदर्शकता व पुनर्रचना के प्रयत्न नहीं थे। १९१० में उन्होंने इस दिशा में क्रांतिकारी निर्णय लिये और अब तक घनवादी चित्रकार वस्तु के मूल भिन्न आकारों को अपने विचारानुसार चित्रक्षेत्र में कहीं भी अंकित कर सकते एवं वस्तु को पारदर्शक मानकर एक वस्तु के आरपार दूसरी वस्तु को चित्रित कर सकते थे। पिकासो व ब्राक मूर्तिकार की तरह वस्तुरचना का चारों तरफ से निरीक्षण करके मूल सरल आकारों में विभाजन करते एवं उन आकारों की पुनरर्चना करते; वस्तुओं के भिन्न दिशाओं व दृष्टिकोणों से दृश्य प्रभावों को एक साथ अंकित करके उसकी समग्र रचना और आकार-विशेपताओं का परिचायक चित्र बनाते। इससे चित्रकला को रचनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक महत्व प्राप्त हुआ एवं वह समय गतित्व की प्रणाली से मुक्त होकर स्थायित्व की प्रणाली में संपन्न हो गयी। इस समय गणितशास्त्र में भी समय-अवकाश-सातत्य के सम्बन्ध में नया सिद्धांत प्रस्थापित किया जा रहा था जो घनवाद के रचना-सिद्धांत के अनुकूल था। घनवाद व गणितशास्त्र ने एक ही समय दृश्य वास्तविकता

को अस्वीकार कर रचना एवं समीकरण के सूत्रों द्वारा उसके नित्य, अखण्डित रूप का आविष्कार किया ।

कुछ विद्वानों ने घनवाद को—विशेषत: उसके आरंभिक काल को जब उसमें अफ्रीकी मूर्तिकला, कांगो व आइवरी कोस्ट के नकाब आदि से प्रेरणा लेकर कलानिर्मिति हो रही थी—आदिम प्रेरणाओं का पुनर्जागरण[9] माना है । इस तरह का आंदोलन समकालीन साहित्य व संगीत में भी हो रहा था; स्ट्राविन्स्की की संगीत-रचनाएं 'अग्नि-पक्षी' (१९१०) व 'वसंत-पूजा' (१९१२)[10] इसके समुचित उदाहरण हैं जिनमें आदिवासियों के संगीत के समान जोश व उत्कट स्वरविसंवादित्व हैं । कवि टी. एस. एलियट ने अपने काव्य 'वीरान भूमि'[11] में आधुनिक सभ्य मानव की अतृप्त मानसिक अवस्था का वर्णन किया है व उसमें उसकी तुलना आदिवासी समाज की धार्मिक प्रथाओं से परिशासित श्रद्धालु जीवन से करके आत्मिक पुनरुज्जीवन का मार्ग बतलाया है । फ्राइड ने मनोविश्लेषण करके सिद्ध किया कि आधुनिक मानव के मानसिक जीवन व आंतरिक आकांक्षाएं उसके आदिवासी बंधुओं से भिन्न नहीं हैं ।

१९१० से नये दृष्टिकोण को लेकर बनाये गये चित्रों में अधिकतर वस्तुचित्र व व्यक्तिचित्र हैं जिनमें से ब्राक के 'वायोलिन व जलपात्र' (१९१०) एवं पिकासों के 'वायोलिन-वादक'(१९११) 'कानवैलर का व्यक्तिचित्र'(१९१०) व 'आम्ब्राज वोलार का व्यक्तिचित्र' (१९१०) विशेष प्रसिद्ध हैं । पिकासो के बनाये वोलार के व्यक्तिचित्र की तुलना सेजान के बनाये वोलार के व्यक्तिचित्र से करने पर सेजान से प्रेरणा पाकर पिकासो ने उसके आगे कितने क्रांतिकारी कदम उठाये इसकी स्पष्ट कल्पना आती है। घनवादी पद्धति से पिकासो के बनाये वोलार के व्यक्तिचित्र से वोलार के सादृश्य व व्यक्तित्व को सरलता से पहचाना जा सकता है यद्यपि पिकासो के चित्रण का मुख्य उद्देश्य था आकार-रचना न कि व्यक्तिसादृश्य । घनवाद के आरम्भिक काल के चित्रविषय थे प्राकृतिक दृश्य, किन्तु ब्राक व पिकासो ने देखा कि मानवनिर्मित ज्यामितीयता-प्रधान वस्तुएं घनवादी चित्रण के लिये अधिक समुचित विषय हो सकते हैं। १९१०–११ के काल में उन्होंने जो घनवादी चित्र बनाये उनके विषय अधिकतर वायोलिन, वाद्ययंत्र, मेज, कुर्सी, जलपात्र, कपतश्तरी जैसी वस्तुएं एवं चित्रकार के परिचित व्यक्ति थे । मानवनिर्मित वस्तुओं का मूल आकारों में सरलता से विश्लेषण किया जा सकता था । ब्राक व पिकासो में घनिष्ठ संपर्क था और अंकनपद्धति संबंधी या रचनासंबंधी नयी कल्पना आदि विचारों का उनमें आदान-प्रदान होता रहता । आकारों के सामर्थ्य को बढ़ावा देने के उद्देश्य से उन्होंने चमकीले रंगों को छोड़कर भूरे रंगों का प्रयोग किया । वस्तु के चारों ओर के दृश्य प्रभावों को एकत्रित करने के अपने सिद्धांत के अनुसार उन्होंने व्यक्तिचित्रों में सम्मुख मुखाकृति को पक्षीय मुखाकृति[12] के साथ चित्रित किया; इसी पद्धति में अधिक परिवर्तन करके बाद में पिकासो ने द्विप्रतिम-मानवाकृतियों[13] के चित्र बनाये । १९१०–११ के पिकासो व ब्राक के

घनवाद को 'परिसीमित घनवाद'[14] कहते हैं क्योंकि इसमें चित्रांतर्गत आकार ठोस किंतु चारों ओर से वंद व सीमित दिखायी देते हैं। शुरू के कुछ चित्रों में वस्तुसादृश्य है किन्तु वाद में बनाये गये चित्रों में चित्रविषय को पहचानना मुश्किल पड़ता है; चित्रक्षेत्र में इतस्ततः विखरे हुए वस्तुओं के भिन्न अंगों से वस्तुओं के बारे में निर्णय लेना पड़ता है—कहीं कान की आकृति चित्रित है तो कहीं वालों का हिस्सा कहीं कोट के बटन तो कहीं वायोलिन की नोंक। घनवादी चित्र में यदि वस्तु के प्रतिरूप या सरूप को देखना चाहेंगे तो कलाकृति के रसग्रहण में असफल रहेंगे घनवादी कृति स्वतन्त्र विचार से की गयी रचनासृष्टि है न कि वास्तव सृष्टि का प्रत्याभास; वह चित्रकार की व्यक्तिगत प्रतिभा, रसिकता व रचना-कल्पना से प्रत्यक्ष संपर्क रखती है। घनवादी चित्र की निर्मिति में चित्रकार पूर्ण रूप से आंतरिक प्रेरणा पर निर्भर रहता है एवं उस पर बाह्य दृश्य-सृष्टि के रूप में बंधन नहीं रहता; बाह्य रूप केवल आंतरिक प्रेरणा को जागृत करने का कार्य करता है। धीरे-धीरे पिकासो व ब्राक ने आकारों के घनत्व के स्थान की जगह समतलत्व पर ध्यान केंद्रित करके स्थानांतर की कल्पना का विकास किया और उनकी कलाकृतियों में वस्तुसादृश्य नाममात्र रहा।

१९०९ तक ब्राक व पिकासो के घनवाद को कोई अनुयायी नहीं मिले। १९०९ में फर्नां लेजे वे सेजान के निर्दिष्ट मार्ग से चलकर अपने चित्र 'पुल' व 'जंगल में विवस्त्र मानव'[15] बनाये। उनके चित्रों में नली के समान आकारों का प्राचुर्य था; अतः उनको घनवादी कहने के बजाय नलीवादी[16] कहते थे। पिकासो के साथ कादाके में उनके मित्र देरें रहते थे जो शुरू में फाववादी चित्रण करते थे; सेजान के प्रभाव में आकर उन्होंने भी कुछ समय तक घनवादी चित्रण किया। १९०९ में आल्बर ग्लेजे, मेंजिजे, अर्व, पिकाविया व ल्होत, सेजान के कलाविषयक सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए घनवाद की ओर अग्रसर हुए १९१० में पोलिश चित्रकार लुई मार्कुसिस ने घनवाद के सिद्धांतों के अनुसार सुंदर रंगसंगतियुक्त व कुछ आलंकारिक चित्ररचनाएं कीं। उसी साल से रोजर द ला फ्रेस्नाय, मार्सेल द्यूशांप, फर्नां लेजे व ज्वां ग्री ने घनवाद का अनुयायित्व स्वीकारा।

ब्राक व पिकासो के चित्रों में समतल आकारों का महत्व बढ़ते ही वस्तुसादृश्य समाप्त सा हो गया। १९११ से ब्राक ने चित्ररचना में अक्षरों को समाविष्ट करना शुरू किया। गोथिक चित्रकला एवं भारतीय जैन पुस्तक-शैली में चित्रक्षेत्र के अन्तर्गत अक्षरों को अंकित करने की प्रथा थी। पैरिस के जलपानगृहों की खिड़कियों के कांचों पर लिखे हुए अक्षरों के आकारसामर्थ्य को देखकर ब्राक को उस दिशा में प्रयोग करने की प्रेरणा मिली थी। अक्षरों को चित्ररचना में स्थान दिये जाने से मानवनिर्मित आकारों का वास्तविक आकारों से समन्वय होकर, चित्रकला विशुद्ध सृजन के ध्येय की ओर एक चरण आगे बढ़ी; कल्पित व अकल्पित आकारों के संयोग से चित्र में अतियथार्थ का भाव पैदा हुआ। इसके पश्चात् लकड़ी या संगमरमर के बाह्य सतहों

का अनुकरण, समाचारपत्रों के शीर्षकों का चित्र में समावेश वगैरह चित्रांतर्गत प्रयोग स्वाभाविक क्रम में ही थे। वस्तु के सम्पूर्ण आकार का चित्रण करने के बजाय उसके किसी विशेषतादर्शक अंग को प्रतीक रूप में चित्रित किया जाने लगा एवं चित्रकला वास्तविक बंधन से मुक्त होकर, चित्ररचना में सृजनात्मक सरलता आ गयी। कलाकृति द्वारा मस्तिष्क में निर्माण किया गया वस्तु का सूचक रूप प्रत्यक्ष रूप से विविध व भावपूर्ण—अतः अधिक आत्मीय व प्रभावी—होता है। १९१२ से घनवादी चित्रकारों ने कपड़ा, दीवार-कागज, समाचारपत्र, ताश, बेंत की जाली, माचिस वगैरह वस्तुओं के टुकड़ों को चित्रक्षेत्र में चिपका कर ऊपर से सांकेतिक रेखाओं व रंगों की सहायता से चित्ररचनाएं शुरू कीं। व आधुनिक कला में 'कोलाज' पद्धति[17] का जन्म हुआ। पिकासो के चित्र 'बेंत की कुर्सी पर वस्तुसमूह' (१९१२) घनवाद की प्रथम कोलाजकृति है। उसी साल ब्राक ने दीवार-कागजों को चिपका कर अपना चित्र 'फलों की थाली व गिलास' पूर्ण किया। दीवार-कागज पर लकड़ी के रेशों का परिणाम दिखाया है व परम्परागत पद्धति से मेज का हुबहू चित्रण करने के बजाय उसका सूचक रूप से उल्लेख किया है। इस प्रकार वस्तु को प्रत्यक्ष रूप से चित्र में समाविष्ट करके कोलाज कृतियों द्वारा घनवादी चित्रकार अधिक वस्तुनिष्ठ बन गये। कोलाज पद्धति से पृष्ठभूमि की बुनावट को कलात्मक महत्व प्राप्त हुआ; चित्र की पृष्ठभूमि में वस्तु की बाह्य सतह का प्रत्यक्ष अस्तित्व होने से चित्र को स्पर्शीयता का मूल्य प्राप्त हुआ—जैसे कि कोमल, कठोर, मुलायम, खुरदरा वगैरह व वस्तुसादृश्य का उच्चाट होने पर भी चित्रकला में वस्तुनिष्ठ गुणों का महत्व बढ़ कर वह जड़वादी बन गयी। स्पर्शीयता के गुण में विविधता लाने के हेतु घनवादी चित्रकार रंग के साथ बालू, रेती, लकड़ी का बुरादा आदि पदार्थों को पट पर चिपकाते या रंगों में मिलाते। चित्रकला के माध्यम सम्बन्धी कल्पना में मौलिक परिवर्तन हुआ। अब वस्तुसादृश्य[18] के निर्माण के हेतु चित्रण किये जाने के बजाय चित्ररचना के हेतु वस्तुओं का प्रयोग होने लगा। 'विश्लेषणात्मक घनवाद' में वस्तुरचना का मूल आकारों में विश्लेषण करके चित्ररचना की जाती थी; अब 'संश्लेषणात्मक घनवाद'[19] में भिन्न कल्पित आकारों व पदार्थों के टुकड़ों से नवीन काल्पनिक रचना की जाने लगी जिसमें कभी वस्तु का सांकेतिक रूप भी दृष्टिगोचर होता।

१९१२ तक विश्लेषणात्मक घनवाद का पूर्ण विकास हो चुका था। १९११ में 'सलों द अँदेपांदां' में हुई प्रदर्शनी में दर्शक घनवाद से काफी परिचित हो चुके थे। कानवेलर ने संग्राहकों में घनवाद का प्रचार किया। ग्वियोम अपोलिनेर ने लेखों द्वारा घनवाद के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला। मेंजिजे व ग्लेजे ने विश्लेषणात्मक घनवाद के सिद्धांतों को ग्रन्थ रूप में प्रकाशित किया।

परिवर्तनशीलता की स्वाभाविक कला प्रवृत्ति के अनुसार अब विश्लेषणात्मक घनवाद को नयी दिशा मिलना अपरिहार्य था। प्रतिभासम्पन्न घनवादी चित्रकार अब

विचार करने लगे कि विश्लेपरणात्मक घनवाद के विपरीत पद्धति में कार्य करने से कलाकृति का निर्माण अधिक स्वतंत्रता से किया जा सकता है व ऐसी कृतियां अधिक मौलिक हो सकती हैं। इन विचारों से प्रेरित होकर घनवादी चित्रकारों ने विश्लेपणात्मक पद्धति को छोड़कर, संश्लेपरणात्मक प्रयोग शुरू किये जिसमें पिकासो, ब्राक व ज्वाँ ग्री का योगदान महत्वपूर्ण था। विश्लेपरणात्मक घनवाद की मंद रंगसंगति से कुछ घनवादी चित्रकार असन्तुष्ट थे; वे फाव तथा नावि रंगों की चमक व घनवाद की ठोस रचना का मिलाप करना चाहते थे और इस दृष्टि से सश्लेपरणात्मक घनवाद बड़ा उपयुक्त था। इसके अतिरिक्त—जैसे कि ज्वां ग्री ने विधान किया था—विश्लेपणात्मक घनवाद में चित्रांतर्गत भिन्न वस्तुओं के आकारों का एकदूसरे से सुसंगत समन्वय करना कठिन था यद्यपि चित्रकार के व्यक्तित्व के अनुकूल मूल आकारों की पुनर्रचना कठिन नहीं थी। इन सब समस्याओं का हल करने के उद्देश्य से समतल कल्पित आकारों की योजना व कोलाज-पद्धति के प्रयोग हुए जिनके फलस्वरूप संश्लेपणात्मक घनवाद का जन्म व विकास हुआ। संश्लेपणात्मक घनवाद में समतल आकारों की योजना के साथ छटाओं द्वारा उनमें स्थानभेद दिखाया जाने लगा। जड़-पदार्थों के टुकड़ों से आत्मीयतापूर्ण रचना सौंदर्य का साक्षात्कार होते ही चित्रकारों ने वस्तु के बाह्य सादृश्य में सौंदर्य की खोज करना छोड़ दिया; ऐसे टुकड़ों में उन्होंने आत्माओं के अस्तित्व को अनुभव किया व उन टुकड़ों की सुसंगतिपूर्ण रचना से नयी सचेत सृष्टि को बनाया। १९१२ से १९१४ तक कोलाजपद्धति की रचनाएं प्रचुर मात्रा में हुईं जो मौलिक गुणों से परिपूर्ण हैं। १९१२ में 'सेक्शिओं दोर'[२०] प्रदर्शनी में घनवादी एवं रचना के ध्येय से प्रेरित हुए चित्रकारों की कलाकृतियां प्रदर्शित हुईं। इस महत्वपूर्ण प्रदर्शनी ने बीसवीं शताब्दी की कला को नया रचनात्मक दृष्टिकोण प्रदान किया। १९१३ व १९१४ में पैरिस के बहुसख्य कलाकार घनवादी शैली में कलानिर्मिति करते थे। हालेंड, इङ्गलेंड, जर्मनी, रशिया व अमेरिका में घनवादी कृतियां प्रदर्शित की गयीं जिससे वहां के तरुण कलाकारों पर घनवाद का प्रभाव पड़ा व उसका संसार में काफी प्रसार हुआ।

कुछ विद्वानों ने घनवादी कलाक्रांति की तुलना समकालीन साहित्यांतर्गत नव-विचारों से की एवं घनवाद की समयावच्छेद[२१] की कल्पना को नोनयुक्लिडियन[२२] ज्यामिति व समय की चतुर्थ मिति से स्पष्टीकरण करने के भी प्रयत्न किये; किंतु स्वयं पिकासो ने घनवाद की परिभाषा की है "रूप से सम्बन्धित कला; व जब रूप-निर्मिति हो जाती है तब वह निजी चैतन्य से जीवित रहती है"[२३]। उसी प्रकार पिकासो ने स्पष्ट इन्कार किया है कि घनवाद में विषयवस्तु का विश्लेपरण करने का कोई प्रयत्न या संशोधन का उद्देश्य है जो उनके विचार से आधुनिक कला के मुख्य दोष हैं; वे आगे कहते हैं "गणित, मनोविज्ञान, संगीत, वास्तुशास्त्र आदि भिन्न शास्त्रों के सिद्धांतों से घनवाद के स्पष्टीकरण के जो प्रयत्न हुए हैं उनको कपोलकल्पित

साहित्य से अधिक महत्व नहीं है व उनसे लोकों की घनवाद के विषय में दिशाभूल मात्र हुई है"[24]।

घनवाद की समयावच्छेद की कल्पना का अनोखा प्रयोग ग्लेजे, मेंजिजे व देलोने की कलाकृतियों में देखने को मिलता है। इन्होंने न केवल वस्तु के भिन्न दृश्यों को एक साथ चित्रित किया है वल्कि जो वस्तुएं एकदूसरे से पर्याप्त दूर हैं व एक साथ कभी दिखाई दे नहीं सकतीं उनको भी एकसाथ चित्रित किया है। घनवाद के इस रूप को 'कालव्यापी घनवाद'[25] कहते हैं; मेंजिजे का चित्र 'नीला पक्षी' इसका अभ्यसनीय चित्र है।

१९१४ तक घनवाद के सभी सिद्धांत प्रयोगान्वित होकर उनको अन्तिम रूप प्राप्त हो चुका था व उसके पश्चात् घनवादी कृतियां अधिक स्पष्ट, रंगसंगति में चमकीली व ज्यामितीयता में कठोर होती गयीं और उनको स्फटिकोय रूप प्राप्त हुआ; ज्वां ग्री की इस काल की कृतियां सबसे अधिक तर्कनिष्ठ हैं। पिकासो के चित्र 'पाइप व गिलास का वस्तुचित्र' (१९१८) व ज्वां ग्री के चित्र 'तुरेन का आदमी' (१९१८)[26] इस दृष्टि से अभ्यसनीय हैं। १९२१ में पिकासो ने 'तीन वादक'[27] शीर्षक के दो भिन्न चित्र बनाकर संश्लेषणात्मक घनवाद को चरमसीमा तक पहुंचाया यह चित्र संश्लेषणात्मक घनवाद की उत्कृष्ट कृतियां मानी जाती हैं।

१९१४ के वाद दुनिया के सभी विकसित देशों में घनवादी कलाकृतियां बनने लगीं एवं १९२५ तक घनवाद निश्चल हुआ। घनवादी चित्रकार भी अनुभव कर रहे थे कि घनवाद विकास की अन्तिम सीमा को पार कर चुका था और अब निर्माण के अन्य क्षेत्रों में उसका उपयोग होना वाकी था। मूर्तिकार जाक लिपशित्स ने ज्वां ग्री व अन्य घनवादी कलाकारों को सैद्धांतिक भूमिका छोड़ कर प्रत्यक्ष उपयुक्तता की दिशा में कार्य करने की सलाह दी। घनवाद के प्रणेता पिकासो ने १९२५ में 'तीन नर्तक'[28] चित्र बना कर घनवाद से विदा ली और इसके साथ ही घनवादी आंदोलन समाप्त हुआ यद्यपि वीसवीं शताब्दी की कला व निर्माणक्षेत्र पर वह अमिट प्रभाव छोड़ गया।

१९०७ से १९२५ तक की घनवादी कलाकृतियों के परिशीलन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि घनवादी कलाकारों की विचारधाराओं में आपस में कुछ भिन्नताएं थीं। पिकासो, व्राक व ग्री की कृतियों से अन्य घनवादी कलाकारों की कृतियां दर्शन में स्पष्ट रूप से भिन्न हैं। ग्लेजे, ला फ्रेस्नाय, ला फोकोनिय, मेंजिजे, ल्होत व वहुत से घनवादी चित्रकार पिकासो व व्राक की स्वयंपूर्ण, वस्तुनिरपेक्ष रचनासौंदर्य की मूलभूत कल्पना को ठीक तरह समझ नहीं पाये; उनकी कलाकृतियों में वस्तुसादृश्य से एकनिष्ठ रहने के प्रयत्न हैं।

घनवाद के सभी विद्वान् अभ्यासकों का मत है कि घनवाद का मूलभूत दृष्टिकोण यथार्थवादी था। अभिव्यंजनावाद या अतियथार्थवाद से तुलना करने पर स्पष्ट

होता है कि घनवाद केवल जड़वाद से सीमित था एवं उसमें मानवीय भावनाओं का अभाव था। अतः घनवाद का सत्यरूप समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि उसके पूर्वगामी कलाकारों की जड़सृष्टि के वाह्य रूप के बारे में क्या धारणाएं थीं, उन्होंने उसको किस ढंग से चित्रित किया एवं घनवादी चित्रकारों ने उनकी धारणाओं व अंकनपद्धतियों में क्या परिवर्तन किये। घनवाद में जीवनसम्बन्धी कोई दार्शनिक विचार नहीं थे; उसका संशोधन वास्तव-सृष्टि के नेत्रपटलीय प्रभाव तक सीमित था। ग्लेजे व मेंजिजे की पुस्तक 'घनवाद'[२९] व अपोलिनेर की पुस्तक 'घनवादी चित्रकार'[३०] दोनों में कुर्बे को घनवाद का जन्मस्थान माना है। वह एक दृष्टिसे से समुचित है क्योंकि कुर्बे कला को प्रतीकात्मकता, एवं साहित्यिक, ऐतिहासिक, नैतिक व धार्मिक कल्पनाओं के बंधनों से—जिनका प्राचीन काल से कला दासत्व करती आयी—यथासंभव मुक्त करना चाहते थे। वे कलाकारों का लक्ष्य जड़ सौंदर्य पर केंद्रित करना चाहते थे। अपने ध्येय की पूर्ति में कुर्बे पूर्ण रूप से सफल नहीं हुए और उन्होंने प्रसंगवशात् अपने चित्रों में दृश्य सौंदर्य के अतिरिक्त मानवीय कल्पनाओं को भी स्थान दे दिया। कुर्बे के पश्चात् प्रभाववादी चित्रकारों व सेजान ने जड़ सौंदर्य के चित्रण की दिशा में काफी प्रगति की। कुर्बे ने ऐसे विषयों को चुना जिनमें वाह्य सौंदर्य का आकर्षण था और जिनका प्रतीकात्मक महत्व नहीं के बराबर था। सेजान ने वस्तुओं व प्राकृतिक दृश्यों का आकार-सौंदर्य की ओर ध्यान देकर चित्रण किया एवं व्यक्तियों को भी निर्विकल्प भाव से निर्जीव वस्तुओं के समान चित्रित किया। इस प्रकार वाह्य जड़ सौंदर्य से वशीभूत पाश्चात्य कलाकार उसके मूलाधार तत्वों व उसके मस्तिष्क पर होने वाले परिणामों के बारे में विचिकित्सावृत्ति से संशोधन करने में उद्यत हुआ। घनवादी कलाकारों ने इसी दिशा में वस्तुनिष्ठ सौंदर्य से आरंभ करके वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य की ओर मार्गक्रमण किया। दृश्य सौंदर्य के मूलतत्वों का आविष्कार करके उनके विशुद्ध प्रयोग से घनवादी कलाकारों ने नयी सौंदर्यसृष्टि रचायी। जड़ वस्तु के वाह्य सौंदर्य के विश्लेषण में पिकासो व ब्राक ने आत्यंतिक दृष्टिकोण अपना कर कलाकृति में प्रत्यक्ष वस्तु का अंतर्भाव किया।

विंडहॅम लेविस ने घनवादियों के जड़वादी दृष्टिकोण का निषेध करते हुए लिखा "एक प्रकार से, घनवाद इस विचार का समर्थन है कि आज का मानव भावनाहीन हो गया है व उसके आत्मिक मूल्यों का स्थान भौतिक दृष्टिकोण ने ले लिया है। घनवाद की कोलाज-पद्धति १९ वीं सदी के नैसर्गिकतावाद का एक विकृत रूप मात्र है"। किन्तु इसके विरोध में सॅम हंटर ने लिखा है "इसमें कोई संदेह नहीं है कि घनवाद बुद्धिनिष्ठ है; किंतु बौद्धिकता व यांत्रिकता या प्रतिभाशून्य निर्मिति बिलकुल असमान बातें हैं। ब्राक व पिकासो की बुद्धिनिष्ठ रचनाओं के पीछे सौंदर्य का आदर्श है जिससे श्रेष्ठ ऐंद्रिक अनुभूति व रचनासामर्थ्य से परिपूर्ण अपूर्व सृष्टि का निर्माण हुआ है"।

रोजर फ्राय ने सेजान की कला व १९१० तक के घनवाद की तुलना ब्रांरी वर्गसों के कुछ दार्शनिक विचारों से एवं १९१३-१४ काल के पिकासो व ब्राक के घनवाद की तुलना ह्यूसर्ल के 'दृश्य के ऐंद्रिक परिणाम' संबंधी विचारों से की है। वर्गसों ने अपनी पुस्तक 'सृजनशील उत्क्रांति'[31] में अनुभूति में समय के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि समय दृश्य परिणाम को स्मृतिरूप बना कर ज्ञान में परिवर्तित कर देता है। घनवादी कलाकारों ने भी १९१० तक, दृश्य परिणाम के स्थान पर, स्मृतिजन्य ज्ञान पर निर्भर रह कर चित्रण किया। ह्यूसर्ल ने वस्तु के ऐंद्रिक ज्ञान का विश्लेषण करके 'कार्टेशियन के चिंतन'[32] पुस्तक में लिखा है कि वस्तु के परिचय के लिये केवल इतना ही आवश्यक है कि नेत्रपटलीय परिणाम में उसके महत्वपूर्ण अवयवों का समावेश हो और यह कोई जरूरी नहीं है कि उसमें कोई विशिष्ट, हुबहू या आदर्श रचना हो। यह विचार अपोलिनेर के विचार से मिलता है। अपोलिनेर के विचार से "यदि हम कुर्सी के आवश्यक अंगों को एक साथ देख रहे हैं तो हमको कुर्सी का ही बोध होगा, उन अंगों को हम किस दिशा में या किस रचना के अंतर्गत देख रहे हैं यह विचार गौण है"। पिकासो ने १९१० में लिओ स्टेन से कहा था "सिर का अर्थ है, नेत्र, नाक, होंठ; उनको हम कैसे भी इधर-उधर रखेंगे तो भी वह सिर ही होगा"। घनवाद की समकालीन साहित्यिक विचारक्रांति से समानता दिखाने के भी प्रयत्न हुए हैं।

घनवाद केवल स्वयंसीमित कलाशैली नहीं था। उसने पथप्रदर्शन का महत्वपूर्ण कार्य किया और उससे प्रेरणा पाकर भविष्यवाद, सुरीलवाद, सर्वोच्चवाद, वस्तुनिरपेक्षवाद वगैरह वादों ने जन्म लिया। आधुनिक युग में कलात्मक निर्माणक्षेत्रों में जो भी नवीन आकार-रचनाएं प्रतीत होती हैं उन सब का उद्गम घनवाद द्वारा प्रस्थापित रचना-सिद्धांत हैं। घनवाद की बीसवीं शताब्दी को सबसे महत्वपूर्ण देन हैं रचनासंबंधी सिद्धांत। घनवाद ने एक अभूतपूर्व, मौलिक रचनाशास्त्र का आविष्कार किया जिसने भवन, औद्योगिक वस्तुएं, कपड़े, अलंकार, बरतन, विज्ञापन, फर्नीचर आदि के कलात्मक निर्माण पर अपरिमित प्रभाव डाला। क्ली जैसे अभिव्यंजनापूर्ण अतियथार्थवादी चित्रकार ने घनवाद के कुछ सिद्धांतों को अभिव्यक्ति के सामर्थ्य के पोषक माना। स्वयं पिकासो ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय, तानाशाही के निषेध में बनाये गये अपने प्रसिद्ध चित्र में घनवादी आकारों व रचना सिद्धांतों का सहारा लिया।

संक्षेप में घनवाद ने कला से परम्परागत आत्मिक व प्रतीकात्मक मूल्यों को हटा दिया, वस्तुसादृश्य के बंधन से जड़ सौंदर्य को मुक्त किया एवं नये रचनाशास्त्र को जन्म देकर आगामी अवकाश-युग के अग्रदूत का कार्य किया।

घनवादी कलाकारों में से पिकासो, ब्राक, लेजे व ज्वां ग्री ने घनवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया व ख्याति प्राप्त की; अतः उनके वैयक्तिक कला-

कार्य का अध्ययन आवश्यक है।

ज्वां ग्री (१८८७-१९२७)

जोसे विक्टोरियानो गोन्जालेज ने—जो ज्वां ग्री नाम से प्रसिद्ध हुए—घनवाद के सिद्धांतों का सबसे अधिक कट्टरता से पालन किया; अतः वे 'घनवादियों में सबसे अधिक घनवादी'[33] माने गये। उनका जन्म १८८७ में माड्रिड में हुआ व १९०६ में उन्होंने पैरिस में उसी मकान में चित्रकलाकक्ष ले लिया जिसमें पिकासो रहते थे। इस समय पिकासो अपना विख्यात चित्र 'आविन्यों की स्त्रियां' बनाने में व्यस्त थे। ज्वां ग्री की कला के विकास पर पिकासो के कलात्मक प्रयोगों का जरूर प्रभाव पड़ा होगा। माड्रिड में ही ज्वां ग्री युगेंटस्टिल शैली व तुलुज लोत्रेक की कला से प्रभावित हुए थे और १९१० तक की उनकी कलाकृतियां उन्हीं प्रभावों से सीमित रहीं। १९११ से उन्होंने घनवादी चित्रण शुरू किया और १९१३ तक घनवादी अंकनपद्धति पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त किया। ब्राक व पिकासो के घनवाद से ज्वां ग्री का घनवाद वास्तुकला के स्थापनसौंदर्य के अधिक निकट है एवं अधिक ज्यामितीय है; वे कहते "सेजान वास्तुकला की ओर बढ़े; मैंने वास्तुकला से आरंभ किया। मैं वृत्तचिति को शीशी में रूपांतरित करता हूं"।[34] पिकासो, ब्राक व ज्वां ग्री की घनवादी कलाकृतियों के मनोवैज्ञानिक प्रभावों में कुछ स्पष्ट भेद हैं; पिकासो में चमत्कृति है, ब्राक में काव्य तो ज्वां ग्री में बौद्धिकता। अत्यन्त तर्कनिष्ठ होने के कारण ज्वां ग्री को कभी 'बौद्धिक सिद्धांतों के व्यापारी' तो कभी 'गणितीय कलाकार' सम्बोधित किया गया। पिकासो भी उनको सबसे बुद्धिनिष्ठ घनवादी चित्रकार मानते थे। इससे यह समझना नहीं चाहिये कि वे प्राकृतिक सौंदर्य के आकर्षण के परे थे। असल में उन्होंने प्राकृतिक सौंदर्य को अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से ग्रहण किया था। उनका निम्न विधान उनकी विश्लेषणबुद्धि की पराकाष्ठा का परिचायक है "मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिये किन्तु मुझे क्या नहीं करना चाहिये यह मैं भलीभांति समझ गया हूं"। आत्यंतिक तार्किक होने के कारण ब्राक के साथ उनके मित्रतापूर्ण वादविवाद होते रहते। जब एक दफा ब्राक ने विधान किया "कील-कील से नहीं बनायी जाती बल्कि लोहे से बनायी जाती है" तब ज्वां ग्री ने प्रत्युत्तर दिया "मेरी मान्यता इसके विरुद्ध है। कील-कील से ही बनायी जाती है। यदि कील की कल्पना बनाने वाले के मस्तिष्क में नहीं होती तो उससे कील बनने के बजाय हथौड़ी या और कोई चीज बन जाती।

ज्वां ग्री के प्रेरणास्थान थे सेजान व सोरा, और वे दोनों का बहुत आदर करते; किंतु ज्वां ग्री ने उनकी कला का अंधानुकरण नहीं किया बल्कि सारासारचिकित्सा करके उनकी कला से आधारभूत तत्वों को अपनाया।

ग्री ने अपनी चित्रणपद्धति के बारे में स्पष्टोक्तिपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं:

वे कहते "मेरे चित्र केवल विशुद्ध आकार रचनाएं हैं व उनमें जो वस्तुसादृश्य दिखायी देता है वह चित्रण करते-करते निर्माण हो गया। चित्रण का आरम्भ मैंने वस्तुसादृश्य की कल्पना से कभी नहीं किया"। संश्लेषणात्मक घनवाद का भी यही विकास-क्रम है। वस्तुनिरपेक्ष रचना से आरम्भ करके वस्तुसादृश्य का निर्माण करने की अपनी पद्धति को ग्री 'गणित को मानवतावादी रूप देना–चित्रकला की वस्तुनिरपेक्ष पद्धति'[35] कहते। १९१५ से १९१९ तक बनाये ग्री के कुछ चित्रों में इतनी अत्यधिक बौद्धिकता आ गयी है कि ये चित्र कुछ अधिक यांत्रिक पद्धति के एवं कृत्रिम दिखायी देते हैं। ऐसे ही चित्रों से प्रेरणा पाकर जेनेरे व ओजां फां ने विशुद्धवाद को जन्म दिया।

संश्लेषणात्मक घनवाद को विकास की चरम सीमा तक पहुंचाने का कार्य ज्वां ग्री ने किया और कला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। पिकासो ने उनकी तर्कनिष्ठता की प्रशंसा करते हुए कहा था "जो चित्रकार वह क्या कर रहा है इसका संपूर्ण ज्ञान रखता है, उसकी कृतियां देखने में बड़ा अनोखा आनन्द मिलता है।[36]

ग्री ने विश्लेषणात्मक घनवाद की भूरे व हल्के रंगों की संगति को अस्वीकार किया। चमकीले रंगों के प्रयोग एवं ज्यामितीय आकारों की स्पष्टता व सामर्थ्य से ज्वां ग्री के चित्रों को स्फटिकों के समान पारदर्शकता, विशुद्ध आकार व तेज प्राप्त हुए।

फर्नां लेजे (१८८२-१९५५)

फर्नां लेजे का जन्म नार्मंदी के आर्जांतां गांव में हुआ। आयु के सोलहवें साल में वास्तुकला के अध्ययन के लिये वे क्रित्तनी के एक वास्तुकार के कार्यालय में नौसिखिये के रूप में काम करने लगे। १९०० से १९०२ तक उन्होंने पैरिस में मानचित्रकार की नौकरी की। एक साल की सैनिक सेवा के बाद उन्होंने चित्रकला का अध्ययन आरम्भ किया। कुछ साल तक उन पर मातिस व सेजान की कला का काफी प्रभाव था, वास्तुकला के अध्ययन के कारण सेजान की कला ने उनको आकृष्ट किया था। किन्तु उनका कलात्मक व्यक्तित्व इतना पृथक् था कि वे किसी बाह्य प्रभाव के आगे नहीं झुके व उन्होंने सेजान के प्रभाव को भी ऐसे नयी दिशा में मोड़ दिया कि उनकी कला पिकासो, ब्राक व ज्वां ग्री की कला से बिलकुल भिन्न प्रतीत होती है।

कुछ समय तक उनका घनवादी कलाकारों से संपर्क रहा व १९१० से उन्होंने घनवादियों की प्रदर्शनियों में भाग लिया; अतः उनके उस काल के चित्र घनवादी कहलाते हैं यद्यपि उनमें घनवाद के सिद्धांतों का अनुसरण बहुत सीमित है व जैसे हम पहले देख चुके हैं, उनको 'घनवादी' कहने के बजाय 'नलीवादी' कहते थे।

१९१० में बनाये उनके चित्र 'जंगल में विवस्त्र मानव' व १९१३ में बनाये चित्र 'आकारों का विरोध'[३७] स्पष्ट रूप से स्मारकीय दर्शन के व वास्तुकला से प्रभावित हैं। रंग संबंधी वैज्ञानिक सिद्धांतों का वे विश्वास नहीं करते व आकारों के सामर्थ्य को बढ़ाने के उद्देश्य से ही उन्होंने रंगों का प्रयोग किया। उनके गहरी व सामर्थ्य पूर्ण रेखा से अंकित आकारों में वस्तुनिष्ठता नहीं है; पूर्ण काल्पनिक ज्यामितीय आकारों द्वारा उन्होंने वस्तुओं की ओर संकेत किया है व सेजान के उपदेश–'वृत्तचिति गोल व शंकु से चित्रण करो'—का शब्दशः पालन किया है। सेजान के प्रसिद्ध चित्र 'लाल जाकिट पहने हुए लड़का' में लड़के के कंधे का जोड़ बिलकुल यंत्र समान बनाया है; उसका अनुकरण कर के लेजे ने ऐसी यांत्रिक मानवाकृतियां चित्रित कीं जिनके जोड़ ही नहीं हैं। उनके चित्रों में वृक्ष के तने पाइप जैसे, फूल लोहे की पत्तियों जैसे व बादल धातु के गोले जैसे दिखायी देते हैं।

घनवादी चित्रों के समान लेजे के आकार परस्परासीन[३८]— एक दूसरे पर चढ़ाये हुए–नहीं है बल्कि यंत्र के पुर्जों के समान एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। समय के साथ उनकी मानवाकृतियां व पृष्ठभूमि की वस्तुएं अधिक यंत्र समान बनती गयीं और रंगसंगति अधिक चमकीली हो गयी एवं संपूर्ण चित्र ऐसे दिखायी देने लगे जैसे कि नलियों, चक्रों, स्प्रिंग आदि पुर्जों से जुड़ा कर बनाये यंत्र। संयुक्त-राष्ट्र-परिषद् के सभा-भवन में उन्होंने जो आलंकारिक भित्तिचित्रण किया वह पूर्ण वस्तुनिरपेक्ष है। उन्होंने कई सार्वजनिक स्थानों का भित्तिचित्रण किया।

१९२३–२४ में बनाये गये चित्रपट 'यंत्रों का समूह नृत्य'[३९] के निर्माताओं में लेजे भी थे। इस चित्रपट में कप, तश्तरियां, चायदान, चम्मच, छुरी वगैरह भोजनकक्ष की वस्तुएं व कुछ यंत्र पुर्जे आदमियों के समान नृत्य, अभिनय आदि क्रियाओं में व्यस्त हुए चित्रित किये हैं एवं मानवनिर्मित वस्तुएं यदि सजीव होकर क्रियाशील होंगी तो उस अनोखी दुनिया का दर्शक पर कैसा चमत्कृतिपूर्ण प्रभाव पड़ेगा यह इस चित्रपट से विदित होता है। १९३१ में जब लेजे पहली बार अमेरिका गये तब वहां की गगनचुंबी वास्तुकला, यांत्रिक दृश्यों व शहरी व्यस्त जीवन का उन पर अपूर्व प्रभाव पड़ा। वापस लौटने पर उन्होंने पैरिस-ओपेरा के नृत्य नाटक के लिए साजसज्जा का काम किया। १९३७ में उन्होंने पैरिस की विश्वप्रदर्शनी के लिये विशाल भित्तिचित्र बनाया। १९४० से १९४५ तक वे अमेरिका में रहे और वहां के यांत्रिक जीवन को उन्होंने चित्रित किया जिसमें साइकिल सवार, कसरत का काम करने वाले आदि लोकों के चित्र प्रसिद्ध हैं। पैरिस लौटने पर उन्होंने नाटकगृहों, नृत्यगृहों एवं सार्वजनिक स्थानों की साजसज्जा एवं कपड़ों, मिट्टी के बर्तनों व रंगीन कांचचित्रों की पूर्व कल्पनाएं बनायीं। साजसज्जा के कार्य के अतिरिक्त उन्होंने चित्रण भी किया। १९५५ में इस स्वतंत्र प्रतिभा के कलाकार का देहांत हुआ।

जार्ज ब्राक (१८८२-१९६३)

जार्ज ब्राक का जन्म पैरिस के निकटवर्ती गांव आर्ज्वांतिल में १८८२ में हुआ। उनके पिता व दादा घरों को रंगने सजाने का काम करते व फुरसत में वार्बिजां शैली के चित्र बनाते। १८९० में ब्राक परिवार ल आव्र रहने गया। बचपन में ब्राक की शालेय अध्ययन या कला में विशेष अभिरुचि नहीं थी और वे समुद्र के किनारे जा कर घंटों विताते जिस अनुभव के बारे में उन्होंने बाद में लिखा "वहां मैं अनंत को अनुभव किया करता"।

कुछ समय तक ल आव्र में गृहों की साजसज्जा करने वाले एक कलाकार से काम सीखने के बाद ब्राक ने पैरिस जाकर उसी काम का विशेष अध्ययन करके साजसज्जा का अधिकारपत्र प्राप्त किया। बचपन में सीखे हुए साजसज्जा के काम का उनकी कला एवं घनवाद के विकास पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। १९०३ से उन्होंने दो साल तक अकादेमी युंबेर[40] में व कुछ समय तक एकोल द बोजार में लियों बोन्ना के कलाकक्ष में कला का अध्ययन किया। लुव्र संग्रहालय जाकर वे महान् कलाकारों की कृतियों का अध्ययन करते जिनमें से पुसँ व कोरो की कृतियां उनको बहुत पसंद थीं। ल्युक्सेम्बुर संग्रहालय में—जहां के यबोत का प्रभाववादी चित्रों का संग्रह रखा गया था—वे प्रभाववादी चित्रों का अध्ययन करने जाते। प्रभाववादी चित्रों से वे विशेषतया मोने व रेन्वा के चित्रों से आकर्षित हुए थे व सेजान की कला उनको आजीवन प्रमुख प्रेरणा-स्रोत बनी रही। ब्राक के इस काल के चित्रों में विशेष प्रतिभा का कोई प्रमाण नहीं मिलता; इन चित्रो में प्रभाववादी सिद्धांतों का पालन था व ये चित्र बाद में ब्राक ने नष्ट कर दिये।

१९०५ में सलों दातोम में आयोजित फाव प्रदर्शनी ने उनकी कला को नव-जीवन प्रदान किया। मातिस व देरें का अनुकरण करके उन्होंने आवेशपूर्ण अंकन-पद्धति में, विशुद्ध रंगों का प्रयोग करके, कुछ चित्र बनाये जिनके मुख्य विषय थे विवस्त्र मानवाकृतियां, गृहांतर्गत दृश्य, प्राकृतिक दृश्य व वस्तु-समूह। इनमें से सात चित्र १९०६ की सलों द अँदेपांदां में प्रदर्शित किये गये। उसी साल उन्होंने ओथोन फ्रिज के साथ में फाव पद्धति के कुछ प्रकृति-चित्र बनाये व १९०७ में भूमध्य सागरीय प्रदेश में लेस्ताक गांव के प्राकृतिक दृश्यों को चित्रित किया। अब उनके चित्र प्रभाववाद से पूर्ण भिन्न और फाववादी दिखायी देने लगे; किंतु ब्राक के फाववाद में व्लामिंक व देरें के भावनाओं के जोश को संयम व नियोजन से नियंत्रित किया या व उनके चित्र प्रसन्नता के भाव लिये हुए थे। ये सब चित्र बिक गये। ब्राक के मतानुसार ये उनके प्रारंभिक सृजनपूर्ण चित्र थे।

१९०७ में ब्राक ने सेजान के चित्रों की प्रदर्शनी देखी और उससे उनकी फाव-निष्ठा को धक्का पहुंचा। उसी साल अपोलीनेर ने उनको पिकासो से परिचित कराया

व उन्होंने पिकासो का चित्र 'आविन्यों की स्त्रियां' देखा। पिकासो ने नीग्रो कला के स्वाभाविक आकार सौंदर्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित कराया। 'विवस्त्र आकृति' (१९०८) ब्राक का पहला घनवादी चित्र था। अब फिर लेस्ताक जा कर ब्राक ने घनवादी पद्धति के प्रकृति-चित्र बनाये जिनको देखकर वोक्सेल ने उस शैली को 'घनवादी' नाम से सर्वप्रथम संबोधित किया।

घनवाद का जन्म व विकास, पिकासो वा ब्राक के संयुक्त प्रयत्नों का फल था; किंतु दोनों के उद्देश्यों में मौलिक अंतर था। इस मौलिक भिन्नता के कारण पिकासो के चित्रण में रचनाकौशल व आश्चर्यभाव पर बल है जबकि ब्राक के चित्रण में काव्यात्मक सौंदर्य का सुरचित दर्शन है। पिकासो की कृतियों में मूर्तिकला के समान घनत्व का दर्शन है जबकि ब्राक की कृतियों में रंगसंगति का सौंदर्य है एवं दर्शन में वे चित्रकला से एकनिष्ठ हैं पिकासो के चित्रों का प्रभाव मनोवैज्ञानिक है जबकि ब्राक के चित्र अधिक वस्तुनिष्ठ व आलंकारिक हैं।

प्रकाश व अवकाश को जड़ रूप दे कर उनको रचना के अंगों में सफलतापूर्वक अंतर्भूत करना ब्राक का महत्वपूर्ण आविष्कार था। ब्राक ने प्रकाश व अवकाश को भी साकार सौंदर्य प्रदान किया; उनकी दृष्टि में वस्तुओं के बीच का रिक्त अवकाश रचनासौंदर्य के निर्माण में उतना ही महत्वपूर्ण है जितनी कि वस्तुएं। ब्राक व पिकासो ने ज्यामितीय दूरदृश्यलघुता के नियमों के स्थान पर रचना के सृजनशील तत्वों को किस तरह प्रस्थापित किया यह हम पहले देख चुके हैं। ब्राक के फाव काल के चित्रों के विषय अधिकतर प्रकृति-दृश्य थे; घनवादी चित्रण के लिये उन्होंने वस्तु-समूहों को विषय के रूप में चुना। उनके वस्तुचित्रों में अधिकतर वाद्ययंत्र, समाचार-पत्र, भोजनगृह की सुपरिचित वस्तुएं चित्रित की गयी हैं जिनसे दर्शक सहवासजनित स्नेह व स्पर्शसुख को सुलभता से अनुभव करता है व जिन वस्तुओं के मानवनिर्मित ज्यामितीय आकार घनवादी रचना के लिये बड़े उपयुक्त होते हैं। ब्राक जीवननिष्ठ कलाकार थे और जब उनकी घनवादी कलाकृतियों को वस्तुनिरपेक्ष कला के अंतर्गत समाविष्ट करने के कुछ कलासमीक्षकों ने प्रयत्न किये तब ब्राक ने असहमति व्यक्त की। घनवाद से प्रेरणा पाकर कई वस्तुनिरपेक्ष शैलियों का जन्म हुआ इसमें कोई संदेह नहीं हैं किंतु ब्राक के घनवाद का लक्ष्य था घरेलू जीवन का प्रसन्नतापूर्ण दर्शन और इस दृष्टि से वे नावि चित्रकारों के अधिक निकट हैं। साहचर्य भाव बढ़ाने के उद्देश्य से उन्होंने चित्र में अक्षरों को समावेश करना आरंभ किया व बाद में प्रत्यक्ष वस्तुओं को चित्रक्षेत्र में चिपका कर चित्ररचनाएं कीं। कलाकृति में कोलाज का प्रयोग करने का श्रेय ब्राक ही को है; कोलाज पद्धति से उनकी रचनाएं अधिक भौतिक बन गयीं। घनवाद की मंद रंगसंगति में नैसर्गिक चमक आ गयी एवं प्राकृतिक अवकाश का पूर्ण लोप हो गया। संश्लेषणात्मक घनवाद से पिकासो को रचना-कौशल का मौका प्राप्त हुआ तो ब्राक काव्यात्मक सौंदर्य व आलंकारित्व की ओर बढ़े।

प्रथम विश्वयुद्ध की सैनिकसेवा के पश्चात् उन्होंने पुनश्च घनवादी चित्रण आरंभ किया। उनकी कला का पूर्ण विकास हो चुका था और उसमें संशोधनवृत्ति नहीं रही थीं; अब उन्होंने कला को मानवतावादी रूप देने के प्रयत्न किये एवं इस विचार से उनकी कला की तुलना शार्दें की कला से की जाती है।

१९१८ में बनाये उनके चित्र 'वादक'[41] में संश्लेषणात्मक घनवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है किंतु उसमें वास्तविकता से सम्पर्क रखने के प्रयत्न भी हैं। ब्राक अनुभव कर रहे थे कि प्रयोगों द्वारा घनवादी रचनाशास्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका था और वास्तविकता के सौंदर्य की उपेक्षा करके केवल रचना की दिशा में अधिक प्रयोग करते रहने में कला के यांत्रिक बनने का धोखा था। अतः उन्होंने केवल कलात्मक प्रयोग करना छोड़ दिया और आसपास की दुनियां के नैसर्गिक सौंदर्य की पुनरनुभूति घनवादी चित्रण से किस तरह की जा सकती है इसका वे विचार करने लगे और अन्त तक उसी दृष्टिकोण को सामने रख कर चित्रण किया उन्होंने मानवाकृतियों एवं प्राकृतिक दृश्यों के भी कुछ चित्र बनाये किंतु उनको जीवन का सच्चा सौंदर्य मूक व अचल वस्तुसमूहों में ही दिखायी दिया। आत्मीयता से बनाये उनके वस्तुचित्रों में जीवन का सौंदर्यपूर्ण काव्य साकार हो उठा है अतः उनको 'चित्रकाव्य' नाम समुचित है। घनवादी रचनात्मकता होते हुए वस्तुचित्र नैसर्गिक आकर्षण से परिपूर्ण हैं। ब्राक के वस्तुचित्रों का यह गुण समय के साथ अधिक प्रभावी बना व शार्दें के बाद इतने आकर्षक वस्तुचित्र किसी भी अन्य चित्रकार ने नहीं बनाये।

१९२९ के बाद उन्होंने नार्मंदी के सागरतटों के कई प्रकृतिचित्र बनाये। कालिमा छाये हुए आसमान में ठोस आकार के बादलों, गहरे रंग के सागरकिनारों पर छोड़ी हुई नावों व खड़ी काली चट्टानों पर चमकती सूर्यकिरणों से चित्रांतर्गत वातावरण गूढतापूर्ण बन गया है। सभी वस्तुएं स्वतन्त्र व्यक्तित्व लिये हुए व ठोस हैं; चित्रों पर घनवादी रचनात्मकता का प्रभाव स्पष्ट है।

१९२२ से ब्राक ने कानेफोरस[42] ऋतु व सम्पन्नता के देवता—की चित्रमालिका बनायी। इन चित्रों में घनवाद का नाम ही नहीं है; चित्र आलंकारिक शैली के हैं और उन पर ग्रीक कला का स्पष्ट प्रभाव है; देवता की आकृति मूर्ति के समान ठोस व स्मारकोचित है। यही ठोसपन उनके बाद में बनाये उभारदार शिल्पों में एवं १९५२ में बनाये शिल्पचित्र 'सूर्य का रथ'[43] में हैं। चित्रों के विषय प्राचीन किंतु अंकनपद्धति व दर्शन आधुनिक हैं। ब्राक की बनाई हुई घोड़ों की शिल्पाकृतियों में पौराणिक कल्पना का सामर्थ्य व घनवाद का रचनासौंदर्य एक साथ प्रतीत होते हैं।

१९३१ व १९३८ के बीच ब्राक ने बहुत से वस्तुचित्र बनाये जो उनके द्विविध व्यक्तित्व के साक्ष्य हैं। कुछ वस्तुचित्र आलंकारिक व रचनात्मक हैं तो कुछ वस्तुचित्रों में वस्तुओं के नैसर्गिक आकर्षण का आत्मीयतापूर्ण दर्शन हैं; 'मेंडोलिन व वस्तुएं' (१९३५) 'गोलमेज पर वस्तुसमूह'[44] 'लालमेजपोश्त पर वस्तुसमूह' (१९३६) ये

पहले प्रकार के उदाहरण हैं तो 'संगमरमर का मेज' (१९२५), 'चिमनी व वस्तु-समूह' (१९२७)[45] 'बिलियर्ड का मेज' (१९४५) ये दूसरे प्रकार के उदाहरण हैं। ब्राक के पिता व दादा साजसज्जा का काम करते थे एवं ब्राक की निजी कला का आरंभ भी साजसज्जा के कार्य से ही हुआ था; अतः कोई आश्चर्य नहीं है कि उनकी कला में चमकीली व सुन्दर रंगसंगति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था।

१९३८ के पश्चात् ब्राक ने वस्तुचित्रण में आलंकारित्व व रचना के प्रभाव को कम कर दिया और वस्तुओं के नैसर्गिक आकर्षण पर बल देकर वस्तुचित्रों को अभिव्यक्तिपूर्ण बनाने के प्रयत्न किये; परिणामस्वरूप ब्राक के चित्र कुछ धार्मिक, रहस्यपूर्ण व अधिक प्रभावी बन गये। ब्राक का चित्र 'अहंकार'[46] (१९३८) इस विचार से अभ्यसनोय है। चित्र में मानव की खोपड़ी व क्रॉस का प्रतीकात्मक प्रयोग है; चित्र अभिव्यक्तिपूर्ण होते हुए उसके सौंदर्यात्मक प्रभाव में कोई न्यूनता नहीं है। उनके 'चित्रकला-कक्ष'[47] के कई चित्र रहस्यपूर्ण वातावरण से ओतप्रोत हैं; इन चित्रों का आरम्भ १९४८ में हुआ एवं इनमें चित्रकार के कार्यकक्ष के अन्तर्गत सफेद पक्षी को उड़ते हुए चित्रित कर वातावरण में गूढ़ता का निर्माण किया है।

हर तरह के वस्तुचित्रों से ब्राक का जड़ वास्तविकता के बाह्‌य सौंदर्य का आकर्षण छिपा नहीं रहता। उनके वस्तुचित्रों में जगह जगह मार्बल की चमकीली, रंग-बिरंगी सतहें, दीवारकागजों का सुन्दर अलंकरण, लकड़ी के रेशों का लहरों के समान मनोहर गतित्व वगैरह का प्रयोग है। ब्राक एक ऐसे चित्रकार थे जो जड़ वास्तविकता के सौंदर्य से मुग्ध हो गये थे।

१९३६ के करीब ब्राक ने वस्तुसमूह के साथ मनुष्याकृतियों का अनोखे ढंग से मिलाप करना आरम्भ किया जिसके 'द्वंद्वगान'[48] (१९३७), 'मेंडोलिन-वादिका' (१९३७) व 'ताश का खेल' (१९४२)[49] प्रसिद्ध उदाहरण हैं। इन चित्रों को मानवचित्र कहना अनुचित होगा क्योंकि पृष्ठभूमि के आलंकारित्व व वस्तुसमूह की रचनात्मकता के सामने मानवाकृतियां कागज की काटी हुई आकृतियां जैसी प्रतीत होती हैं। मानवाकृतियों को हलके व गहरे रंगों के क्षेत्रों में विभाजित कर चित्र संपूर्ण रचनात्मक प्रभाव में एकरूप कर दिया है।

ब्राक ने मूर्तिकला में भी कुछ प्रयोग किये और उसके कारण को स्पष्ट करते हुए बताया "इससे कलाकार चित्रकला के अधीन नहीं होता व अधीनता से मुक्त रहना कलाकार के लिये आवश्यक है"। १९२० में बनायी 'खड़ी महिला' शिल्प पर घनवाद का प्रभाव है। उनके घोड़ों व मछलियों के शिल्प समतल व रेखात्मक है और उनमें आधुनिक ढंग का आलंकारित्व है।

१९३७ में उनको 'कार्नेजी पुरस्कार' प्राप्त हुआ व १९४८ में 'वेनिस-द्विवार्षिक' का सर्वोच्च पुरस्कार[50] मिला। १९५६ में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उनको 'सम्माननीय डॉक्टर' की उपाधि से विभूषित किया।

उनके अन्तिम चित्रों में आसमान में उड़ती हुई दो या तीन चिड़ियों या घोंसले को लौटती हुई मादा चिड़िया को चित्रित किया है। चित्रों में पराकाष्ठा का सरलीकरण है व चित्र गूढ व प्रभावपूर्ण बन गये हैं। १९६२ में घनवाद के इस महान् प्रणेता की मृत्यु हुई।

पिकासो को कलात्मक प्रयोग करके नवनवीन आविष्कार करने में आनन्द मिलता जबकि ब्राक वास्तविकता के सौंदर्य को भुला कर केवल 'कला के लिये कला' के ध्येय के पीछे भाग नहीं सकते। बचपन में वे सागरी दृश्य को घंटों तक देखते रहते व उसी तन्मयता का परिचय हमको उनके चित्रों से भी मिलता है। ब्राक व पिकासो की तुलना करते हुए कलासमीक्षक युइद ने लिखा है" कलात्मक एकता को एक ने (ब्राक ने) सूक्ष्मग्राही सौंदर्य-संवेदनाक्षमता का व दूसरे ने (पिकासो ने) असाधारण रचनादृष्टि का योगदान किया"[51]। सौंदर्यवादी होते हुए ब्राक अध्ययन व शास्त्र-शुद्धता का महत्व जानते थे एवं कहते "मैं ऐसे नियम को पसन्द करता हूं जिससे भावना को समुचित पथप्रदर्शन होता है"[52]। उनकी कला में सौंदर्य के गूढ सामर्थ्य का शास्त्रीयता से सुयोग्य समन्वय है। उन्होंने अपने कलासम्बन्धी विचारों को निम्न शब्दों में स्पष्ट किया "किसी भी वस्तु को विशिष्ट सत्य में सीमित नही रखना चाहिये, जैसे कि पत्थर किसी दीवार का हिस्सा हो सकता है, भयंकर हथियार हो सकता है, खेलने की गोली हो सकता है, पवित्र मूर्ति हो सकता है........या कोई अन्य वस्तु हो सकता है मेरे लिये वस्तुएं इतना ही महत्व रखती हैं कि मैं उनमें आपस में या उनमें और मुझमें कोई आंतरिक सुसंवादित्व को अनुभव करता हूं।........ऐसी अवस्था में बौद्धिक विचार नष्ट हो जाते हैं—यह एक अतीव शांतिप्रद अवस्था है—और सब कुछ सरल, सुसंभव व सुयोग्य हो जाता है। ऐसी अवस्था में प्रत्येक क्षण साक्षात्कार का क्षण बनता है। ....यही काव्य है।.......मुझे स्पष्ट करने को न कहना।........कला में वही सत्य है जो स्पष्टीकरण के परे है।........रहस्यों के सामर्थ्य को अनुभव करना चाहते हो तो पहले निस्संदेह हो जाओ। कला में व्याकुल करने की शक्ति है और विज्ञान में निर्णय करने का सामर्थ्य"।

पाब्लो पिकासो (१८८१-)

आधुनिक कलाकारों में पिकासो के समान अपरिमित यश व असामान्य ख्याति प्राप्त करने का सौभाग्य किसी अन्य कलाकार को नहीं मिला। उन्होंने अपनी कला में सभी प्रमुख आधुनिक कलाशैलियों को प्रयोगान्वित करके प्रभावी कलाकृतियों का निर्माण किया। पिकासो की कला की सबसे प्रमुख विशेषता है असाधारण परिवर्तन-शीलता जिस वजह से पिकासो की कला का वर्गीकरण करना बहुत कठिन हो गया है एवं उनको अलौकिक प्रतिभा के महान् कलाकार मानते हैं। उन्होंने चित्रकला के अतिरिक्त मूर्तिकला, एन्ग्रेविंग, लिथोग्राफी, सेरेमिक्स वगैरह भिन्न माध्यमों से उत्कृष्ट

कलाकृतियां निर्माण की हैं। पिकासो की कलाकृतियों में विविधता होते हुए वे सब पूर्वनियोजित दृष्टिकोण से बनायी गयी हैं; इस विचार से हम उनको ध्येय-वादी कलाकार मान सकते हैं। किंतु उनका ध्येयवाद बाह्य आदर्शों पर निर्भर न होकर स्वयं प्रेरित है; उनकी प्रेरणा का मूल स्रोत है निजी सृजनशक्ति का पूर्ण विश्वास।

पिकासो का जन्म स्पेन के मलागा नाम के गांव में हुआ। उनके पिता जोसे रुइज चित्रकार एवं स्थानीय विद्यालय में चित्रकला के अध्यापक थे। उनकी माता का नाम था मराया पिकासो रुइज। १९०० तक पिकासो अपने चित्रों पर 'पाब्लो रुइज पिकासो' नाम से हस्ताक्षर करते थे किन्तु उसके पश्चात् उन्होंने केवल 'पिकासो' लिखना शुरू किया।

पिकासो के बचपन के चित्र देखने से ही पता चलता है कि उनको चित्रकला की अद्भुत देन थी। 'वृद्ध युग्म' (१८९१), पैर का अध्ययन-चित्र' (१९९३) में 'डोन जोसे का व्यक्तिचित्र' (१८९५) पूर्ण विकसित कलासामर्थ्य के उदाहरण हैं। आयु के १४ वें साल में 'बार्सिलोना चित्रकला-संस्था' की प्रवेशपरीक्षा वे एक ही दिन में सभी चित्र पूर्ण करके उत्तीर्ण हुए जिसके लिये अन्य विद्यार्थियों को करीब एक महीने तक परिश्रम करने पड़ते। बार्सिलोना में अध्ययन करने के पश्चात् वे १८९७ में माड्रिड के सान फर्नांडो अकादमी में अध्ययन करने लगे; किन्तु वहां वे प्राडो संग्रहालय जाकर बेलास्के एल्ग्रेको व टिशियां के जिनकी कला से वे काफी प्रभावित हुए थे—चित्रों का निरीक्षण करना अधिक पसंद करते। यहां उनका साहित्यकारों व कलाकारों का मित्रमण्डल बढ़ रहा था। वे सब 'चार बिल्लियां'[53] नाम से जलपान-गृह में सम्मिलित होते एवं उनकी कलाविषयक चर्चाएं होतीं। उस समय पिकासो के रेखाचित्र वहां की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे। १९०० में वे दो महिनों तक पैरिस जा कर रहे व वहां उनके तीन चित्र बिक गये। १९०१ में पिकासो ने 'युवा-कला'[54] नाम की पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया किंतु अब पैरिस का आकर्षण बढ़ता जा रहा था और उसी साल उन्होंने पैरिस में अपने चित्रों की प्रद-र्शनी की। इस प्रदर्शनी का आयोजन आम्ब्राज वोलार ने किया था व उसमें पिकासो के ७५ चित्र थे। इन चित्रों में लोत्रेक व प्रभाववाद का अनुसरण था। किंतु पिकासो अनुकरण कर रहे थे ऐसे समझना भूल होगी; वे केवल बाह्य प्रभावों को आत्मसात् करके अपनी व्यक्तिगत कला को सामर्थ्यवान् बना रहे थे। इस बात का प्रमाण उनके उसी साल नयी व पूर्ण स्वतन्त्र शैली में बनाये चित्रों से मिलता हैं। इस शैली के चित्र उन्होंने १९०१ से १९०४ तक बनाये और यह काल उनकी कला का 'नीला काल'[55] कहलाता है। ये चित्र उन्होंने एक ही नीले रंग को प्रमुख स्थान देकर बनाये हैं। चित्रों के विषय हैं भिखारी, रास्तों के गायक, परिश्रमी व पीड़ित लोक व कसरत करने वाले आदमी; इन चित्रों में से 'परित्यक्ता', 'वृद्ध ज्यू', 'युग्म', व 'इस्त्री

करने वाली'[56] ये चित्र विशेष प्रसिद्ध हैं। चित्रों का दृष्टिकोण मानवतावादी है व उनमें गरीब वर्ग की असहाय व लाचार अवस्था का हृदयद्रावक चित्रण है।

१९०४ में उनका पैरिस में रहने का विचार पक्का हो गया और उन्होंने पैरिस में मोंमार्त्र विभाग की टूटी फूटी बस्ती में 'बातो लाव्वा'[57] नाम की प्रसिद्ध कोठी में जगह ली। यहां पिकासो ने पांच साल बड़ी विपन्नावस्था में विताये किन्तु यह काल आधुनिक कला के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा। १९०२ में उनका कवि माक्स याकोब से व १९०४ में आंन्द्रे सामां व अपोलिनेर से परिचय हुआ। कुछ समय में ही उनके आसपास कलाकारों व साहित्यिको का मंडल एकत्रित हुआ जो नवीन क्रांतिकारी विचारों से प्रेरित था। उनकी चर्चाएं हुआ करतीं जिनसे बीसवीं सदी की कला व साहित्य को नयी दिशा मिली।

१९०५ में पिकासो के चित्रों में नीले रंग की जगह गुलाबी रंग ने प्रमुख स्थान लिया व चित्र के विषयों को सर्कस के विदूषक, नट, भांड, नर्तक आदि श्रमजीवी लोकों के जीवन से चुना गया। 'नीले काल' के चित्रों का मुख्य भाव था मानवीय दुःख जबकि 'गुलाबी काल'[58] के चित्रों का भाव था निराशा व समर्पण। इस समय फाव चित्रकार चमकीले, विशुद्ध रंगों में चित्रण कर रहे थे किंतु उसका पिकासो पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा; पिकासो की रंगसंगति में हलके गुलाबी व नीले रंगों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग था। चित्रों के विषय उनके साहित्यिक मित्र अपोलिनेर व माक्स याकोब को बहुत प्रिय थे। 'गुलाबी काल' के चित्रों में से 'भांड का परिवार', 'नट व गोला', व 'नट का परिवार'[59] विशेष प्रसिद्ध हैं।

१९०५ में पिकासो का अमेरिकन लेखिका गर्ट्रूड स्टेन व मातिस से परिचय हुआ। उसी साल सलों दातोम में उनको सेजान के चित्र देखने का मौंका मिला जिससे उनको नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ वे नीग्रो कला से प्रभावित हुए थे व १९०६ में बनाये गर्ट्रूड स्टेन के व्यक्तिचित्र पर यह प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी देता है; यह वर्ष पिकासो की कला के 'आदिमवाद'[60] का आरंभिक वर्ष था और इसको 'नीग्रो काल' भी कहते है। 'नीग्रो काल'[61] (१९०६ से १९०८) तक का पिकासो का 'आविन्यों की स्त्रियां' सबसे प्रसिद्ध चित्र है। पिकासो के नीग्रो काल के चित्रों में रिम्बो की घोषणा 'आदिम बनो' का प्रत्यक्ष रूप में कलात्मक अनुसरण करके कलाकारों को आवाहन किया है। आदिमवाद का पिकासो के लिये केवल सौंदर्यात्मक या सांस्कृतिक महत्व नहीं था। आदिमवाद से पिकासो को अपनी सहजप्रवृत्तियों द्वारा सृजन करने का संदेश मिला।

१९०८–१९०९ के करीब पिकासो ने सेजान से प्रभावित होकर क्रील व ओर्ता में ज्यामितीय नियमबद्धता से युक्त प्रकृतिचित्र बना कर विश्लेषणात्मक घनवाद को प्रकट रूप से आरंभ किया। अब उनकी कला में नीग्रो कला के आवेश व सरलीकरण का स्थान घनवादी रचनात्मकता ने ले लिया। १९१२ में कोलाज पद्धति का आविष्कार

होकर घनवाद की विश्लेषणात्मक पद्धति पीछे रह गयी व संश्लेषणात्मक घनवादी चित्र बनने लगे। इस पद्धति के पिकासो के चित्रों में 'वायोलिन' (१९१३), 'आराम कुर्सी पर बैठी महिला' (१९१३), 'गिटार, खोपड़ी व समाचारपत्र' (१९१४)[62] प्रसिद्ध हैं।

१९१५ से पिकासो ने नवशास्त्रीयतावादी शैली के कुछ रेखाचित्र बनाये जिनमें अँग्र के समान रेखांकनशैली के वोलार व अपोलिनेर के व्यक्तिचित्र हैं। वैसे देखा जाये तो घनवाद भी शास्त्रीय शैली था, अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि पिकासो व घनवादी चित्रकारों को दाविं व अँग्र की कलाकृतियां बहुत पसंद थीं। १९१७ में पिकासो का ज्यां काक्तो से परिचय हो कर उन्होंने काक्तो के समूहनृत्य 'कवायत'[63] के लिये रंगमंच की साजसज्जा की एवं पृष्ठभूमि के पर्दे चित्रित किये। १९१६ में पिकासो डियाघिलेव के समूहनृत्य के लिये रंगमंच की सजावट व पर्दे तैयार करने को रोम गये थे जहां उनका नर्तिका ओलगा से परिचय होकर १९१८ में विवाह हुआ। इटाली की यात्रा में देखी हुई फ्लोरेन्स, नेपल्स व पॉम्पिया के उत्खनन में प्राप्त प्राचीन शास्त्रीय कलाकृतियों व ओलगा के ग्रीक-आदर्शवत् सौंदर्य के परिणामस्वरूप उनके 'शास्त्रीयतावादी काल' [64] का आरंभ हुआ और उन्होंने स्मारकीय शैली के, मूर्ति समान ठोसपन लिये हुए, ग्रीक कला से प्रभावित चित्र बनाये जिनमें 'माता व बालक' (१९२२); 'श्वेतवस्त्र पहिने हुए स्त्री' (१९२१), 'पनघट पर तीन स्त्रियां' (१९२१)[65] बहुत प्रसिद्ध हैं। नवशास्त्रीयतावादी एवं शास्त्रीयतावादी चित्रण के साथ पिकासो घनवादी चित्रण भी कर रहे थे और उन्होंने वाद्ययंत्रों से युक्त वस्तुचित्र व 'तीन वादकों'[66] के चित्र बनाये।

१९२४ में पिकासो अतियथार्थवाद के प्रणेता व साहित्यिक आन्द्रे ब्रेतों से परिचित हुए। पिकासो ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि उन्होंने न कभी अतियथार्थवादी कलाकृतियां बनायीं न उनके अनियंत्रित स्वयंचालन के तत्व का विश्वास किया, किंतु अतियथार्थवाद के अंतर्मन की काव्यमयता, काल्पनिक सृष्टि एवं गूढ अंतःसृष्टि के दार्शनिक तत्वों ने उनकी कला पर जरूर प्रभाव छोड़ा। १९२५ के करीब पिकासो ने अतिमानुष एवं द्विप्रतिम आकृतियों[67] को चित्रित किया जो अतियथार्थवाद के विचारों के अनुसार हैं और आन्द्रे ब्रेतों जिसको 'प्रकंपनकारी सौंदर्य'[68] कहते उसके उदाहरण हैं। पिकासो के वैवाहिक जीवन का यह काल पारिवारिक संघर्षों में से गुजर रहा था एवं हो सकता है कि इसी कारण पिकासो ने अंतर्मन की खोज की आवश्यकता को महसूस करके, अस्वस्थ मनःस्थिति में अतियथार्थवादी प्रभाव से युक्त चित्र बनाये हों या दृश्य आकारों की केवल ज्यामितीय सौंदर्यात्मक रचना करने के बजाय अपनी चित्र विषय के प्रति आत्मिक भावनाओं के अनुकूल अभिव्यक्तिपूर्ण रचना करने के प्रयत्न किये हों। उनके अतियथार्थवादी चित्रण का आरंभ 'तीन नर्तक' (१९२५)[69] चित्र से हुआ जिसमें नर्तकों की आकृतियां बहुत ही बेतुकी

चित्रित की हैं व उनके आकारों में अनोखा असह्य दर्द है जैसे कि वे 'अंतकाल का नृत्य'[70] नाच रहे हैं। उनके अतियथार्थवादी चित्रों से ऐसे प्रतीत होता है कि उन्होंने वस्तुनिष्ठ रचनात्मकता के घनवादी ध्येय को छोड़ कर आंतरिक विह्वल मानसिक अवस्था को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। फिर भी इस काल के चित्रों में 'स्वप्न'[71] (१९३२) जैसे अपवादमात्र चित्र में विश्राम व शांति के भाव हैं।

१९३४ से पिकासो के जीवन में फिर प्रसन्नता छा गयी व उन्होंने मारी तेरेस, दोरा मा व अपने वच्चों के कई चित्र बनाये जो ऐंठनदार व द्विप्रतिम होते हुए प्रसन्नता लिये हुए हैं व रचना व रंगसंगति की दृष्टि से वहुत ही आकर्षक हैं। इस काल में उन्होंने अपने वच्चों के कुछ नैसर्गिकतावादी पद्धति के चित्र भी बनाये।

पिकासो की अतियथार्थवादी एवं घनवादी शैलियों का भावनापूर्ण उत्कर्ष उनके १९३७ में बनाये विश्वविख्यात चित्र 'ग्वेर्निका'[72] में देखने को मिलता है। यह विशाल चित्र ($११\frac{1}{2}' \times २५\frac{1}{2}'$) उन्होंने पैरिस की प्रदर्शनी के स्पैनिश विभाग में रखने के लिये वनाया व उसके लिये कई रेखाचित्र व अभ्यासचित्र बनाये। चित्र करीव एक ही नीले से रंग में बनाया है व चित्र का विषय है जर्मन तानाशाही आक्रामकों द्वारा किया गया स्पेन के सीमावर्ती गांव ग्वेर्निका का ध्वंस। घनवादी आकारों का पर्याप्त सरलीकरण करके चित्र बनाया गया है और ये आकार—वैल, रोती हुई स्त्री, घोड़ा वगैरह उनकी—पुरानी चित्रमालिकाओं से लिये गये हैं, जिनको हम उनके चित्र 'सांड से लड़ाई' (१९३४), 'मूर्तिकार का कार्यकक्ष' (१९३३), 'मिनोतोर-माशिआ' (१९३५)[73] में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। इन आकारों का प्रतीकात्मक महत्व है और उसके संदर्भ में पिकासो ने कहा था, "यहां वैल का चित्रण तानाशाही के प्रतीक-रूप में नहीं किया है वल्कि वह पाशवी अत्याचार व अन्याय का प्रतीक है.... घोड़ा जनता का प्रतीक है.... ग्वेर्निका का चित्रण प्रतीकात्मक है"। यह प्रतीकात्मकता हमको पिकासो के व्यक्तिचित्रों में भी देखने को मिलती है जिनमें वाह्य रूप की अपेक्षा व्यक्ति के अंतर्मन का दर्शन कराने के प्रयत्न हैं। 'ग्वेर्निका' पिकासो की कला का परमोत्कर्ष विंदु है और उनके सभी कलात्मक प्रयोगों का उसमें सार है। यह एक सोच-समझ कर बनाया गया सामाजिक महत्व का चित्र है व इसमें युद्ध की निर्घृणता व विनाशकारी तत्वों को समाज के सम्मुख रख कर निर्भत्सना की है। इस चित्र का सामाजिक महत्व के अतिरिक्त व्यक्तिगत महत्व भी है क्योंकि इसमें पिकासो की कला के विकास का इतिहास है जिसका आरंभ उनके 'नीले काल' व विश्लेषणात्मक 'घनवाद' से हुआ। इस चित्र को ले कर पिकासो ने कलाकार के सामाजिक कर्त्तव्य के वारे में जो विचार व्यक्त किये हैं वे अवश्य मननीय हैं; वे कहते हैं, "आपकी कलाकार के वारे में क्या धारणाएं हैं? क्या वह एक ऐसा वुद्धिहीन प्राणी है, जो केवल आंखों से देख सकता है यदि वह चित्रकार है, जो केवल कानों से सुनता है यदि वह संगीतकार है, जिसकी सव शक्ति केवल दिल में ही है यदि वह कवि है या जिसके पास शक्ति-

शाली स्नायुओं के अतिरिक्त, और कोई साधन संपत्ति नहीं है यदि वह मुष्टियोद्धा है ? इसके विपरीत उसके राजनैतिक विचार भी होते हैं'''जिस समाज के कारण कलाकार को इतना अनुभूतिपूर्ण जीवन प्राप्त होता है उस समाज के प्रति निष्कर्तव्य हो कर स्वान्तःसुखाय कलासाधना करते रहना कलाकार के लिये कैसे संभव हैं ?" 'ग्वेर्निका' को चित्रित कर पिकासो ने आधुनिक कलाकारों को एक तरह से संदेश दिया है कि 'कला के लिये कला' केवल अर्धसत्य है और उसको मानवीय जीवन के संपूर्ण सत्य से पृथक् नहीं किया जा सकता। 'ग्वेर्निका' द्वारा पिकासो ने उच्चभ्रू समीक्षकों व आत्मसंतुष्ट प्रतिष्ठित कलाप्रेमियों के भ्रममूल दृष्टिकोण का भंडाफोड़ करके स्पष्ट किया है कि कला का सामाजिक महत्व भी होता है। 'ग्वेर्निका' का चित्रण ऐसे समय हुआ था जब आधुनिक कलाकार पराकाष्ठा का आत्मनिष्ठ बनता जा रहा था। 'ग्वेर्निका' ऐतिहासिक चित्रण का आधुनिक रूप है। १६४६ में बनाया पिकासो का चित्र 'जीवन का आनन्द' अभिव्यक्ति में ग्वेर्निका से बिलकुल भिन्न है; विषय हर्षपूर्ण है, व चित्र का दर्शन व रंगसंगति प्रसन्न हैं। १६५२ में पिकासो ने वालोरी के गिरजाघर में 'युद्ध' व 'शांति'[74] जैसे परस्परविरोधी विषयों पर दो विशाल भित्तिचित्र बनाये। १६५० व १६६० के बीच पिकासो ने देलाक्रा का चित्र 'अल्जियर्स की स्त्रियां',[75] वेलास्के का चित्र 'राजकन्या व दासियां',[76] व माने का चित्र 'तृण पर भोजन' को आधार के रूप में लेकर उन प्रसंगों पर अपने ढंग की चित्रमालिकाएं बनायीं। उन्होंने यूनेस्को के पैरिसस्थित भवन को विशाल भित्तिचित्र से सजाया। अब इस समय ८५ वर्ष से अधिक आयु होने पर भी उनकी अविरत कलानिर्मिति में कोई विश्राम नहीं है।

पिकासो एक उच्च कोटि के आधुनिक मूर्तिकार भी हैं। उनकी उत्कृष्ट मूर्तियों में से 'मजाकिया' (१६०५), 'मुर्गा' (१६३२), 'धातु की रचना' (१६३०), 'बिल्ली' (१६४१), 'भेडवाला आदमी' (१६४३), व 'बकरी'[77] ये मूर्तियां बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने एन्ग्रेविंग व लिथोग्राफी का भी काम किया व उनकी सेरेमिक्स की कृतियां बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

पिकासो ने स्वयं को किसी पूर्वनिश्चित धारणाओं के बंधन से सीमित नहीं रखा और आसपास की विशाल बहुरंगी दुनिया से निरन्तर प्रेरणा लेकर सृजनपूर्ण कलाकृतियों को जन्म दिया। पिकासो ने अपने एक मित्र से कहा था, "मैं शैलीविहीन चित्रकार हूं"[78]। मारिओ डि मिचेलि ने पिकासो के बारे में लिखा है, "पिकासो की कला के चैतन्य व परिवर्तनशीलत्व के पीछे मुख्य रहस्य यह है कि वे संसार व मानवजाति के प्रति भावनात्मक ग्रहण में अत्यधिक तत्पर हैं व उनमें सूक्ष्म संवेदनाशीलत्व है"[79]। गर्ट्रूड स्टेन ने उनके बारे में लिखा है "........पिकासो जड़सौंदर्य से इतने मुग्ध हैं कि आत्मा का विचार तक करने को उनको समय नहीं है"[80] जबकि मोरिआक लिखते हैं "पिकासो आत्मा का असाधारण द्वेष करते हैं"[81]।

पिकासो ने अपनी कला के संबंध में जगह-जगह जो विधान किये हैं उनके जरिये भी उनकी कला का रसग्रहण किया जाना चाहिये। उनके अपने मित्रों से प्रकट किये कलासंबंधी विचार आधुनिक कला का सत्यस्वरूप समझने की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त हैं। पिकासो ने कहा था "मेरी समझ में नहीं आता कि आधुनिक कला में संशोधन को कोई महत्व है। मेरे विचार से कला के संदर्भ में 'संशोधन' कोई अर्थ नहीं रखता; अकल्पित लाभ यही कला में सब कुछ है।[82] जीवन का अर्थ प्राप्त करने के उद्देश्य से एकाग्रचित्त हुए मार्गस्थ का अनुसरण करने को कोई उत्सुक नहीं रहता; किंतु जिसको कुछ आकस्मिक लाभ होता है, अब वह किसी भी चीज का क्यों न हो, कम से कम लोकों में औत्सुक्य पैदा करता है यद्यपि वह शायद लोकों की प्रशंसा का पात्र नहीं होगा"। पिकासो के उपरिनिर्दिष्ट विधान से हम समझ सकते हैं कि वे इतने पराकाष्ठा के जड़वादी क्यों हैं। पिकासो ने अन्तिम विश्लेषण करके कला के सारतत्व को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है "अंत में सबका मूल प्रेम है; अब उसका साक्षात्कार आपको किसी भी रूप में हो। वास्तव में इन चित्रकारों की आंखें निकाल देनी चाहिये जैसे गोल्डफिंच पक्षी की निकाल देते थे जिससे कि वह अधिक मधुर स्वरों में गा सके"। पिकासो के इस विधान से संत कवि सूरदास की जीवन कहानी की याद आती है।

अभिव्यंजनावाद

कलाकार जब वाह्य रूप की उपेक्षा करके विषयवस्तु के प्रति निजी भावनाओ को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से कलानिर्मिति करता है तब ऐसी कला को अभिव्यंजनावादी कला कहते हैं। बीसवीं शताब्दी में अभिव्यंजनावादी कला का उत्थान जर्मनी में हुआ और उसकी तुलना गोथिककला की गूढ भावनात्मकता से की जा सकती है। अभिव्यंजनावादी कला में कलाकार मानवीय शरीर एवं वस्तु के नैसर्गिक रूप को अपनी भावनाओं के अनुकूल विकृत या ऐंठनदार रूप में बनाते हैं; रंगसंगति में आकर्षकता का विचार नहीं होता एवं प्रायः भावनाओं के पोषक गहरे एवं विरोधी रंगों का प्रयोग होता है; अंकनपद्धति के आधारकौशल, अध्ययन एवं नियंत्रण न होकर सहजप्रवृत्ति व भावनोद्वेग होते हैं। प्रभाववाद इसके बिलकुल विपरीत है और उसमें वास्तविकता के वाह्यसौंदर्य का विचार है। अभिव्यंजनावाद आत्मनिष्ठ कला है एवं उसका प्रेरणास्रोत है कलाकार का अहंकार।

अभिव्यंजनावादी कला में योरपीय मानव की बीसवीं शताब्दी के आरंभिक काल की कठिन व समस्यापूर्ण मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक स्थिति का तीव्र व परिणामकारक दर्शन है। फ्रान्स एवं जर्मनी दोनों देशों में औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप–एव युद्ध की आशंका से जनित–विकारग्रस्त मनोवृत्ति संस्कृति, कला व साहित्य पर आघात कर रही थी। फ्रान्स से भी जर्मनी के सामने अधिक समस्यायें थीं। फ्रेंच कलापरम्परा के बुद्धिवाद व तर्कनिष्ठा की परिणति घनवादी व उत्तरघनवादी शैलियों में हुई किंतु जर्मन कला भिन्न दिशा में अग्रसर हुई। तत्वज्ञान व गूढवाद के प्रति स्वाभाविक रुचि होने के कारण जर्मन विचारकों व कलाकारों में औद्योगिक विकास व यांत्रिक मानवीय जीवन के प्रति घृणा पैदा हुई और प्रतिक्रिया के रूप में आंतरिक गूढ एवं पारलौकिक अनुभूतियों की कल्पना द्वारा खोज शुरू हुई। फ्रेंच कलाकार जड़सौंदर्य की बौद्धिक विचिकित्सा में व्यस्त हुए किंतु जर्मन कलाकारों ने मानव के आंतरिक जीवन को प्रकाशित करने के उद्देश्य से, प्रतीकात्मक रंगों में, भावनाओं द्वारा विकृत आकारों की नयी चित्रसृष्टि का निर्माण किया व भ्रममूल वाह्यसौंदर्य का पर्दाफाश किया।

फ्रेंच फाववाद की आलंकारिक ऐंठन व घनवाद के आकारों के पृथक्करण से

जर्मन अभिव्यंजनावाद की आंतरिक व्याकुलता व गूढ, आत्मिक अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से भिन्न है यद्यपि अभिव्यंजनावाद के विकास में फाववाद व घनवाद बहुत प्रेरणादायक रहे। इस भिन्नता के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक कारण हैं जिन सबका विवरण यहां असंभव है किंतु उनमें सबसे प्रबल कारण था १९ वीं सदी के जर्मन समाज के न्यायनिष्ठुर शास्त्रपरिपालन व कठोर नियमन दमन[1] के विरोध में व्यक्तिस्वातंत्र्य का आंदोलन।

चित्रकार बॉकलिन, फायरबाख, क्लिगर व मारीस के पलायनवादी रोमांसवाद के प्रतिक्रियास्वरूप होडलर व मुंख ने साधारण मानव के हताश आंतरिक जीवन का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया, कात कोल्वित्स ने समाजवादी यथार्थवाद को अपनी कला का ध्येय बनाया व अंत में इसका विस्फोट अभिव्यंजनावादी कला के रूप में हुआ। यह एक ऐसी पीढ़ी थी जो भौतिकवाद के भविष्य के बारे में सशंक थी। फ्रेंच दार्शनिक आंरी बर्गसों की पुस्तक 'सृजनशील उत्क्रांति'[2] में प्रकाशित विचारों का जर्मन भाष्यंत विंडेलबांट व सिम्मेल ने प्रचार किया व उसका जर्मन कलाकारों पर अनोखा प्रभाव पड़ा। बर्गसों ने सहजज्ञान से सृजन करने पर बल दिया था—"जब हम बाह्य बंधनों से मुक्त होकर कार्य करते हैं तब सृजन होता है";[3] इस विचार ने कठोर शास्त्रीय बंधनों से मुक्ति पाने को कलाकारों को उद्यत किया। विलेल्म वोरिंगर ने 'सारतत्व व तादात्म्य'[4] पुस्तक में प्रकाशित निजी विचारों से उसका समर्थन किया।

दोमीय व रुओल को छोड़ फ्रेंच चित्रकार वास्तविकता के बाह्य सौंदर्य पर लुब्ध थे और उन्होंने उसके रंगबिरंगे, मनोहर रूप को चित्रित किया; इसके विपरीत जर्मन चित्रकारों ने संसार के आंतरिक सत्य की खोज करने के प्रयत्न किये और उनको वहां दुःख, निराशा व मृत्यु के अलावा आशा की कोई किरण नहीं दिखाई दी। शायद हो सकता है कि किन्हीं भौगोलिक कारणों से अभिव्यंजनावादी प्रवृत्ति योरप के उत्तरी प्रदेश में ही प्रबल रही हो जिसके कारण वहीं वान गो, मुंख, होडलर, एन्सोर, कान्डिन्स्की, कोकोश्का जैसे महान् चित्रकारों का जन्म हुआ। वान गो, होडलर, मुंख व एन्सोर अभिव्यंजनावाद के पूर्वकाल के कलाकार थे व उनकी कला ने पश्चात् आये हुए अभिव्यंजनावादी कलाकारों को पथप्रदर्शन का कार्य किया।

फर्डिनांड होडलर (१८५३–१९१८)

होडलर जन्म से स्विस थे व उनका जन्म बर्न में हुआ। उन्होंने जेनेवा की चित्रशाला में कला का आरम्भिक अध्ययन कर के यथार्थवादी शैली में परिचित दृश्यों को चित्रित किया। स्विस लोकों के परिश्रमी किंतु निराशामय, समर्पित जीवन के परिणामकारक ढंग से चित्रित करने के उद्देश्य से उन्होंने स्पष्ट, सामर्थ्यपूर्ण एवं कुछ आलंकारिक व समतल आकारों का प्रयोग किया। १८८९ की पैरिस की अन्तर्राष्ट्रीय

प्रदर्शनी में उनका चित्र 'कुश्तीगीरों का जुलूस'[8] पुरस्कृत हुआ व प्युवि द शावान ने उसकी बहुत प्रशंसा की। इस समय सन्देहग्रस्त धर्मनिष्ठा व रहस्यवाद से उनकी मानसिक अवस्था विकलित थी व उस पर निराशा की कालिमा छाई हुई थी जिसका दर्शन उनके चित्र 'रात' में होता है। १८९१ में वे कुछ समय तक पैरिस में रहे व वहां उन पर गोग्वें व नवप्रभाववादी चित्रकारों का काफी प्रभाव पड़ा। उसके पश्चात् वे प्रतीकात्मक आलंकारिक शैली के चित्र बनाने लगे और उनको विश्वास हुआ कि मानव को पुनश्च आध्यात्मिक आदर्शवाद पर सश्रद्ध होना आवश्यक है। उन्होंने यथार्थवाद को पूर्णरूप से छोड़ दिया और मानव की मानसिक अवस्था को विषय के रूप में चुना व उनकी भव्य मानवाकृतियों को निराला अर्थ प्राप्त हुआ। इस काल के चित्रों में से 'जीवन से संत्रस्त' (१८९१), 'वंचित आत्माएं' (१८९२) 'विल्यम टेल'[9] ये चित्र प्रसिद्ध हैं। आलंकारित्व व अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनकी कला जर्मन युगेंटस्टिल से मिलतीजुलती है। १८९७ की म्युनिक प्रदर्शनी में उनको सुवर्ण-पदक से पुरस्कृत किया गया। सौंदर्यात्मक गुणों का पर्याप्त विकास नहीं होने के कारण उनकी कला जर्मन कलाकारों को उतनी प्रेरणादायक नहीं रही जितनी कि मुंख की।

एडवार्ड मुंख (१८६३–१९४४)

१९वीं शताब्दी के अन्त में जब प्रतीकवाद से सभी सृजनक्षेत्र प्रभावित थे, एडवार्ड मुंख ने ऐसी कलानिर्मिति की जिसमें उस काल की प्रमुख विचारधाराओं का समुचित प्रतिबिंब है व जिसमें मानव की आत्मिक आवश्यकताओं व भौतिकवाद के बीच के संघर्ष का परिणामकारक दर्शन है। अतः मुंख की कला समकालीन मानवीय वैचारिक जीवन का समुचित प्रतिनिधित्व करती है। अभिव्यंजनावादी कलाकार की कला का जन्म उसके जीवन के प्रति आत्मीयता में होता है; उसकी कला उसके जीवन के प्रति धारणाओं का दर्पण होती है। अतः अभिव्यजनावादी कलाकार की कला का अध्ययन उसके जीवनचरित्र के अध्ययन किये बिना नहीं किया जा सकता एवं ऐसा अध्ययन अपर्याप्त होगा।

१८८९ में सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त करके मुंख पैरिस गये। पैरिस में वान गो की आत्मिक अभिव्यक्ति, गोग्वें का आलंकारिक प्रतीकवाद, सोरा की नियमबद्ध वैज्ञानिक अंकनपद्धति व तुलुज लोत्रेक का गतिपूर्ण रेखांकन वगैरह भिन्न तत्वों ने उनको आकृष्ट किया। १८९२ में हुई उनकी चित्रप्रदर्शनी से बर्लिन में हलचल मची और वहां के युवा कलाकारों को उससे नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। १८९३ में उनका बर्लिन में ही मैरग्राफे, बीरबौम, शीरबार्ट व होल्त्स से परिचय हो गया। १८९४ में मैरग्राफे ने 'एडवार्ड मुंख की कला' नाम की पुस्तक प्रकाशित की एवं बर्लिन के नव-कलाकार उनको कलाशास्त्रविद् के रूप में पहचानने लगे। १८९६ में पैरिस लौट कर

वे मालार्मे व उनकी 'मक्युँर द फ्रांस'[7] संस्था से सम्बन्धित प्रतीकवादी कलाकार-मंडल की चर्चाओं में सम्मिलित हुए। चित्रकारों से भी उनकी साहित्यिकों के साथ अधिक घनिष्ठ मित्रता थी। उन्होंने पैरिस की आनुँवो कलावीथिका में 'जीवन की चित्रावली'[8] नाम का विशाल प्रतीकात्मक भित्तिचित्र प्रदर्शित किया व उसी समय स्ट्रिंडवर्ग ने 'रिव्यु ब्लांश' पत्रिका में मुंख पर एक प्रशंसापूर्ण लेख प्रकाशित किया। फिर से बर्लिन जाकर उन्होंने रैनार्ट के निर्देशन में अभिनीत इब्सेन के नाटक 'भूत'[9] के लिऐ पर्दों का चित्रण किया। इस प्रकार वे बर्लिन, पैरिस व ओस्लो के बीच भ्रमण करते रहे।

एक जगह से दूसरी जगह इसी तरह भ्रमण करते रहने से उनके स्वभाव में अजीब द्वंद्वात्मकता पैदा हुई—एकांत-प्रियता व भ्रातृभाव, भौतिक जीवन का आकर्षण व स्वप्निलवृत्ति, ऐसे विरोधी तत्वों के बीच संघर्ष बढ़ कर उनकी आंतरिक शांति नष्ट होगयी व उनके चित्रों में भी यह संघर्ष प्रतीत होने लगा। १९वीं शताब्दी के अंत के करीब योरपीय मानव का आंतरिक जीवन इसी सन्देहावस्था में नष्टभ्रष्ट हो गया था जिसका परिणामकारक दर्शन मुंख के चित्रों में मिलता है। १९०८ में मज्जातंतु की दुर्बलता से पीड़ित होकर वे नार्वे जाकर रहे। अब उनके वैचारिक दृष्टिकोण की चंचलता नष्ट हो गयी व उनकी कला में एक नयी अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर हो गयी जो मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। उत्तरी योरप के लेखक इब्सेन, स्ट्रिंडवर्ग, कीर्कगार्ड, जाकोबसेन व ब्रान्डिस ने योरपीय समाज के विचारों को मनोवैज्ञानिकता की ओर मोड़ दिया व कला के क्षेत्र में यही कार्य मुंख ने किया। मुंख के चित्रों में अंतर्मन की आवाज है और उसमें बाह्य रूप का कोई महत्व नहीं है। उनके चित्र 'यौवनप्राप्ति'[10] में किशोरी के शरीरसौंदर्य का चित्रण नहीं है बल्कि उसकी आशंकित मानसिक अवस्था का चित्रण है। उनके चित्र 'आवाज'[11] को भी हम यथार्थवादी दृश्य-चित्र नहीं मान सकते; उसमें आतंकित निसर्ग का प्रतीकात्मक अभिव्यंजनावादी चित्रण है जिस सम्बन्ध में मुंख ने लिखा है "मैंने महसूस किया है कि निसर्ग से कोई महाकरुण आवाज निकल रही है"। उन्होंने जीवन को अंतःचक्षु से देखा व उनको बाह्य रूप के अन्तर्गत हृदयभेदक सत्य का दर्शन हुआ जो अन्तर्मन की सूक्ष्मग्राही कल्पना व सहजस्फूर्त विचारों से ही हो सकता है। मुंख में कवि व कलाकार दोनों की आत्माओं का सहअस्तित्व दिखाई देता है।

मुंख के चित्रों में निराशा व भयानकता के भाव छाने के कुछ सामाजिक कारण भी हैं। वह समय ऐसा था कि जीवन की पुरानी निष्ठाएं टूट रही थीं व सब को विवशता के अतिरिक्त मानवीय जीवन में कोई अर्थ दिखायी नहीं दे रहा था। इसी काल ने रहस्यवादी चित्रकार ओदिलों रेदों व जेम्स एन्सोर, कुबिन जैसे उपहासवादी चित्रकारों को जन्म दिया था। मुंख के बचपन में ही दुर्भाग्य व मृत्यु ने उनका पीछा किया। उम्र के पांचवें साल में उनकी माताजी की व कुछ समय बाद उनकी

प्रिय भगिनी की मृत्यु हुई। उनकी धार्मिक वृत्ति के पिता ने सैनिकचिकित्सक की नौकरी छोड़ कर गरीबों की सेवा व परमेश्वरभक्ति शुरू की। मुंख के कई चित्रों में मृत्यु के सामने मानव की विवशता का चित्रण है जिसके 'बीमार लड़की', 'मृत्यु का कमरा', 'मृत्युशय्या', 'मृत माता', 'मृत्यु'[12] आदि उदाहरण हैं। १८८९ में उन्होंने लिखा था "हमें पढ़ते हुए आदमियों व बुनाई करती हुई महिलाओं का चित्रण बंद करना चाहिये। हमको ऐसे जीवित आदमियों का चित्रण करना है जो सांस लेते हैं, भावुक हैं, दुःखी होते हैं, व प्रेम करते हैं। मैं ऐसे चित्रों की मालिका बनाऊंगा। इन चित्रों में पवित्रता का दर्शन होगा"। वे कहते थे "मुझे जो दिखायी दे रहा है उसको मैं चित्रित नहीं करता बल्कि मैं उसीको चित्रित करता हूं जो मैंने देखा है"। उनके चित्रों में भूत व भविष्य, वर्तमान में मिलकर चिरन्तन सत्य का दर्शन कराते हैं जिसको हम पवित्र सत्य[13] कह सकते हैं। एकाकी, भयग्रस्त व व्याकुल होकर मुंख ने निसर्ग व मानव को चित्रित किया जिसमें निसर्ग को आतंकित व मानव को मनोवैज्ञानिक अवस्था में विन्हल दिखाया है। अपने लक्ष्य की पूर्ति में मुंख ने रेखा व रंगों का संगीत के समान, प्रतीकात्मक प्रयोग किया जिसके उनके चित्र 'आवाज' व 'बसन्तऋतु की शाम'[14] परिणामकारक उदाहरण हैं। इन चित्रों में ऐंठनदार रेखाओं से मानवाकृतियों को चित्रित करके काले व विशुद्ध रंगों द्वारा भयानक वातावरण का परिणाम दिखाया है। चित्रों में मानवाकृतियां भूतों के समान भयप्रद दिखाई देती हैं। सेजान के आकार भौतिक जड़ सौंदर्य से युक्त हैं तो मुंख के आकार आत्मिक जगत् की प्रतिमाएं हैं। जिस संदर्भ में वर्नर हाफ्टमन ने लिखा है "सेजान के लिये बाह्यरूप, भौतिक सृष्टि की आत्मा का प्रतिरूप था जबकि मुंख के लिए बाह्यरूप, आत्मिक सृष्टि का मूर्त प्रतिरूप था।........प्रत्यक्ष रूप से विरोधी दिखाई देनेवाले मार्गों से हम उसी दुनियां में प्रवेश पाते हैं—जो है मानवीय अभिव्यक्ति की दुनिया"।

जेम्स एन्सोर (१८६०–१९४९)

जब कलाकार की आत्मिक मूल्यों पर श्रद्धा नष्ट हो जाती है या उसको जबरदस्त धक्का पहुंचता हैं तो उसकी कला पर उसका क्या परिणाम होता है इसका उत्तरी योरप की १९वीं शताब्दी के अंतिम काल की कला समुचित उदाहरण है। ऐसी परिस्थिति में वान गो को आत्मसमर्पण करना पड़ा व मुंख मानसिक संतुलन खो बैठे। जेम्स एन्सोर भी एक ऐसे कलाकार थे जिन्होंने इन दोनों के समान कुण्ठित मानसिक अवस्था में कलानिर्मिति की। इस अवस्था में कलाकार को जीवन अर्थहीन प्रतीत होता है, उसकी बाह्य जगत् की अनुभूति विकारग्रस्त हो जाती है व उसको आत्मिक अनुभूति सत्य व बाह्य जगत् असत्य प्रतीत होते हैं।

जेम्स एन्सोर का जन्म १८६० में ओस्टेंड में हुआ। आयु के १७वें साल में उन्होंने ब्रूसेल्स की चित्रशाला में अध्ययन आरम्भ किया किंतु दो साल बाद वे ओस्टेंड

लौटे व उसके पश्चात् अपनी आयु की लम्बी अवधि में और कहीं नहीं गये । आयु के बीसवें साल तक उनकी कला पूर्ण विकसित हो चुकी थी थी एवं उसके बाद छत के कमरे में—जो उनका कार्यकक्ष था—बैठकर उन्होंने व्यक्तिचित्र, वस्तुचित्र, आसपास के दृश्यों के चित्र व कल्पनाचित्र बनाये । उनकी रंगसंगति बहुत ही कोमल व निर्मल है किंतु जब दर्शक विषयवस्तु के बारे में विचार करने लगता है तब वह उसको अमिट दुःख से व्यथित दिखायी देती है । उनकी मानवाकृतियों के चेहरों पर निराशा व समर्पण के भाव है जो उनके चित्र 'सांवली महिला'[15] में स्पष्टरूप से दिखाई दे रहे हैं। १८८३ में उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति में परिवर्तन आ गया । उन्होंने 'क्रुद्ध नकाब'[16] चित्रित किया जिसमें आदमियों के चेहरों को नकाबों में रूपायित किया है । १८८५ के बाद भूतप्रेत, कंकाल या नकाबों को आदमियों के स्थान पर या उनके साथ चित्रित करके मानव के अहंकार का क्रूर उपहास किया है । एक चित्र में चित्रकार के स्थान पर नरकंकाल को चित्रण करते हुए दिखाया है। एन्सोर का कलात्मक व्यक्तित्व निश्चित रूप से विकारग्रस्त हुआ था और समकालीन योरपीय मानव की भी ऐसी संकटमय मनःस्थिति थी । 'राक्षसों से संत्रस्त चित्रकार'[17] शीर्षक के रेखाचित्र में एन्सोर ने स्वयं को बिलकुल ही छोटे आकार में चित्रित किया है व आसपास की विचित्र अतिमानुष आकृतियां उनको डराते हुए दिखायी हैं । एन्सोर के सभी चित्रों से ऐसे प्रतीत होता है कि वे किसी मानसिक संकट के शिकार थे मानो जैसे कि वे समस्त संसार को सशंक दृष्टि से देखते थे जैसे कि उनसे कोई सत्य छिपाया जा रहा था । इस प्रकार के आंतरिक संघर्ष से वे मानवजाति से घृणा करने लगे व उसके प्रति उन्होंने विरोधी रुख अपनाया । एन्सोर की कला के मनोविज्ञान में संकटग्रस्त मनोविकृति के चिन्ह देखने को मिलते हैं; उनकी कलाकृतियां, भूतों मतिभ्रमों व काल्पनिक अतिमानवीय शक्तियों से भरी हुई हैं व उनके पीछे कोई गूढ अर्थ है । १८८५ के करीब एन्सोर के चित्रों की रंगसंगति अधिक चमकीली हो गयी; यह प्रभाववाद के अध्ययन का परिणाम था किंतु एन्सोर ने प्रकाश का प्रयोग अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में किया । उन्होंने ईसा के जीवन की घटनाओं का भी भ्रममूल किंतु आत्मीयतापूर्ण चित्रण किया जिसके उनके चित्र 'चरवाहों की भक्तिपूजा', 'ईसा का ब्रुसेल्स में प्रवेश', 'ईसा का आत्मसमर्पण' 'जेरुशलम में प्रवेश- व 'उत्थान'[18] प्रसिद्ध उदाहरण हैं । एन्सोर की आकृतियों के अनोखे रूपों से भी उनके आंतरिक तनाव–वास्तवसृष्टि व मतिभ्रम के बीच के—का प्रमाण मिलता है । संक्षेप में, एन्सोर की कला में चित्रकार की भयग्रस्त, भ्रमजनित आंतरिक दुनिया का चित्रण है जो दृश्य वास्तविकता से पूर्ण भिन्न है ।

अभिव्यंजनावाद के पूर्वचिन्ह फाववाद के आवेशपूर्ण रेखांकन, विशुद्ध रंगों का काल्पनिक प्रयोग, आकारों का सरलीकरण तथा वान गो के अभिव्यक्तिपूर्ण चित्रण में दृष्टिगोचर हुए । अभिव्यंजनावादी कलाकारों ने विशुद्ध रंगों का प्रयोग फाववाद से सीखा व आदिम आकारों का प्रयोग घनवाद व नीग्रो कला से सीखा; अतः फ्रेंच

फाववाद व जर्मन अभिव्यंजनावाद के दृश्य रूपों में घनिष्ठ समानता है। कार्ल शिफलर ने शास्त्रशुद्ध कला से बरोक कला की भिन्नता को स्पष्ट करते हुए लिखा "जब हिंस्र पक्षी आसमान में स्वच्छंद उड़ान भरता है तब उसकी गतिविधि शास्त्रशुद्ध होती है; जब वह शिकार पर कूद पड़ा है या घायल हो कर पंख फड़फड़ाता है तब उसकी क्रिया बरोक या रोमांचक होती है" बरोक को कलाशैली की अपेक्षा एक मानसिक प्रवृत्ति समझना अधिक योग्य है। शास्त्रशुद्ध कला में संतुलन व सुसंगति के तत्व मुख्य होते हैं जबकि बरोक में भावनाओं की अभिव्यक्ति के सामने रचना, संयोजन वगैरह शास्त्रीय नियमों की उपेक्षा की जाती है। स्ट्रिग्रोस्की के अनुसार बरोक कला में गोथिक दृष्टिकोण का पुनरुत्थान है। बरोक कला गोथिक कला के पदचिन्हों पर चलती है तो अभिव्यंजनावाद बरोक कला का अनुगामी है।

आदिम कला की भांति अभिव्यंजनावाद का जन्म परोक्ष या अपरोक्ष रूप से भय व दुःख में हुआ था। अभिव्यंजनावादी कलाकारों को पुराने कलाकारों में से जर्मन कलाकार ड्यूरर, क्रानाख, ग्र्यूनेवाल्ड फ्लेमिश कलाकार बॉश, ब्यूगेल, इटालियन कलाकार सिन्योरेली, ट्युरा क्रिवेली, स्पेनिश कलाकार गोया, एल्ग्रेको आदर्श थे। आधुनिक कलाकारों में से दोमीय की कला में अभिव्यंजनावाद के चिह्न सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुए। वान गो ने अपने भाई थिओ को पत्र में लिखा था "मैं लाल व पीले रंगों से मानव के दुःख को साकार करना चाहता हूं" व इन शब्दों से अभिव्यंजनावाद की सर्वसामान्य परिभाषा उचित रूप में स्पष्ट की। जर्मनी, फ्लेन्डर्स व बेल्जियम के बाहर घनवाद व रचनावाद के प्रभाव से, अभिव्यंजनावाद का प्रसार नहीं हो पाया, किंतु जर्मन लोकों की परंपरागत प्रवृत्ति व संस्कृति अनुकूल होने के कारण वहां अभिव्यंजनावाद काफी प्रभावशाली रहा।

अठारहवीं व उन्नीसवीं शताब्दियों में फ्रेंच कला का जर्मन कला पर बड़ा प्रभाव था और जर्मन कलाकारों में फ्रेंच कला को आदर्श मान कर उसका अनुसरण करने की सरासर प्रवृत्ति थी। फ्रेंच कलाक्षेत्र में जो नये परिवर्तन होते उनका कुछ समय में ही जर्मन कला में अनुसरण होता। १८ वीं शताब्दी में विंकेलमान के विचारों से प्रेरित होकर जर्मनी में शास्त्रीयतावादी शैली का पुनरुत्थान हुआ और वह फ्रेंच नवशास्त्रीयतावादी शैली के काफी निकट आ गयी। १६ वीं शताब्दी के जर्मन चित्रकार रिश्टर, श्विड, बॉकलिन, विलगर, फायरबाख व मारीस ने फ्रेंच प्रभाववाद से मुक्त होकर अपनी सृजनात्मक अनुभूतियों की कल्पना से चित्रित करना आरम्भ किया व इन चित्रकारों का रोमांसवादी दृष्टिकोण जर्मन अभिव्यंजनावाद के विकास में बहुत सहायक रहा। कुर्बे के प्रभाव से जर्मनी में मेंत्सेल व लैब्ल ने वस्तुनिष्ठ नैसर्गिकतावादी चित्रण आरम्भ किया व फ्रेंच प्रभाववादियों का अनुसरण करके लीबरमन, स्लेवोट व कोरिंट प्रभाववादी शैली के चित्र बनाने लगे। फ्रेंच कला का अनुसरण होते हुए भी इन चित्रकारों—विशेषतः स्लेवोट व कोरिंट—की कृतियों में

भावनापूर्ण आत्मनिष्ठा प्रवल थी। समाजवादी सहानुभूति के चित्रकार कात कोल्विट्स व विलेल्म युइद के यथार्थवादी चित्रों में भी अभिव्यंजनावादी झलक स्पष्ट है यद्यपि उन्होंने सामाजिक दुःस्थिति पर प्रकाश डालकर उसकी निंदा करने के साधन के रूप में अपनी कला को कार्यान्वित किया था।

फ्रान्स में आर्नु वो—या जर्मनी में युगेंटस्टिल—शैली जब प्रचलित हुई तब अभिव्यंजनावाद के बीजारोपण के लिये अनुकूल वातावरण मिला। आर्नु वो एक अंतर्राष्ट्रीय कलाशैली थी व उसका प्रसार म्युनिक, पैरिस, वार्सिलोना वगैरह योरप के सभी प्रमुख शहरों में होकर वास्तुकला, विज्ञापनकला, हस्तकला, काष्ठकला, फर्नीचर आदि निर्माणकलाओं पर उसका प्रभाव पड़ा। इस शैली का उद्गम इंग्लिश प्रिराफेलाइट आंदोलन, बिअर्डस्ले के रेखाचित्र व जापानी चित्रकार होकुसाई व हिरोशिगे की कलाशैलियों में हुआ था और उसका नावि चित्रकारों व तुलुज लोत्रेक पर बड़ा प्रभाव पड़ा था।

आर्नु वो शैली के अतिरिक्त डच चित्रकार वान गो, फ्रेंच चित्रकार गोग्वँ, बेल्जियन चित्रकार एन्सोर, नार्वेयन चित्रकार मुंख व स्विस चित्रकार होडलर की कलाओं ने अभिव्यंजनावाद को प्रेरणा देकर सामर्थ्य प्रदान किया। जेम्स एन्सोर का चित्र 'ईसा का ब्रुसेल्स में प्रवेश'[19] स्पष्ट रूप से अभिव्यंजनावादी है किंतु जर्मन अभिव्यंजनावादी कलाकारों ने उसको बहुत समय तक देखा भी नहीं था। नार्वेयन चित्रकार मुंख काफी समय तक जर्मनी में रहे व उनकी गूढ वातावरण से परिवेष्टित व अंतर्मन की संवेदनाओं से उत्स्फूर्त कृतियों ने जर्मन चित्रकारों को नया दृष्टिकोण प्रदान किया।

मातिस व किर्शनर, ब्राक व फ्रांत्स मार्क, लेजे व श्लेमर की कलाकृतियों की तुलना करने से स्पष्ट होता है कि फ्रेंच कला में आलंकारित्व, रचना, सुंदर रंगसंगति आदि विशुद्ध कलात्मक गुणों के विकास पर ध्यान दिया जाता था जबकि जर्मन कला में मनोवैज्ञानिक अतृप्ति, काव्य, रोमांचकता, रहस्य वगैरह मानवीय तत्वों की, आत्मिक अनुभूति के विविध पहलुओं द्वारा, अभिव्यक्ति की उत्कंठा रहती थी। वर्नर हापटमन ने इस मौलिक भिन्नता को निम्न शब्दों में, संक्षेप में स्पष्ट किया है "हम फ्रेंच व जर्मन कलात्मक दर्शन की भिन्नता को दो निम्न शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं: 'आलंकारिक' के विरोध में 'कथनात्मक'[20]—यदि हम इन शब्दों का व्यापक अर्थ में प्रयोग करते हैं।

आधुनिक कला में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जो विचारों का आदान-प्रदान होता आ रहा है उससे 'विविधता में एकता' का हमको प्रमाण मिलता है व कवि ज्यां जोरे ने मानवता के बारे में जो सदिच्छा व्यक्त की उसकी सफलता का कम से कम आधुनिक कला एक संतोषप्रद उदाहरण है; उन्होंने लिखा था "संसार के सभी देशों के लोक गुलदस्ते के फूलों के समान रंग व सुगंध में भिन्न किंतु गुलदस्ते के समूचे सौंदर्य

के अविभाज्य अंग होने चाहिये"।

जर्मन अभिव्यंजनावादी कला का विकासक्रम आधुनिक फ्रेंच कला के विकासक्रम से अधिक जटिल है व उसमें सुसूत्रता नहीं है। आधुनिक फ्रेंच कला का आरंभ देलाक्रा व कुर्बे से हुआ; उसको माने व प्रभाववादी चित्रकारों ने विशुद्ध अंकनपद्धति द्वारा सामर्थ्यवान् बनाया; सोरा, सेजान, वान गो व गोग्वँ ने नये क्रांतिकारी विचारों को प्रदान किया व वह फाववाद, घनवाद आदि शाखाओं, उपशाखाओं में विकसित हुई। इसमें तर्कशुद्ध क्रम है, एक के पीछे दूसरा चरण अपरिहार्य रूप से अपनाया गया है। जर्मन कला के विकास में यह सरल क्रमबद्धता नहीं है। हांन्स फॉन मारीस ने, सेजान के समान इटालियन पुनर्जागरणकालीन शास्त्रीय कलाकारों को आदर्श मान कर, निसर्ग का प्रत्यक्ष निरीक्षण करके, कलानिर्मिति की व कला में में कल्पना व प्रत्यक्ष निरीक्षण के सहयोग की अनिवार्यता पर बल दिया; इसके विपरीत बॉकलिन की कला रहस्यपूर्ण रोमांचकारी चित्रण से ओतप्रोत है। बॉकलिन ने रंगों का अभिव्यक्ति के अनुकूल प्रतीकात्मक प्रयोग करके प्रकृति की गूढ शक्तियों का काव्यपूर्ण चित्रण किया; क्लिगर व फ्रांत्स फॉन स्टुक ने उनका अनुसरण किया। फॉन स्टुक की शैली पर युगेंटस्टिल का भी प्रभाव था व उनकी कला ने म्युनिक जेचेसिश्रोन की प्रस्थापना में कलाकारों को प्रोत्साहन किया। १८९५ से फॉन स्टुक म्युनिक अकादमी में अध्यापक थे व क्ली व कान्डिन्स्की उनके शिष्य थे। रोमांसवादी कला के अतिरिक्त जर्मनी में विलेल्म लैब्ल जैसे नैसर्गिकतावादी चित्रकार भी थे व उनकी नैसर्गिकवावादी कला की परिणति जर्मन प्रभाववाद के जन्म में हुई जिसके प्रमुख चित्रकार थे माक्स लीबरमन, स्लेवोट व कोरिंट। जर्मन प्रभाववाद के प्रमुख प्रेरणास्रोत थे योंकिड व डच बाह्य स्थान चित्रण[21] शैली यद्यपि उसके विकास में फ्रेंच प्रभाववाद काफी सहायक रहा।

१८९८ में युगेंट नाम की पत्रिका का म्युनिक में प्रकाशन शुरू हुआ व उसने युगेंटस्टिल शैली की मुखपत्रिका का कार्य किया। यह शैली फ्रेंच आर्नुवो शैली के समरूप थी और निर्माणकलाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन करना उसका ध्येय था। इसके अतिरिक्त नवप्रभाववाद, तुलुज लोत्रेक व फ्रेंच नाबि कलाकारों से जर्मन कला को काफी प्रेरणा मिली। नार्वेयन चित्रकार मुंख, स्विस चित्रकार होडलर व बेल्जियन चित्रकार एन्सोर जर्मन अभिव्यंजनावादी कला के निकटवर्ती प्रेरणास्रोत थे।

१९वीं शताब्दी के जर्मन रोमांसवाद का दर्शन मुख्यतः काव्यमय व कल्पनारम्य वातावरण से परिवेष्टित प्रकृति-चित्रों में मिलता है। १८९० में उत्तरी जर्मनी में वोर्स्पेड व दक्षिणी जर्मनी में डाखौ नाम के गांवों में चित्रकारों के मंडलों ने रोमांसवादी प्रकृतिचित्रण शुरू किया जो जर्मन अभिव्यंजनावाद को जन्म देने में काफी सहायक रहा।

जर्मन व फ्रेंच चित्रकारों के दृष्टिकोणों में उपरिनिर्दिष्ट भेद विद्यमान होते

हुए फ्रेंच फाववाद से जर्मन अभिव्यंजनावाद ने काफी प्रेरणा पायी व अंकनपद्धति के विशुद्धीकरण में उसको फाववाद से सहायता मिली; विशुद्ध रंगों के प्रयोग, आकारों के सरलीकरण व माध्यम के स्वाभाविक गुणों के विकास पर दोनों में समान रूप से बल दिया गया था। जर्मन अभिव्यंजनावादी ब्रूके चित्रकार किर्शनर, हेकेल व श्मिट-रोटलुफ की तुलना फाव चित्रकार मातिस, व्लामिंक व वान डोंजेन से करने पर अंकनपद्धति की ये समानताएं स्पष्ट हो जाती हैं। फाव चित्रकारों के समान जर्मन अभिव्यंजनावादी चित्रकारों को वान गो व गोग्वँ से नया विशुद्ध कलात्मक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ था। जर्मन चित्रकार पैरिस जाकर वहां के चित्रकारों की कला का अध्ययन करते व फ्रेंच चित्रकारों—वान गो, गोग्वँ, सेजान, सोरा, मातिस, वान डोन्जेन आदि-की कलाकृतियों की जर्मनी में प्रदर्शनियां होतीं। इस प्रकार के आदान-प्रदान का जर्मन अभिव्यंजनावाद पर बहुत प्रभाव पड़ा व वह विकास के पथ पर अग्रसर हुआ।

जर्मन अभिव्यंजनावादी आंदोलन के मुख्य रूप से ब्रूके चित्रकार-मंडल, ब्लौ राइटेर मंडल एवं चित्रकार कोकोश्का, बेकमन, पौला मोडरसोन बेकर, होफर रोल्फ्स, मैटनर ये आधारस्तंभ थे। अभिव्यंजनावाद के प्रात्यक्षिक प्रयोग में नवयथार्थवाद[२२] का जन्म हुआ।

१९०५ में हेकेल, ब्लेयल, किर्शनर व श्मिट-रोटलुफ ने मिल कर ड्रेस्डेन में ब्रूके चित्रकार मण्डल की प्रस्थापना की। ये चित्रकार किर्शनर व हेकेल के कार्यकक्षों में मिलकर काम करते। गोग्वँ के समान वे चित्रण के अतिरिक्त काष्ठखुदाई करते व मूर्तियां भी बनाते। वान गो व गोग्वँ के समान वे 'कलाकार भ्रातृमंडल' कल्पना से प्रेरित थे। १९०६ में माक्स पेश्टाइन, एमिल नोल्ड, क्युनो आमिएट व गालेन-कालेला ब्रूके मंडल में शामिल हुए। १८ महिने बाद नोल्ड ने मंडल छोड़ दिया व कुछ समय बाद पेश्टाइन ने बर्लिन जाकर स्वतन्त्र 'नाय जेचेसिओन'[२३] मंडल प्रस्थापित किया। १९१३ तक ब्रूके मण्डल ने अपने सदस्यों की स्वतन्त्र रूप से एवं अन्य चित्रकारों के साथ कुछ प्रदर्शनियां कीं १९१३ में म्युनिक में आयोजित प्रदर्शनी के बाद आंतरिक झगड़ों के कारण उसका विसर्जन हुआ।

'ब्लौ राइटेर' मंडल का जन्म १९१२ में हुआ व १९१४ का विश्वयुद्ध शुरू होते ही वह समाप्त हो गया। १८९६ में रशिया से कान्डिन्स्की, यालेन्स्की व मारिआने फॉन वेरेफ्किन कला के अध्ययन के लिए म्युनिक आये। कान्डिन्स्की ने बर्लिन में 'नाय जेचेसिओन' मंडल के साथ व पैरिस में 'सोसिएते नाशनाल द बोजार' व 'सलों दातोम' में अपने चित्रों को प्रदर्शित किया। कान्डिन्स्की के आगमन से म्युनिक के कलाक्षेत्र में काफी चेतना आ गयी। १९१० में एक नये मंडल[२४] की प्रस्थापना करके वेरेफ्किन, म्युंटर, एर्बस्लो व कानोल्ट के साथ उन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनी की। उसके बाद फ्रान्त्स मार्क, कार्ल होफर व लफोकोनिए उनके मण्डल में शामिल हुए व दूसरी प्रदर्शनी में फाव चित्रकारों, घनवादी चित्रकारों व ऑग्युस्ट माक की कृतियों को भी प्रद-

शित किया गया। १६१२ में 'ब्लौ राइटेर' नाम से यह मण्डल प्रसिद्ध हो गया। 'ब्लौ राइटेर'[25] कान्डिन्स्की के एक चित्र का शीर्षक था व उसी नाम से उस मंडल ने एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया था। मंडल की टानौसेर कलावीथिका में हुई प्रदर्शनी में कान्डिन्स्की, काम्पेन्डोक, शोनवर्ग, मार्क, माक, दुनिय रूसो व रॉवर देलोने के चित्र दिखाये गये। उनकी खुदाईकार्य की प्रदर्शनी में क्ली के चित्र रखे गये थे। इसके अतिरिक्त 'ब्लौ राइटेर' मण्डल ने ड्रेस्डेन के ब्रूके कलाकार, वर्लिन के 'नाय जेचेसिग्रोन' कलाकार व पैरिस के कलाकार मालेविच, ब्राक, पिकासो, आर्प व ला फ्रेस्नाय को निमन्त्रित करके एक विशाल प्रदर्शनी का आयोजन किया। कान्डिन्स्की ने 'कला में आत्मिकता'[26] नाम से निवन्ध प्रकाशित करके अपने मंडल के कलात्मक ध्येय का स्पष्टीकरण किया।

'अभिव्यंजनावाद'[27] शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में कुछ निश्चित कहना कठिन है। हर्वार्त वाल्डेन के प्रयत्नों से वर्लिन में आयोजित प्रदर्शनी में 'अभिव्यंजनावादी' शब्द का विशेष रूप से प्रयोग किया गया व जिन कलाकृतियों में आदर्शवाद, यथार्थवाद व प्रभाववाद के अतिरिक्त क्रांतिकारी तत्व दृष्टिगोचर हो रहे थे उन सबको 'अभिव्यंजनावादी' नाम प्रदान किया गया। वुकशाइम के अनुसार 'अभिव्यंजनावादी' शब्द का प्रयोग प्रथम पौल कासिरेर ने किया। जब उनको वर्लिन में आयोजित 'नाय जेचेसिग्रोन' की प्रदर्शनी में पेश्टाइन के चित्र के संदर्भ में पूछा गया "क्या यह चित्र प्रभाववादी है?" तब उन्होंने जवाब दिया "नहीं, यह' अभिव्यंजनावादी' है" फाव चित्रकारों के समान अभिव्यंजनावादी चित्रकारों का जर्मनी में काफी विरोध हुआ। समीक्षकों ने घोषित किया कि ये चित्रकार फ्रेंच चित्रकारों का अंधानुकरण कर रहे हैं व इनमें देशभक्ति की भावना नहीं है। वास्तव में जर्मन अभिव्यंजनावाद व फ्रेंच फाववाद में योरप के भिन्न देशों के कलाकारों के दृष्टिकोणों की एकता पर वल दिया जा रहा था और उसमें ध्येय या विचारों की संकुचितता का या अनुसरण का नाम ही नहीं था। जर्मनी में हो रही अभिव्यंजनावादी क्रांति में हेकेल की कला का रूप फाव था, फैनिंगर की कला पर घनवाद का प्रभाव था, कान्डिन्स्की की कला वस्तुनिरपेक्षता की ओर अग्रसर थी, क्ली की कला में वैयक्तिक आंतरिक अनुभूति का दर्शन था व नोल्ड की कला में भावनोत्कट, उन्मुक्त रंगांकन था। ब्रूके कलाकारों से ब्लो राइटेर कलाकार अधिक क्रांतिकारी विचार के थे। पेश्टाइन, कार्ल होफर व पौला मोडरसोन वेकर की कला में कुछ वौद्धिक नियमन व रचनाकौशल के तत्व थे। किर्शनर व शिमट-रोटलुफ़ पर घनवाद का सीमित प्रभाव था। फ्रांत्स मार्क, माक व काम्पेन्डोक ने घनवाद से आगे निकलकर कृत्रिम प्रकाश, काल्पनिक अवकाश व विचित्र आकारों की एक निराली वैयक्तिक दुनिया का दर्शन कराया; फ्रांतसमार्क की चित्रसृष्टि पूर्ण रूप से काल्पनिक है तो माक की चित्रसृष्टि वास्तविकता से कुछ सादृश्य रखे हुए है। पैरिस के चित्रकारों में से जैसे पिकासो स्पेन से, मोदिल्यानी इटाली से, शागाल व सुटिन रशिया से आये

हुए थे उसी प्रकार अभिव्यंजनावादी कलाकारों में विदेशों से आये हुए कलाकार थे। जर्मन अभिव्यंजनावादी कलाकारों का पैरिस के कलाकारों से विचारों का आदानप्रदान होता व एकदूसरे की कलाकृतियों का अध्ययन करके वे उससे लाभ उठाते। सुरील-वाद के मूल रंगों के सिद्धांतों से वे प्रभावित थे चित्रकला की संगीत व काव्य से घनिष्ठ समानता के बारे में उनको विश्वास था; वे दोनों में रुचि रखते व उनका अध्ययन करते।

अंकनपद्धति की समानता के बावजूद फ्रेंच फाववाद व जर्मन अभिव्यंजनावाद में दृष्टिकोणों का मौलिक भेद था; फाववाद में दृश्य रूप में बल था जबकि अभि-व्यंजनावाद में कलाकार की विषयवस्तु के प्रति भावनाओं को महत्व था। किंतु उन्मुक्त अंकनपद्धति व भावनोत्कटता के कारण मनोवैज्ञानिक सामर्थ्य व चित्रकार के व्यक्तित्व दर्शन के विचारों से दोनों समान रूप से प्रभावी हैं। दोनों ने परम्परागत नियमों को ठुकरा कर सहजप्रवृत्ति द्वारा भावनापूर्ण अंकन व चित्रकार के सृजन स्वातंत्र्य पर बल दिया। व्लामिक ने कहा "सहजप्रवृत्ति कला का आधार है" व नोल्ड ने घोषित किया "सहजप्रवृत्ति ज्ञान से दस गुना महत्व रखती है"। सहजप्रवृत्ति से दृश्य ज्ञान को नया अर्थ प्राप्त होता है। वर्नर हाप्टमन ने लिखा है "अब मानव दृश्य ज्ञान को विशेष महत्व नहीं देता; उसके मन:पटल पर जो प्रतिमाएं उभरती हैं उनको महत्व है। निसर्ग एक बहाना मात्र है व अब यह विचार जोर पकड़ रहा है कि निसर्ग को कला से हटाया जा सकता है"। कान्डिन्स्की के विचारों के अनुसार कलाकार को एक ही नियम का बन्धन होता है व वह है 'आंतरिक आवश्यकता'[३४]।

उपरिनिर्दिष्ट विशेषताओं का विचार करने से स्पष्ट है कि असल में 'अभिव्यंजनावाद' केवल कलात्मक आंदोलन नहीं था न उसके पीछे किसी विशिष्ट ध्येय से प्रेरित कलाकारों के संगठन के सामूहिक प्रयत्न थे बल्कि यह एक रोमांचकारी प्रवृत्ति था जिसका उद्‌गम कलाकार के अदमनीय व्यक्तित्व व अहंकार होते हैं। अभिव्यंजनावादी कला निर्मिति का मुख्य उद्देश्य था कलाकार के अहंकार की पूर्ति व उसके आत्मिक खोजकार्य में साधन के रूप में सहकार्य। अभिव्यंजना-वादी प्रवृत्ति का स्वाभाविक परिणाम तीव्र आतंरिक अनुभूति में होने के कारण अधिकतर अभिव्यंजनावादी कलाकार मज्जातंतु के दौर्बल्य से पीड़ित थे। वान गो, किर्शनर, मुंख, पार्स व सुटिन विचित्र मानसिक आशंकाओं से आजीवन व्यथित रहे; उनमें से चारों ने आत्महत्या के प्रयत्न किये व तीन उसमें सफल हुए। यह प्रवृत्ति अधिकतर योरप के उत्तरी भाग में प्रबल थी। इन चित्रकारों ने सामाजिक या नैतिक दृष्टिकोण से जीवन का विचार नहीं किया बल्कि उनकी अभिव्यक्ति सम्बन्धी सम-स्यायें पूर्णतया वैयक्तिक व भयग्रस्त थीं। अहंभाव से पीड़ित होने से इन चित्रकारों को आत्मचित्र बनाने का बड़ा शौक था। वान गो, मुंख, किर्शनर, कोकोश्का वगैरह चित्रकारों के कई आत्मचित्र हैं जिनमें आंतरिक खलबली का तीव्र दर्शन है। ये चित्र-

कार वैयक्तिक काल्पनिक सृष्टि में मग्न रहते व उनको सर्वत्र दुःख, विपन्नावस्था, अन्याय व मृत्यु का साम्राज्य फैला हुआ दिखाई देता। अतः उनकी मनोवृत्ति में आशंका, विप्लव व निराशा को स्थान मिलकर वे बाह्य सृष्टि को भी उसी दृष्टिकोण से देखते व उनकी कलाकृतियां घृणा, उपहास व निराशा के भावों से ग्रस्त होती। वे मानवाकृतियों व आसपास के वातावरण को ऐंठनदार विकृत रूप देकर चित्रित करते जिससे उनकी अभिव्यक्ति परिणामकारक होती। अब कुछ प्रमुख अभिव्यंजनावादी कलाकारों का वैयक्तिक रूप से विचार करना होगा।

पौला मोडर सोन बेकर (१८७६–१९०७)

पौला मोडरसोन ने कला की आरम्भिक शिक्षा प्रथम बर्लिन व उसके पश्चात वोर्स्पेड में माकेनसेन से प्राप्त की। वोर्स्पेड कलाकारों की कला के समान उनकी कला काव्यमय है। मोडरसोन का रिल्क व कार्ल हाफ्टमन जैसे साहित्यिकों से परिचय था, समकालीन जर्मन आध्यात्मिक विचारों से वे प्रभावित थीं व उसका उनकी कला पर स्पष्ट प्रभाव था। उनकी कला में आंतरिक विचार व आत्मिकता हैं किंतु निसर्ग के चिन्मय जीवन के प्रति वे अधिक संवेदनाशील थीं। असाधारण भावुकता के कारण उनके चित्र अभिव्यंजनात्मक बने। अपनी दैनंदिनी में उन्होंने लिखा है "मेरे अंतर्मन में भावनाओं का जो मधुर स्पंदन चलता है उसको यदि मैं साकार कर सकूं तो मुझे कितनी प्रसन्नता होगी"। उनकी निजी कला का यही ध्येय था जिसके कारण उनकी कलाकृतियां सादगी लिये हुए किंतु महान् बन गयी हैं। महान् आदर्शों के सैद्धांतिक प्रदर्शन से वे अलिप्त रहीं। सुलभ अंकनपद्धति, सरलीकृत आकार व सौम्य मनोहर रंगसंगति उनकी कला की विशेषताएं हैं; कलात्मक प्रदर्शन का न उसमें प्रयत्न है न उसमें कोई वैचारिक सन्देश है। उन्होंने निसर्ग को अपनी भावनाओं के दर्पण में प्रतिमित किया। कुछ समय बाद उन्होंने निसर्ग-चित्रण छोड़ दिया व १९०२ में उन्होंने अपनी दैनन्दिनी में लिखा "चित्रकला में नैसर्ग को कोई विशेष महत्व नहीं है। निसर्ग के सान्निध्य में आप जो अनुभव करते हैं उसको सत्य अर्थ में चित्रित करना चाहिये। वैयक्तिक अनुभूति को प्रमुख स्थान है व उसको रंगों व आकारों में सफलता से अंकित करने के बाद मैं चित्र में ऐसे तत्वों का अंतर्भाव करती हूं जिससे चित्र अधिक नैसर्गिक दिखाई दे"। उनके इस ध्येय की पूर्ति में वोर्स्पेड का वातावरण सहायक होने की कोई संभावना नहीं थी; अतः १९०० में पैरिस जाकर वे कुछ समय तक वहां रहीं। वहां अेतां के प्रकृति-चित्रकार कोते व सिमों एवं कृषिजीवन के चित्रकार मिले के चित्र उनको बहुत पसंद आये। १९०६ में वे जब फिर पैरिस आयीं तब उनको गोग्वें व सेजान के कलासंबंधी विचारों की सयुक्तिकता का एवं उनकी कलाकृतियों की महानता का ज्ञान हुआ और उनकी निजी कला में अधिक स्वतंत्रता आ गयी किंतु सौंदर्यात्मक गुणों का विकास करने के पीछे उन्होने मानवता का त्याग नहीं किया।

अपनी छोटी सी आयु में उन्होंने जो कुछ चित्र पूर्ण किये उनसे उनके मौलिक कलात्मक व्यक्तित्व का परिचय होता है। उत्तर जर्मनी के चित्रकारों में पौला मोडरसोन ने सर्वप्रथम व स्वतंत्र रूप से अभिव्यंजनावादी चित्रण का नया मार्ग अपनाया।

एमिल नोल्ड (१८६७–१९५६)

नोल्ड की कला में विशुद्ध मूल रंगों के भावनोद्दीपन के सामर्थ्य को क्रियान्वित किया है। रंगों के इस सामर्थ्य का साक्षात्कार उनको संदिग्ध मानसिक अवस्था में व क्रमशः हुआ, और इस मानसिक प्रक्रिया में उनको कठिनाइयों व संघर्ष से सामना करना पड़ा। १८९८ में उन्होंने होल्सेल–जो स्वयं विशुद्ध रंगों व सरलीकृत आकारों के कलात्मक सामर्थ्य के बारे में शोध कर रहे थे–के मार्गदर्शन में कला की शिक्षा प्राप्त कीं। इस समय उन पर डाखौ चित्रकारों का प्रभाव था। १९०६ में ब्रूके चित्रकारों ने नोल्ड को निमंत्रित किया एवं एक साल तक वे उस मंडल के सदस्य रहे। उनका १९०६ में मुंख से व १९११ में एन्सोर से परिचय हुआ किन्तु इन संपर्कों के बावजूद उनकी कला का मौलिक व एकांत स्वरूप अबाधित रहा।

आरंभिक काल में रेम्ब्रांट, गोया व दोमीय नोल्ड के आदर्श चित्रकार थे। इन चित्रकारों की कला के मनोवैज्ञानिक सामर्थ्य व अभिव्यक्ति से वे प्रभावित थे। बचपन के चित्रों में भी नोल्ड चित्रविषय की स्वभावविशेषताओं पर बल देकर चित्रण करते। कला की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे सेंट गॅल के औद्योगिक डिजाइन विद्यालय में अध्यापक रहे। इस काल में उन्होंने किसानों के कई चित्र बनाये जिनमें सादृश्य के अतिरिक्त किसानों की ऐंठनदार ऊबड़-खाबड़ शरीराकृतियों को अतिशयोक्त अतिमानवीय रूप में चित्रित किया है। इन चित्रों को हम व्यंगचित्रों में शामिल नहीं कर सकते क्योंकि इनमें शारीरिक की अपेक्षा आंतरिक स्वभावविशेषताओं की अभिव्यक्ति पर बल दिया है। १८९९ में बनाये उनके रेखाचित्रों—'गुफानिवासी स्त्री', "आलसी", 'सामर्थ्य का नकाब'[20] वगैरह–में भी शारीरिक की अपेक्षा आत्मिक गुणों का दर्शन अधिक प्रभावपूर्ण है। १८९४ में चित्रित किये प्रकृतिदृश्यों में पौराणिक कल्पनावाद है; स्विट्जर्लेंड के पहाड़ों को काल्पनिक मानव रूप में चित्रित कर शीर्षकों द्वारा कल्पना को स्पष्ट किया है जैसे कि 'युवती', 'भिक्षु', 'जंगली' वगैरह इन चित्रों में उन्होंने वहां के निवासियों की उन पहाड़ों के बारे में प्रचलित कल्पनाओं को साकार किया है।

१९०० में जब वे पॅरिस गये थे तब 'माने के रंगांकन की विशुद्धता व दोमीय की अभिव्यंजनात्मक शैली से वे प्रभावित हुए। १९०६ में संग्राहक ओस्टौस ने नोल्ड को वान गो, गोग्वँ, मोने व समकालीन फ्रेंच चित्रकारों की कृतियां दिखायीं जिनसे प्रेरणा पाकर वे विशुद्ध रंगों में चित्रण करने की दिशा में आत्मविश्वास के साथ अग्रसर हुए और उन्होंने फूलों व बगीचों के चमकीले रंगसंगति के चित्र बनाये जिनमें

उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की झलक भी स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है। मुंख, वान गो व एन्सोर की कलाकृतियों में उन्होंने अभिव्यक्ति की समानता को अनुभव किया व उनसे निजी अभिव्यक्ति को सुदृढ व परिणामकारक बनाने में उनकी सहायता मिली। नोल्ड की कला में मानवीय जीवन की आदिम प्रेरणाओं को धार्मिक निष्ठा के साथ चित्रित किया है; १९०९ से लेकर १९११ तक उन्होंने इस दर्शन के जो चित्र बनाये उनमें 'अंतिम भोजन', 'साक्षात्कार'[30] आदि ईसा के जीवन के चित्र प्रसिद्ध हैं। इसके पश्चात् उन्होंने मानव-चित्रण किया जिसमें मानवाकृतियों को उनके स्वाभाविक सहजप्रवृत्तिजन्य ऐंद्रिक सामर्थ्य के साथ, प्रतीकात्मक रंगों का प्रयोग करके चित्रित किया है; मुक्त तूलिकासंचालन व गतिपूर्ण वक्र रेखाओं से ये चित्र सचेत बन गये हैं।

नोल्ड की कला निसर्ग की विरोधी नहीं है किंतु उसमें निसर्ग के बाह्य रूप का चित्रण नहीं है बल्कि उसकी आंतरिक प्रेरणाओं को कलात्मक अनुभूतियों द्वारा, माध्यम का सचेत प्रयोग करके, समरूप में चित्रित किया है जिससे दर्शक जीवन की आधारभूत प्रेरणाओं के अस्तित्व को स्वयं अनुभव कर लेता है। इस संबंध में वर्नर हाफ्टमन ने लिखा है "नोल्ड के लिये वही सत्य था जो दृश्य वास्तविकता के पीछे छिप कर, उसके द्वारा निजी अस्तित्व का साक्षात्कार कराता है। मस्तिष्क की कल्पना से ही निसर्ग को अर्थ प्राप्त होता है"। नोल्ड की कला में मानवीय आदिम प्रेरणाओं का साकार दर्शन है व इसी कारण क्ली उनको 'पाताल–लोक का दैत्य'[31] कहते। नोल्ड क्ली को 'तारों भरे विश्वमंडल में उड़ने वाली तितली'[32] कहते क्योंकि क्ली के चित्रों द्वारा दर्शक परीकथा के समान काल्पनिक व स्वप्निल दुनिया में प्रवेश पाते हैं। बाह्य दर्शन में भिन्नता होते हुए नोल्ड व क्ली दोनों ने मानव के आंतरिक जीवन को ही चित्रित किया है। नोल्ड की कला के विरोध में मातिस की कला की तुलना की जा सकती है जिसमें बाह्य सौंदर्य व रचना के अतिरिक्त कोई आंतरिक गुण नहीं है व जो सर्वसाधारण रूप से फ्रेंच कला की विशेषता रही। फ्रेंच व जर्मन कला में यह जो प्रमुख भिन्नता है उसको ध्यान में रख कर हम समझ सकते हैं कि सोअरलांट ने नोल्ड को 'जर्मन राष्ट्रीय कला का प्रणेता'[33] क्यों माना व वर्नर हाफ्टमन ने उनकी कला को 'फाववाद की पूर्णरूप से जर्मन आवृत्ति'[34] क्यों माना। १९१२ में नोल्ड ने 'पुनरुत्थान', 'सपत्नीक सैनिक' ये चित्र, ईसा के जीवन पर नौ वेदी चित्र व 'साता मारिया इजिप्शियाका' का त्रिपट[35] बनाये। अपने चित्रकारी जीवन में उन्होंने पैरिस, लंदन, तथा जापान, चीन आदि विदेशों की यात्राएं कीं। नात्सी सरकार ने उनकी कला को 'भ्रष्ट कला'[36] नाम देकर, उनके १०५२ चित्र जब्त किये व उनके चित्रण पर प्रतिबंध लगाया। दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् वे श्लेस्विग–होल्स्टैन संस्था में अध्यापक नियुक्त किये गये।

क्रिश्चियन रोल्फस (१८४९–१९३८)

नोल्ड की कला में काव्य का जो अभाव है वह रोल्फस की कला में नहीं है क्योंकि रोल्फस ने वातावरण की चंचलता की उपेक्षा नहीं की बल्कि प्रभाववादी चित्रकारों के समान इंद्रधनुषी रंगांकन से चित्र क्षेत्र को सचेत बनाया। भावनाओं की अभिव्यक्ति के पीछे वे रंगसंगति की मोहकता व दृश्य के काव्य को भूल नहीं सके।

तीस साल तक उन्होंने वैमार में प्रकृति चित्रण किया। १९०० के बाद उनको मोने, सोरा, वान गो व गोग्वँ की कलाकृतियों को देखने का मौका मिला। मोने के 'रुएन के गिरजाघरों' की चंचल अंकनपद्धति व वान गो की अभिव्यंजना का उनके सोएस्ट शहर के दृश्यचित्रों पर स्पष्ट प्रभाव है।

एर्न्स्ट लुडविक किर्शनर व ब्र्यूके चित्रकार:—

ब्र्यूके कलाकार-मंडल के सस्थापक थे किर्शनर, हेकेल व श्मिठ-रोटलुफ। १९०४ में ड्रेस्डेन टेक्नीकल विद्यालय के विद्यार्थी होने के कारण उनमें घनिष्ठ मित्रता थी। नीत्शे के दर्शन से प्रभावित होकर सामाजिक क्रांति करने के उद्देश्य से उन्होंने चित्रकला को माध्यम के रूप में चुना। वान गो व गोग्वँ के समान 'कलाकार भ्रातृमंडल' की कल्पना से प्रेरित होकर इन तीनों कलाकारों ने १९०५ में 'फ्रीडरिश्टाट क्वार्टर' में मोची की खोली हुई दुकान में जगह लेकर, एक साथ रहकर कलानिर्मिति आरंभ की। इस समय योरप के सभी विचारक्षेत्रों में क्रांति के विचार से प्रेरित नवयुवकों के मंडलों की प्रस्थापना होकर नवीन विचारों का प्रसार हो रहा था। तीनों कलाकारों में से किर्शनर सबसे बुद्धिमान, उत्साही व क्रांतिवादी थे। १९०४ में किर्शनर ने नव-प्रभाववादियों की प्रदर्शनी देखी व विशुद्ध रंगांकन में प्रयोग करने का निश्चय किया। इसके अतिरिक्त गोथिक कला, मेलेनेशियन आदिवासी कला, क्रानाख की कला व मध्ययुगीन जर्मन कला के प्रभाव से उनकी कला में समतल विशुद्ध रंगों व सरलीकृत आकारों ने प्रवेश किया। अब बोन्नार, वुइलार व युगेंटस्टिल का अनुसरण छोड़कर तीनों चित्रकार वान गो के समान बाह्य रेखा से अंकित सरलीकृत आकारों व विशुद्ध रंगों के समतल क्षेत्रों में चित्रण करने लगे। १९०७ के करीब ब्र्यूके चित्रकारों की निजी शैलियां काफी विकसित हो चुकी थी एवं उसी समय उन पर फाववाद का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने लगा। तीनों की कलाकृतियों में इतनी समानता आ गयी कि वैयक्तिक सूक्ष्म भेदों से ही उनके उस समय के चित्रों को हम पृथक् रूप से पहचान सकते हैं। किर्शनर संवेदनाशील व अशांत थे, श्मिट-रोटलुफ में जोश व स्पष्टता के गुण थे तो हेकेल में काव्यदृष्टि थी। १९०५ में उन्होंने अपने मंडल को नाम दिया 'ब्र्यूके' जिसके उद्देश्य का श्मिट-रोटलुफ ने स्पष्टीकरण किया "ब्र्यूके का उद्देश्य सभी क्रांतिकारी व प्रक्षोभक तत्वों को आकर्षित करना है"[37]। उन्होंने नोल्ड को

निमंत्रित किया और १९०६ में नोल्ड, माक्स पेश्टाइन व क्युनो आमिएट मंडल के सदस्य बन गये। १९०८ में फाव चित्रकार वान डोन्जेन व १९१० में ओटो म्युलर ब्रूके के सदस्य बने। ब्रूके मंडल की प्रथम प्रदर्शनी की ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया किंतु १९०६ में हुई दूसरी प्रदर्शनी की काफी आलोचना हुई।

फाव चित्रकारों के समान ब्रूके चित्रकारों के विषय मुख्यतया वास्तविकता से लिये गये थे जैसे कि विवस्त्र स्त्री, वस्तुसमूह, प्राकृतिक दृश्य आदि। अभिव्यक्तिपूर्ण बनाने के हेतु वे नैसर्गिक आकारों को ऐंठन देकर अंकित करते एवं प्रेरणा के लिये सहजप्रवृत्ति, आत्मिकता व उन्मुक्त मानसिक अवस्था पर निर्भर रहते। आरंभिक काल में ऐंठनदार रेखा से अंकित आकारों व विशुद्ध रंगों को योजना अभिव्यक्त का प्रमुख साधन माना जाता था और उसको परिणामी बनाने के लिये ब्रूके चित्रकारों ने प्रभाववादी अंकनपद्धति का अभिव्यंजनावादी दिशा में विकास किया व वैयक्तिक धारणाओं के अनुकूल निजी शैली को सुनिश्चित रूप दिया।

१९१० से ब्रूके चित्रकारों में से एक-एक करके कई सदस्य बर्लिन पहुंचे। बर्लिन में पेश्टाइन ने नोल्ड व अन्य तरुण चित्रकारों के सहयोग से 'नाय जेचेसिओन' मंडल की प्रस्थापना की जिसका प्रमुख उद्देश्य प्रभाववादी सिद्धांतों के विरोध में कला के मूलाधार तत्वों व सहजप्रवृत्ति द्वारा कलानिर्मिति करने को प्रोत्साहन देना था। किर्शनर, हेकेल व श्मिट-रोटलुफ 'नाय जेचेसिओन' में शामिल हुए जहां ओटोम्युर ने उनको डिस्टेंपर का प्रयोग करना सिखाया। किंतु ब्रूके मंडल के विशुद्ध रूप व उद्देश्यों को भ्रष्टता से बचाने के हेतु उन तीनों ने 'नाय जेचेसिओन' मंडल का त्याग किया। १९१२ में बर्लिन की 'गुर्लिट वीथिका' में हुई प्रदर्शनी में व कोलोन में हुई 'सोंडरबुंट' प्रदर्शनी में ब्रूके चित्रकारों ने सामूहिक रूप से भाग लिया। अब तक उसके सदस्यों ने वैयक्तिक शैली के विकास की दिशा में काफी प्रगति की थी; उनके रेखांकन अधिक संवेदनाशील, अवकाश अधिक विभक्त व आकार अधिक कोणदार बन गये थे; रंगसंगति विशुद्ध रंगों के स्थान पर कुछ हलके व कुछ गहरे रंगों का मिश्रित प्रयोग शुरू हुआ था व चित्ररचना पर घनवाद का अप्रत्यक्ष प्रभाव भी छा रहा था। इस प्रकार भिन्न तत्वों का प्रवेश होते ही ब्रूके मंडल के सदस्यों की वैयक्तिक विशेषताएं स्पष्ट हो गयीं। १९१३ में किर्शनर के पत्रक 'क्रोनिक डेर ब्रूके'[३४] से अन्य सदस्यों ने असहमति व्यक्त की व मंडल का विसर्जन हो गया।

ब्रूके मंडल के निर्देशन का कार्य मुख्य रूप से किर्शनर ने युगेंटस्टिल के आरंभिक प्रभाव से मुक्त करके उन्होंने ब्रूके मंडल के कलाकारों को सोरा, वान गो, गोग्वँ व मुंख़ की कला के महत्व को स्पष्ट किया व अंत में उनकी कला को आदिम कला व गोथिक कला के समान सरलीकृत रूप प्रदान किया। उनका मुख्य लक्ष्य था क़ला के मूलतत्वों का आविष्कार करके उनके द्वारा कला को अभिव्यक्ति का साधन बनाना। उन्होंने तुरन्त पहचाना कि कला में मानवीय भावनाओं को महत्व है, अतः उन्होंने

अपनी कला में वाह्य रूप को गौण स्थान दिया जिससे उनकी कला को काव्य के समान भावनोद्दीपन का सामर्थ्य प्राप्त हुआ। उन्होंने देखा कि अपनी कलात्मक ध्येयसिद्धि के लिये फाव कलाकारों के समान समतल रंगांकन एवं स्पष्ट व सरलीकृत वाह्यरेखा का प्रयोग आवश्यक हैं; अतः उन्होंने उन तत्वों का संयोजनपूर्वक अपितु भावनापूर्ण प्रयोग किया। १९०७ तक वे फावकला से प्रभावित थे किंतु उनकी कलाकृतियां फावकला के समान केवल वाह्य सौंदर्य से सीमित नहीं थीं बल्कि उनमें मनोवैज्ञानिक सूचकता का सामर्थ्य भी था; उनमें मानवीय भावनाओं को जागृत करने का एवं दर्शक को आत्मिक अनुभूति प्रदान करने का सामर्थ्य था।

१९११ में वे जब बर्लिन गये तब वहां के शहरी वातावरण में उनको मानसिक अशांति व गतित्व के तत्वों को पोषक विषय मिले। यहां के उनके चित्रों में भ्रष्ट व विफल शहरी जीवन व उसकी निरर्थक कृत्रिमता का प्रभावी दर्शन है; इन चित्रों में रास्तों में घूमती हुई प्रदर्शनवृत्ति महिलाओं व शृंगार करती हुई महिलाओं के चित्र प्रसिद्ध हैं। दुर्बल शरीरों को अत्यधिक वस्त्रालंकारों से सजाने की जीवन की सार्थकता से संबंध न रखने वाली—महिलाओं की इस प्रदर्शनवृत्ति का किर्शनर ने परिणामकारक व कटु उपहास किया है; एक तरह से किर्शनर ने विकृत शहरी जीवन का चित्रकला द्वारा मनोविश्लेषण किया है। मुंख, एन्सोर व वान गो के समान किर्शनर को भी मज्जातंतु के दौर्बल्य से पीड़ित होकर, १९१४ में चिकित्सालय में भरती होना पड़ा।

हेकेल ने आरम्भ में किर्शनर का अनुयायित्व किया। रंग व रेखा के स्वाभाविक गुणों का विकास करने के फाव सिद्धांतों का उन पर प्रभाव था किंतु स्वाभाविक संयमशीलवृत्ति के कारण फाव उन्मुक्तता को उनकी कला में सीमित स्थान था। उनकी सबसे जोशपूर्ण कृतियों में भी विचारनिष्ठ संयम का प्रभाव है। उनकी कृतियों में नाटकीय आत्मप्रदर्शन नहीं है। १९१४ के पश्चात् वे पूर्व एशियाई कला के समान प्रसन्न व कुछ नियंत्रणपूर्ण चित्रण करने लगे। उन्होंने हलकी वाह्यरेखा से अंकित व हलकी रंगसंगति में कई प्रकृति-चित्र बनाये।

ब्रूके चित्रकारों में से, कार्ल श्मिट-रोटलुफ बौद्धिकता से घृणा करते एवं सब से आवेशपूर्ण चित्रण करते। उन्होंने १९०६ में नोल्ड के साथ व १९०७ में हेकेल के साथ चित्रण किया और उन दोनो ने विशुद्ध रंगों के समतल प्रयोग से प्रभाववादी अंकनपद्धति को नयी दिशा में किस प्रकार मोड़ दिया यह देखा। नीग्रो कला के अध्ययन से उन्होंने आकारों को सरलता व आदिम सामर्थ्य प्रदान किये। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् उन्होंने अपनी रंगसंगति को अधिक सौम्य बनाया व आकारों की कठोरता को कम किया।

माक्स पेश्टाइन (१८८१-१९५५) की शैली आलंकारिक थी व उसमें किर्शनर की भावुकता व बुद्धि का प्रभाव नहीं था। सुदूर के वन्य प्रदेशों के प्राकृतिक

दृश्यों को उन्होंने आलंकारिक ढंग से चित्रित किया। १९१४ में उन्होंने पालाऊ द्वीपों की यात्रा की थी।

ब्रूके चित्रकारों में से, ओटो म्युलर की शैली स्पष्ट रूप से वैयक्तिक है। उनके पिता के खानदान में अच्छे विद्वान् व धार्मिक पुरुषों ने जन्म लिया था किंतु उनकी माता एक घुमक्कड़ जाति की लड़की थीं। म्युलर स्वयं शरीर से दुर्बल थे व अदृश्य शक्तियों व जादूटोना का विश्वास करते थे। म्युलर की कलासृष्टि सौम्य व प्रशांत सौंदर्य से ओत-प्रोत है; उसमें वनों, तालाब के किनारों पर मानवाकृतियों, झोंपड़ियों व विवस्त्र स्त्रियों का चित्रण है जिनके द्वारा हम किसी अनोखी, काल्पनिक, पौराणिक दुनिया में प्रवेश पाते हैं। उनकी कला पर १८९६ में ड्रेस्डेन अकादेमी में किये अध्ययन, युगेंटस्टिल शैली व वॉकलिन के प्रभाव थे। १९१० तक उनकी कलाशैली का पूर्ण विकास हो चुका था व अभिव्यंजनावादी झलक होते हुए उसमें शास्त्रीयतावादी कला के आकारों की नियमबद्धता थी। १९१९ से वे ब्रेस्लौ की अकादेमी में अध्यापक थे। उनकी आयु की उत्तरकालीन कृतियां दुःख व निराशा से भरी हुई हैं और सही अर्थ में अभिव्यंजनावादी बन गई हैं। १९३० में उनकी मृत्यु हुई।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् ब्रूके एवं अन्य अभिव्यंजनावादी चित्रकारों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया व उनकी अभिव्यक्ति को नया रूप प्राप्त हुआ। हेकेल व शिमट-रोटलुफ ने अपनी शैलियों को अधिक सुसूत्र बनाया; हेकेल ने आत्मिक अभिव्यक्ति के साथ वास्तव सौंदर्य की ओर ध्यान दिया व शिमट-रोटलुफ भी प्राकृतिक सौंदर्य से आकर्षित हुए। रुग्णालय से मुक्त होने के बाद किर्शनर स्विट्जर्लैंड के पहाड़ी प्रदेश में झोंपड़ी में रहने लगे; पहले की निराशा का स्थान प्राकृतिक सौंदर्य से मुग्ध आशावादी नवजीवन ने ले लिया एवं उन्होंने वहां के पहाड़ी दृश्यों, किसानों व प्राकृतिक सौंदर्य का प्रसन्नतापूर्ण चित्रण किया। उन्होने लिखा है "सरलीकृत विशाल आकारों व स्पष्ट रंगों से मेरी भावनाओं व अनुभूतियों को व्यक्त करना मेरा आरंभ से ही ध्येय रहा व अभी मेरा यही ध्येय है मैं जीवन की संपन्नता व आनन्द, मानवीय प्रेम व द्वेष दोनों को चित्रित करना चाहता हूं"। १९२१ से १९२५ तक का काल किर्शनर की कला में सृजनपूर्ण रहा; प्रकृति के संपर्क में उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों व सीधेसादे कृषक जीवन के कई चित्र बनाये। मानसिक स्वास्थ्य का लाभ होने से उनके रंगों में सौम्यता व चित्रांतर्गत वातावरण में प्रसन्नता आ गयी व सुस्थापित अवकाश के अंतर्गत नैसर्गिक वस्तुओं के मूल आकारों का स्वाभाविक सौंदर्य प्रकट हो गया। कुछ साल बाद मज्जातन्तु के दौर्बल्य के आक्रमण के चिह्न पुनश्च दिखायी देने लगे। जर्मनी में तानाशाही सरकार ने अत्याचार शुरू किये व उनकी कला का उपहास किया। परिणामस्वरूप निराश हो कर उन्होंने १९३८ में आत्महत्या की। बाह्य सादृश्य के अंतर्गत छिपे हुए मूल आकारों के सौंदर्य का

परिणामकारक दर्शन किर्शनर की कला की महानता है ।

'ब्ली राइटेर' मंडल व उनके सदस्य चित्रकार :

१९०९ में कान्डिन्स्की ने म्युनिक में एक नवकलाकार-मंडल[३०] की स्थापना की व उसके उद्देश्यों को निश्चित, रूप दे कर जर्मन कलाक्षेत्र में नवीन विचारप्रवाहों को जन्म दिया । किन्तु इस मंडल के सदस्यों की वैयक्तिक विचारधाराओं तथा उनकी शैलियों में आपस में भिन्नताएं थीं और बहुत से सदस्य कान्डिन्स्की के मौलिक विचारों को समझ नहीं पाये । १९१० में फ्रान्त्स मार्क, माक व क्ली मंडल में सम्मिलित हुए किंतु यालेन्स्की के साथ, उसी मंडल के अंतर्गत, उनका एक नया गुट बन गया । ये सभी सदस्य स्वतंत्र व्यक्तित्व लिये हुए, प्रतिभासंपन्न चित्रकार थे एवं आपस में चर्चा कर के वे निजी धारणाओं को अंतिम रूप देना चाहते थे ।

१९१० से कान्डिन्स्की ने अपने विचारों को शाब्दिक रूप देना शुरू किया । १९१२ में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'कला में आत्मिकता' प्रकाशित हुई । कान्डिन्स्की समकालीन विचार क्षेत्र में बढ़ते हुये भौतिकवाद के प्रभुत्व से सामना कर के कला को भौतिकवाद से मुक्त करना चाहते । मातिस ने रंगों को वस्तुसादृश्य के दासत्व से मुक्त किया था और पिकासो ने आकारों को नैसर्गिक रूप के बंधन से मुक्त किया था; कान्डिन्स्की को इसमें कला के उज्ज्वल भविष्य के चिह्न प्रतीत हुए एवं उन्होंने लिखा " ये ऐसे चिह्न हैं जो कला की महानता की ओर संकेत कर रहे हैं" और उन्होंने निर्णय दिया "रंगों व आकारों की सुसंगति का एक ही आधार हो सकता है–मानव की आत्मा से उद्देश्यपूर्ण संपर्क; विशुद्ध रंगों व आकारों के अभिव्यक्तिपूर्ण नादनिनाद से चित्रकार को वस्तु के आंतरिक संगीत को व उससे मानव की आत्मा में निर्मित भावतरंगों को साकार करने का साधन प्राप्त होता है" । संगीत के समान, -बाह्य नैसर्गिक रूप-सादृश्य के बंधन से पूर्ण मुक्त कर के -रेखा व रंगो जैसे कला के मूलतत्वों द्वारा आत्मिक अनुभूति को विशुद्ध रूप में चित्रित किया जा सकता है । कलाकार के लिये एक ही विचार महत्व रखता है– वह है आंतरिक आवश्यकता । १९१० में कान्डिन्स्की ने अपना पहला वस्तुनिरपेक्ष चित्र बनाया । १९१२ तक उन्होने रंगों की दुनिया में मग्न हो कर उसमें उनको जो विश्वमंडलीय आकार दिखायी दिये उनको व अपनी कल्पना-सृष्टि को पट पर उतारा ।

अब मंडल के सदस्यों ने कला के विषयक्षेत्र से दृश्य वास्तव सृष्टि को हटा दिया और आत्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति के ध्येय से प्रेरित होकर चित्रण शुरू किया जिससे उनकी कला को नया धार्मिक रूप प्राप्त हुआ; किंतु यह धार्मिक दृष्टि किसी विशिष्ट सांप्रदायिक धर्म से संलग्न नहीं थी; उसका दृष्टिकोण व्यापक था व उसकी एक ही श्रद्धा थी– विशाल आत्मिक जीवन की महानता । थिओसोफी, ब्लावाट्स्की, स्टेनर व पौर्वात्य धर्मग्रन्थों का अध्ययन शुरू हुआ जिसके उद्देश्य के बारे में फ्रान्त्स

मार्क ने लिखा है "हमारा ध्येय था हमारे समय के अनुकूल प्रतीकों का निर्माण, जिनसे भविष्य के आत्मिक धर्म की वेदी को सजाया जा सके"। फ्रान्स मार्क बायबल के आधुनिक दर्शन के चित्र बनाने का विचार कर रहे थे; कान्डिन्स्की ने ईसा के जीवन की 'अंतिम भोजन' घटना को चित्रित किया व कुछ चित्रों में देवदूतों की आकृतियों का समावेश किया।

१९११ की नव-कलाकार मंडल की तृतीय प्रदर्शनी में कान्डिन्स्की के 'अंतिम भोजन' चित्र पर मतभेद हुए व कान्डिन्स्की, मार्क, कुबिन व गाब्रियल म्युंटर मंडल से पृथक् हो गये। उसी साल उन कलाकारों ने उसी कलावीथिका टानौसेर में अपनी प्रदर्शनी का आयोजन किया व इस प्रकार 'ब्लौ राइटेर' मंडली की प्रस्थापना हुई। प्रदर्शनी में फ्रान्स मार्क, माक, म्युंटर, काम्पेन्डोक आदि समान विचारों के चित्रकारों के अतिरिक्त, फ्रान्स के चित्रकार रॉबर देलोने व आंरी रूसो के चित्र भी प्रदर्शित हुए थे जिनका, कान्डिन्स्की के विचारानुसार, आधुनिक कला के महान् प्रणेताओं में स्थान था। 'ब्लौ राइटेर' ने एक ग्राफिक कला की प्रदर्शनी का आयोजन किया जिसमें फ्रेंच घनवादी कलाकारों, ब्रूके कलाकारों व रशियन आधुनिक कलाकारों की कृतियां रखी गयीं। १९१२ में चित्रप्रदर्शनी का आयोजन होकर वह जर्मनी के भिन्न शहरों में दिखायी गयी।

'ब्लौ राइटेर' कोई सुगठित संस्था नहीं थीं; वह केवल समान विचारों के कलाकारों का भ्रातृमडल था जिसमें कान्डिन्स्की, मार्क, माक व यालेन्स्की प्रमुख थे। 'ब्लौ राइटेर' (नीला घुड़सवार) कान्डिन्स्की के एक चित्र का शीर्षक था व उसी नाम से मार्क व कान्डिन्स्की ने एक वार्षिक पत्रिका प्रकाशित की थी जिसमें आधुनिक कला-विषयक विचारों को प्रदर्शित किया था। उस पत्रिका में माक, बुर्ल्युक व शोनबर्ग के लेख थे। मार्क ने जर्मन कलाक्षेत्र में हुए ब्रूके, नाय जेचेसिओन आदि प्रयत्नों की समीक्षा करके निर्णय दिया कि अब कलाकारों में विचार-परिवर्तन आवश्यक है। केवल अंकनपद्धति में नवीन प्रयोग करने से विकास नहीं होगा। कुछ लेखों में रशियन आधुनिक कला, घनवाद व देलोने की चित्रणपद्धति का विवरण था। कान्डिन्स्की ने अपने 'आंतरिक आवश्यकता' के सिद्धांत के आधार पर घोषित किया 'भविष्य की कला घनिष्ठ वस्तुनिरपेक्षता व घनिष्ठ यथार्थवाद के बीच दोलायमान रहेगी"[४०]। घनिष्ठ यथार्थवाद के उदाहरण के रूप में उन्होंने आंरी रूसो की कला का प्रमाण दिया।

'ब्लौ राइटेर' कलाकार समान विचारों से एकत्रित हुए थे व उन्ही विचारों से एकनिष्ठ रह कर उन्होंने कला का विकास किया। किंतु उनमें से प्रत्येक कलाकार की ऐसी मौलिक विशेषता थी कि उसकी कलाकृतियों को पृथक् रूप से पहचाना जा सकता है। मार्क की कला में चराचर के आंतरिक जीवन पर निष्ठा है तो मेके की कला में दृश्य सौंदर्य की काव्यात्मक अनुभूति है; यालेन्स्की की कला रशियन गूढवाद से

प्रेरित है तो क्ली की कला में अद्‌भुत का दर्शन है। कान्डिन्स्की सब को आत्मीयता व उत्साह से प्रेरित करते व अपने बुद्धिवाद से सुगठित रखते।

फ्रान्त्स मार्क (१८८०–१९१६)

फ्रान्त्स मार्क की कला समग्र चराचर सृष्टि में गूढ आत्माओं का दर्शन कराती है; सभी वस्तुओं, प्राणियों व वनस्पतियों में मार्क ने उनके अस्तित्व को अनुभव किया व धार्मिक निष्ठा से उस अनुभूति को चित्रित किया। विद्यार्थी अवस्था में ही वेदान्ती बनने की वे महत्वाकांक्षा रखते थे। १९०० से वे म्युनिक अकादेमी के विद्यार्थी थे किंतु वहां के नैसर्गिकतावादी अध्ययन से वे असंतुष्ट थे। १९०३ में जब उन्होंने पैरिस की यात्राएं कीं तब उनको प्रभाववाद व नावि कला का ज्ञान हुआ। १९वीं शताब्दी के अंतकालीन व्याकुल सामाजिक मनोविज्ञान के वे शिकार थे और उस असह्य मानसिक तनाव से छुटकारा पाने के लिये उन्होंने कला का सहारा लिया। उन्होंने एक पत्र में लिखा था "मैं चाहता हूं कि चित्रकला मुझे मेरी आतंकित अवस्था से मुक्त करे"। १९०७ में वे फिर से पैरिस गये जहां वान गो के चित्रों के अध्ययन से वे मार्गदर्शन चाहते थे। उसी साल उन्होंने कला की परिभाषा की "कला में अपने स्वप्नों की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है"। चराचरसृष्टि की एकता व प्रेम मार्क का स्वप्न था व उसी को उन्होंने कला द्वारा साकार किया। मार्क के चित्रों में ऐसे चित्र बहुसंख्य हैं जिनमें प्राणिमात्र, वनस्पति सृष्टि में एकरूप होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो बैठे हैं। मूक प्राणियों व वनस्पतियों के एकात्म व लयबद्ध जीवन का सहानुभूतिपूर्ण दर्शन मार्क की कला का मूलाधार था और उसको वे 'कला का सजीवीकरण'[41] कहते।

१९१० में उनका औगुस्ट माक से परिचय हुआ। गोग्वँ व मातिस की कला के परिशीलन से माक को विशुद्ध रंगों के सामर्थ्य का ज्ञान हुआ एवं उन्होंने मार्क को उससे अवगत कराया व मार्क विशुद्ध रंगों के प्रतीकात्मक प्रयोग करने लगे। उसी साल उनकी कान्डिन्स्की से मित्रता हुई। १९११ में मार्क ने प्राकृतिक सौंदर्य की पृष्ठभूमि पर जानवरों के चित्रों की मालिका बनायी जिसमें से 'लाल घोड़े' चित्र बहुत ही प्रसिद्ध है। उन्होंने प्रकृति व जानवरों को प्रतीकात्मक रंगों में अंकित किया व उनमें आत्मिक सामर्थ्य प्रदान करने के उद्देश्य से उनके आकारों का घनवादी पद्धति से सरलीकरण किया; इस पद्धति को वे 'आंतरिक गूढ रचना'[42] कहते। आंतरिक जीवन पर निष्ठा होने के कारण मार्क घनवाद के रचनात्मक सौंदर्य के ध्येय के आगे देलोने के सुरीलवाद की ओर बढ़े। उन्होंने कलाकार के कर्तव्य के बारे में लिखा है "........जिन नियमों का पूरे संसार पर अधिष्ठान है उन नियमों की खोज व्यक्तित्व के ऊपर उठकर आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश"। १९१२ में वे देलोने से मिलने पैरिस गये व दोनों घनिष्ठ मित्र हुए। उसी साल उन्होंने म्युनिक में हुई भविष्यवादी कला की

प्रदर्शनी को देखकर घनवादी चित्रण से गतित्व के परिणाम को अंकित करने की पद्धति को सीखा। इस प्रकार फाववाद, घनवाद, भविष्यवादी व कान्डिन्स्की मार्क की कला के विकास में सहायक हुए। १९१२-१३ में बनाये उनके चित्र 'नीले घोडों का मीनार', 'जानवरों के भवितव्य', 'जंगल में हिरन'[43] उनकी पूर्ण विकसित शैली के सुंदर उदाहरण हैं एवं उनमें स्फटिकीय पारदर्शकता लिये हुए वातावरण के अन्तर्गत जानवरों व वनस्पतियों के एकात्मक रूप को चित्रित किया है। कला के ध्येय के संदर्भ में उन्होंने लिखा है "........अविनाशी आत्मा की प्राप्ति के लिये तड़प, अशाश्वत ऐंद्रिक जीवन से मुक्ति—इसी मानसिक अवस्था में कला का जन्म होता है"[44]।

कान्डिन्स्की से प्रोत्साहन पाकर मार्क ने १९१३ में वस्तुनिरपेक्षता की ओर कदम उठाया किंतु उनके वस्तुनिरपेक्ष चित्रों में भी सृष्टि का अप्रत्यक्ष आभास है व चराचर की एकात्मता की प्रतीति है। १९१६ में द्वितीय विश्वयुद्ध के रणक्षेत्र पर उनकी अकाल मृत्यु हुई।

ऑग्युस्ट माक (१८८७-१९१४):—

फ्रान्ज मार्क के समान, माक की कला कान्डिन्स्की के मार्गदर्शन में व घनवाद, भविष्यवाद व देलोने के सुरीलवाद के अध्ययन के साथ विकसित हुई; किन्तु मार्क से माक की रुचि भिन्न थी और वे वास्तव सृष्टि के बाह्य सौंदर्य से लुब्ध थे।

माक का आरंभिक अध्ययन १९०४-१९०६ तक ड्यूसेलडार्फ अकादेमी में व १९०७ में कोरिंट के मार्गदर्शन में बर्लिन में हुआ। उसके पश्चात् उन्होंने पैरिस की यात्राएं कीं जिससे मातिस व गोग्वँ की कला से परिचित होकर उनको विशुद्ध रंगों के सामर्थ्य का ज्ञान हुआ। किंतु 'ब्लौ राइटेर' कलाकारों से संपर्क होने के बाद ही वे अपनी भावनाओं को समुचित रूप में साकार करने में सफल हुए। मार्क व कान्डिन्स्की के समान वे भावनाविवश नहीं थे माक से उनकी इतनी ही समानता थी कि वे दृश्य सौंदर्य के काव्य से मोहित थे। ,१९१२ में वे पैरिस में देलोने से मिले व उनको दृश्य सौंदर्य को विशुद्ध रंगों व घनवादी रचना द्वारा चित्रित करने का साधन प्राप्त हुआ।

भविष्यवादी चित्रकारों के समान, माक समय व स्थान की दृष्टि से भिन्न दृश्यों को एक ही चित्र में समाविष्ट करते; व इटालियन भविष्यवादी चित्रकारों के समान उन्होंने रास्तों के दृश्य पर्याप्त मात्रा में चित्रित किये जिनमें दूकानों की दर्शन-खिड़कियों के सामने निरीक्षण करती हुई युवतियों के चित्र हैं।

वाह्य प्रभावों के बावजूद, माक की कला में मौलिक गुण हैं और उनके चित्र उनकी असाधारण काव्यमय वृत्ति एवं विशुद्ध रंगों व सरल आकारों के दृश्य सौंदर्य के प्रति उत्कट संवेदना-शीलत्व व स्वतन्त्र व्यक्तित्व के साक्ष्य हैं। १९१४ में उन्होंने पौल क्ली के साथ ट्युनिशिया की यात्रा की। अफ्रीका के चमकीले रंगों व

प्रखर प्रकाशयुक्त वातावरण से प्रभावित होकर उन्होंने वहां के कई दृश्यचित्र व प्रकृति-चित्र बनाये जिनमें हमको सुखपूर्ण प्रसन्न मानवीय जीवन व काव्यमय प्रकृति का दर्शन होता है। प्रथम विश्वयुद्ध में इस महान् कलाकार की अल्पायु में मृत्यु हुई।

आलेक्सेय वॉन यालेन्स्की (१८६४–१९४१)

युवावस्था के आरंभ में यालेन्स्की रशियन सेना में अधिकारी थे। वे फुरसत में चित्रण करते व चित्रकार रेपिन के विद्यालय में चित्रकला का अध्ययन करने जाते। १८९६ में जब वे म्युनिक गये थे उनकी कान्डिन्स्की से मित्रता हुई। पैरिस की यात्राओं में वे सेजान व वान गो से मिले किंतु मातिस ने उनको सबसे अधिक प्रभावित किया। मातिस के विस्तृत क्षेत्रों व विशुद्ध समतल रंगों के अभिव्यक्ति के सामर्थ्य को देखकर उन्होंने उन कलातत्वों को साधन के रूप में अपनाया व वस्तुचित्र, प्रकृतिचित्र व व्यक्तिचित्र बनाये। विशुद्ध चमकीले रंगों के प्रयोग व स्पष्ट बाह्य-रेखा से उनकी कला दृश्य प्रभाव में व गूढवादी दृष्टिकोण से लोक-कला के सदृश बन गयी। १९०५ में वे पों आवां के चित्रकारों से परिचित हुए व उन्होंने ब्रित्तनी में चित्रण किया; उनके कहे अनुसार उसी समय से वे संतोषजनक चित्रण करने लगे—"तब से मैं जिसको अनुभव कर रहा था–न जिसको मैं केवल आंखों से देख रहा था–उसको चित्रित करने में सफल हो गया"। मातिस की अंकनपद्धति एवं गोग्यँ के सिद्धांतों से सहायता लेकर उन्होंने अपनी कला को विशुद्ध रूप प्रदान किया। कान्डिन्स्की के मार्गदर्शन से उन्होंने काफी लाभ उठाया किंतु उन्होंने कान्डिन्स्की के समान, पूर्ण रूप से वस्तुनिरपेक्ष चित्रण कभी नहीं किया; व्यक्ति, वस्तु एवं प्राकृतिक दृश्य उनके चित्रविषय थे व चमकीले रंग व स्पष्ट बाह्य-रेखा उनके साधन थे।

१९१७ मे उन्होंने चित्रविषय के रूप में मानवशीर्ष को चुना और अपनी सबसे परिणामकारक कृतियों को रचा ये मानवशीर्ष व्यक्तिचित्र नहीं हैं बल्कि काल्पनिक, आत्मिक अनुभूति से भावदर्शी व रचनावादी पद्धति से अंकित किये मानवशीर्ष हैं व जिनके पीछे गहरी धार्मिक निष्ठा सृजनशील है। ये चित्र रशियन प्रतिमाचित्रों के समान पवित्र व उदात्त दर्शन से ओतप्रोत हैं। यालेन्स्की ने इन चित्रों द्वारा सिद्ध किया कि आधुनिक अंकनपद्धतियों व आकार कल्पनाओं की सहायता से धार्मिक अनुभूतियों को प्रभावी रूप में चित्रित किया जा सकता है। कान्डिन्स्की, क्ली व फैनिंगर के साथ उन्होंने 'चार नीले'[45] मंडल की प्रस्थापना की व १९२४ से १९२९ तक चिंतनशील कलानिर्मिति की।

पॉल क्ली (१८७९–१९४०)

१९११ में पौल क्ली 'ब्लौ राइटेर' मंडल में सम्मिलित हुए। उससे पहले भी

क्ली ने चित्रकला को संगीत के समान विशुद्ध रूप देने की आवश्यकता को पहचाना था किंतु कान्डिन्स्की के विचारों से परिचय होते ही उन्होंने देखा कि कान्डिन्स्की के मार्ग-दर्शन निजी कला के विकास में बहुत सहायक हो सकते हैं। विशुद्ध रंगों व स्पष्ट रेखाओं से काल्पनिक सृष्टि का निर्माण क्ली की कला का ध्येय था व उसकी सफलता के लिये उन्होंने वास्तविकता के बाह्य सौंदर्य की उपेक्षा की व उसके पीछे छिपी हुई अंतःसृष्टि का—जो फ्राइड के समान, उनके विचारों से भी अटल सत्य थी—आविष्कार किया। क्ली को सत्य का दर्शन अंतर्मन में हुआ। १९०९ में उन्होंने लिखा था "........सृष्टि के प्रत्यक्ष निरीक्षण से चित्रकार की रंगों के प्रति भावना व प्रतिक्रिया अधिक महत्व रखती हैं"।

क्ली का जन्म १८७९ में बर्न में हुआ। उनके पिता जर्मन संगीतकार थे व माता ने फ्रांस में संगीत का अध्ययन किया था। इस प्रकार जर्मन व फ्रेंच दोनों संस्कृतियों का क्ली पर प्रभाव था व संगीतमय वातावरण में उनका बचपन बीता। वे स्वयं उत्कृष्ट वायोलिन-वादक थे एवं संगीत का उनकी कला के विकास की दिशा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बचपन से ही उनकी चित्रकला, संगीत व काव्य में रुचि थी। १८९८ में वे म्युनिक गये, जिस समय वहां युगेंटस्टिल व नैसर्गिकतावाद का जोर था। १९०२ से १९०६ तक वे बर्न में रहे। इस काल में उन्होंने एचिंग द्वारा अनोखी अतिमानुप आकृतियों को चित्रित करके मनोवैज्ञानिक चित्रण को आरम्भ किया। होडलर, रेदों, गोया व ब्लेक के चित्रों को देखकर उनको विश्वास हुआ कि आंतरिक सृष्टि को प्रभावी ढग से साकार करने का चित्रकला एक उत्कृष्ट माध्यम हो सकती है। १९०६ में वे फिर म्युनिक गये जहां उन्होंने एन्सोर की ग्राफिक कृतियां देखीं व उनका यह विश्वास दृढ़ हो गया। १९०८ में ही उनको वान गो के चित्र देखने का मौका मिला व विशुद्ध रंगों से युक्त निर्भीक तूलिका संचालन के अभिव्यक्ति के सामर्थ्य की उनको प्रतीति हो गयी। १९०९ में देखे सेजान के चित्रों से भी उन्होंने रंगों के अपार सामर्थ्य को अनुभव किया। किंतु १९११–१२ में कान्डिन्स्की, मार्क व देलोने से हुए संपर्क से ही उनकी कला के विकास को स्वतन्त्र व सुनिर्णीत दिशा प्राप्त हुई। कान्डिन्स्की ने उनको रंगों के मौलिक सौंदर्य से परिचित कराया व मार्क ने अंतःसृष्टि के सत्य एकात्म स्वरूप के विचार को चेतना देकर, उनके कलात्मक ध्येय को सुदृढ़ कराया।

आरम्भिक काल में अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के हेतु क्ली रेखांकन पर अनिवार्य रूप से बल देते परन्तु धीरेधीरे उनको ज्ञात हुआ कि रंगों का प्रयोग भी अपने इस लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हो सकता है; अब क्ली ने रंगों का ग्राफिक ढांचे के अन्तर्गत प्रयोग शुरू किया। रंगों के सामर्थ्य को पहचानने में कान्डिन्स्की के मार्ग-दर्शन के अतिरिक्त, देलोने के सुरीलवाद के अध्ययन से क्ली को बहुत लाभ हुआ; यह अध्ययन उन्होंने १९१२ में पैरिस जाकर देलोने के कार्यकक्ष में किया।

१९०१ में क्ली ने इटाली की यात्रा की। आरम्भ से ही क्ली कला में नियम-बद्धता व परम्परा के विरोधी थे व स्वतंत्र रूप से पूर्ण व्यक्तिगत कल्पना से अंतःसृष्टि चित्रित करने की आकांक्षा रखते। उनका पक्का विश्वास था कि कला के मूल स्रोतों का उद्गम जीवन की गहरी अनुभूतियों में ही है। १९०३ में उन्होंने अपनी दैनन्दिनी में लिखा "सृजनशील अभिव्यक्ति की प्रमुख शर्त यह है कि कलाकार को जीवन का पूर्ण ज्ञान हो गया हो।........चित्रण में महान् विचारों का होना विशेष महत्व नहीं रखता, बल्कि सच्ची अनुभूति को ही महत्व है।........इन्द्रियों को सचेत रखना चाहिये जिससे जीवन के विरोधी तत्वों का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाये; उस ज्ञान को आत्मसात् करने के लिए उसका चरम सीमा तक अनुसरण करना चाहिये।......ज्ञान का विकास स्वाभाविक ढंग से होना चाहिये; उसको सूत्रों में नहीं बांधा जा सकता।........मैं बच्चे के समान अनभिज्ञ होना चाहता हूं.......तब मैं अंकनपद्धति के बारे में कुछ विचार किये बिना कुछ बना सकूंगा........कुछ छोटीसी कृति जल्द व संक्षेप में"। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि क्ली नियमों व सूत्रों से घृणा करते व पूर्ण रूप से सहजज्ञान से अंतर्मन की प्रेरणाओं द्वारा चित्रण करना चाहते। उनकी निष्ठा थी कि पूर्ण सत्य या सत्य सत्य[10] अंतःसृष्टि में ही छिपा रहता है।

१९०२ से १९०६ तक वे म्युनिक में रहे और इस काल में उन्होंने ग्राफिक कृतियां बनायीं जिनमें व्यंगोक्ति व उपहास के भावों को जागृत करके निराशा पर आवरण डालने के प्रयत्न किये हैं। अंकनपद्धति के विचार से ये कृतियां प्रभुत्वपूर्ण हैं। उन्होंने कलाविद्यालयीन नैसर्गिकतावादी ढंग से भी कुछ व्यक्तिचित्र बनाये। हॉफमन, पो, गोगोल व बोदेलेर जैसे लेखकों के साहित्य के अध्ययन से एवं गोया, ब्लेक, रेदों, कुबिन व एन्सोर जैसे चित्रकारों की कलाकृतियों के परिशीलन से इस काल में क्ली ने अपनी कला की नींव मजबूत की। म्युनिक में वान गो, सेजान, मातिस, पिकासो व मुंख की प्रदर्शनियों को देख कर क्ली को रंगों के स्वाभाविक प्रभाव व भावनोद्दीपन के सामर्थ्य की प्रतीति हो गयी किंतु १९१२ तक उनकी कृतियों में रंगों को विशेष स्थान नहीं था और तब तक उन्होंने अपनी अधिकतर कृतियां काले व श्वेत प्रभाव में ही चित्रित कीं। १९१२ में वे दूसरी बार पैरिस गये जहां उनको सेजान, मातिस व घनवादी चित्रकारों की कृतियां देखने का मौका मिला व तब रंगों के काव्य को वे पूर्ण रूप से समझ गये। उसी साल उन्होंने 'ब्लौ राइटेर' की प्रथम प्रदर्शनी में भाग लिया। 'ब्लौ राइटेर' व कान्डिन्स्की के मार्गदर्शन से उनकी कला को नयी चेतना मिली किंतु वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य उनकी कला का ध्येय कभी नहीं हुआ। १९१४ में उन्होंने माक के साथ ट्यूनिशिया की यात्राएं कीं। यहां उन्होंने जलरंगों में दृश्य-चित्र बनाये जिनमें कल्पनाशक्ति का मुक्त संचार है व संयोजन व आकारों पर घनवाद का प्रभाव है। इन चित्रों के साथ क्ली की कला में रंगों ने प्रवेश किया; उन्होंने अपने यात्रावर्णन में लिखा है "रंगों ने मुझे बंदी किया है; मैं रंगों के साथ एकरूप हो गया हूं" उत्तरी

अफ्रीका की इस यात्रा से रंगों के प्रति उनका आकर्षण बढ़ कर उनकी कल्पनाशक्ति को एक नया माध्यम प्राप्त हुआ एवं उन्होंने पहली बार चमकीले जलरंगों में काल्पनिक, रोमांचकारी दृश्यचित्र बनाये जिनमें परीकथाओं या अरेबियन नाइट्स के समान अद्भुत वातावरण का प्रभाव है ।

क्ली एक ऐसे चित्रकार थे जो दृश्य, श्रव्य या ऐंद्रिक ज्ञान को अपनी कल्पना शक्ति द्वारा रूपांतरित करते जो उनके विचारों से अंतिम सत्य का साक्षात्कार करने का एकमेव मार्ग था। इसके बारे में उन्होंने लिखा है "निसर्ग के गर्भ में–जहां सृष्टि का आदिम साम्राज्य फैला हुआ है–विश्व की कुंजी सुरक्षित है; किंतु वहां हर कोई पहुंच नहीं सकता । हर आदमी को अपने दिल की आवाज सुननी होगी ।....अपना धड़कता हुआ दिल आदिम के मूल स्रोत का अंतर्भेद करना चाहता है । इस क्रिया को हम स्वप्न, कल्पना या मायाभ्रम कुछ भी समझे; उसको तभी महत्व है जब वह उचित लचीले माध्यम के जरिये साकार होता है" । इस विधान से स्पष्ट है कि क्ली सचेतन व अचेतन को समान महत्व देते थे ।

क्ली ने चमकीले रंगों की सुसंगत रचना व ज्यामितीय आकारों एवं गतिपूर्ण रेखाओं का भावनात्मक प्रयोग करके कल्पनाचित्रों की निर्मिति शुरू की । उन्होंने कला के गणितीय तत्व की ओर ध्यान दिया और वस्तुनिरपेक्ष गुणों का कलाकृति में अधिक से अधिक विकास करने के प्रयत्न किये । इसके विपरीत कभी उन्होंने कलाकृति में, कल्पना को स्वाभाविक ढंग से विकसित होने दिया; आकस्मिक, अनपेक्षित प्रभावों से कलाकृति को भावनापूर्ण बनाया व उनके चित्र ऐसे दिखायी देने लगे जैसे कि उनके अन्तर्मन के बगीचे में अपने आप खिले हुए फूल । उनके काल्पनिक चित्रों का सृजन इतना स्वाभाविक प्रतीत होता है कि उन्होंने ये चित्र बनाये हैं ऐसे समझने की अपेक्षा हम अधिक उचित रूप से यही कह सकते हैं कि उनके अंतर्मन की दुनिया चित्ररूप लेकर प्रकट हो गयी है ।

१९११ के करीब उनकी कलाशैली निश्चित रूप प्राप्त कर चुकी और तब से वे अपने बनाये हुए चित्रों की सूची रखने लगे । उन्होंने अपने जीवनकाल में करीब ९००० कलाकृतियों का निर्माण किया जिनमें से आरम्भिक काल में बनायीं कृतियां अधिकतर रेखाचित्र हैं व धीरेधीरे उनका स्थान तैलचित्रों व अन्य माध्यमों में बनाये चित्रों ने ले लिया ।

१९१५ में उनके परममित्र माक की रणक्षेत्र पर मृत्यु होने से उनको गहरा धक्का पहुंचा । उन्होंने अपनी दैनंदिनी में लिखा है "संसार में भयानकता जैसी बढ़ती जाती है वैसी कला अधिक वस्तुनिरपेक्ष बनती जाती है, जबकि संसार में शांति प्रस्थापित होने से यथार्थवादी कला का निर्माण होता है"[47] । उनका यह विधान वस्तुनिरपेक्ष कला के जन्म व विकास को समझने की दृष्टि से मार्गदर्शक है । १९१६ में मार्क की युद्ध में मृत्यु हुई । दोनों परम मित्रों की वियोग-यातनाओं ने उनकी स्मृति

को अंततक विकलित किया। उनकी कला में मृत्यु की क्रूरता का कई जगह परिणामकारक चित्रण है। १९२१ में वाल्टर ग्रोपियस के निमन्त्रण पर वे वेमार में 'बौहौस' कलासंस्था में अध्यापक के रूप में काम करने लगे व १९३० तक उसी स्थान पर रहे। यहां पुनर्जागरणकालीन निर्माणशालाओं के समान वातावरण में चित्रकार, मूर्तिकार व वास्तुकार सहयोग की भावना से कार्य करते। यहां क्ली ने विद्यार्थियों के लिए कला के मूलतत्वों को संक्षेप में लिख कर 'अध्यापनशास्त्र की अभ्यासपुस्तिका'[48] नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। 'सृजनशील विचारप्रणाली'[49] शीर्षक से प्रकाशित हुए निबन्ध में उन्होंने लिखा है "सृजन-प्रेरणा अचानक ज्योति के समान सचेत होती है व हाथों द्वारा पट पर उतरती है व फैलती जाती है......फिर से वापस आ कर अपने उद्गमस्थान आंख व मन में विलीन हो जाती है"। 'आधुनिक कला पर'[50] निबन्ध में उन्होंने कलाकार को वृक्ष की उपमा देते हुए लिखा है "कलाकार में ऐसी उत्कृष्ट दिग्दर्शन-शक्ति है कि वह विविध अनुभूतियों व घटनाओं को सुरचित रूप दे सकता है...निसर्ग व जीवन में यह जो दिग्दर्शन-शक्ति है उसकी तुलना मैं वृक्ष की जड़ से करूंगा।...जड़ के द्वारा सारतत्व कलाकार में उतरता है व उसमें से उसकी आंख तक पहुंचता है। वृक्ष के तने के समान सारतत्व से ओतप्रोत कलाकार अपनी कल्पना को–वृक्ष के फल व फूलों के समान कृतियों में उतार देता है। वह बहुत ही विनम्रता से कार्य करता है व शिखर पर दिखायी देनेवाला सौंदर्य उसका निर्माण नहीं है; वह केवल उसके द्वारा शिखर तक पहुंच कर विराजमान होता है"।

क्ली का विश्वास था कि कलासृजन के पीछे वैज्ञानिक सुसूत्रता है एवं उस विश्वास को उन्होंने शब्दों द्वारा सैद्धान्तिक रूप दिया। क्ली का स्पष्ट मत था कि कला में प्रयत्न व परिश्रम को कोई स्थान नहीं है किंतु उन्होंने अतियथार्थवाद के इस सिद्धांत को नहीं स्वीकारा कि अचेतन की स्वयंचालित क्रियाओं से कलाकृति का निर्माण हो सकता है। उनकी धारणा थी कि सृजनक्रिया अतिजटिल है एवं उसमें निरीक्षण, चिंतन व अंकनपद्धति द्वारा कला के मूल तत्वों पर प्रभुत्व आवश्यक है।

क्ली के चित्र उनके विचारों की सत्यता के सुंदर परिचायक हैं। उनके 'सितारों की ओर', 'कुल्हाड़ी से काटा हुआ शीर्ष', व 'अवकाश में वस्तुसमूह'[51] चित्रों में ज्यामितीय आकारों का कल्पना के साथ संयुक्त प्रयोग है; रंगसंगति आकर्षक व योजनापूर्ण होकर उसमें भावनोद्दीपन का सामर्थ्य है। 'पीले पक्षियोंवाला प्रकृति-चित्र', 'नाविक सिंदबाद' व 'निवास आर'[52] चित्रों में परीकथा के समान अद्भुत जादूनगरी के दर्शन के साथ चित्रकार के संयोजन, रेखांकन व संगीत के समान चित्ताकर्षक रंगसंगति की योजना के कौशल से भी दर्शक परिचित होता है। 'खेत की उपज', 'बगीचे का नक्शा' व 'चरागाह'[53] में वनस्पतिजीवन का अंतर्भेदी दर्शन है तो 'नट' व 'लाल-पोशाकवाले नर्तकों का नृत्यनाट्य'[54] में नटों व नर्तकों के जीवन का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। क्ली की असाधारण अन्तर्भेदी प्रतिभा की महानता इसमें है कि उनकी

काल्पनिक परीकथाओं के समान अद्भुत चित्रसृष्टि में भी यथार्थसृष्टि के आंतरिक तत्वों का सूक्ष्मबुद्धि से प्रकटीकरण किया है। इस असामान्य प्रतिभा के कारण क्ली कला के इतिहास में अमर हुए व उनका भविष्य की कला पर काफी प्रभाव पड़ा। किंतु उनकी कला की सृजनात्मक प्रक्रिया इतनी पूर्णरूप से वैयक्तिक थी कि उनकी कला का बाद में कोई भी कलाकार अनुसरण नहीं कर पाया।

क्ली की कलाशैली जैसी स्वतंत्र व वैयक्तिक है उसी प्रकार उनके चित्रों के विषय भी पूर्ण रूप से उनकी निजी कल्पना के आविष्कार हैं। क्ली की बहुरंगी चित्रसृष्टि की विविधता को देख कर आश्चर्य होता है। उन्होंने संसार के विभिन्न अनुभवों को स्वतत्र, संवेदनाशील व्यक्तित्व के द्वारा ग्रहण किया और असाधारण कल्पनाशक्ति से उनको रूपायित किया। किंतु उनकी चित्रसृष्टि को काल्पनिक सृष्टि कहना अनुचित होगा क्योंकि अनैसर्गिक रूप में चित्रित की गयी उनकी चित्रसृष्टि में निसर्ग के आंतरिक सत्य का अधिक निकट दर्शन है जो हमें नैसर्गिकतावादी कलाकृतियों में नहीं मिलता; उनके रेखांकित आत्मचित्र 'विचारमग्न'[55] में उनकी अंतर्मुखवृत्ति का जो परिणामकारक दर्शन है वह हमें उनके छायाचित्र में दिखायी नहीं देता। यही बात उनके 'शहर की यंत्रणा', 'परिवार की सैर', 'खोज का स्थान'[55] आदि चित्रों के बारे में कही जा सकती है। निसर्ग के जन्म-विकास-विनाश के तत्वों का साक्षात्कार करने में उनके चित्र जितने सफल हुये उतने निसर्ग के बाह्य रूप का हुबहू अंकन करके बनाये गये नैसर्गिकतावादी चित्र नहीं हो सकते। इस संबंध में गेआँर्ग श्मिट के विचार मननीय हैं 'क्ली की सृष्टि में मानवीय शरीरों एवं चेहरों का विभिन्न भावों के साथ दर्शन है; मछलियों से लेकर हाथियों तक सभी प्राणिमात्र को यहां देख सकते हैं; यहां हर प्रकार के फल, फूल, पौधे व वनस्पतियां हैं; भिन्न भौगोलिक रूपों के यहां दृश्य चित्र हैं; प्रकृति की भिन्न अवस्थाओं, घरों के अंतर्भागों एवं बाह्य दर्शनों व विविध प्रकार के वाहनों को आप यहां देख सकते हैं। क्ली की कला में, भूत, वर्तमान व भविष्य, सब का समावेश है। भूतल के प्राणियों, मानवों व वनस्पतियों की सृष्टि को अपर्याप्त मान कर क्ली ने ऐसी सृष्टि का निर्माण किया जिसमें दिखायी देने वाले अनोखे प्राणियों, मानवों व वनस्पतियों को आप प्रत्यक्ष सृष्टि में नहीं देख सकते। किंतु उनकी कल्पनासृष्टि के बाह्य रूप को छोड़ कर यदि हम उनकी चित्रित वस्तुओं के घनिष्ट पारस्परिक संबंध का विचार करेंगे, उनके वैचित्र्यों, उनकी स्वभाव विशेषताओं, उनकी बदलती हुई अवस्थाओं, उनके जन्म, विकास व विनाश, उनके अस्तित्व व भाग्य के अर्थ को समझने का प्रयत्न करेंगे तो ज्ञात होगा कि क्ली कला द्वारा हमें सृष्टि के आंतरिक रहस्यों का आविष्कार होता है"।

भिन्न विषयों को ले कर क्ली ने उनको विविध रूपों में अंकित किया किंतु दर्शक महसूस करता है कि जहां, जिस भाव से—स्नेह, उपहास या भय—व जिस रूप में विषय-वस्तु को क्ली ने चित्रित किया है वही समुचित है। क्ली ने भिन्न माध्यमों व

पद्धतियों को—सूचीकला, पच्चीकारी, रंगीन कांचचित्र, दीवारपर्दा वगैरह—प्रयोगान्वित किया व स्वाभाविक सरलता व पूर्ण प्रभुत्व से कलानिर्मिति की।

क्ली ने ऐंद्रिक ज्ञान के पीछे छिपे आत्मिक रूप को पहचाना और वैयक्तिक प्रतीकों से, काल्पनिक रूप में पुनश्च साकार किया। उनकी यह सृजनक्रिया पूर्णरूप से आत्मिक साधना थी एवं इस विचार से वे पश्चिमी कलाकारों से पूर्वीय कलाकारों के अधिक निकट थे। उनकी कला की तुलना रवींद्रनाथ टैगोर की कला से करना विशेष रूप से उद्बोधक है। अंकनपद्धति व माध्यम में उन्होंने स्वयं को सीमित नहीं रखा, एवं दृश्य, श्रव्य व स्पर्शीय, सभी अनुभूतियों को समान रूप से साकार किया क्योंकि सृजनक्रिया की मौलिकता उनकी सर्वव्यापी श्रद्धा थी।

क्ली ने आधुनिक कलाकारो को अंतर्मन की कल्पनाशक्ति व आंतरिक प्रेरणाओं पर निर्भर रह कर, एवं माध्यम के स्वाभाविक वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य का विकास कर के कला निर्मित करने का संदेश दिया जो आधुनिक कला के विकास में बड़ा सहायक हुआ यद्यपि अतीव आत्मनिष्ठ होने के कारण उनकी कला का अनुसरण अन्य कलाकारों के लिये असंभव था।

डेर स्टुर्म व ओस्कर कोकोश्का :

समकालीन बौद्धिक व कलात्मक विचारप्रवाहों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से हर्वार्त वाल्डेन ने १९१० में 'डेर स्टुर्म'[५७] पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इस पत्रिका ने जर्मन अभिव्यंजनावादी कला के विकास में काफी सहायता की। वाल्डेन का कोकोश्का से विएन्ना में परिचय हुआ व वे उनको बर्लिन ले आये। कोकोश्का 'स्टुर्म' पत्रिका के लिये हर सप्ताह एक व्यक्तिचित्र बनाते; ये व्यक्तिचित्र अभिव्यंजनावादी शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उस पत्रिका में एक साल बाद ब्रूके चित्रकारों की व दो साल बाद 'ब्लौ राइटेर' चित्रकारों की कलाकृतियां प्रकाशित हुईं; कान्डिन्स्की के आरंभिक वस्तुनिरपेक्ष रेखाचित्र, पौल क्ली के रेखाचित्र, मार्क के आलोचनात्मक लेख, भविष्यवादी कलाकारों के घोषणापत्र की पुनरावृत्ति एवं देलोने व लेजे के संदेश प्रकाशित हुए। १९१२ में वाल्डेन ने पत्रिका से सलग्न कलावीथिका की संस्थापना की जहां नवीन कलाकारों की कृतियां प्रदर्शित होने लगीं। १९१३ में फ्रेंच सलों दातोम का अनुकरण कर के वसंत-प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् स्टुर्म का स्वतंत्र दृष्टिकोण नष्टप्राय सा हो गया। स्टुर्म की वजह से अभिव्यंजनावादी चित्रकार कोकोश्का जर्मन कलाक्षेत्र में तुरन्त ख्यातनाम हुए।

ओस्कर कोकोश्का (ज. १८८६) ने १९०४ में विएन्ना के 'उपयुक्त-कला विद्यालय'[५८] में कला की शिक्षा प्राप्त की। उस समय वहां युगेंटस्टिल का प्रभाव था। १९०८ में उनकी स्वप्नमग्न लड़के,[५९] शीर्षक से लियोग्राफ्श की मालिका प्रकाशित

हुई जिस पर क्लिम्ट व बिअर्डस्ले का प्रभाव था। किंतु १९०७ में बनाये हुए उनके व्यक्तिचित्र व वस्तुचित्र पूर्णतया स्वतंत्र शैली के थे। उनके व्यक्तिचित्रों में चित्रविषय की व्यक्तिविशेषता की अपेक्षा चित्रकार की आत्मिक अभिव्यक्ति पर अधिक बल था। ये चित्र चित्रकार की मानसिक अवस्था के दर्पण हैं और उनसे चित्रित व्यक्ति के बारे में कोई निर्णय लेना मुश्किल है। कोकोश्का के रैनोल्ट, क्रोस व आडोल्फ लुस के व्यक्तिचित्रों से स्पष्ट है कि चित्रकार ने अपने मनोविज्ञान के अनुकूल, चित्रित व्यक्तियों को अवस्थांतरित किया है एवं वे सब चित्रकार के अहंकारपूर्ण अनुशासन के पराधीन दासमात्र हैं। अभिव्यक्ति के आवेश से, कोकोश्का के व्यक्तिचित्रों की रेखाओं को असाधारण ऐंठन व गतित्व प्राप्त हो गये हैं। १९०९ व १९१० में कोकोश्का ने स्विटजर्लेंड जा कर प्रथम बार प्रकृति-चित्रण किया। प्रकृति-चित्रों में भी, उन्होंने प्राकृतिक सौंदर्य व काव्य की पूर्ण उपेक्षा करके, अभिव्यंजनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। कोकोश्का ने स्वयं कहा था "चित्रकला की केवल तीन मितियां नहीं होतीं, बल्कि चार होतीं हैं; चतुर्थ मिति है, मेरी आत्मा का प्रकटीकरण"[60]। उनकी कला में प्रतीत आंतरिक व्याकुलता का कारण जैसे वैयक्तिक था वैसे उसमें समकालीन वैचारिक अशांति की प्रतिध्वनि भी थी जिससे वे पुस्तकों, नाटकों व मासिकपत्रिकाओं से परिचित हुए थे। साहित्यिकों में से डोस्टोव्स्की व स्ट्रिंडबर्ग एवं चित्रकारों में से तुलुज लोत्रेक व होडलर उनके प्रिय कलाकार थे। उनसे कोकोश्का को विश्वास हुआ कि कला के द्वारा सुप्त भावनाओं व आंतरिक विचारों को प्रभावी रूप में व्यक्त किया जा सकता है एवं उसमें प्रतिक्रियाओं को जागृत करने का सामर्थ्य है।

बर्लिन आने के बाद उन्होंने जो व्यक्तिचित्र बनाये उनमें व्यक्तियों की स्वभाव-विशेषताओं का भी दर्शन है जिसका 'इवेत ग्विल्वेर का रेखाचित्र'[61] उत्कृष्ट उदाहरण है। १९१० से १९१४ तक उन्होंने लियोग्राफ्स की मालिका व कई पुस्तक-चित्र बनाये। जिनमें उनकी आंतरिक व्यथा व आत्मपरीक्षण के भाव स्पष्ट हैं। उनकी कलाकृतियों से उनके वैयक्तिक जीवन की घटनाओं का कई जगह स्पष्टीकरण किया जा सकता है। कोकोश्का की कला की प्रदर्शनवृत्ति के पीछे बहुंशतः उनका आत्मपरीक्षण का हेतु कारणीभूत था।

१९११ में वे वापस विएन्ना गये जब तक उनकी कला सौंदर्यात्मक गुणों व प्रभावी मानवतावादी अभिव्यक्ति को प्राप्त कर चुकी थी। अब उनके चित्रों में केवल आंतरिक व्यथा का दर्शन ही नहीं अपितु रंगों के स्वाभाविक सौंदर्य व माध्यम के लचीलापन व व्यक्तिचित्रों में मानवीय स्वभाव विशेषताओं–का प्रभाव दृष्टिगोचर हो गये। १९१२ में बनाया 'दो व्यक्तियों का चित्र'[62] इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इस चित्र में–चित्रकार स्वयं एवं आमा मालर दोनों के चेहरों पर भिन्न व्यक्तित्वदर्शी भाव हैं; रंगसंगति, संयोजन व तूलिकासंचालन के विचार से चित्र श्रेष्ठ है। इसके

बाद उन्होंने अपना प्रसिद्ध चित्र 'आंधी'[63] बनाया जिसमें उन्होंने [illegible] को [illegible] नाटकीय ढंग से चित्रित किया है।

१९१९ में वे ड्रेस्डेन अकादेमी में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। यहां उन्होंने कई व्यक्तिचित्र बनाये किंतु अब उनके सम्मुख कलात्मक ध्येय था। इसी समय चित्रित 'नीले पोशाकवाली महिला'[64] रंगसंगति के आकर्षण व कलात्मक [illegible] की अनुभूति के उद्देश्य से बनाया गया। यह चित्र एक गुड़िया को देखकर बनाया गया जिससे स्पष्ट है कि वे कला के मानवतावादी दृष्टिकोण से मुक्त होना चाहते थे। उसी प्रकार उनके चित्र 'संगीत का सामर्थ्य'[65] को उन्होंने चमकीले हरे, लाल व जामुनी रंगों में व गतिपूर्ण तूलिका संचालन से चित्रित किया। ड्रेस्डेन-काल में उन्होंने प्रकृतिचित्रण पर विशेष ध्यान नहीं दिया यद्यपि उन्होंने ऊंचाई के दृष्टिकोण से शहरों, नदी किनारों पहाड़ों व बादलों से युक्त आसमान के विशुद्ध रंगों में कुछ चित्र बनाये।

१९२४ में ड्रेस्डेन छोड़ कर उन्होंने फ्रान्स, स्पेन, इटाली, इंग्लैंड, इजिप्त आदि विदेशों की यात्राएं कीं और वहां के प्रमुख व प्रसिद्ध शहरों के आधुनिक ढंग के दृश्य-चित्र बनाये जिससे वे काफी ख्यातनाम हुए। इन दृश्यचित्रों में स्थानों की भौगोलिक विशेषताओं व सामाजिक जीवन का परिणामकारक दर्शन है। यात्राओं में उन्होंने कुछ विदेशी जाति-विशेषताओं के निर्देशक व्यक्तिचित्र भी बनाये। १९३४ में उन्होंने प्राग को निवासस्थान बनाया किंतु १९३८ में हुए नात्सी आक्रमण से उनको इंग्लैंड भागना पड़ा और वे लंदन में रहने लगे।

प्रकृति व मानव का आंतरिक भावदर्शन कोकोश्का की कला का लक्ष्य था; उसकी पूर्ति में उन्होंने उन्मुक्त होकर माध्यम का अभिव्यक्तिपूर्ण प्रयोग किया व ऐसी कृतियों का निर्माण किया जो अपने ढंग की उत्कृष्ट अभिव्यंजनावादी कलाकृतियां मानी जाती है।

कान्डिन्स्की (१८६६–१९४४)

कान्डिन्स्की वस्तुनिरपेक्ष कला के महान प्रणेताओं में थे। बीसवीं शताब्दी के आरंभ से योरपीय कलाकार एक ऐसी मंजिल की ओर मार्गक्रमण कर रहे थे जहां कला वास्तवसृष्टि के दृश्य रूप के बंधन से मुक्त हो जाती है एवं चित्रण का वस्तुसादृश्य का उद्देश्य समाप्त हो जाता है। इस मार्गक्रमण में कान्डिन्स्की ने सिद्धांतों व प्रात्यक्षिक प्रयोगों द्वारा महत्वपूर्ण योगदान किया।

कान्डिन्स्की का जन्म मास्को में हुआ। विद्यार्थी-अवस्था में उन्होंने कानून, राजनैतिक अर्थशास्त्र व सांख्यिकी का अध्ययन किया। आयु के २९वें साल से उन्होंने प्रभाववादी चित्रकारों की प्रदर्शनी देखी व वकालत छोड़कर चित्रकला का अध्ययन शुरू किया। १८९६ में वे म्युनिक गये व प्रथम आंटोन आत्स्वे से व बाद में स्टुक से

चित्रकला की शिक्षा प्राप्त की। १९०० से उन्होंने युगेंटस्टिल व प्रभाववाद से संमिश्रित शैली में चित्रण शुरू किया। १९०२ में वे कुछ समय तक पैरिस में रहे व उसके पश्चात् ट्यूनिशिया व इजिप्त में रहे। १९०६ में वे फिर से एक साल तक पैरिस में रहे। वोन्नार, वुइलार, वान गो, सिन्याक, सेजान व मोने के उत्तरकालीन चित्रों के प्रभाव को क्रमशः आत्मसात् करके १९०८ के करीब वे फाव पद्धति के चित्र बनाने लगे जिनमें वस्तुसादृश्य की अपेक्षा रंगों की चमक, स्वच्छंद तूलिकासंचालन व गतिपूर्ण वाह्यरेखा आदि विशुद्ध कलात्मक गुणों पर अधिक बल दिया है। बावारिया की लोककला व रशियन लोककला के चमकीले अलंकरण के प्रभावों से उनको विशुद्ध दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। उनके इस काल के काल्पनिक चित्रों की चमकदार रंगसंगति के सामने प्रेक्षक चित्रविषय को भूल जाता है।

कान्डिन्स्की की आरंभ से ही धारणा थी कि रंगों द्वारा संगीत के समान वस्तुनिरपेक्ष, सौंदर्यपूर्ण रचना की जा सकती है। आरंभ में वे संगीतकार बनना चाहते थे एवं यह बात उनकी कलात्मक अभिरुचि की दिशा पर काफी प्रकाश डालती है। एक रोज उन्होंने जब बाहर से आकर अपने कार्यकक्ष में प्रवेश किया तब उनको तिपायी पर एक बहुत ही सुन्दर चित्र दिखायी दिया जो उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। वास्तव में, वह उन्हीं की कलाकृति थी, जो बाहर जाते समय वे भूल से उलटी रख गये थे। इस आकस्मिक घटना से उनको विश्वास हुआ कि सौंदर्यात्मक गुणों के विकास के लिये चित्र में किसी वस्तु का दर्शन आवश्यक नहीं है; बल्कि वस्तु-सादृश्य के प्रयत्नों में चित्र के विशुद्ध कलात्मक गुणों को हानि पहुंचाती है। १९१० में उन्होंने अपना प्रथम वस्तुनिरपेक्ष चित्र बनाया; किंतु इस चित्र में भी कुछ अस्पष्ट वस्तु-साहचर्य है।

१९१० में उन्होंने 'कला में आत्मिकता' नामक पुस्तक लिखी जो वस्तुनिरपेक्ष कला एवं अभिव्यंजनावादी कला के अध्ययन में बहुत महत्व रखती है। इस पुस्तक का प्रमुख सिद्धांत यह है कि "रंगों व आकारों की सुसंगति का आधार मानवीय आत्मा से सोद्देश्य संपर्क ही हो सकता है"[66]। इस विचार से कलाकार की सृजनक्रिया से वास्तविकता को पूर्ण रूप से हटाना अनिवार्य नहीं है। कान्डिन्स्की के १९१० से १९१२ तक बनाये चित्रों में भी वस्तुओं का अस्पष्ट आभास है। १९१२ के बाद ही वे अपने चित्रों से वस्तु-सादृश्य को पूर्णतया हटा सके। १९१० से वे अपने चित्रों को केवल 'संयोजन'[67] शीर्षक देकर प्रदर्शित करने लगे। १९१२ में कान्डिन्स्की ने घनवाद, सुरीलवाद व भविष्यवाद के आकारों व रचना के तत्वों को अपनी कृतियों में स्थान देना शुरू किया एवं वे पूर्णतया वस्तुनिरपेक्ष बन गयीं। किन्तु कान्डिन्स्की की वस्तुनिरपेक्ष कृतियों में भी ऐसी आत्मिकता है कि उनको 'वस्तुनिरपेक्ष कृतियां कहने के बजाय 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजना'[68] कहना अधिक उचित होगा। कला के आत्मिक तत्व' के बारे में उन्होंने लिखा है "कला के दो तत्व हैं—आंतरिक व बाह्य; जो आंत-

रिक है वह है कलाकार की आत्मिक भावना। आंतरिक तत्व का होना अनिवार्य है नहीं तो कलाकृति एक कपटमात्र रह जाती है। आंतरिक तत्व से कलाकृति का रूप निश्चित किया जाता है'। उनके विचारों के अनुसार आत्मिक को रूप में प्रत्यक्षित करने में वास्तविक रूप का होना आवश्यक नहीं है।

कान्डिन्स्की ने कलात्मक प्रेरणाओं का निम्न वर्गीकरण किया है; दृश्य वास्तव-सृष्टि से प्राप्त प्रेरणा 'प्रभाव',[69], अन्तर्मन से उत्स्फूर्त प्रेरणा–जो आंतरिक है–'स्वयंस्फूर्त'[70] व क्रमशः विकसित आत्मिक प्रेरणा–जिसका पुनःपुनः साक्षात्कार होता है और जो बुद्धि से सम्पर्क रखती है–'रचना'[71]; तीनों प्रकार की प्रेरणाओं से सृजन-क्रिया सचेत होती है। पहले प्रकार की प्रेरणा से उन्होंने १९१० तक फाव शैली के चित्र बनाये, दूसरे प्रकार की प्रेरणा से उन्होंने १९१० से १९२१ तक वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावादी चित्र बनाये व तीसरे प्रकार की प्रेरणा से उन्होंने १९२१ के बाद रचनात्मक वस्तुनिरपेक्ष चित्रों की निर्मिति की।

१९१४ में कान्डिन्स्की मास्को गये और १९१८ में उनकी मास्को अकादेमी में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति हुई। १९२१ में वे फिर से बर्लिन गये जहां वे क्ली के साथ, बौहौस में प्राध्यापक रहे। यहां उन्होंने वृत्त, वर्ग, त्रिभुज वगैरह ज्यामितीय आकारों से वस्तुनिरपेक्ष रचनाएं कीं। कान्डिन्स्की के ये चित्र रचनावादी कला से मिलतेजुलते हैं किंतु उनमें रचनावाद का आलंकारित्व, औचित्य या उपयुक्ततावादी महत्व नहीं है; उनका एक लक्ष्य है–सृजन के आत्मिक तत्वों का दर्शन।

दोनों विश्वयुद्धों के बीच के काल में कान्डिन्स्की ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृतियों का निर्माण किया जो वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद व रचनावाद के सिद्धांतों के अनुसार अद्वितीय मानी जाती हैं।

१९२५ में उन्होंने 'बिंदु व रेखा से समतल'[72] नाम का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा जिसमें रचना के सिद्धांतों का विवरण है। इसमें भी उन्होंने 'अतार्किक व आत्मिक' के आधारभूत तत्वों के महत्व को स्पष्ट करके लिखा है "आधुनिक कला का जन्म तभी होगा जब हस्ताक्षर प्रतीकों का स्थान ग्रहण कर लेंगे।"[73] कान्डिन्स्की ने वस्तुनिरपेक्ष को प्रतीक का महत्व देकर योरपीय कलाकारों को मूलभूत क्रांतिकारी विचार प्रदान किया।

अभिव्यंजनावाद का उत्तरकाल:—

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् की विप्लवित परिस्थिति में जर्मन कला में स्टुर्म के समान अभिव्यंजनावादी अभिव्यक्ति की सम्भावना थी; किंतु सामाजिक परिस्थिति इतनी अनपेक्षित रूप से कठिन हुई कि उसके दबाव से कलाकारों ने अंतर्मुख वृत्ति छोड़ कर सामाजिक दृष्टिकोण अपनाया। विश्वयुद्ध के उत्तरकालीन सामाजिक व नैतिक अधःपतन से निराशा का वातावरण फैल गया, कलाकारों ने उसके लिये उत्तर-

दायी सत्ताधारी वर्ग की कटु आलोचना शुरू की व पीड़ित वर्ग के दुःखों का परिणामकारक चित्रण किया; अभिव्यंजनावादी कला को नयी समाजोन्मुख दिशा मिली। जी. एफ. हार्टलौब ने इस नयी प्रवृत्ति को 'नव-यथार्थवाद'[74] नाम दिया। इस प्रवृत्ति के कलाकारों की १९२५ में मानैम कलावीथिका में हुई प्रदर्शनी अन्य प्रमुख शहरों में भी दिखायी गयी। फ्रांत्स रोह ने 'उत्तर अभिव्यंजनावाद'[75] पर पुस्तक लिखकर समकालीन नवीन कलाप्रवाह को 'जादूमय यथार्थवाद'[76] नाम दिया। उत्तर-अभिव्यंजनावाद में आरम्भ से ही दो स्पष्ट रूप से भिन्न दृष्टिकोण प्रतीत हुए। जार्ज ग्रोत्स ओटो डिक्स वगैरह चित्रकारों ने व्यंग्योक्तिपूर्ण क्रांतिकारी सामाजिक दृष्टिकोण अपना कर अभिव्यंजनावादी शैली की कलानिर्मिति की जो 'यथार्थ अभिव्यंजनावाद'[77] नाम से प्रसिद्ध हुई; कानोल्ट, श्रिम्फ व मेन्से ने नैसर्गिकतावादी पद्धति की रोमांचक कलाकृतियों द्वारा समकालीन मानव की विह्वल मानसिक अवस्था को प्रकाशित किया।

जार्ज ग्रोत्स (ज. १८९३) ने सामाजिक दृष्टिकोण के यथार्थ-अभिव्यंजनावाद को आरम्भ किया। दादावाद व भविष्यवाद से प्रभावित उनकी कलाकृतियों में अराजक व विनाशक तत्त्वों का दर्शन था एवं कला के परम्परागत नीतिनियमों की उपेक्षा थी; किंतु यथार्थ-अभिव्यंजनावाद का लक्ष्य सामाजिक था जबकि दादावाद एक विनाशवादी प्रवृत्तिमात्र था।

१९१५-१६ में ग्रोत्स के रेखाचित्र प्रकाशित हुए जिन पर पासँ, कुबिन, कोकोश्का व सबसे अधिक क्ली का प्रभाव था। ग्रोत्स को सहजसिद्ध चित्रकला, बालचित्रकला व मूत्रालयों की दीवारों पर अंकित अश्लील चित्रों का स्वाभाविक रेखांकन बहुत पसन्द था और वे वैसा ही सरल, स्वाभाविक रेखांकन करना चाहते। एक ही चित्र में भिन्न घटनाओं को सम्मिलित करना उन्होंने भविष्यवाद से सीखा जिससे वे शहर के कार्यव्यस्त यांत्रिक जीवन को सफलता से अंकित कर सकते और जिसके 'कवि पानिज्जा की शवयात्रा' (१९१७), 'जर्मनी-जाड़े की कहानी'[78] ये उनके चित्र परिणामकारक उदाहरण हैं। १९२० में ग्रोत्स ने दादावाद की मोंताज-पद्धति के साथ रेखांकन का संमिश्रण करके चित्र बनाये। ग्रोत्स ने अपने समय की त्रुटियों, असफलताओं व निंद्य व्यवहारों की अभिव्यंजनावादी चित्रण व रेखांकन द्वारा प्रभावी आलोचना की।

ओटो डिक्स (ज. १८९१) एक अन्य ख्यातिप्राप्त चित्रकार थे। उन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध के रणक्षेत्र पर भयंकर मानवसंहार को अपनी आंखों से देखा जिससे उनकी कल्पनाशक्ति आजीवन व्यथित रही। उनको सब जगह दुःख, आतंक व विनाश दिखायी देते। ऐसी मानसिक अवस्था में कला के सौंदर्यात्मक गुणों का विचार मन में नहीं आ सकता था। वे दादावाद से भी प्रभावित थे एवं रौद्र तथा बीभत्स रसों के निर्माण के लिए दादा मोंताज-पद्धतियों का प्रयोग करते; रंगीन कागज के

टुकड़ों, कांचों, मणियों, पुराने चित्रों आदि को चिपका कर वे घृणाजनक रचनाओं का निर्माण करते। मानव-शरीरों को भूत-प्रेतों के समान भयानक रूप में अंकित कर के उन्होंने वेश्यागृहों के अन्तर्गत दृश्यों व व्यक्तियों के चित्र बनाये। मृत शरीरों, कंकालों व खून-कीचड़ से लथपथ रणक्षेत्र की खाइयों के एंग्रेविन्ज को उन्होंने 'युद्ध' (१९२४) शीर्षक से पुस्तक रूप में प्रकाशित किया।

कानोल्ट व श्रिम्फ के नैसर्गिकतावादी चित्रण में मानवाकृतियों को आकारों में ठोस किंतु आंतरिक मानसिक अवस्था से व्याकुल चित्रित किया है।

माक्स बेकमन (१८८४–१९५०) :– विश्वयुद्ध के पश्चात्कालीन मानव की आंतरिक अवस्था का सबसे परिणामकारक चित्रण बेकमन ने किया। उनकी कला को अभिव्यंजनावादी रूप प्राप्त होने का प्रमुख कारण युद्धजनित परिस्थिति थी। आरम्भ में उन्होंने 'बर्लिन जेचेसिग्रोन' पद्धति के प्रभाववादी चित्र बनाये किंतु शीघ्र ही जार्ज ग्रोत्स के समान यथार्थ-अभिव्यंजनावाद को निजी अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल अनुभव करके अपनाया। युद्धजनित परिस्थिति से वास्तविकता के सत्यस्वरूप को उन्होंने निकट से देखा।

बेकमन की कला में केवल मानवीय दुःखों की आत्मिक अभिव्यक्ति नहीं है; अवकाश की अनंत गहराई में, वस्तुओं के स्पष्ट व्यक्तित्वदर्शी आकारों में उनको आध्यात्मिक अनुभूति हुई। उनके लिये अनंत अवकाश अज्ञात शक्ति का निवासस्थान था। ऐसे निराकार अवकाश में साकार वस्तु का, निर्गुण में सगुण का, व अनिश्चित में सुनिश्चित का स्थापन समस्यापूर्ण आत्मिक सृजनक्रिया थी जिसकी केवल सौंदर्यात्मक गुणों के विचार से कार्यसिद्धि नहीं हो सकती थी। इस विचार से बेकमन आत्मतत्ववादी चित्रकार थे। बेकमन के लिए चित्रकला श्रद्धायुक्त साधना थी। बेकमन कहते "मेरे उदात्त आंतरिक गणित द्वारा अवकाश की कल्पना व वस्तुजगत् के दृश्य-प्रभाव को रूपांतरित करना मेरा स्वप्न है"। वे यह भी कहते "यदि हम अदृश्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं तो हमको दृश्य की अन्तिम गहराई तक पहुंचना होगा"।

बेकमन की कला में विषय का भावदर्शन बहुत ही महत्व रखता है; वे केवल आलंकारिता या 'कला के लिए कला' के स्पष्ट विरोधी थे। उनके द्वारा चित्रित मानवाकृतियां रचनावादी सृजन के लिए बहानामात्र नहीं थीं; वे मानवजीवन के आंतरिक रहस्य की ओर संकेत करती हैं। कहानी या प्रसंग को चित्रित करने के बहाने से वे मानव-जीवन के अन्तःस्वरूप का रूपकात्मक प्रकटीकरण कराना चाहते। अन्य अभिव्यंजनावादी चित्रकारों के समान कटुता, आतंक या निराशा के भाव उनकी कला में नहीं हैं। उनकी कला में आत्मिक खोज का नैष्ठिक दर्शन है।

आरम्भ में प्रभाववादी चित्रण करने के बाद बेकमन ने अभिव्यंजनावादी शैली का विकास किया जिसका १९२० में बनायी 'शहरी रातें'[७०] लियोग्राफ्स की मालिका आरम्भिक उदाहरण है। १९१७ में उन्होंने 'रात' शीर्षक के चित्र में यथार्थ-अभिव्यं-

जनावाद व अभिव्यंजनावाद का संयुक्त प्रयोग करने का प्रयत्न किया था। १९२० से उन्होंने वस्तुओं का प्रतीकात्मक प्रयोग करके, निजी कल्पनाशक्ति द्वारा आत्मिक जीवन को चित्रित करना शुरू किया। सर्कस के काल्पनिक चित्रों में उन्होंने मानव-जीवन के द्वंद्वात्मक रूप को—प्रेम व घृणा, विवशता व अहंकार, पावित्र्य व अनीति को चित्रित किया; उनके चित्र 'सर्कस कारवां' (१९४०), 'कसरत' (१९२३)[80] विशेष प्रसिद्ध हैं। वे प्रत्येक वस्तु व मानवाकृति को कठोर रूप में चित्रित करके स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करते व सम्पूर्ण चित्ररचना में उसका यथोचित प्रस्थापन करते। उनके आकारों का ठोस व्यक्तित्व गोथिक कला एवं प्रसिद्ध चित्र 'आविन्यो पिएता'[81] का स्मरण दिलाते हैं। गोथिक कला बेकमन को बहुत प्रिय थी। १९२३ के बाद उनके आकारों की कठोरता कुछ कम हो गयी व वे शास्त्रीयतावादी कला के निकट आ गये। १९२८ मे फ्रेंच कला के प्रभाव में आकर उन्होंने चमकीले रंगों का प्रयोग शुरू किया। उनके पौराणिक विषयों के चित्रों में 'प्रस्थान' (१९३५), 'पर्सियस त्रिपट' (१९४१), 'ओडिसिअस' (१९४३) व 'आर्गोनाटस' (१९५०)[82] विशेष प्रसिद्ध हैं।

बेकमन ऐसे यथार्थवादी चित्रकार थे जिन्होंने बाह्य यथार्थ का पर्दाफाश करके आंतरिक सत्य को प्रकाशित किया। वे अपनी कला के बारे में कहते "मैंने दुनिया की मेरी प्रतिमा को यथासम्भव चित्रित करने का प्रयत्न किया है।........बाह्य दृश्य वास्तविकता का प्रेम व अपने अन्तर्गत रहस्य का खेल—इन्हीं को ही महत्व है"।

कार्ल होफर (१८७८–१९५५)

होफर की कला ने १९१९ के पश्चात् बेकमन के समान यथार्थवादी दिशा अपनायी किंतु उस पर इटाली के काव्यमय शास्त्रीयतावाद का भी प्रभाव था। १९०३-१९०८ तक वे रोम में रहे जहां वे हान्स फॉन मारीस की कला से प्रभावित हुए। १९०८ से १९१३ तक वे पैरिस में अध्ययन के हेतु रहे जहां उनकी कला पर सेजान की अंकनपद्धति का अमिट प्रभाव पड़ा। तीन साल तक युद्धबन्दी रहने से उनका शुरू का आदर्शवाद नष्ट हो गया। उनकी शास्त्रीयतावादी कला में निराशावादी विचारों की स्पष्ट झलक है। 'ताश खेलनेवाले', 'खिड़की में युवती' व 'जल-पर्यटक' इन विषयों को लेकर उन्होंने कई चित्र बनाये किंतु उनकी मानवाकृतियां उदास व निरुत्साही प्रतीत होती हैं। होफर की कला का आरम्भ शास्त्रीयतावादी आदर्शवाद से हुआ किंतु जीवन के कटु अनुभवों से उनका आदर्शवादी स्वप्न नष्ट हुआ व उनकी शास्त्रीयतावादी आदर्श आकृतियों को अभिव्यंजनावादी रूप प्राप्त हुआ।

बीहौस कलाकार

बीसवीं शताब्दी की आधुनिक जर्मन कला के अंतर्गत अभिव्यंजनावाद के अतिरिक्त एक ऐसा प्रवाह था जो वस्तुनिरपेक्षता की ओर अग्रसर था व उसका प्रमुख

केन्द्र था 'बौहोस'[83]।

१९१९ में वैमार कलासंस्था के प्रधानपद पर वाल्टर ग्रोपियस नाम के वास्तु-कलाकार की नियुक्ति हुई। उन्होने संस्था को 'बौहोस' नाम दिया जिसका मध्ययुगीन कलाकारसंघ—जहां वास्तुकार के निर्देशन में चित्रकार व मूर्तिकार काम किया करते की ओर संकेत था। चित्रकला, मूर्तिकला व वास्तुकला का समन्वय करके, स्वाभाविक व पोषक वातावरण में कलानिर्मिति करना बौहोस का प्रमुख उद्देश्य था; इसके अतिरिक्त सैद्धांतिक विचार व प्रात्यक्षिक प्रयोग का समन्वय, माध्यमकेन्द्रित सृजन, औद्योगिक व यांत्रिक विकास की सम्भावनाओं को ध्यान में रख कर कलानिर्मिति उसके अन्य उद्देश्य थे। १९१९ में ग्रोपियस ने बौहोस का ध्येय घोषित किया "हम भविष्य का ऐसा भवन निर्माण करेंगे जिसमें वास्तुकला, चित्रकला व मूर्तिकला का सहयोग हो—लाखों शिल्पकारों से निर्माण किया महल जो स्वर्ग की ओर ऊंचा उठेगा—हमारी निष्ठा का स्फटिकमय प्रतीक"।

बौहोस में अन्य कलाध्यापकों के साथ आरम्भ में चित्रकार फैनिंगर थे जो 'ब्लौ राइटेर' मण्डल से आये थे। १९२१ में पौल क्ली की नियुक्ति हुई एवं उसके बाद ओस्कर श्लेमर व कान्डिन्स्की वहां अध्यापक हुए। स्ट्रुर्म का अभिव्यंजनावाद' होल्त्सेल के रंगों के सिद्धांत, ब्लौ राइटेर, डच 'डि स्टाइल'[84] वगैरह विभिन्न प्रभाव वहां कार्यान्वित थे। वान डोसबर्ग 'डि स्टाइल' सिद्धांतों पर भाषण देने आते। नोम गाबो व लिसित्स्की ने उनको रशियन रचनावाद से परिचित कराया। जोसेफ आल्बेर्स ने मूल ज्यामितीय आकारों से रचनात्मक प्रयोग किये। लात्स्लो मोहोली नागी ने कला में औद्योगिक परिकल्पना का महत्व बढ़ाया। किंतु कला में उपयुक्ततावाद का प्रभुत्व बढ़ते ही बौहोस की सृजनशीलत्व की मौलिक विशेषता समाप्त सी हो गयी। नात्सी सरकार ने कलात्मक अराजकता का आरोप लगा कर संस्था को बन्द किया।

बौहोस से संलग्न चित्रकारों में से पौल क्ली व कान्डिन्स्की के अतिरिक्त ओस्कर श्लेमर, लायोनेल फैनिंगर, व आल्बेर्स आधुनिक कला में ख्यातनाम हुए।

ओस्कर श्लेमर (१८८८–१९४३)

श्लेमर की कला में ज्यामितीय रचना का महत्वपूर्ण स्थान होते हुए रचनावादी कला के समान केवल आकारदर्शन नहीं है; उनके आकारों में भौतिक, ऐंद्रिक व मनोवैज्ञानिक अनुभूतियां हैं। वे कहते "विशेष रूप से, जिन कलाकृतियों की निर्मिति, बाह्य विषय की सहायता लिये बिना, अपनी कल्पनाशक्ति व आत्मिक रहस्यवाद में होती है उनमें नियमबद्धता का होना अनिवार्य है"।

श्लेमर की कला के पीछे शास्त्रशुद्ध अध्ययन था। १९१० में उन्होंने स्टुटगार्ट कलासंस्था में अध्ययन किया व होल्त्से के रंगों के सिद्धांतों के अनुसार कलात्मक प्रयोग किये। विद्यार्थी अवस्था में ही उनकी मानव के आत्मिक जीवन के प्रति श्रद्धा

हो गयी थी और उसको कला में प्रमुख स्थान होना वे आवश्यक मानते। इस विचार को दृढ़ करने में उनको ओटो मेयर—जो स्वयं निष्ठावान् गूढवादी थे—के कलासंबंधी विचार व प्रात्यक्षिक प्रयोग मार्गदर्शक रहे। उनके विचार से मानव प्राकृतिक व आत्मिक शक्तियों का संयोग है।

सेजान व सोरा की कला के अध्ययन से उनकी कला को सुगठित व रचनापूर्ण रूप प्राप्त हुआ। आरंभ में उन्होंने घनवाद की प्राथमिक शैली के अनुसार सरल ज्यामितीय आकारों से प्रकृति-चित्र, वस्तुचित्र व मानवचित्र बनाये। मानवचित्रण में उनकी विशेष अभिरुचि थी व गूढ अनुभूतियों को घनवादी रूप देकर वे आत्मिक व तार्किक तत्वों का संयुक्त दर्शन कराना चाहते। मोंद्रियां के समान वे कला में आंतरिक सुसंगति चाहते किंतु उसके लिये वे मानव का प्रमुख तत्व के रूप में प्रयोग करना चाहते। मोंद्रियां ने जैसी आयातकारों से रचनाएं कीं वैसी श्लेमर ने मानवाकृतियों से कीं जिनमें मानव को उसके आत्मिक व शारीरिक अंगों के संयुक्त सामान्य रूप में दर्शाया है। उन्होंने मानवीय भावनाओं को भी गणितीय प्रमेयों के समरूप माना किंतु उनकी मानवाकृतियां प्राचीनप्रतिमाचित्रों के समान गूढ आत्मिकता लिये हुए हैं।

बौहौस में अध्यापन कार्य करते समय उन्होंने मानव को अभिप्राय के रूप में चुन कर विशाल भित्तिशिल्प बनाये। वे नृत्य व नाटक के शौकीन थे व उनके चित्रों की मानवाकृतियां भी ऐसी प्रतीत होतीं हैं जैसे कि वे अवकाश के विशाल रंगमंच पर मूक-नाट्य अभिनीत कर रही हैं।

श्लेमर ने मूर्तिसमान ठोस व अचल मानवप्रतिमा का ऐसा निर्माण किया जो आत्मा के आंतरिक प्रकाश से प्रज्वलित है। मानवप्रतिमा के बारे में उनके विचार हैं "प्रकृति व पुरुष के संयोग का प्रतीक—जिसका उद्गम प्रेम में है व दर्शन शक्ति में है"[८५]। ऐसा है श्लेमर का मानव।

लायोनेल फैनिंगर (१८७१–१९५६):—

फैनिंगर एक अन्य जर्मन कलाकार थे जिनकी अंकनपद्धति घनवादी थी किंतु जिनकी कला का केवल रचनात्मक ध्येय नहीं था। उनके चित्रों के विषय मुख्य रूप से मध्ययुगीन गिरजाघरों व सागरकिनारों के दृश्य थे। शैली में घनवादी तर्कशास्त्र होते हुए उनके चित्रों में फ्रीडरिख के प्रकृतिचित्रों व गिरजाघरों के दृश्यचित्रों की रोमांचकता व काव्य हैं।

१९११ में फैनिंगर का देलोने से परिचय हुआ जिन्होंने उनको घनवादी शैली से काव्यात्मक चित्रण करने की संभावना पर विश्वास दिलाया और उनकी कला को सुरीलवाद के समान घनवादी रूप प्राप्त हुआ। फैनिंगर की कला की मुख्य सृजन-प्रेरणा थी 'प्रकृति के आंतरिक गूढ तत्व'[८६]।

१९१९ में बौहौस आने के बाद उनकी कला को वास्तुसमान भव्यता प्राप्त

हुई। उन्होंने भविष्यवादियों के समान अर्धपारदर्शक रंगों के प्रयोग से घनवादी अवकाश को स्फटिकीय रूप प्रदान किया। उनके गिरजाघरों के खड़े दृश्यों में ईश्वरीय उदात्त का दर्शन है तो सागर-किनारों के आड़े दृश्यों में अनंत विस्तार का।

१९३७ में नात्सी सरकार ने उनकी कला को 'भ्रष्ट कला'[87] घोषित करके उनके चित्रण पर प्रतिबंध लगाये व वे फिर से अमेरिका गये जहां से वे १८८७ में अपने जर्मन मातापिता के साथ जर्मनी आये थे। उनकी कला में जर्मन अभिव्यंजनावाद व फ्रेंच घनवाद का मनोहर संगम है।

कुछ अप्रमुख वाद

बीसवीं शताब्दी के आरंभ से प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभ तक के काल में योरपीय कलाक्षेत्र में अपूर्व वैचारिक क्रांति होकर कला में भिन्न वादों ने जन्म लिया जिनमें घनवाद, फाववाद अभिव्यंजनावाद प्रमुख थे; इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे आंदोलन हुए जिनसे आधुनिक कला को बहुरंगी रूप प्राप्त हुआ। इन आंदोलनों से निर्मित कुछ वादों का यहां विचार करेंगे।

भविष्यवाद:—

१९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इटाली की नवीन पीढ़ी ने योरपीय विचार क्रांति से अपना संपर्क रखने के प्रयत्न शुरू किये। १८९५ में 'वेनिस द्विवार्षिक'[1] की प्रथम प्रदर्शनी में फ्रेंच, जर्मन, स्विस व आस्ट्रियन चित्रकारों की कलाकृतियां प्रदर्शित हुईं जिससे योरपीय प्रतीकवाद ने इटाली में प्रवेश किया। १९०९ में हुई ट्यूरीन अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी द्वारा इटाली के कलाकार औद्योगिक कला के नये आयामों से परिचित हुए। १९०९ में सोफिची ने प्रभाववाद की प्रशंसा में लेख प्रकाशित करके इटाली के चित्रकारों को उसका अनुसरण करने का उपदेश किया व १९१० में उन्होंने फ्लोरेन्स में प्रभाववादी चित्रकारों एवं सेजान, वान गो, गोग्वँ, मातिस व पिकासो के चित्रों की प्रदर्शनी की। इस प्रकार योरपीय कला के अंतर्गत हुई विचारजागृति के प्रति इटाली के नवकलाकार सचेत हो गये।

इटाली की आधुनिक कला का आरंभ भविष्यवाद से हुआ व उसके प्रणेता थे फिलिप्पो टोम्मासो मारिनेत्ति। उनका जन्म १८७६ में इजिप्त में हुआ; उनके पिता एक सधन उद्योगपति थे। उनका अध्ययन फ्रान्स में सोर्बोन विश्वविद्यालय में हुआ व बहुत काल तक वे पैरिस में रहे जहां प्रतीकवादी साहित्य व नाबि कला का उन पर प्रभाव पड़ा। १९०५ से उन्होंने मिलान में 'पोएशिया'[2] नाम की पत्रिका का प्रकाशन शुरू करके प्रतीकवादी साहित्य का प्रसार किया।

१९०९ में मारिनेत्ति ने साहित्यिक भविष्यवाद का प्रथम घोषणापत्र तैयार किया जिसमें प्रगतिहीन परंपरागत विचारों से मुक्त होकर भविष्य की दिशा में विकासशील होने की आवश्यकता पर बल दिया था। यह घोषणापत्र पैरिस की 'ला

फिगारो'[3] पत्रिका ने प्रकाशित किया। मारिनेत्ति से प्रोत्साहन पाकर इटालियन चित्रकार कारा, वोच्चिग्रोनी व रूस्सोलो ने भविष्यवादी चित्रकला का प्रथम घोषणा-पत्र[4] १६१० में ट्यु रिन में प्रकाशित किया जिस पर उन तीनों के अतिरिक्त ज्याकोमो वल्ला व गिनो सेवेरिनी के हस्ताक्षर थे। उस घोषणापत्र के बाद 'भविष्यवादी कला का पारिभाषिक घोषणापत्र'[5] प्रकाशित हुआ।

घोषणापत्रों के कुछ निम्न उद्धरणों से भविष्यवाद के सिद्धांतों की स्पष्ट कल्पना आ सकती है। उनमें आधुनिक यंत्रयुगीन जीवन के असीम गतित्व की प्रशंसा की थी एवं उसको प्रमुख स्थान देकर चित्रण करने का उनमें संदेश था। "हमारा निश्चित मत है कि एक नये सौंदर्य ने दुनिया की शोभा बढ़ायी है; यह है गति का सौंदर्य। 'सामोथ्रेस की विजय' शिल्पकृति से तेज चलती हुई मोटरगाड़ी अधिक सुंदर है"। "........समय व अवकाश का कल ही अंत हुआ। अब हम निरपेक्ष में रह रहे हैं क्योंकि हमने सर्वव्यापी, शाश्वत गति का आविष्कार किया है"। "सौंदर्य का निवासस्थान संघर्ष है।........जिसमें आक्रामक शक्ति नहीं है वह श्रेष्ठ कलाकृति नहीं हो सकती"। भविष्यवाद के वैचारिक आदर्श थे—संकट से प्यार, आक्रामकता, युद्ध की प्रशंसा, देशभक्ति व जीवन के अन्यायों का औचित्य व गौरव। भविष्यवाद में इस प्रकार के विचारों का प्रभुत्व होने के कारण विश्वयुद्ध की पूर्वकालीन परिस्थिति में उसका प्रसार सरल था। १६१२ में इटाली में आरंभ होकर शीघ्र ही योरप के सभी देशों में उसके सिद्धांत प्रसृत हुए। भविष्यवादी सभा-सम्मेलनों में अक्सर जोरशोर होता और मुक्तहस्त घूंसेबाजी व गालीगलौच में उसका अंत होता।

भविष्यवादी चित्रकला की अंकनपद्धतियों के पीछे निम्न सिद्धांत थे "हमारे दृष्टिसामर्थ्य से हम एक्स-किरणों के समान पदार्थों के आरपार देख सकते हैं; अतः हमारे लिये सभी वस्तुएं पारदर्शक हैं। गति की वजह से वस्तुएं हिलती हैं, आगे-पीछे होती हैं एवं एक दूसरे पर आ जाती हैं। रंग व प्रकाश से युक्त इन संवेदनाओं को चंचल रूपों में चित्रित करना होगा जिसके लिये विभाजनवाद व पूरकत्व के सिद्धांत उपयुक्त हैं"। "प्रत्येक वस्तु गतिमान है, सब परिवर्तनशील अवस्था में हैं—जिसको कोई रोक नहीं है। नेत्रपटलीय प्रतिमा के दृष्टिसातत्य के नियम के कारण गतिमान वस्तुओं की नेत्रपटल पर निर्मित प्रतिमाएं अगणित बढ़ती जाती हैं व एक दूसरे में गूंथी जाने से अवकाश में चंचल लहरों के समान व अवकाश को काटती हुई प्रतीत होती हैं। अतः दौड़नेवाले घोड़े की चार टांगें नहीं होतीं बल्कि बीस होती हैं एवं उनकी गति आकार में त्रिभुजीय होती है"।

भविष्यवादियों की १६१२ में हुई चलप्रदर्शनी योरप की सभी प्रमुख राजधानियों में दिखायी गयी। उसकी विवरणपत्रिका में निम्न विचार थे "वस्तु या मानव को अचल स्थिति में चित्रित करना बुद्धिहीनता का लक्षण है। वस्तु के पीछे जो अदृश्य शक्ति है और जो वस्तु को चलाती है उसको भी चित्रित करना चाहिये"। भविष्य-

वाद के सिद्धांतों के अनुसार चित्रकार को दृश्य के केन्द्रस्थान में स्वयं को प्रस्थापित करके चित्रण करना चाहिये जैसे कि वह चारों ओर खेले जा रहे नाटक को देखकर चित्रित कर रहा है। भविष्यवादी चित्रकारों के लिये जलता-बुझता बिजली का बल्ब एवं दुःखी मानव समान महत्व रखते। 'भिन्न मानसिक अवस्थाओं के समयावच्छेदी दर्शन'[6] को भविष्यवादी चित्रकार कलाभिव्यक्ति मानते।

भविष्यवादी चित्रकारों के अनुसार गतित्व का निर्माण दो प्रकार से हो सकता है; रेखाओं की स्वाभाविक शक्ति से आकारों में 'निरपेक्ष गतित्व' आकर वे सचेत दिखायी देतीं, और दूसरे प्रकार का गतित्व गतिमान् वस्तुओं को चित्रित करने से प्राप्त होता जैसे कि दौड़नेवाला घोड़ा—जिसकी उनके विचार से बीस टांगें होती हैं—घूमता हुआ पहिया-जिसके सभी सारे अंकित नहीं किये जाते।

भविष्यवाद का सबसे प्रमुख सिद्धांत था 'समयावच्छेद'[7] जिसके अनुसार वे भिन्न समय के दृश्य प्रभावों को एक साथ चित्रित करते; इसके द्वारा वे ऐसे विषयों को चित्रित कर सकते जो पहले नहीं किये जाते। मानो वे ऐसी खिड़की में से देखकर चित्रण करते जो खुलते ही बाहरी रास्तों की सभी आवाजें, गतिविधियां, वस्तुसमूह एवं प्राणिमात्र एक साथ कमरे में घुस जाते; हां उनके चित्रों का दर्शन ऐसा ही आंधीग्रस्त है।

भविष्यवादियों ने नवप्रभाववाद के रंगविश्लेषण का घनवाद के आकार-विश्लेषण के साथ संयुक्त प्रयोग किया। भविष्यवादियों ने वास्तविकता को नवप्रभाववादी रंगों की चमकदमक के अंतर्गत गला दिया और वस्तुओं के नैसर्गिक आकारों को घनवादी विभाजन करके फिर से शृंखलाबद्ध किया।

भविष्यवादी चित्रकारों की कुछ व्यक्तिगत भिन्नताएं थीं; कारा के आकारों में ठोसपन था, बोच्चिओनी की कला में बौद्धिक प्रदर्शन था तो सेवेरिनी की कला में आलंकारित्व था।

प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होते ही भविष्यवाद हतप्रभ हो गया। बोच्चिओनी की युद्ध में मृत्यु हुई। युद्ध के पश्चात् मारिनेत्ति ने भविष्यवाद में चेतना डालने के असफल प्रयत्न किये। युद्ध व हिंसा के स्तुतिस्तोत्र गानेवाले भविष्यवाद को आखिर युद्ध ने ही नष्ट कर दिया। किंतु गति के प्रभाव को अंकित करने के जिन नये तरीकों का भविष्यवाद ने आविष्कार किया वे आधुनिक यंत्रयुगीन जीवन के गतित्व का प्रभावी चित्रण करने में बहुत सहायक सिद्ध हुए। इंग्लिश चित्रकार नेविनसन ने भविष्यवादी शैली के बहुत चित्र बनाये। भविष्यवाद का अमेरिकन चित्रकार जोसेफ स्टेला व जॉन मॅरीन पर काफी प्रभाव था।

युंबर्टो बोच्चिओनी का जन्म १८८५ में कालाब्रिया में हुआ। वे स्वतंत्रवृत्ति व साहसी थे; चित्रकार बनने की उनकी आकांक्षा का माता-पिता-द्वारा विरोध होते ही वे घर छोड़ कर चले गये और ज्याकोमो बल्ला से कला की शिक्षा प्राप्त की।

उनकी खलवली युक्त चित्ररचनाओं—उनके अनुसार मानसिक अवस्थाओं[8] के 'विदाई' 'जो रह रहे हैं', 'जो चले जा रहे हैं'[9] इस प्रकार के शीर्षकों से प्रतीत होता जैसे कि अल्पायु में होने वाली अपनी मृत्यु का उनको पहले ही अंतर्ज्ञान हो गया था। उनके चित्र परंपरागत इटालियन कला की निर्दोष अंकनपद्धति के उदाहरण हैं। उनके विषयचयन में मानवतावादी दृष्टिकोण है। वे संपूर्ण चित्ररचना को विशेष महत्व देते।

लुइजी रुस्सोलो चित्रकार तथा संगीतकार थे एवं उन्होंने 'भविष्यवादी ध्वनिकला का घोषणापत्र'[10] प्रकाशित किया था। उनके एक प्रसिद्ध चित्र का शीर्षक भी 'संगीत' था। 'गतिमान् घन', 'बिजली की वलरेखाएं'[11] जैसे चित्रों में विषय के यथार्थ दर्शन की अपेक्षा समतलों की रचना व अवकाश में आकारों के सुस्थापन—जैसे संगीत रचना में स्वरों का कालमान में किया जाता है—करने पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया।

कार्लो कारा ने ब्रेरा की कलासंस्था में कला का शास्त्रशुद्ध अध्ययन किया जिसका उनकी भविष्यवादी कला पर स्पष्ट परिणाम दिखायी देता है। उनकी अंकन-पद्धति प्रभुत्वपूर्ण व निर्मल थी। वे प्रभावी लेखक व आलोचक थे व 'भविष्यवादी चित्रकला का घोषणापत्र' तैयार करने में उन्होंने काफी योगदान किया। उवके चित्रों में विषयप्रतिपादन की उपेक्षा नहीं है। ज्यामितीय आकारों से गतित्व का परिणाम दिखाने में उनका कौशल अद्वितीय था जिसमें उनकी गणितीय शास्त्रशुद्धता सहायक हुई।

गिनो सेवेरिनी का जन्म १८८३ में हुआ। वे कवि थे व चित्रण में उनकी अंकनपद्धति कुशलतापूर्ण एवं प्रशंसनीय थी। उन्होंने चित्रकला पर कुछ ग्रंथ भी लिखे। उनकी कला में घनवाद के स्थायित्व व भविष्वाद के गतित्व का संयुक्त दर्शन है। 'टेबेरिन नृत्य का गतिपूर्ण रेखांकन'[12] जैसी आरंभिक कलाकृतियों में उन्होंने भविष्यवाद का निष्ठा से पालन किया किंतु उससे असंतुष्ट हो कर बाद में उन्होंने शास्त्रशुद्ध शैली का विकास किया और वस्तु के नैसर्गिक रूप की ओर भी ध्यान देने लगे।

भंवरवाद:—

इंग्लेंड के 'कॅम्डेन नगर कलाकार मंडल'[13] में विंडहॅम लेविस नाम के चित्रकार थे जो स्लेड कलाविद्यालय में अध्ययन करने के बाद १९०२ से १९०८ तक विदेशों की यात्राएं कर के आये थे। १९१२ में वे घनवाद व भविष्यवाद के समान प्रयोग करने में व्यस्त थे। १९१० में मारिनेत्ति इंग्लेंड आये थे। १९१२ में भविष्य-वादी कला की लंदन में प्रदर्शनी हुई। १९१३ में सेवेरिनी के चित्रों की प्रदर्शनी हुई और उसी साल रोजर फ्राय ने उत्तरप्रभाववादी व भविष्यवादी चित्रकारों की प्रदर्शनी का आयोजन किया। सब का 'कॅम्डेन नगर कलाकार मंडल' पर काफी प्रभाव पड़ा।

भविष्यवाद ने नेविनसन व विडहम लेविस को सब से अधिक प्रभावित किया। १९१४ में मारिनेत्ति ने इंग्लेंड की यात्राएं कीं जिनसे वहां के चित्रकारों को भविष्यवाद के सिद्धांतों का अधिक ज्ञान हुआ। लेविस व उनके कुछ मित्रों ने 'भंवरवाद का घोषणा-पत्र' प्रकाशित किया जिस पर कई चित्रकारों के हस्ताक्षर थे। 'भंवरवाद'[14] नाम देने का श्रेय लेविस के मित्र कवि एज्रा पौंड को है जो इस नाम से मानव-मन की भंवर के समान अवस्था की ओर निर्देश करना चाहते। अपने भंवरवादी विचारों के प्रसार के लिये लेविस व एज्रा पौंड ने 'विस्फोट' नाम की पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। भंवरवाद के संदर्भ में बाद में १९५६ में विडहॅम लेविस ने स्पष्ट किया" कि भंवरवाद यथार्थ का नैष्ठिक विरोधी था। दृश्य वास्तविकता का चित्रकला से संपूर्ण उच्चाट मेरा ध्येय था"।'विस्फोट'[15] पत्रिका में भंवरवाद के सिद्धांतों के बारे में लिखा गया "हम मानव के अंतर्मन, उसकी मूर्खता, उसके पशुत्व व उसके ख्वाबों को चाहते हैं। हम चाहते हैं कि आधुनिक मानव अपनी अंतर्गत आदिम प्रेरणा अनुभव करे। कलात्मक सहज प्रवृत्ति सदैव आदिम होती है। अपूर्णत्व, संघर्ष, विघटन वगैरह तत्वों की व्यवस्थाहीनता से सृजन को प्रेरणा मिलती है"। भंवरवादी आंदोलन को प्रसिद्ध इंग्लिस साहित्यिक जेम्स जॉइस, कवि टी. एस्. एलियट व एज्रा पौंड का समर्थन था। भंवरवाद व भविष्यवाद में घनिष्ठ समानता थी यद्यपि लेविस ने भंवरवाद को भविष्यवाद से भिन्न सिद्ध करने के प्रयत्न किये थे। १९१५ में भंवरवादी चित्रकारों की प्रथम प्रदर्शनी हुई। विश्वयुद्ध आरंभ होते ही भंवरवाद लुप्त हो गया जिसका प्रभाव तब तक इंग्लेंड मे सीमित था।

सेक्सिओं दोर:—

सेक्सिओं दोर प्रदर्शनी का आयोजन पैरिस की कलावीथिका बोएति में १९१२ में हुआ जिसमें लेजे, मेजिंजे, द्यु शां, विय्लों, ज्वांग्री, देलोने, पिकाबिया, अँर्ब, मारी लोरांसँ, ला फ्रेस्नाय, सेगोंजाक, मार्शां द्यु मों, मार्कुसिस, आजेरो, ल्होत, वार्लेसी आदि चित्रकारों ने भाग लिया था। हमेशा की तरह इस प्रदर्शनी की विरोधी आलोचना हुई। इस प्रदर्शनी का दो दृष्टि से महत्व था; इस प्रदर्शनी द्वारा सेजान के प्रति आदरभाव व्यक्त किया गया था एवं इसमें अधिकतर नवविचारों के चित्रकारों को सम्मिलित किया गया था। ये सब चित्रकार सेजान की कला का अध्ययन कर के अग्रसर हुए थे अर्थात् उनकी कला पर घनवाद का प्रभाव था। इस प्रदर्शनी का नाम 'सेक्सिओं दोर' रख कर चित्रकारों ने ज्यामिति के कलात्मक महत्व की ओर संकेत किया था। 'सेक्सिओं दोर'—सुवर्ण अवच्छेद—[16] वर्ग के कर्ण व भुजा में प्राप्त ज्यामितीय अनुपात है व जिसको प्राचीन काल से आदर्श अनुपात माना है।

ज्यामिति-निष्ठ होते हुए सभी प्रदर्शक समान कलात्मक ध्येय से प्रेरित नहीं थे; उनमें दृष्टिकोण की कुछ वैयक्तिक भिन्नताएं थी। ग्री के चित्रों में आकारों को

प्रधानता दी गयी थी तो देलोने, लेजे व विल्लों के चित्रों में रंगों की चमक-दमक पर वल था। ल्होत ने रचना को महत्व दे कर रंगप्रभाव की उपेक्षा की थी तो सेगोंजाक ने सतह की बुनावट पर ध्यान केंद्रित किया था। द्यु्शां व पिकाविया के चित्रों में गतित्व का दर्शन था तो ग्लेजे ने घनवादी शैली से प्रभावी भित्तिचित्रण की संभावना को प्रमाणित किया था। अर्बें ने नवीन वस्तुनिरपेक्ष प्रतीकों की निर्मिति के प्रयत्न किये थे। घनवाद के जन्म के पश्चात् हुई यह प्रदर्शनी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थी कि इससे चित्रकारों घनवाद की त्रुटियों की ओर ध्यान आकृष्ट हो कर भिन्न उत्तर-घनवादी आकार संबंधी वादों के विकास को सुनिश्चित दिशाएं मिलीं व कला में वस्तुनिरपेक्षता का महत्व बढ़ता गया।

जाक विल्लों, सेजान के समान प्रभाववाद को ठोस रूप प्रदान करने के ध्येय से प्रेरित थे व वे आधुनिक चित्रकला को प्राचीन महान् परंपरा से मिलाना चाहते थे। देलोने व लेजे के समान, वे विशुद्ध रंगों के सौंदर्य के प्रेमी थे व ज्वांग्री के समान, आकार-रचना के प्रयोगों में रुचि रखते। उन्होंने विशुद्ध रंगों के प्रयोग के साथ स्फटिकीय आकारों की रचना करके ऐसी सुंदर कलाकृतियां वनायीं जिनमें संगीत के समान वस्तुनिरपेक्ष आनंद की अनुभूति है। मादाम द स्तेल का वास्तुकलासंवंवी विधान 'वास्तुकला हिमरूप संगीत है'[17] उनकी कलाकृतियों को समुचित रूप से लागू होता है। विल्लों ने जिस विषय को चुना—मानव, प्रकृतिदृश्य, वस्तुसमूह—उसको रंगों व आकारों की ज्यामिति में वंदी करके काव्यपूर्ण दृश्य संगीत का निर्माण किया। उनकी चित्रसृष्टि ऐसी प्रतीत होती है जैसी स्फटिक में से दिखायी देने वाली रंगविरंगी अनोखी परी-सृष्टि।

मेंजिजे ने आरंभिक काल में नवप्रभाववाद का अध्ययन किया। कला की सैद्धांतिकता पर उनकी निष्ठा थी; अतः उन्होंने कला में वास्तुकला, शास्त्रीय रचना व रंगों के सौंदर्य पर वल दिया। शास्त्रीयतावादी दृष्टिकोण होने से ल्होत की कला में ज्यामितीय आकारों का स्पष्ट व प्रभावपूर्ण अंतर्भाव है। देलोने, विल्लों, फ्रेस्नाय व ग्लेजे के साथ वे घनवाद में रंगों का प्रभाव वढ़ाने के पक्ष में थे। मार्कुसिस ने भी घनवाद को विशुद्ध रंगों के प्रयोग से चमकीला रूप प्रदान किया। मार्सेल द्युशाँ का बुद्धिवादी दृष्टिकोण था किंतु वे अपनी भावनाओं को चित्रकला से पृथक् नहीं रख सके। मानव-मन की दुर्बलताओं व चांचल्य को वे भलीभांति जानते व अपनी कलाकृतियों में उनको मुक्त स्थान देते। वे भविष्यवाद की ओर आकृष्ट हुए थे किंतु उनको भविष्यवादियों का यथार्थ विषयों पर निर्भर रहना पसंद नहीं था और वाद में वे दादा आंदोलन में शामिल हुए। सेक्सिओं-दोर प्रदर्शनी में पिकाविया ने 'सोविल का जुलूस'[18] चित्र प्रदर्शित किया था। वे कलाकार के क्रांतिकारी निर्माण करने के अधिकार की निष्ठा से रक्षा करने के पक्ष में थे। उन्होंने अपने कई चित्रों को असंतुष्ट होकर नष्ट कर दिया।

सुरीलवादः—

१९१२ में भविष्यवादियों की प्रदर्शनी हुई जिसका किसी ने विशेष स्वागत नहीं किया। अपोलिनेर ने उसकी कठोर आलोचना की किंतु मेंजिजे, लेजे, पिकाबिया व द्यूशां को उसमें अपनी कलासंबंधी धारणाओं की पुष्टि मिली। गतित्व के परिणाम व समयावच्छेद के सिद्धांत के अनुसार किये गये चित्रण ने उनको विशेष रूप से आकर्षित किया। समयावच्छेद की अस्पष्ट कल्पना विश्लेषणात्मक घनवाद में भी थी व उस दिशा में कला के विकास की संभावना पिकासो के सम्मुख थी। कुछ घनवादियों को घनवाद का स्थायित्व पसंद नहीं था व वे उसको गतित्वदर्शी रूप देना चाहते। ये चित्रकार सेजान के रचना व आकारसंबंवी सिद्धांतों के अतिरिक्त गोंग्वँ, सोरा व नावि कला के चमकीले रंगांकन की ओर आकृष्ट थे। इन चित्रकारों में द्यूशां, विल्लों व मार्सेल थे। वे आदर्श अनुपात का विश्वास करते व उनके विचार से अनुपात व मापतोल के नियमों को रंगांकन पर लागू किया जा सकता था व चित्रकला को संगीत के समान विशुद्ध-दृश्य वास्तविकता से निरपेक्ष-रूप दिया जा सकता था। फाव चित्रकारों के रंगों की चमक व सोरा के रंगविश्लेषण संबंधी सिद्धांतों से वे प्रभावित थे किंतु वे रंगों के स्वाभाविक सौंदर्य व सुसंगति के तत्वों को कार्यान्वित करके चित्रण करना चाहते जबकि सोरा नैसर्गिक रूप व प्रकाश के प्रभाव के समरूप चित्रण करने के उद्देश्य से रंगों की योजना करते थे। संक्षेप में वे फाव रंगों की चमक व घनवाद के आकारसौंदर्य का मिलाप करना चाहते। सुरीलवाद भी एक ऐसा वाद था जिसमें रंगसौंदर्य को प्रधान स्थान देकर घनवादी रचनाएं की जाती थीं और उसके प्रणेता थे रॉबर देलोने व अनुयायियों में कुपका, मॉर्गन रसेल, मॅक्डोनल्ड राइट, सोनिया टर्क आदि चित्रकार थे। इस वाद का उदय १९१२ में हुआ।

देलोने (१८८१—१९४१) ने १९११ से चमकीले रंगों के अनोखे प्रयोग से 'समयावच्छेदी खिड़कियां'[१९] शीर्षक के चित्र बनाये। घनवादी चित्रण से विषयसूचक रूप, दूरदृश्यलघुता व गहराई को हटा कर उन्होंने चमकीले रंगों की आकार रचना द्वारा बहुरंगी इंद्रधनुषी दुनिया का 'खिड़कियों' में से दर्शन कराया नैसर्गिक रूप की जो कुछ सीमित सूचकता उनके चित्रों में अवशिष्ट है उसमें विषय की ओर संकेत की अपेक्षा वस्तु के स्वाभाविक निरपेक्ष सौंदर्यगुणों से चित्रण में कलात्मक लाभ उठाने के प्रयत्न हैं। फाव चित्रों में व देलोने की 'समयावच्छेदी खिड़कियों में' पर्याप्त अंतर है। फाव चित्रों में वस्तु के नैसर्गिक रूप का ऐंठनदार सरलीकरण है तो देलोने के चित्रों में मूल आकारों का ज्यामितीय प्रयोग है। 'समयावच्छेदी खिड़कियों' में एफेल मिनार की ऊर्ध्व दिशा में गतिमान वृत्ताकार रेखाओं का प्रयोग चित्र के वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य को वृद्धिगत करने के उद्देश्य से किया है। इन ऊर्ध्वगामी, गतिमान, लयबद्ध रेखाओं में देलोने को वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य की अनुभूति हुई। प्लेटो की विशुद्ध सौंदर्य की परिभाषा

को देलोने आदर्श मानते, "सच्चा आनंद सुंदर रंगों से मिलता है व आकारों से···जैसे कि वृत्त, रेखाएं, वर्ग आदि जो–किसी बाह्य कारण के बिना–स्वयमेव सुंदर हैं"[20]। चमकीले रंग, ज्यामितीय आकार, लयबद्ध रेखाएं वगैरह। प्लेटो-कथित वस्तुनिरपेक्ष तत्वों का परिणामकारक दर्शन हमें देलोने के सुरीलवाद में मिलता है। 'समयावच्छेदी खिड़कियां' शीर्षक द्व्यर्थी है व इन चित्ररूप खिड़कियों को खोलकर देलौने ने निसर्ग व वस्तुनिरपेक्ष के सौंदर्य का एक साथ दर्शन कराया है। देलोने ने 'समयावच्छेदी विरोध'[21] के सिद्धांतों से रंगों के विरोधों का स्पष्टीकरण किया है। एफेल मिनार, खेलकूद जैसे गतिपूर्ण रेखाओं से सचेत विषयों को चित्रित करने के पश्चात् देलोने ने संश्लेषणवादी दृष्टिकोण अपना कर चित्रों में गतित्व का निर्माण करना शुरू किया। सुरीलवाद के गतित्व-दर्शन को देखकर बोचिओनी ने उसको भविष्यवाद के समरूप माना किंतु सुरीलवाद व भविष्यवाद में स्पष्ट अंतर है; सुरीलवाद का जन्म रंगों के ऐंद्रिक परिणाम में हुआ था जबकि भविष्यवाद का जन्म मानवजीवन की यंत्र-निर्मित गति में हुआ था। कुछ वस्तुनिरपेक्ष चित्रकारों ने निसर्ग के अनुकरण के आरोप से बचने के लिये पूर्ण रूप से ज्यामितीय आकारों से कलाकृतियां बनायीं किंतु देलोने का आगम भिन्न था। वे प्रथम निसर्ग में वस्तुनिरपेक्ष आकारों को ढूंढते और बाद में उनके पृथक्करण से वस्तुनिरपेक्ष रचनाएं करते। उनके कलात्मक दृष्टिकोण पर उनके निम्न विधान प्रकाश डालते हैं "रंग चित्रविषय भी हैं व आकार भी हैं"[22], एवं "जब तक कला वस्तु के प्रभाव से मुक्त नहीं होती तब तक वह केवल वर्णनात्मक साहित्य मात्र है"[23]। घनवादी, रचनाप्रधान बौद्धिकता से भी, रंगसौंदर्य के प्रति विमोह उनकी कला की आधारभूत सृजनप्रेरणा था। वे शेवरोल के 'समयावच्छेदी विरोधों के सिद्धांतों से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने एक पत्र के नीचे 'समयावच्छेदी देलोने'[24] नाम से हस्ताक्षर किया था। इस प्रकार देलोने के सुरीलवाद का आधारभूत तत्व था वस्तु के निरपेक्ष आकारों व रंगों का विशुद्ध सौंदर्य। देलोने की रंगसंगति के सुसंवादित्व की संगीत की स्वररचना से समरूपता को देख कर अपोलिनेर ने उनकी कला को नाम दिया 'सुरीलवाद'[25]।

१६१२ के पश्चात् देलोने ने 'वृत्तीय लय', 'समयावच्छेदी वृत्ताकार'[26] वगैरह वस्तुनिरपेक्ष चित्रमालिकाएं बनायीं जिनमें रंगीन वृत्तों को चित्रित करके लहरों के समान गतित्व का परिणाम दर्शाया है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है "हरेक को संवेदनाक्षम आंखें प्राप्त हैं जिनसे वह देखता है कि दुनिया में रंग हैं, रंगों से चंचल प्रभाव ठोस रूप, गहराई, क्रीडनशील रचना चित्रित किये जाते हैं·······संक्षेप में, रंगों में जान है, वे सांस लेते हैं·······अब हम एफेल मिनार, रास्तों के दृश्य व बाह्य सृष्टि से विदा लेते हैं। ·······हम थाली में रखे हुए सेब नहीं चाहते; हम चाहते हैं आदमी के दिल की धड़कन"।

प्रभाववाद के उत्तरकाल में रंगों के सौंदर्य को बढ़ाने का जो कार्य बिंदुवाद

ने किया वही कार्य घनवाद के उत्तरकाल में सुरीलवाद ने किया। बिंदुवाद के समान, केवल अंकनपद्धति से सीमित होने से सुरीलवाद जल्द समाप्त हुआ किंतु आधुनिक कला का वस्तुनिरपेक्षता की दिशा में विकास होने में वह काफी सहायक रहा।

किरणवाद, सर्वोच्चवाद, रचनावाद, विशुद्धवाद, व नवलचीलवाद :

ये सभी वाद तर्क कठोर रचना से सीमित व बुद्धिनिष्ठ थे। बाह्य नियमों के बंधन से मुक्त होकर निर्विरोध, भावनापूर्ण सृजन करने की अभिव्यंजनावादी प्रवृत्ति को इनमें स्थान नहीं था। आकारों की स्पष्टता व शास्त्रशुद्ध नियमों का पालन इनके आधारभूत तत्व थे; सुव्यवस्थित, अनुशासनपूर्ण, क्रमबद्ध रचना इनकी कलानिर्मिति का लक्ष्य था। इन चित्रकारों की अंकनपद्धति सुसूत्र, सुनिर्मित व निर्मल थी; कलानिर्मिति का प्रत्येक चरण सावधानी से व विचारपूर्वक बरता जाता था। सुरीलवाद के समान, ये आधुनिक कलाप्रवाहों में से कुछ अप्रमुख प्रवाह हैं एवं आधुनिक कला के विशाल रूप के विकास में योगदान करके बाद में ये उसी विशाल रूप में विलीन हो गये और उनका स्वतंत्र अस्तित्व नष्ट हो गया। इनका सबसे अधिक प्रभाव आधुनिक वास्तुकला, औद्योगिक परिकल्पना व निर्माण-कलाओं पर पड़ा। योरप व अमेरिका में जो सरलीकृत, ज्यामितीय भवन-निर्माण देखने को मिलता है उसका उद्‌गम इन वादों से प्रस्थापित रचनासिद्धांतों में ही है। सरल ज्यामितीय आकारों का शास्त्रशुद्ध समीपीकरण, आकारों का अवकाश से समुचित समन्वय व अवकाश में सुस्थापन, स्पष्ट व निर्मल समतल क्षेत्रों की योजना, आवश्यक अंगों का उच्चाट, कार्यात्मकता पर बल आदि विचारों को निर्माण के आधारभूत तत्व बनाने का श्रेय इन्हीं वादों को है।

१९१० के करीब पैरिस के चित्रकारों का रशियन चित्रकारों पर प्रभाव बढ़ रहा था व वे घनवाद, फाववाद एवं भविष्यवाद की ओर आकृष्ट हो रहे थे और उनके सिद्धांतों से लाभ उठा कर नयी दिशाओं में प्रयोगशील थे। इन प्रयोगों से नवनवीन वादों ने जन्म लिया जिनमें से एक वाद 'किरणवाद' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस वाद को जन्म देकर उसका विकास करने का कार्य मिखाइल लारिलोनोव व उनकी पत्नी नाटालिया ने किया। सिन्याक की व्यक्तिगत बिंदुवादी अंकनपद्धति-सितारावाद व विश्लेषणात्मक घनवाद से आरंभ करके लारियोनोव ने प्राकृतिक दृश्यों व मानवाकृतियों को किरणों के समान रेखाओं से अंकित आकारों में व धब्बों में विभाजित किया। भविष्यवाद के प्रभाव में आकर इन किरण जैसी रेखाओं को वे तीव्र व स्पष्ट रूप में अंकित करने लगे, व ऐसी रेखाओं को वे 'बलरेखाएं'[27] कहने लगे। १९१२ में उन्होंने चित्रों से वस्तुसादृश्य को पूर्ण रूप से हटा कर ऐसी वस्तुनिरपेक्ष कृतियां बनायीं जो प्रकाशशलाकाओं से निर्मित रचनाएं जैसी दिखायी देने लगीं। कान्डिन्स्की की कलाकृतियों के साथ ये किरणवादी कृतियां वस्तुनिरपेक्ष कला के प्रारंभिक चरण

थीं। १९१३ में किरणवाद का घोषणापत्र प्रकाशित करके लारियोनोव ने अभिव्यक्ति से रचना को व सापेक्ष से निरपेक्ष को अधिक महत्वपूर्ण जाहिर किया। किरणवाद अधिक काल तक जीवित नहीं रहा किंतु उसका प्रकाशशलाकासम प्रभाव रंगमंच की साजसज्जा में उपयुक्त सिद्ध हुआ। लारियोनोव व उनकी पत्नी ने रंगमंच की साज-सज्जा का काम भी किया व डियाघिलेव के समूहनृत्य की परिकल्पनाएं बनायीं।

सर्वोच्चवाद का उदय १९१३ में मास्को में हुआ व उसके प्रणेता थे कासिमीर मालेविच। उस वर्ष उन्होंने पूर्ण श्वेत पृष्ठभूमि पर एक काला वर्ग चित्रित कर के प्रदर्शित किया। उनके सौंदर्यशास्त्र का दार्शनिक विचार था—विशुद्ध ज्यामितीय आकारों की सर्वोच्चता—अतः उनकी कृतियां पूर्ण रूप से वस्तुनिरपेक्ष व मौलिक थीं उनमें वस्तुसादृश्य का नाम ही नहीं था। घनवाद की गणितीय जटिलता को त्याग कर प्लेटो के निरपेक्ष सौंदर्य के सिद्धांतों के अनुसार इनेगिने, सरल ज्यामितीय आकारों के सुस्थापन से कलानिर्मिति की संभावना की मालेविच ने खोज की। उन्होंने देखा कि वर्गाकार विस्तृत पृष्ठभूमि पर छोटे वर्ग के स्थापन में भी सृजन के मूल तत्वों का विचार अनिवार्य होता है और यह कार्य हम समझते हैं जितना सरल नहीं है; आधारभूत रचनातत्वों के कठोर पालन से ही सफल सृजन किया जा सकता है। कागज के दो छोटे बड़े वर्गों से प्रयोग कर के इस विचार की सत्यता को आजमाया जा सकता है। वास्तुकार के सामने ये ही समस्याएं खड़ी रहती हैं और इन समस्याओं के उचित हल से ही वास्तु को परिणामकारक दर्शन प्रदान किया जा सकता है।

शुरू में मालेविच फाव पद्धति के चित्र बनाते थे: बाद में घनवाद का अध्ययन कर के उन्होंने 'वर्षा के बाद देहाती प्रभात', 'वन में विवस्त्र मानवाकृतियां'[28] (१९११) जैसी कृतियां बनायीं। सर्वोच्चवाद के निर्माण के संदर्भ में उन्होंने लिखा "यह उस विशुद्ध कला का पुनराविष्कार है जो वस्तुसादृश्य को प्रधान स्थान मिल जाने से व समय के प्रभाव से नष्ट हो गयी"। वस्तुसादृश्य के लिये सरल वस्तुनिर-पेक्षता, शोभा व विशुद्धि के मूल तत्वों की उपेक्षा करने की मालेविच ने निंदा की; उनके विचार से उसमें विषयप्रतिपादन की सफलता के हेतु सौंदर्यगुणों का बलिदान किया जा रहा था।

वस्तुनिरपेक्षवादी चित्रकार होते हुए मालेविच वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य की खोज प्रथम वास्तव सृष्टि में करते; दूरस्थित खेतों में उनको वर्गाकारों का दर्शन होता। शुरू में, वृत्तों व काले रंग के वर्गों को श्वेत पृष्ठभूमि पर चित्रित कर के वे कहते "यह चित्र मुस्कराते हुए मानवशीर्ष के चित्र से अधिक सजीव हैं"। बाद में उनके विचारों की आत्यंतिकता में कुछ शैथिल्य आ गया और उनके चित्रों में—उदाहरण के लिये, उनके चित्र 'हवाई जहाज की बाह्याकृति', व 'क्रास'[29] में—वास्तविकता से कुछ साहचर्य प्रतीत होने लगा। मालेविच की कला का 'सर्वोच्च ध्येय'[30] था चित्रकला व वास्तुकला को वास्तविक व भौतिक साहचर्यों से मुक्त करना।

एक अन्य रशियन चित्रकार रोचेंको मालेविच से भी आगे बढ़े। उन्होंने रशिया में वास्तविकता-विरोधी आंदोलन शुरू किया। वे केवल मापनी व प्रकार से चित्र बनाते। जब रोचेंको ने काली पृष्ठभूमि पर एक वृत्त को छेदनेवाले अंडाकारों को चित्रित कर 'काले पर काला'[31] शीर्षक से प्रदर्शित किया तब मालेविच ने प्रत्युत्तर के रूप में सफेद वर्ग को सफेद पृष्ठभूमि पर अंकित कर के 'सफेद पर सफेद'[32] शीर्षक से प्रदर्शित किया। वस्तुनिरपेक्ष कला का इसमे आगे क्या विकास हो सकता था ?

विशुद्धवाद भी चित्रकला में वस्तुनिरपेक्षता का महत्व बढ़ाने में बहुत सहायक हुआ। इसके प्रणेता थे वास्तुकार ल कार्व्युसिय व चित्रकार आमेदी ओजांफां जो कुछ समय तक वास्तुकला के विद्यार्थी थे। १९१८ में उन्होंने विशुद्धवाद का घोषणा-पत्र प्रकाशित कर के घनवाद को नया व कार्यात्मकता के विचार से विशुद्ध रूप देने का निश्चय किया क्योंकि उनके विचार से घनवाद एक आलंकारिक शैली मात्र रह गया था। दोनों प्रणेता आरंभ में वास्तुकला के विद्यार्थी थे और उनमें से ल कार्व्युसिय बाद में विश्वख्याति के वास्तुकार बने। एवं उन्होंने भारत में चंडीगढ़ का शहर निर्माण किया। विशुद्धवादी चित्रकला में, वास्तुकला के समान, आकारों की कार्यात्मकता पर बल दिया गया था; अतः ल कार्व्युसिय व ओजांफां को मालेविच के समान वास्तविकता के द्रष्टा नहीं मान सकते, इसके विपरीत, वे वास्तवसृष्टि के समरूप, मानवोपयोगी सृष्टि का दर्शन कराना चाहते। उन दोनों की आरंभिक कलाकृतियां अधिकतर वस्तुसमूह चित्र हैं; चित्रों में शीशियों, कांचपात्रों, व गिलासों को अधिक स्थान दिया है क्योंकि यंत्रयुगीन उपयुक्ततावादी दृष्टि से, उनके आकार कार्यात्मक व यथोचित हैं। यंत्रों में प्राप्त वृत्तों, अंडाकारों, वृत्तचितियों, चक्रों जैसे आकारों को विशुद्धवादी चित्रकार बहुत महत्व देते। उनके विचार से आधुनिक यांत्रिक जीवन में ज्यामिति को उपयुक्ततावादी महत्व है; अतः घनवाद की काल्पनिक ज्यामितीयता को हटा कर उसका उपयुक्ततावादी कार्यात्मक आकारों से विशुद्धीकरण करना चाहिये था। इस विचार से लेजे का घनवाद विशुद्धवाद से मिलता-जुलता है यद्यपि वे विशुद्ध-वादी चित्रकारों में शामिल नहीं हुए थे।

विशुद्धवाद एक ऐसी चित्ररूप भाषा था जिसके शब्द थे आधुनिक यंत्रों के पुर्जे व कारखानों में बनायी गयीं वस्तुओं के ज्यामितीय सौंदर्य लिये हुए आकार व सतहें। अतः विशुद्धवाद का—जिसमें ज्यामितीय सौंदर्य व कार्यात्मकता का अविभाज्य संगम है—औद्योगिक कला पर अपरिमित प्रभाव पड़ा इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। विशुद्धवादी चित्रकार बौद्धिक नियमन व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कलाकृतियां बनाते क्योंकि, उनके विचार से, केवल ऐंद्रिक आनंद व भावनाओं द्वारा चित्रण करने से रचना में अपरिपक्व व दुर्बल कृति निर्माण होने का धोखा था। रेखाओं व आकारों के स्वाभाविक सामर्थ्य को अध्ययन से अनुभव करने का वे उपदेश करते क्योंकि सफल

विशुद्धवादी कलाकृति निर्माण करने का वही एक तरीका था।

मालेविच के सर्वोच्चवाद व डच 'डि स्टाइल'[33] का योरपीय कला पर बहुत प्रभाव पड़ रहा था। लिसित्स्की व मोहोली नागी ने उनके विचारों को वौहौस में लागू किया। १९१४ में कान्डिन्स्की रशिया गये और वे भी सर्वोच्चवाद से प्रभावित हुए। इस प्रकार योरपीय कला में ज्यामितीय रचना का महत्व बढ़ता जा रहा था। केवल वौद्धिक रचना से कलानिर्मिति करने के प्रयत्नों के फलस्वरूप रचनावाद का जन्म हुआ जो सर्वोच्चवाद के समान ज्यामितीय किंतु मूर्तिकला के समान त्रिमितियुक्त रचना से संबंधित था। रचनावाद की पूर्वसूचना हमें घनवाद की कोलाजकृतियों में मिलती है जिनमें लकड़ी, कांच, रस्सी वगैरह पदार्थों को ले कर पिकासो व ब्राक ने रचनाएं की थीं। १९१२ में वोचिओनी ने स्पष्ट किया था कि केवल रंगों से या एक ही माध्यम से कलानिर्मिति करने की अपेक्षा यदि हम कांच, लकड़ी, गत्ता, लोहा, सीमेंट, चमड़ा, कपड़ा, बिजली के लट्टू आदि विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग करेंगे तो उसमें सृजन-पूर्ण निर्मिति की अधिक संभावना है; अवकाश में त्रिमितियुक्त कलाकृतियों का निर्माण कला का मुख्य लक्ष्य होना चाहिये। उन्होंने भविष्यवाद के सिद्धांतों के अनुसार अवकाश में गतिमान, घनरूप कलाकृतियों के निर्माण की भी कल्पना की थी। इन विचारों को १९११ में ही आर्चिपेन्को ने प्रयोगान्वित किया था। व्लारियोनोव के शिष्य व्लाडिमीर टाटलिन ने १९१३ में वस्तुनिरपेक्ष घनरूप कलाकृतियों की निर्मिति की जिनमें इन विचारों के अनुसार कांच, लकड़ी, व धातु का प्रयोग था। १९१४ में उन्होंने ऐसी कृतियां बना कर उनको डोरी से लटकाया। १९१९ में उन्होंने इन विचारों को वास्तुकला में लागू करने के उद्देश्य से कुछ योजनाएं तैयार कीं। बीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में अमेरिकन कलाकार काल्डर ने टाटलिन के प्रयोगों का विकास कर के चंचल-कृतियों[34] को बनाया और वे चंचल-कृतियों के नवनिर्माता के रूप में ख्यातनाम हुए। टाटलिन के आंदोलन को १९१७ में नोम गावो व आंटोन पेवनर ने सहयोग दे कर सामर्थ्यवान् बनाया। पेवनर शुरू में चित्रकार थे एवं वे पैरिस में आर्चिपेन्को से मिले थे। गावो ने गणितीय सिद्धांतों के अनुसार कुछ रचनाएं कीं। १९१५ से आरंभ कर के उन दोनों ने जो रचनाएं कीं उनमें शुरू में कुछ वस्तुसादृश्य था किंतु बाद में वे पूर्ण वस्तुनिरपेक्ष बन गयीं। रचनावाद में कलाकृति त्रिमितियुक्त होती थी एवं ऐसी कृति की निर्मिति कलाकार की व्यक्तिगत भावनाओं से मुक्त हो कर, विशुद्ध रचना के सिद्धांतों के आधार पर की जाती थी। रचनावाद के पीछे गणित व विज्ञान का शास्त्रीय सामर्थ्य था। १९२२ में रशियन राज्यसत्ता के विरोध को देख कर कान्डिन्स्की व लिसित्स्की के साथ गावो व पेवनर भी रशिया छोड़ कर चले गये। रचनावाद ने आधुनिक मूर्तिकला को नया वस्तुनिरपेक्ष दृष्टिकोण व माध्यम का स्वातंत्र्य प्रदान किया।

रचनावाद ने मूर्तिकला के क्षेत्र में जो कार्य किया वही कार्य डच 'डि स्टाइल'

मंडल व नवलचीलवाद ने चित्रकला के क्षेत्र में किया। रशिया में जब वस्तुरिपेक्ष, रचनात्मक वादों का सामर्थ्य बढ़ रहा था, हालेंड के कलाक्षेत्र में 'डि स्टाइल' आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। पैरिस के चित्रकारों—मुख्य रूप से घनवादी चित्रकारों—से इस आंदोलन ने प्रेरणा पायी व योरपीय विचारक्रांति ने यहां भी जागृति पैदा की। इस आंदोलन के प्रमुख थे वान डोसबर्ग व पियट मोंद्रियां। चित्रकला व मूर्तिकला का वास्तुकला व औद्योगिक कला से संपर्क प्रस्थापित कर के सब का समन्वित रूप में विकास करना 'डि स्टाइल' का ध्येय था। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये आकारों के ज्यामितीय सरलीकरण को उन्होंने अनिवार्य माना एवं औद्योगिक कला व वास्तुकला के कार्यात्मकता व स्पष्टता के गुणों को सफलता के आवश्यक तत्व माना।

१९१० से मोंद्रियां पैरिस में रहते थे। १९१४ में वे हालेंड आ गये व विश्वयुद्ध के आरंभ होने से फिर पैरिस नहीं जा सके। विश्लेषणात्मक घनवाद से प्रेरणा पा कर वे पानी की लहरों, वृक्षों जैसी वस्तुओं को खड़ी व आड़ी रेखाओं से ज्यामितीय रूप दे कर चित्रित करते। १९१६ में वान डोसबर्ग व बार्ट वान डेर लेक उनके साथ काम करने लगे। १९१७ में उन्होंने मूल रंगों में, त्रिभुज, आयत वगैरह ज्यामितीय आकारों में चित्ररचनाएं कीं। १९२० के करीब मोंद्रियां की कलाशैली को सुनिश्चित रूप प्राप्त हुआ व वे काले रंग की संकरी पट्टियों से चित्रक्षेत्र को विभाजित कर के चित्रण करने लगे। इससे अधिक सरलीकृत आकार-रचना की कल्पना करना कठिन है। अपनी नयी शैली को मोंद्रियां ने नाम दिया 'नवलचीलवाद' जिसका प्रमुख रचना-सिद्धांत था 'विरोधों में सुसंवादित्व';[३५] इसका सबसे सरल उदाहरण है समकोण—जिसमें आड़ी व खड़ी रेखाओं के विरोध का सुसंगत दर्शन है—अतः मोंद्रियां सदैव समकोण में मिलने वाली खड़ी व आड़ी रेखाओं का ही प्रयोग करते। उसी प्रकार वे रंगों को तेज व वर्णहीन वर्गों में विभाजित कर के उनका विरोधी रूप में प्रयोग करते।

१९२१ से 'डि स्टाइल' मंडल के वास्तुकारों ने अपने सिद्धांतों को भवन-निर्माण में प्रत्यक्षित करना शुरू किया जिससे आधुनिक वास्तुकला का रूप ही बदल गया।

'डि स्टाइल' कलाकारों ने कठोर नियंत्रण से सुसंवादित्व के मूलभूत तत्वों का आविष्कार करके उनके द्वारा ऐसी वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियों का निर्माण करना चाहा जो कलाकार की वैयक्तिक भावना या कल्पना पर निर्भर नहीं है, जिनके सौंदर्य का उद्गम कलाकार की वैयक्तिक अनुभूति या आकस्मिक घटना में नहीं है व जो संपूर्ण, शाश्वत सत्य नियमों पर आधारित हैं। ऐसी कला में मनोरंजन, प्रतिपादन या व्यक्तिवाद को स्थान नहीं हो सकता; ऐसी कला का केवल सामाजिक ध्येय ही हो सकता है एवं उसकी पूर्ति में वास्तुकला, मूर्तिकला व चित्रकला का सहयोग आवश्यक था। इस

ध्येय से कला व जीवन के बीच अंतर न रह कर कला का पृथक् रूप नष्ट होगा। भावनाओं की संकुचित धाराओं से मुक्त होकर मानव आंतरिक संतुलन व संपूर्ण सुसंवादित्व को अनुभव करेगा। डोसवर्ग ने लिखा "भविष्य की कला बाह्य बंधनों से मुक्त व प्रशांत होगी; सबसे अग्रिम व प्रमुख तत्व होंगे सत्य, कार्यात्मभाव व रचना—वैयक्तिक विचार की त्रुटियां नहीं होंगी"।

पियट मोंद्रियां (१८७२–१९४४) का जन्म हालेंड के आमर्स्टफुर्ट नगर में हुआ। नियमबद्ध कलाविद्यालयीन अध्ययन के बाद क्रमशः प्रभाववाद व फाववाद का अध्ययन करके वे १९१० में घनवादी पद्धति का चित्रण करने लगे १९११ में वे पेरिस गये जहां वे १९१४ तक रहे; इस काल में उन्होंने आधुनिक कला में हो रहे आंदोलनों के परिशीलन से अपनी कला के सैद्धांतिक विचार व अंकनपद्धति के आधार को मजबूत बनाया। उनके घनवादी चित्र विश्लेषणात्मक हैं; संश्लेषणात्मक पद्धति की ओर वे कभी आकृष्ट नहीं हुए। घनवाद के आरंभिक प्रभाव के बावजूद उनकी कला का विकास पूर्ण स्वतंत्र रूप से हुआ और उसका मार्गदर्शन उनकी मौलिक प्रतिभा व निजी दार्शनिक विचारों ने किया। वे थिओसोफिकल सोसायटी के सदस्य थे व डच दार्शनिक शोनमाकर्स-जिनसे वे १९१६ में परिचित हुए थे—के विचारों का उनपर बहुत प्रभाव था। शोनमाकर्स के विचार से कलाकार के लिए रचना के लचीले गणित-शास्त्र'[36] के अपरिवर्तनीय आंतरिक नियमों का अनुशासन आवश्यक है: हमको निसर्ग की गहराई का अंतर्भेद करना होगा जिससे हमको यथार्थ की आंतरिक रचना के सत्य का ज्ञान हो जाये। मोंद्रियां ने भी नवलचीलवाद को निसर्ग की बहुरंगी जटिलता को लचीले तत्वों द्वारा सुनिश्चित रूप देने का साधन माना। उनके विचार से, गणित के समान, कला भी विश्वमंडलीय मूल तत्वों को प्रतिरूपित करने का निर्दोष व अचूक साधन था।

कान्डिन्स्की व मोंद्रियां को वस्तुनिरपेक्ष कला के प्रणेता मानते हैं किंतु दोनों के विचारों में मौलिक भिन्नता है। कान्डिन्स्की ने कलाकार की 'आंतरिक आवश्यकता' को सृजन का आदिम प्रेरणा-स्रोत माना है जबकि मोंद्रियां ने कलाकार के व्यक्तित्व को विशुद्ध, निरपेक्ष, गणितीय रचना-शास्त्र में बाधक तत्व माना है। अतः कान्डिन्स्की की वस्तुनिरपेक्ष कला का मूलाधार है आत्मिक अभिव्यक्ति तो मोंद्रियां की वस्तुनिरपेक्ष कला का मूलाधार है विशुद्ध, स्वयंपूर्ण रचनासौंदर्य।

मोंद्रियां के १९०६ में बनाये चित्र 'कुटिया का दृश्यचित्र' व १९११ में बनाये चित्र 'आड़ा वृक्ष'[37] की तुलना यदि उनके १९१५ में बनाये 'धन व ऋण चिन्हों की रचना' व १९४२ में बनाये 'सरल रेखाओं की लय'[38] से करते हैं तो उनकी वस्तु-निरपेक्षता की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है।

मोंद्रियां ने अपने कलाविषयक विचारों पर बहुत कुछ लिखा। उनके विचार से रेखा व रंग चित्रकला के मूल तत्व हैं और उनको वस्तुसादृश्य के बंधन से मुक्त करके

स्वतंत्र रूप से विकसित होने देना चाहिये । चित्रक्षेत्र स्वभावतः समतल होता है अतः चित्रकला में घनत्व, दूरदृश्यलघुता जैसे बाह्य तत्वों का समावेश नहीं होना चाहिये । संपूर्ण दृश्य सत्य का आविष्कार सबसे सरल आकारों से ही होता है; अतः चित्रकला में आयत जैसे सरल आकारों की योजना अपरिहार्य है । मोंद्रियां से पूर्व इस प्रकार का संपूर्ण शास्त्रीय दृष्टिकोण सोरा ने अपनाया था किन्तु उन्होंने अपनी कला से वास्तविक आकासादृश्य को हटाने के बजाय कठपुतली जैसे प्रतीकात्मक आकारों की योजना करके वस्तुनिरपेक्ष कलात्मक गुणों पर ध्यान केंद्रित किया था ।

मोंद्रियां का ध्येय केवल कलाक्षेत्र तक सीमित नहीं था; उसका क्षेत्र जीवनव्यापी था । वे कला के स्वतंत्र अस्तित्व को ही अनावश्यक मानकर उसको जीवन से एकरूप करना चाहते । इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है "वस्तु-सादृश्य सौंदर्य-भावना को हानि पहुंचाता हैं; अतः चित्रकला से वस्तु का उच्चाट करना चाहिये । कला के विचार से रचना एव सत्य है । नैसर्गिक रूप के समान वैयक्तिक भावना भी विशुद्ध रचनानिर्मिति की विघातक है । व्यक्तित्व के तत्व द्वारा कला में काव्यात्मकता का प्रवेश होता है जो संपूर्ण निरपेक्ष सौंदर्य को हानिकारक है । वस्तु व मानवीय भावना विशुद्ध लचीली कला का निर्माण असंभव कर देती हैं । जीवन के अंगप्रत्यंग में विशुद्ध सौंदर्य का अंतर्भाव होने से भविष्य में कला का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहेगा और हम उसकी आवश्यकता को महसूस नहीं करेंगे क्योंकि हमारे आसपास कलामय वातावरण होगा । जीवन में सुसंवादित्व का निर्माण करके कला लुप्त होगी" । एवं "कला के आंतरिक संपूर्ण सत्य को साकार करना है" । विशिष्ट में जब तक संपूर्ण का दर्शन नहीं होता तब तक मोंद्रियां संतुष्ट नहीं होते ।

मोंद्रियां की उत्तरायु की कृतियों में कुछ साहचर्य-दर्शन के प्रयत्न हैं; जैसे कि उनके चित्र 'ब्राड्वे बुगि-वुगि'[३९] में अमेरिकन ज़ाज़ संगीत के समरूप दृश्य रचना करने के प्रयत्न हैं । मोंद्रियां फ्रान्सेन्स्का, पुसँ व सोरा की परंपरा के चित्रकार थे व उन्होंने प्लेटो की विशुद्ध सौंदर्य की कल्पना का अपनी कला में चरम सीमा तक विकास किया ।

आत्मतत्वीय चित्रण:—

आत्मतत्वीय चित्रण[40] में मानवीय गूढ अनुभूतियों का चित्रकला के माध्यम से परिणामकारक दर्शन कराने के प्रयत्न किये गये और चित्रकला को एक नया विषयक्षेत्र प्राप्त हुआ ।

आत्मतत्ववादी चित्रकारों ने अनुभव किया कि निर्जीव वस्तुओं में भी ऐसा आत्मतत्व है जिसमें मानव की भावनाओं को व्याकुल करने का सामर्थ्य है । किसी कोने या अटाले में पड़ी पुरानी वस्तु को देख कर कभी अचेतन साहचर्य से प्रेक्षक की मानसिक अवस्था अकारण व्याकुल होती है; इस अवस्था में कोई ऐसा आंतरिक, अप्रकट

काव्य है जिसको दृश्य रूप में साकार करके पुनरनुभूत किया जा सकता है जैसे कि आत्मतत्ववादी चित्रकार डिशिरिको ने लिखा है "ऐसी अवर्णनीय अवस्था की अनुभूति किसी चित्रित, कथित या कल्पित वस्तु के सम्मुख या पश्चात् हो सकती है"। शिरिको के विचार से यदि किसी परित्यक्त या उपेक्षित वस्तु को उसके परित्याग की स्थिति के पोषक वातावरण से—जिसके कारण वह बिलकुल अर्थहीन प्रतीत होती है—पृथक् करके नये या उससे असंबद्ध वातावरण में बिठाया जाये तो उस वस्तु के अस्तित्व को एक नयी श्रेष्ठता, एक नया भावनोद्दीपन का सामर्थ्य प्राप्त होता है एवं उसके द्वारा कोई गूढ आत्मा भावनाओं की निःशब्द भाषा में दर्शक से बोलने लगती है जो भाषा समझने में असमर्थ रहने से दर्शक की आत्मा व्याकुल हो उठती है। कारा ने इसी अनुभूति के संदर्भ में लिखा है, "बिलकुल ही साधारण वस्तुओं में ऐसा सुलभ व सरल दर्शन है जो अस्तित्व की अदृश्य व उदात्त अवस्थाओं की ओर संकेत करता है; और यही है कला की गूढ महानता"। आंरी रूसो व नव-आदिमवादी चित्रकारों के समान, आत्मतत्ववादी चित्रकारों को आंतरिक मानवीय जीवनस्रोत का साक्षात्कार वस्तु जीवन में हुआ और उसको उन्होंने चित्ररूप देना चाहा।

आत्मतत्ववादी चित्रकारों का कोई निश्चित प्रचारात्मक कार्यक्रम नहीं था एवं उन्होंने किसी कलाकार-मंडल की प्रस्थापना नहीं की। आत्मतत्वीय चित्रण की कल्पना का जन्म शिरिको व कार्लो कारा के आकस्मिक परिचय में हुआ। १९१७ में कार्लो कारा फेरारा के सैनिक-चिकित्सालय में मज्जातन्तु की दुर्बलता का इलाज कराने के लिये भरती हुए थे जहां उनका ज्योर्जिओ डि शिरिको से परिचय हुआ। शिरिको वहां १९१५ से काम कर रहे थे। वैसे दोनों एकदूसरे को नाम से जानते थे। उस समय कारा भविष्यवादी चित्रण में व्यस्त थे और शिरिको पैरिस के कलाक्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। दोनों में घनिष्ठ मित्रता हुई एवं दोनों ने वहां के मठ में—जहां चिकित्सालय खोला गया था—महीनों तक चित्रण किया। शिरिको के भाई आल्बर्टो साविनिओ वहां वैद्यकीय इलाज करा रहे थे। वे एक प्रसिद्ध गूढवादी कवि थे और उनके काव्य पर जर्मन गूढवाद का—जिसने कुबिन, मेरिंक व काफ्का जैसे गूढवादी साहित्यिकों को जन्म दिया था—प्रभाव था। साविनिओ के काव्य से शिरिको व कारा प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त विश्वयुद्ध की भीषणता का आत्मतत्ववाद पर परिणाम हुआ और उसमें शीर्षहीन मानवाकृतियों का चित्रण होने लगा। फेरारा का वातावरण भी गूढवादी विचारों का पोषक था। दोनों चित्रकार ज्योतो उच्चेलो, मासाचिओ जैसे महान् इटालियन चित्रकारों की परंपरा के अभिमानी थे एवं उनको भविष्यवादी चित्रकारों का पैरिस के चित्रकारों व घनवाद का अनुसरण पसंद नहीं था। कारा ने आरंभ में भविष्यवादी चित्र बनाये थे किंतु वे भी भविष्यवाद से असंतुष्ट थे।

ज्योर्जिओ डि शिरिको का जन्म १८८८ में ग्रीस में हुआ व उन पर ग्रीक

पौराणिक कथाओं का आकर्षण था बाद में वे बॉकलिन व क्लिगर के गूढ वातावरण से परिवेष्टित काल्पनिक दृश्यचित्रों से आकृष्ट हुए। असाधारण काव्यात्मक प्रतिभा के कारण पौराणिक कल्पनावाद से आरंभ कर के धीरे-धीरे वे वास्तविक सृष्टि को अपने गूढवादी दृष्टिकोण से रूपांतरित करने लगे। नगरों के निमनुष्य रास्तों पर केवल सफेद मूर्तियों को चित्रित कर के उन्होंने रहस्यमय वातावरण के चित्र बनाये। शिरिको के गूढवादी काव्यात्मक चित्रण से प्रभावित हो कर कारा ने भविष्यवाद का त्याग किया व दोनों के सहयोग से आत्मतत्वीय चित्रण का विकास हुआ।

आत्मतत्ववादी चित्रकारों ने निसर्ग को बिलकुल नये दृष्टिकोण से देखा। निसर्ग के समूचे पंचतत्वीय रूप का मनोहर ऐंद्रिक परिणाम प्रभाववाद का विषय था जबकि आत्मतत्वीय चित्रण का विषय था प्रत्येक वस्तु का स्वतंत्र साकार अस्तित्व व उसका मनोवैज्ञानिक परिणाम। आत्मतत्ववादी चित्रकारों ने निसर्ग की सभी वस्तुओं को पृथक् व्यक्तित्व लिये हुए एवं गूढ मानवीय आत्मिक संबंधों से सचेत देखा। शिरिको ने लिखा है" हम चित्रकला को वस्तुसृष्टि में आत्मिक मनोविज्ञान के दर्शन का साधन मानते हैं। चित्रक्षेत्र में वस्तुओं व वस्तुओं को पृथक् करनेवाले अवकाश को पूर्ण सचेत करना यह नये खगोलशास्त्र का—जिसमें वस्तुएं भाग्य के गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी से जकड़ी हुई हैं—मूलाधार है। कल्पनाशक्ति द्वारा शिरिको ने एक नयी सचेत, आत्मतत्वीय सृष्टि को जड़ सृष्टि के अंतर्गत देखा जो कारा के विचार से सत्यार्थ में चित्रकार की यथार्थ सृष्टि है, "·····जो आरंभिक दृश्य परिचय की अवस्था की सृष्टि नहीं है बल्कि जिसका वस्तु के आकारदर्शन से घनिष्ठ संबंध है जो इतना प्रकाशमान् है कि वह यथार्थ को बंदी कर लेता है। इस महान् रचनातत्व के बिना हमारा भौतिक जीवन खोखला व व्यर्थ है एवं उसकी सफलताएं दर्पोक्ति मात्र हैं"। शिरिको ने इस संबंध के बारे में लिखा है"हमारे दैनंदिन जीवन का जपमाला-सदृश एक शृंखलाबद्ध तर्कशास्त्र बन जाता है जिसमें हम वस्तुओं के स्मृतिरूप संबंधों को पुनः पुनः दोहराते रहते हैं। आदमी अपने कमरे में बैठा रहता है। जहां आलमारी में किताबें पड़ी हैं, पिंजड़े में पक्षी हैं वगैरह व सब कुछ सामान्य सा प्रतीत होता है क्योंकि अपनी स्मृतियों की शृंखला के तर्कशास्त्र में उसका सही हिसाब बैठता है। किंतु इस शृंखला की एक आध कड़ी भी जब किसी क्षण टूट जाती है तो न जाने किसी अज्ञात कारण से, कमरे में बैठा वही आदमी, पिंजड़े का पक्षी, वे किताबें निराला रूप धारण करते हैं। भय, विस्मय····किंतु दृश्य में कोई अंतर नहीं है, केवल मेरे दृष्टिकोण में ही परिवर्तन है व हम वस्तुओं के आत्मतत्वीय सृष्टि में प्रवेश पाते हैं"। वस्तुओ को अपरिचित वातावरण में रखने से या जिन वस्तुओं से उनका, हमारी स्मृति में या विचारों में, साहचर्य नहीं है ऐसी वस्तुओं के साथ रखने से भी इसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक अवस्था का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार की धारणाओं से प्रेरित हो कर आत्मतत्ववादी चित्रकारों ने मूर्तियों, केलों जैसी वस्तुओं को रास्तों पर

व मछलियों को रंगमंच पर स्पष्ट आकारों में चित्रित कर के गूढ भावनाओं को जागृत किया व अनोखी मंत्रित सृष्टि का दर्शन कराया; पृष्ठभूमि को ज्यामितीय दूरदृश्यलघुता से कठोर बनाया व वस्तुओं के सरलीकृत ठोस रूप को अधिक स्पष्ट बनाने के उद्देश्य से अनैसर्गिक नाटकीय प्रकाश के अंतर्गत गहरी छाया के साथ अंकित किया जिससे उनके चित्रों में भयानक गहराई छा गयी।

ऐसी स्थायीरूप किंतु आत्मिक जीवन से ओतप्रोत जड़ वस्तुओं की दुनिया में जीवित चर प्राणियों का चित्रण असंवद्ध रहता और उनकी अनियमित गतिविधियां चित्र के गूढभाव के लिए विघातक होतीं। आत्मतत्वीय चित्रों की गूढ आत्माओं के संचार से सचेत दुनिया, जीवित प्राणियों की गतिमान् अस्वस्थ दुनिया से पूर्ण निराली है एवं उसमें जीवित प्राणी को कोई स्थान नहीं दिया जा सकता था। अतः आत्मतत्वीय चित्रण में मनुष्य के स्थान पर कठपुतलियों, मूर्तियों व कहीं मानवछायाओं को अंकित किया है व चित्रों में जादूनगरी का प्रभाव दिखाया है। मनुष्य की आंतरिक भावनाओं को वस्तुओं के प्रतीकात्मक जीवनदर्शन में प्रतिमित किया है मानो दर्शक की आत्मा ही चित्रित वस्तुओं द्वारा अपने गूढ अस्तित्व का साक्षात्कार करा रही है।

आत्मतत्वीय चित्रकला के नये 'महत्तर यथार्थ'[41] संवंधी विचारदर्शन ने कुछ इटालियन कलाकारों को आकर्पित किया एवं आधुनिक इटालियन कला के विकास में योगदान करके उस पर अमिट प्रभाव छोड़ा। आधुनिक इटालियन कला के इतिहास में आत्मतत्ववाद का वहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। अंतर्राष्ट्रीय दादावाद, जर्मन जादूमय यथार्थवाद, फ्रेंच अतियथार्थवाद व इटालियन आत्मतत्ववाद 'महत्तर यथार्थ' की खोज में समान रूप से प्रेरित थे एवं उनके विचारदर्शन व रूप में घनिष्ठ समानता है। ज्योर्जिओ मोरांदी ने १९१८ में आत्मतत्वीय चित्रण शुरू किया एवं चिंतन व साधन से आत्मतत्वीय चित्रण के काव्यात्मक रूप का वैयक्तिक विशेपताओं के साथ विकास किया।

शिरिको के अनुसार आत्मतत्वीय चित्रकला के नामकरण के निम्न कारण हैं "पदार्थ का प्रशांत व इंद्रियातीत सौंदर्य मुझे आत्मतत्वीय प्रतीत होता है; जो वस्तुएं रंगों की निर्मल चमक व आकारों की अचूक स्पष्टता से धुंधलापन व संदेह को दूर करती हैं वे भी आत्मतत्वीय हैं"।

शुरू से ही शिरिको पुरातन वातावरण में पले। उनके इटालियन मातापिता ग्रीस के वोलो नगर में जाकर वसे जहां शिरिको का १८८८ में जन्म हुआ। उनको सनातन पद्धति की शिक्षा दी गयी; होमर, साक्रेटिस व प्लेटो का उन्होंने विद्यार्थी अवस्था में गहरा अध्ययन किया। एथेन्स के पोलिटेक्निक विद्यालय में उन्होंने चित्रकला की आरंभिक शिक्षा प्राप्त की। १९०६ में पिता की मृत्यु के पश्चात् उनकी माता वापस इटाली आ गयीं व उन्होंने शिरिको को अधिक अध्ययन के लिये म्युनिक

भेजा। यहां विद्यालयीन अध्ययन से उनको विशेष लाभ नहीं हुआ। संग्रहालयों में जाकर उन्होंने बॉकलिन के चित्रों का अध्ययन किया व उससे उनकी कला को निश्चित आत्मिक दिशा मिली। स्वप्निल वृत्ति स्मृतिव्याकुलता[42] व एकांतप्रेम शिरिको की स्वभावविशेषताएं थीं; अतः उनको क्लिंगर व कुबिन के स्वप्निल दृश्य बहुत प्रिय थे। नीत्शे के अध्ययन से उनको ज्ञान हुआ कि एकांतप्रेम से नीत्शे को इस कठोर संसार में भी जादूनगरी का दर्शन हुआ। नीत्शे से प्रेरणा पाकर उन्होंने बाह्य रूप की रिक्तता को अनुभव किया एवं उसकी आंतरिक गूढ, काव्यमय भावसृष्टि का आविष्कार करना चाहा। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है "आधुनिक दार्शनिकों व कवियों ने कला को बंधमुक्त किया। सर्वप्रथम शोपेनऔर व नीत्शे ने जीवन की मूर्खता के आंतरिक गहन अर्थ का हमें ज्ञान कराया व कला में उस मूर्खता को किस प्रकार रूपांतरित किया जा सकता है इसका भी निर्देशन किया······निर्जीव पदार्थ के अपरिवर्तनीय, प्रशांत सौंदर्य की भयानक शून्यता में"। नीत्शे के प्रभाव से शिरिको ने अचल वस्तुसृष्टि के रिक्त के अंतर्गत गूढ आत्मतत्व का साक्षात्कार किया व उसको चित्रकला में प्रतिमित करके पुनरनुभूत किया। १९११ से १९१५ तक वे पैरिस में रहे। अपोलिनेर ने उनको पिकासो, देरें व अन्य फ्रेंच कलाकारों से परिचित कराया किन्तु उसका उनकी कला पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे एकांत में चित्रण करते व प्राचीन इटालियन नगरों के अनैसर्गिक प्रकाश से युक्त काल्पनिक दृश्यचित्र बनाते जिनमें अनंत अवकाश की गहराई में ऊंचे मीनारों, प्राचीन भवनों', बंद दीवारघड़ियों, मूर्तियों, केले के गुच्छों, अदृश्य आकृतियों की छायाओं वगैरह अनोखे अंगों को ठोस रूप में, दूरदृश्यलघुता का कठोर पालन करके चित्रित करते; सब कुछ सुनसान व स्तब्ध दिखायी देता; दर्शक को आंतरिक चुभन व्यथित करती व यह जानने को वह बेचैन होता कि आखिर इस वीरान जादूनगरी में कौनसी गूढ आत्माएं रहती हैं जो उसके साथ आंखमिचौनी खेल रही हैं। ऐसे चित्रों में 'रास्ते का उदासीन व रहस्यपूर्ण दृश्य'[43]—जिसमें सुनसान रास्ते पर एक लड़की की छाया को पहिया चलाते हुए चित्रित किया है—'कवि की संदेहावस्था'[44]—जिसमें विशाल प्राचीन वास्तु के सामने के आंगन में धड़ की सफेद शिल्पाकृति व केले का गुच्छा रखते हैं—प्रसिद्ध हैं। उनके चित्र 'भविष्यवेत्ता'[45] में दर्जी का मिट्टी का मॉडेल प्राचीन भवन के सामने रखे हुए श्याम पट पर खींची हुई ज्यामितीय गणिताकृति की ओर गौर से देखकर चिंतन करते हुए चित्रित किया है।

ज्योर्जिओ मोरांदी (१८९०–१९६४) किसी कलात्मक आंदोलन में शामिल नहीं हुए। आरंभ में उन पर सेजान व घनवाद का कुछ प्रभाव था व वे वस्तुचित्रण करते थे। १९१८ में वे आत्मतत्त्ववादी चित्रकारों के संपर्क में आ गये। कला के अध्ययन के लिये वे कभी पैरिस नहीं गये, न उन्होंने अपने कलासंबंधी विचारों को शब्दरूप किया। अपना निवासस्थान बोलोना में रहकर उन्होंने अंत तक अनुराग व

समर्पितवृत्ति से शीशियों, जलपात्रों व भिन्न आकारों के मिट्टी पात्रों के वस्तुचित्र बनाये जो कोमल रंगसंगति, लयबद्ध आकार व वास्तुशास्त्रीय रचना से एवं पृष्ठभूमि के वातावरण से गूढ व सचेत है ।

दादावाद व अतियथार्थवाद

दादावाद किन्हीं कलासंबंधी सिद्धांतों को प्रस्थापित करने के विचार से किया आंदोलन नहीं था। वह जीवन, कला व दर्शन के प्रति अराजक विचारों का दृष्टिकोण था; व इस अराजक दृष्टिकोण को लेकर दादावादियों ने परंपरागत एवं प्रचलित सभी सिद्धांतों के विरोध में अपनी कृतियों एवं कार्यक्रमों द्वारा प्रदर्शन किया जिसके पीछे पुराने विचारों को, नीतिनियमों को नष्ट करने के अतिरिक्त कोई अन्य ध्येय नहीं था न कोई सृजनात्मक विचार; एक प्रकार से यह विनाशवाद[1] का कलाक्षेत्रीय रूप था।

प्रथम विश्वयुद्ध से मानव-समाज में कटुता व निराशा का वातावरण फैल गया था व आंधी-ग्रस्त पाश्चात्य समाज की विनाशक परिस्थिति के–अगतिक होकर उपहास के साथ—किये स्वीकार में दादावाद का जन्म हुआ।

दादा कलाकारों ने विश्वयुद्ध में न केवल प्रचलित सौंदर्यकल्पना के अंत को देखा बल्कि युद्ध की भीषणता से उनका धर्म, नीति व सामाजिक मूल्यों पर विश्वास नहीं रहा जो उनके विचार से मानवता को अन्याय व संहार से बचाने में असमर्थ रहे। जैसी युद्ध की भीषणता बढ़ती गयी, मानव-जीवन कूड़ेकचड़े के समान बिखर गया; मानव की 'सत्यं शिवं, सुंदरम्' की कल्पना नष्ट हो गयी। योरपीय साहित्यिकों व कलाकारों के मन में ठनी कि सब संसार अर्थहीन है व इसी विचार को सत्य मानकर उसकी अभिव्यक्ति के लिये वे नये ढंग के बेताल कलाविरोधी[2] प्रदर्शनी करने को उद्यत हुए। उनकी प्रदर्शनियों में पुराने बस-टिकट, रस्सी के टुकडे, पुरानी खराब घड़ियां, लकड़ी के गुटके, टूटे बटन, पुराने चित्र, फोटो, टूटी फूटी चीजें वगैरह सब तरह का रद्दी सामान रखा जाता व उन पर अनोखे शीर्षक लिखे जाते। उन वस्तुओं को वे या तो पट पर चिपकाते था शिल्पकृति के समान चौके पर रखते व अस्वाभाविक गांभीर्य के साथ उनको कलाकृतियों के रूप में प्रदर्शित करते।

दादावाद का जन्म १९१६ में ज्यूरिच के 'काबारे वोल्तेर'[3] में हुआ। जर्मन विचारक व साहित्यिक ह्यूगो बॉल ने सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों का पुर्नविचार करने के उद्देश्य से 'काबरे वोल्तेर' का उद्घाटन किया था। भिन्न देशों के साहित्यिक व कलाकार विश्वयुद्ध की भयानकता से बचने के लिये ज्यूरिच में रहने

आये थे। ये 'कावारे वोल्तेर' में मिलते व उनमें विचारों का आदान-प्रदान होता; किंतु उनका मूल्यों का पुनर्विचार करने का तरीका अनोखा था—वह था विदूपकीय परिहास। विदूपकीय विपरीत तरीकों से वे प्रत्येक आदर्श विचार पर संदेह व्यक्त करके उसका उपहास करते। रूमानियन कवि ट्रिस्टान त्सारा, अलसेशियन चित्रकार हान्स आर्प व हंगेरियन चित्रकार मार्सेल यांको ने ह्यूगो बाल को साथ दिया।

'दादा' का नामकरण अनोखे ढंग से किया गया था। जर्मन-फ्रेंच शब्दकोश को चाकू से खोला गया व जो शब्द पहले पहल दिखायी दिया वह था 'दादा'[4] (दादा = झूलनेवाला लकड़ी का घोड़ा); बस, उसी नाम से उन्होंने अपने आंदोलन का प्रसिद्धिकरण किया। दादा चित्रकार व साहित्यिक दैवयोग को कितना महत्व देते थे उसका इससे परिचय होता है। भविष्यवादियों के सम्मेलनों के समान, दादा सम्मेलनों में वादविवाद, हुल्लड़वाजी व जोरशोर हुआ करते किंतु 'दादा' में भविष्यवावादियों के आत्मविश्वास व आशावाद के स्थान पर उपहासात्मक कटुता व निराशावाद आरूढ थे। वे काव्य को अभिव्यक्ति या विचारप्रदर्शन का साधन नहीं मानते; उनके लिने काव्य मनोवैज्ञानिक अवस्था की अनियंत्रित, आंतरिक प्रतिक्रिया था व उसका तर्क या विवरण से कोई संवंध नहीं था। दादा कलाकारों की कोई निराली चित्रण पद्धति नहीं थी; वे घनवाद. भविष्यवाद व वस्तुनिरपेक्ष कला को चित्रण में परिणामकारक मानते। त्सारा कागज के टुकड़ों पर शब्दों को लिखकर उनको टोप में डाल देते व जो हाथ में आ जाये उसको निकाल लेते; उस पर जो शब्द संयोग से लिखा होता उसको वे कागज पर उतारते व इसी प्रकार शब्दों को क्रमशः लिखकर जो शब्द-शृंखला बन जाती उसको वे काव्य कहते। आर्प वस्तुनिरपेक्ष आकारों को टुकड़ों में काट कर, उन टुकड़ों को इतस्ततः विखेरते व उसी क्रम में उनको चिपका कर चित्ररचना करते।

चित्रकार पिकाविया के 'दादा' में शामिल होने से दादा चित्रण की एक निजी शैली विकसित होने लगी। पिकाविया ने दादा कलाकारों को मार्सेल द्युशां की चित्रण संबंधी कल्पनाओं से परिचित कराया। जिस समय ज्यूरिच में दादा आंदोलन जोर पकड़ रहा था, न्यूयार्क में भी एक कलाकार-मंडल 'दादा' के समान प्रयोगों में व्यस्त था। उसके प्रणेता थे मार्सेल द्युशां व फ्रान्सि पिकाविया; व ये कलाकार छायाचित्रकार आल्फ्रेड स्टीगलित्स की पांचवें मार्ग के २९१ क्रमांक पर स्थित वीथिका में सम्मिलित होते। स्टीगलित्स की मासिक-पत्रिका में १९१३ से दादावाद के समान कविताएं व रेखाचित्र प्रकाशित हो रहे थे। १९१५ से उन्होंने '२९१' नाम से मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया।

पिकाविया व द्युशां का १९१० में पैरिस में परिचय हुआ। उस समय वे घनवादी पद्धति के चित्रण करते थे। उन्होंने सेक्सिओं दोर प्रदर्शनी में भाग लिया था व सुरीलवाद के विकास में योगदान किया था। अब कला से नैसर्गिक, मानवीय

एवं बौद्धिक तत्वों को हटा कर कला की नयी परिभाषा तैयार करने की चर्चा शुरू हुई। यंत्रयुगीन आकारों के नवनिर्माण ने कलाकारों का ध्यान आकर्षित किया। भविष्यवादियों ने घोषित किया था कि तेज चलनेवाली गाड़ी 'सेमोथ्रेस की विजय' शिल्पाकृति से अधिक सुंदर है; देलोने को एफेल मीनार के विशाल रूप में उदात्त का दर्शन हुआ था; लेजे ने यंत्र के सर्वव्यापित्व को पहचान कर मानवाकृतियों को यंत्र-सम चित्रित किया था; किंतु 'दादा' कलाकारों को यंत्र के निर्माण में मानवजाति की गुलामी व उपहास के तत्व दिखायी दिये। उन्होंने चक्र, तार, यंत्र के पुर्जे आदि वस्तुओं से युक्त अनोखी, यंत्रसम किन्तु पूर्ण अनुपयुक्त रचनाओं को चित्रित करके मानव की यंत्र की गुलामी का उपहास किया। इससे पहले फूलों, पौधों व प्राणियों के चित्रों से परिपूर्ण पुस्तकों से मानव का मनोरंजन होता था व अब उद्योगनिर्मित उपयुक्त वस्तुओं के सचित्र सूचीपत्रों में नवीन आरामदायक सुखसाधनों का वर्णन पढ़ कर मानव भविष्य की कल्पनानगरी के ख्वाब देखने लगा था। किन्तु दादावादियों ने उसका भ्रमनिरास किया।

१९११ में द्युशां ने यंत्रसम आकृति को चित्रित करके उसको शीर्षक दिया 'कॉफी की चक्की'[5]। जंगली जाति के क्रूर व भयानक देवताओं के पूजन से आधुनिक मानव की यंत्रपूजा की तुलना करके उन्होंने मानव की मूर्खता का उपहास किया था। १९१२ में उन्होंने भविष्यवादियों के गतित्व के सिद्धांत से प्रभावित होकर, अपना प्रसिद्ध चित्र 'जीने पर उतरती हुई विवस्त्र मानवाकृति'[6] बनाया। १९१४ से उन्होंने 'बनीबनायी'[7] वस्तुओं को अपरिचित, अनोखे वातावरण में रख कर व विचित्र, काल्पनिक शीर्षक देकर कलाकृति के रूप में प्रदर्शित करना शुरू किया व अपनी उपहासगर्भ कला को नया मोड़ दिया। ऐसे वस्तुदर्शन के प्रेक्षकों में हंसी, क्रोध या भय की भावना का निर्माण होता व 'दादा' कला का उद्देश्य सफल होता। १९१७ में न्यूयार्क में हुई प्रदर्शनी में उन्होंने मूत्रपात्र पर आर मट नाम से हस्ताक्षर करके 'फव्वारा'[8] शीर्षक से उसको प्रदर्शित किया। द्युशां की 'बनी बनायी कला' में प्रत्यक्ष कठोर वास्तविकता को नया अकल्पित अर्थ देने का सामर्थ्य था।

१९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होते ही द्युशां न्यूयार्क गये व १९१५ में पिकाबिया भी वहां पहुंचे। न्यूयार्क में आये हुए शरणार्थी कलाकारों के विचारों में भी अस्वस्थता व क्रांतिवादी दृष्टिकोण थे जो ज्यूरिच के दादा कलाकारों के थे। यहां द्युशां ने अपनी प्रसिद्ध कृति ब्रह्मचारियों से विवस्त्र की गयी वधू'[9] तैयार की। यह कृति संयोग व स्वयंचालन[10] के सिद्धांत का पालन करके यंत्रसम आकारों की योजना करके, कांच के अंदर बनायी थी। इस समय द्युशां स्वयं को कला-विरोधी मानते थे। १९१६ में उन्होंने कुर्सी पर साइकिल को बिठाकर अपनी प्रथम चंचलकृति का निर्माण किया। १९२० में उन्होंने घूमती हुई कांच की तश्तरियां' व १९२५ में 'घूमते शिल्प'[11] को बनाया जिनमें घूमते हुए चंचल आकारों का समावेश करके

उन्होंने दृष्टिभ्रम को रचना में स्थान दिया। इन रचनाओं से 'चंचलकृति'[12] का नया क्षेत्र खुल गया।

द्युशां के साथ तरुण अमेरिकन कलाकार मॅनरे काम करते थे। शुरू में वे जॉर्ज बेलोस व रॉबर्ट हेनरी के शिष्य थे व 'आर्मरी प्रदर्शनी' के बाद घनवादी चित्रण करने लगे थे। उन्होंने छायाचित्रण के कांचों पर प्रयोग कर के 'रेयोग्राम'[13] की निर्मिति की। छायाचित्रों की छपाई में भिन्न कांचों का एक साथ प्रयोग कर के वे काल्पनिक, अद्भुत प्रभाव का निर्माण करते। रेयोग्राफी आधुनिक छायाचित्रण की प्रगति में काफी सहायक रही।

इस प्रकार उपहास व निंदा के हेतु से की गयी 'दादा' की विदूषकीय खेल-क्रीड़ा से भी आधुनिक कला व निर्माण को सृजनात्मक दिशा में गति मिली। 'दादा' अंकनपद्धतियों से अक्षरकला[14] की नयी पद्धतियों के विकास में असाधारण लाभ हुआ। दादा चित्रकारों ने अक्षरों की रचना में एवं संयोजन में क्रांतिकारी परिवर्तन किये; वे अक्षरों को तिरछे अंकित करते, बड़े अक्षरों की, कहीं बीच में, अनपेक्षित स्थानों पर योजना करते व संपूर्ण पत्र को कलाकृति के समान सौंदर्यात्मक या रचनात्मक दृष्टिकोण से रूपायित करते। 'दादा' से सिनेमा–निर्माण-कला को भी लाभ पहुंचा; स्वीडिश चित्रकार वाईकिंग एग्गेलिंग ने हान्स रिश्टर के सहयोग से प्रथम वस्तुनिरपेक्ष चित्रपट का निर्माण किया। आधुनिक कलाविद्यालयों में माध्यमों के साथ निरुद्देश्य खेलक्रीडन सृजन का परिणामकारक तरीका माना गया है और उसको शिक्षा के कार्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान है।

द्युशां ने सहजज्ञान से तीन तत्वों को कला का मूलाधार माना एवं स्वाभाविक तरीकों से किंतु निश्चय के साथ, प्रयोग कर के उनको कलानिर्मिति में उपयुक्त सिद्ध किया। प्रथम, गतित्व के विचार से उन्होंने घनवाद के समयावच्छेद व भविष्यवाद के गतित्वदर्शी आकारों से आरंभ करके चंचल कृतियों की निर्मिति की; दूसरा, उपहास के विचार से उन्होंने सहजसिद्ध या आकस्मिक तत्वों के अनपेक्षित परिणाम को कला में स्थान देना शुरू किया जिससे निरुद्देश्य खेलक्रीडन व परिहास, कलानिर्मिति में, अचेतन अनुभूतियों को साकार करने का प्रभावी साधन बन गये; तीसरा, विषयवस्तु के परिणामकारक दर्शन के विचार से उन्होंने वस्तु को प्रथम व्यंग्यात्मक व बाद में पृष्ठभूमि से पृथक् व स्वतंत्र रूप में अंकित किया और अन्त में 'बनीबनायी वस्तु' को भी बुद्धि व कौशल से कलात्मक रूप प्रदान किया और इस पद्धति को आधुनिक कला में 'महत्तर सत्य' के साक्षात्कार का एक महत्वपूर्ण तरीका माना गया है। ये तीनों विचार दादा रूपांकन पद्धति के आधार बन गये।

१९१६ में पिकाबिया बार्सिलोना गये जहां उनको मारी लोरांसँ व ग्लेजे मिले एवं उन्होंने '३९१' नामक मासिक–पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। १९१९ में पिकाबिया ज्यूरिच गये एवं न्यूयार्क व ज्यूरिच में स्वतंत्र रूप से जन्मे दादा एकत्रित

आ गये और दादावाद का जर्मनी व फ्रान्स में अविलंब प्रसार हो गया।

१९१७ में ह्यूल्सेनबेक ज्यूरिच से वापस बर्लिन चले गये जहां जनता भूख, दुख व राजनैतिक अस्थिरता से संत्रस्त थी। उन्होंने दादा घोषणापत्र में जाहिर किया 'दादा' के साथ एक नये यथार्थ ने जन्म लिया है। जीवन में एकसाथ ध्वनि, रंग व आत्मिक अनुभूतियों की अव्यवस्था प्रतीत होती है और उसको दादा ने अपरिहार्य, अपरिवर्तित यथार्थ रूप में स्वीकारा है, जिसमें–हृदयभेदी करुण पुकार, दैनंदिन विवेकहीन जीवन के मनोविज्ञान का आतंक व पाशवी सत्य-सब कुछ जैसे कि वैसे है।........दादावाद ने ही सर्वप्रथम जीवन के प्रति सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण को अस्वीकारा है और उसके लिये उसने नीति, संस्कृति व अंतर्मुखवृत्ति की कपोलकल्पित, असत्य घोषणाओं को छिन्नविछिन्न किया है जो दुर्बल मानव के लिये एक बहाना मात्र हैं"। दादावाद का जर्मनी में शीघ्र प्रसार हुआ किंतु जर्मन दादावाद का लक्ष्य मुख्य रूप से राजनैतिक उपहास था और उसके प्रमुख कलाकार थे जॉर्ज ग्रोत्स। उनकी कला के कठोर रेखांकन, मोंताज कृतियों, घनवादी व भविष्यवादी अंकन-पद्धतियों के प्रयोग व अभिव्यंजनावादी आवेश के लक्ष्य थे राजनैतिक गुटबाजी, सैनिकशाही व भ्रष्टाचार।

कोलोन में माक्स एर्न्स्ट–जो शुरू में दर्शन के विद्यार्थी थे–पिकासो व कान्डिन्स्की से प्रभावित थे व अभिव्यंजनावाद का अध्ययन कर रहे थे। १९१३ में उनका पिकाबिया से परिचय हुआ था। विश्वयुद्ध शुरू होने पर जब पिकाबिया कोलोन आये तब माक्स एर्न्स्ट दादा आंदोलन में शामिल हुए एवं बार्गेल्ट के साथ उन्होंने कोलोन में दादा कृतियों का निर्माण शुरू किया। द्युशां की 'वनीवनायी' की कल्पना उनको सबसे अधिक पसंद आयी। उन्होंने टेक्निकल रेखांकन की पुस्तकों में छपी आकृतियों को काट कर विचित्र राक्षसी आकृतियों की चित्रसृष्टि का निर्माण किया जिसमें उन्होंने आकस्मिक व अनपेक्षित के तत्वों को प्रयोगान्वित किया था। उन्होंने पुरानी मासिक पत्रिकाओं व विज्ञानसंबंधी पुस्तकों से रेखाचित्रों को टुकड़ों में काट कर उन टुकड़ों को पुनः एक साथ, भिन्न, तर्कहीन क्रम में रख कर—जो पद्धति 'मोंताज'[15] नाम से प्रसिद्ध हुई–अद्‌भुत दर्शन की कृतियां निर्माण कीं; उदाहरण के लिये उन्होंने प्रकाशयंत्र को पेड़ पर चिपकाया व झिंगुर के खण्डचित्र को नाव पर चिपकाया। इस प्रकार प्रत्यक्ष सृष्टि से आकारों को चुन कर उनकी पुनर्रचना से वे काल्पनिक सृष्टि का निर्माण करते। एर्न्स्ट की कोलाजकृतियों से अंतर्मन व अचेतन प्रेरणाओं का कलात्मक महत्व बढ़ गया। १९२२ में वे पैरिस गये जहां उन्होंने अतियथार्थवाद के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया।

१९२० में कुर्ट श्विटर्स ने हानोवर में 'दादा' को एक निराले रूप में जन्म दिया जिसको वे 'मर्त्स' कहते। 'मर्त्स' एक अर्थहीन शब्द था व 'कोम्मर्त्स'[16] शब्द की योजना कर के कोलाजकृति बनाते समय आरंभ के अक्षर कट जाने से वह शब्द

रह गया था। श्विटर्स की 'मर्त्स' कृतियों का उद्देश्य केवल रचनात्मक नहीं था। शुरू में वे प्रभाववादी चित्रण करते थे व कुछ समय तक उन्होंने अभिव्यंजनावादी चित्र बनाये। उसके पश्चात् पिकासो का अनुसरण कर के उन्होंने कोलाजकृतियां बनायीं व अंत में दादा के कलाविरोधी, अद्भुतवादी विचारों का कोलाजकृतियों से मिलाप कर के उन्होंने नवीन ढंग की कृतियां बनायीं। कील, टिकट, बाल वगैरह वस्तुओं का संग्रह कर के वे उनसे चित्र रचना करते। उनके विचार से ऐसी रचना से ऐन्द्रजालिक परिणाम का निर्माण हो कर वास्तविकता के पीछे छिपे सत्य से हम परिचित हो जाते हैं। वे अपनी रचनाओं को मर्त्स कविता, मर्त्स चित्र व मर्त्स कोलाज कहते। वे मानते कि जंगली जाति के देवता के समान उनकी मर्त्स कृति जीवन की शून्यता को अर्थ प्रदान करती है। अब उन्होंने पुरानी वस्तुओं के संग्रह के लिये एक मंदिर के समान विशाल गृह बनवाया जिसको वे मर्त्सबौ[17] कहते; अपनी उर्वरित आयु में उन्होंने कई जगह मर्जबौ बनवाये। सभी दादा कलाकारों में से श्विटर्स सबसे अधिक विचारशील व एकनिष्ठ थे। उनके कुछ मर्त्स विल्ट (मर्जविल्ट = रद्दी चित्र)[18] आकार व रेखाओं के सौंदर्य व मनोहर रंगसंगति के उत्तम उदाहरण हैं।

१९१९ में त्सारा व पिकाबिया पैरिस गये और वहां उन्होंने 'दादा' कार्यक्रम शुरू किया। वे 'साहित्य'[10] नामक मासिक पत्रिका से संबंधित कवियों के मंडल में शामिल हुए जिसमें ब्रेतों, आरागों व सुपोल प्रमुख थे। ये कवि त्सारा से अधिक विवेकशील थे; ये अंतर्मन, ख्वाब की दुनिया व ऐंद्रजालिक अनुभूतियों को कला द्वारा चित्रित करना चाहते एवं उसके लिये आकस्मिक घटनाओं, अचेतन क्रियाओं, विकृत प्रतिमाओं व प्रतीकों से सहायता लेते। अतः उनका दादा कलाकारों से शीघ्र ही परिचय हुआ किंतु दादावाद का फ्रेंच कलाकारों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

कुछ सालों तक दादा साहित्य व कला का घनिष्ठ संबंध था व उनके प्रसार व सफलता के दो प्रमुख कारण थे; प्रथम उनका बुद्धिवाद-विरोधी कार्यक्रम—कला को नष्ट करने के लिये कला—विश्वयुद्धजनित निराशा के वातावरण के अनुकूल था, और दूसरा, उनकी 'मनःपूतं समाचरेत्' पद्धति की पागल प्रदर्शनियां, लोकविलक्षण व्यवहार, मनमौजी नृत्य वगैरह बातों ने समाज को परिस्थिति से बढ़े हुए मानसिक तनाव को हलका करने का साधन प्राप्त हुआ। पिकासो व ग्रोत्स जैसे विचारक कलाकार भी दादावाद की ओर आकर्षित हुए थे किंतु कुछ समय में ही वे स्वतंत्र विचार से स्थायी महत्व की कलाकृतियों को निर्माण करने के उद्देश्य से उससे पृथक् हो गये। आर्प व माक्स एर्न्स्ट जैसे बुद्धिमान् चित्रकार अपने दृष्टिकोण को सुनिश्चित रूप देने में व्यस्त हो गये एवं कला का अंत करने के उद्देश्य से जन्मे 'दादा' का अंत हुआ।

दादा का परमोत्कर्ष उसकी १९२० में पैरिस में हुई प्रदर्शनी में देखने को मिला; इसमें मूर्तियां व चित्र रखे गये, कविसंमेलन हुए, संगीतसमारोह का आयोजन

किया गया व सभी कार्यक्रम दादा सिद्धांतों के अनुसार हँसी-मजाक, जोर-शोर व उपहास मे ओतप्रोत थे । द्युशां ने मोना लिसा की प्रतिकृति को होठों पर मूंछें चित्रित कर के प्रदर्शित किया व उसको शीर्षक दिया 'ल्हुक'[20] । पिकाबिया ने एक चौखटे में खिलौने का बंदर रख दिया और उसको शीर्षक दिया 'सेजान का व्यक्तिचित्र' । इस प्रकार दादा कलाकारों ने सौंदर्य की परपरागत कल्पनाओं व आधुनिक कला के महान् आदर्शों का उपहास किया । दादा का जन्म मानव-विकास, यंत्रयुग व शिष्टाचार की निंदा करने के हेतु हुआ था । पिकाबिया की कृति 'कामुकता का प्रदर्शन'[21] इसी उद्देश्य से बनाया गया था और उसमें निरुपयुक्त यंत्रसम रचना को चित्रित कर के यंत्रयुग का उपहास किया था ।

१९२२ में दादा कलाकारों का एक संमेलन हुआ जिसमें त्सारा व आंद्रे ब्रेतों ने एक दूसरे का विरोध किया । ब्रेतों ने फ्रेंच कलाकार आरागों, सुपोल व एल्वार व कुछ स्विस कलाकारों को अपने गुट में शामिल किया व दो साल के अंदर ही एक नये आंदोलन का जन्म हुआ जिसमें दादा के बुद्धिवाद-विरोधी विचारों के साथ, मानव के अंतर्मन के आंतरिक रहस्यों की खोज का उद्देश्य प्रमुख रूप में सामने रखा गया; यह था अतियथार्थवाद ।

अतियथार्थवाद :

दादा व भविष्यवाद के समान, अतियथार्थवाद में कलाकृति के सौंदर्यात्मक गुणों का कोई विचार नहीं था, न उसमें अंकनपद्धति संबंधी कोई निश्चित सिद्धांत थे। उसने अंतर्मन के अज्ञात यथार्थ का आविष्कार कर के कलाकारों को एक नया विषय-क्षेत्र उपलब्ध कराया। सिग्मुंट फ्राइड के मनो विश्लेषण[22] संबंधी विचारों व अंतर्मन के आविष्कार के नये तरीकों ने १९२० के करीब सभी विचारकों का ध्यान आकर्षित किया था; तर्कशास्त्र का सूत्रबद्ध क्रम अब भ्रममूल व मिथ्या प्रतीत हो रहा था । अतियथार्थवाद का दृष्टिकोण भी तत्सम था एवं उसके सभी कार्यक्रम उस दृष्टिकोण से निर्दिष्ट थे; उसने कला को अंतर्मन की खोज का परिणामकारक साधन माना ।

१९२४ में आंद्रे ब्रेतों ने अतियथार्थवाद का प्रथम घोषणा-पत्र प्रकाशित किया । संक्षेप में उसका निष्कर्ष था, "विशुद्ध, स्वयंचालित मनोवैज्ञानिक क्रियाओं से भाषण, लेखन, चित्रण या अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों द्वारा विचारों को सत्य रूप में प्रकट किया जा सकता है । तर्कबुद्धि के बाह्य नियंत्रण से एवं सौंदर्यात्मक व नैतिक तथ्यों से मुक्त, स्वयंपूर्ण विचार क्रियाओं पर भी यह सिद्धांत लागू होता है । अब तक उपेक्षित क्रिया-साहचर्यों की श्रेष्ठ सत्यता का अतियथार्थवाद विश्वास करता है, स्वाब के निर्णायक सामर्थ्य व अचेतन विचार क्रिया के निष्काम क्रीडन का विश्वास करता है । इन्हीं से जीवन की संपूर्ण समस्याओं का हल किया जा सकता है" । ब्रेतों

की धारणा थी कि बौद्धिक विचारक्रिया से मानवजीवन की संपूर्ण अनुभूति के अत्यल्प अंश का ही ज्ञान हो सकता है जिसको हम भूल से संपूर्ण सत्य मान कर चलते हैं। इसके अतिरिक्त कल्पना, अनुमान व सहजज्ञान से हम आंतरिक अनुभूति के व्यापक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं जो हमें तर्कबुद्धि के विरोध के बावजूद बार-बार बेचैन करती रहती है। कलाकारों व साहित्यिकों को—जो सहजज्ञान व अंतर्मन के स्वामी हैं—इस क्षेत्र में प्रवेश कर के उस पर प्रकाश डालना चाहिये। कुछ लोक कला को आकारसौंदर्य की निर्मिति मानते हैं किंतु यह अर्थहीन है; कला का मानव व मानवीय सत्य से प्रत्यक्ष संपर्क होना चाहिये। कलाकार इस सत्य को लिपिबद्ध करने का यंत्र मात्र है। तर्क, नीति, सौंदर्य वगैरह तत्वों से इस यंत्र की गति में रुकावट पैदा होगी। यदि कलाकार योग्य तरीकों को अपनायेगा तो वह अंतर्मन की खुली पुस्तक को सरलता से पढ़ पायेगा। जीवन के आंतरिक सारतत्व की गहन अनुभूतियों व उनके प्रति मानवीय प्रतिक्रियाओं को समझने के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अतियथार्थवाद प्रेरित था। इन अनुभूतियों का प्रकटीकरण भौतिक घटनाओं व ऐंद्रिक ज्ञान पर तार्किक विचार करने से नहीं हो सकता था; इसके लिये अंतःचक्षु से देखना जरूरी था। प्राचीन काल से, आदिम लोकों ने अद्भुत घटनाओं की व्याख्या करने में मंत्रतंत्र के प्रयोग में एवं गुप्तविद्या में इसी पद्धति को अपनाया एवं मानवीय मन के गूढ सत्यों का परिचय किया। किंतु यथार्थवादी कलाकारों ने काफी आगे बढ़ कर स्पष्ट किया कि मानव के अंतर्मन व यथार्थ के बीच की गहरी खाई पार करने के साधन हैं, कल्पना, अनुमान व सहजज्ञान। मनोरंजन, सौंदर्यदर्शन या आत्मसंतोष ये अतियथार्थवादी कला के उद्देश्य नहीं थे। ये कलाकार बाह्य यथार्थ के ऐंद्रिक ज्ञान को अस्वीकार कर, अंतर्मुख हो कर आत्मपरीक्षण करते व आंतरिक दुनिया के सत्यार्थ के आविष्कार में मग्न रहते। इस प्रकार अतियथार्थवाद में कलात्मक की अपेक्षा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर अधिक बल था; वैज्ञानिक कल्पनाशक्ति अतियथार्थवादी काव्य का प्रमुख आधार थी व उसके द्वारा नये मानसिक क्षितिजों की खोज की जा रही थी।

अतियथार्थवादी कलाकार केवल अचेतन मन की क्रियाओं पर निर्भर रहते और उससे प्राप्त विरोधी प्रेरणाओं को एकात्म रूप देने के प्रयत्न करते व तर्कशास्त्रीय विरोधी तत्वों में—जैसे कि मृत्यु व जीवन, भूत व भविष्य, यथार्थ व काल्पनिक आदि–समन्वय करना चाहते। इस संदर्भ में आंद्रे ब्रेतों ने लिखा है "मेरा विश्वास है कि ये प्रत्यक्ष रूप से विरोधी अवस्थाएं—स्वप्न व जागृति–निरपेक्ष यथार्थ में यानी अतियथार्थ में एकरूप होंगी"[23]।

अपने ध्येय की पूर्ति के लिये अतियथार्थवादी कलाकारों को परंपरामान्य कला-प्रेरणाओं को छोड़ना पड़ा और वे दबाव, नशा, मतिभ्रम, स्वयंचालित लेखन, मूर्च्छा, भयानक स्वप्न, पागलअवस्था, वायुप्रकोप, निद्राभ्रमण, सम्मोहन[24] जैसी

असामान्य अवस्थाओं से चित्रण योग्य सामग्री प्राप्त करने लगे। एल्वार्द के अनुसार इन अवस्थाओं में बुद्धि के शुद्ध, स्वतंत्र रूप व मूलभूत सामर्थ्य का सच्चा साक्षात्कार होता है। ऐसी तर्कबाह्य अवस्थाओं में ऐंद्रिक ज्ञान की तार्किक सूत्रता के जाल से मुक्त होकर अतर्क्य, असाधारण व अद्‌भुत अनुभूतियों द्वारा मानव अज्ञात का दर्शन पाता है। रिम्बो के विचार से "........दीर्घ, असाधारण अध्ययन से ऐंद्रिकता से मुक्त होकर कवि भविष्यवेत्ता बन जाता है"। इसके अतिरिक्त, असंबद्ध या विरोध-भावयुक्त वस्तुओं या कल्पनाओं के साहचर्य से भी अतियथार्थवादी कलाकार अद्‌भुत प्रभाव का निर्माण करते। उन्होंने सामूहिक प्रयत्नों से सृजन करने के भी प्रयत्न किये; जैसे कि एक व्यक्ति बहुत से शब्द लिख लेता जिनको पढ़ कर दूसरे व्यक्ति को जिन अन्य शब्दों का कल्पनाज्ञान होता वे शब्द लिखे जाते; व इस प्रकार से निर्मित स्वयंचालित शब्दरचना से कोई तर्कशुद्ध विचार नहीं बनता किंतु उससे अंतर्मन को प्रकाशित करने वाली शब्दरूप प्रतिमाएं अवश्य मिलतीं। इस पद्धति के सामूहिक प्रयत्नों से अतियथार्थवादियों ने कुछ उपन्यास लिखे। इसी के समान पद्धति से अतियथार्थवादी चित्रकारों ने सामूहिक चित्रण किया; कागज के एक हिस्से पर एक चित्रकार रेखांकन या रंगांकन करता व उसको ढंक कर दूसरा चित्रकार कागज के शेष हिस्से में और कुछ बनाता व इस प्रकार से निर्मित कृति तर्कहीन किंतु अद्‌भुत बनती। इन सभी पद्धतियों का एक ही लक्ष्य था—स्वयंप्रेरित, सहजसिद्ध प्रतिमाओं व अज्ञात तत्वों को कला में बांधना।

इस प्रकार अतियथार्थवादियों ने नये सौंदर्यशास्त्र को जन्म दिया जिसके सूत्रधार थे कवि ब्रेतों, एल्वार व पियर रेवर्दी। १९२४ में अतियथार्थवाद की मासिक पत्रिका 'अतियथार्थवादी क्रांति'[25] का प्रकाशन शुरू हुआ। १९२९ में प्रकाशित द्वितीय घोषणापत्र में अतियथार्थवादी आंदोलन के उद्देश्यों को अधिक स्पष्ट रूप दिया था। अतियथार्थवाद की प्रमुख प्रदर्शनियां १९३६ में लंदन में व १९४७ में पैरिस में हुई। उसके पश्चात्, अतियथार्थवाद, आंदोलन के रूप में, नष्ट हुआ यद्यपि वैयक्तिक रूप से, अतियथार्थवादी कृतियां, बनती ही रहीं।

अतियथार्थवाद को आरंभ में ही अनुयायी मिले। उनकी प्रथम प्रदर्शनी की सूची में पिकासो, मॅनरे, आर्प, क्ली, एर्न्स्ट, डि शिरिको के नाम थे। इनके अतिरिक्त, अतियथार्थवादी चित्रकार आन्द्रे मास्सों, जोन मायरो व पियर रॉय ने विश्वख्याति प्राप्त की। १९२६ में 'अतियथार्थवादियों की कलावीथिका' का उद्‌घाटन हुआ जहां १९२७ में इवे तांग्वी के चित्रों की प्रदर्शनी हुई। १९३० में स्पेनिश चित्रकार साल्वाडोर डाली अतियथार्थवादियों के मंडल में शामिल हुए। इस आंदोलन में चित्रकारों व कवियों का घनिष्ठ सहयोग रहा। १९२८ में कवि ब्रेतों ने 'अतियथार्थवाद व चित्रकार'[26] नाम की पुस्तक प्रकाशित की।

अतियथार्थवादी चित्रकारों में से मॉक्स एर्न्स्ट व डाली ने वास्तव सदृश

आकारों के प्रयोग से अद्‌भुत सृष्टि का निर्माण किया जबकि हान्स आर्प, मास्सों व तांग्वी ने अचेतन प्रेरणाओं से प्रभावित किंतु वस्तुनिरपेक्ष आकारसृष्टि को बनाया। अतियथार्थवादी चित्रकार, अचेतन क्रियाओं के सहाय के रूप में, कभी कोलाजपद्धति, अनोखी वस्तुओं का चित्रक्षेत्र में समावेश, माध्यम का अप्रचलित ढंग से प्रयोग आदि तरीकों को अपनाते; माध्यम को फैलाना, दूर से फेंकना वगैरह प्रयोग करते।

'निर्जीव पर जीवित्व का आरोप'[27] अतियथार्थवाद की एक विशेषता थी जिससे निर्जीव वस्तुओं को नया व्यक्तित्व प्राप्त हो कर वे मूक भाषा में अनोखी भावनाओं को व्यक्त करतीं व जादूमय सृष्टि का निर्माण होता। अतियथार्थवादियों की अंतर्भेदी शोधक दृष्टि को पत्थर, ठूंठ व जड़ वस्तुओं में विचित्र प्राणियों का दर्शन होता व पुरानी दीवारों में अनोखी सृष्टि का परिचय होता। अननुभूत भावनाओं को जागृत करनेवाली आकस्मिक लब्ध वस्तु'[28] को वे कलाकृति के रूप में प्रदर्शित करते। वस्तुओं के इस सुप्त मनोवैज्ञानिक सामर्थ्य को अतियथार्थवादी तरीकों से उपायबंधन कर के वृद्धिगत किया जाता। परिचित वस्तु को अपरिचित वातावरण में बांध कर के या भिन्न वस्तुओं की सामूहिक रूप में अतर्क्य रचना कर के नये अतियथार्थ वस्तु [29]का निर्माण किया जाता। सब तरह से वस्तु में जीवन संचार होकर उसके अस्तित्व को नया मनोवैज्ञानिक अर्थ प्राप्त होता जिसको हम इंद्रजाल कह सकते हैं।

अतियथार्थ अनुभूति की निर्मिति दो प्रकार की प्रतिमाओं से हो सकती है। मानव-अंतर्मन के स्मृतिपटल में कई प्रकार की प्रतिमाएं छिपी रहती हैं जो स्वप्न, मतिभ्रम, दृष्टिभ्रम जैसी अवस्थाओं में, किसी अज्ञात से आयी हुई जैसी साक्षात्कार कराती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब अनोखी, निराली दुनिया के प्राणी हैं। कभी सामान्य वस्तुओं के यथार्थ रूप से भी निराले वातावरण के कारण या अपरिचित साहचर्य से ऐसी प्रतिमाएं जन्म लेती हैं जिनसे अतियथार्थ अनुभूति की प्राप्ति होती है। इस संदर्भ में लोत्रेयमौ ने लिखा है "वस्तु का सौंदर्य वही है जो शल्यचिकित्सक की मेज पर, सिलाई-मशीन का छाते के साथ समागम होने से प्रतीत होता है"। नोवालिस ने भी लिखा है "जब पूर्ण रूप से असंबद्ध वस्तुएं एक ही समय, एक जगह आ जाती हैं या कुछ विचित्र समानताओं, चमत्कृतिपूर्ण संगतियों या अनोखे साहचर्यों का निर्माण होता है तब एक वस्तु से कई स्मृतियां जागृत होती हैं एवं कई वस्तुओं से उसी का ज्ञान होता है"। साल्वाडोर डाली के विचार से "बाह्यजगत् का यथार्थ मन के यथार्थ का केवल स्पष्टीकरण व प्रतिमीकरण है"।

प्रतिमाओं की भिन्नता के अनुसार अतियथार्थवादी कला का वर्गीकरण किया जा सकता है। कुछ अतियथार्थवादी कलाकारों के चित्रों में काल्पनिक अवकाश में अद्‌भुत, भयानक या अनैसर्गिक आकारों की प्रतिमाएं दिखायी देती हैं जैसे कि वास्तविक आकारों के विकृत रूपांतर कर के ही उनको अद्‌भुत वातावरण में रखा गया

हो; ऐसी प्रतिमाओं का दर्शन हमें माक्स एर्न्स्ट, साल्वाडोर डाली व इवे तांग्वी के चित्रों में मिलता है। इनके चित्र ऐसे दिखायी देते हैं जैसे कि किसी अद्‌भुत सृष्टि के—जो अनैसर्गिक होते हुए वास्तवसृष्टि के काफी समरूप हैं—छायाचित्र। इसको हम 'यथार्थ अतियथार्थवाद'[30] कह सकते हैं। कुछ अतियथार्थवादी कलाकारों की प्रतिमाएं पूर्णरूप से काल्पनिक होती हैं व उनका जन्म मनोवैज्ञानिक स्वयंचालित क्रियाओं में होता है; ऐसे कलाकारों में मायरो, आन्द्रे मास्सों आते हैं एवं उनकी कला को हम वस्तुनिरपेक्ष अतियथार्थवाद'[31] कह सकते हैं। दोनों प्रकार की प्रतिमाएं अक्सर संमिश्रित अवस्था में देखने को मिलती हैं।

कुछ पूर्वगामी कलाकारों की कृतियों में हमें अतियथार्थ तत्वों का दर्शन मिलता है यद्यपि अतियथार्थवादी चित्रण को नियोजित सैद्धांतिक रूप व महत्वपूर्ण शैली का स्थान बीसवीं शताब्दी में ही प्राप्त हुआ। १५ वीं शताब्दी के चित्रकार जेरोम बॉश के चित्र-विशेषतया उनके चित्र 'सांसारिक आनंद का बगीचा'[32] अतियथार्थ प्रवृत्ति के समुचित उदाहरण हैं। गोया के कल्पनाचित्रों 'पुत्रभक्षक शनि' 'जादूगरनियों का व्रतदिन[33] वगैरह व ब्लेक की मतिभ्रमजनित कृतियों का जन्म भी ऐसी प्रवृत्ति में ही हुआ।

कला के विकास में द्वंद्वात्मक प्रवृत्तियां प्रेरणाप्रद रहती हैं; एक प्रवृत्ति का लक्ष्य होता है सौंदर्यदर्शन तो दूसरी का लक्ष्य होता है ज्ञानार्जन; इस दूसरी प्रवृत्ति ने अतियथार्थवाद को जन्म दिया और उसका लक्ष्य था मानव-अंतर्मन की खोज। अतियथार्थवाद केवल कलात्मक या साहित्यिक रचनायंत्रणा नहीं था बल्कि वह मानव-जीवन में ज्ञानप्राप्ति व सफलता का साधन था। कुछ उत्साही व निष्ठावान् अतियथार्थवादी कलाकारों ने अपने दैनिक जीवन में भी अतियथार्थवाद के सिद्धांतों का अनुसरण किया। इनमें से साल्वाडोर डाली विशेष ख्यातिप्राप्त चित्रकार हैं। उन्होंने अपने घर में भी विचित्र वस्तुओं, काल्पनिक अनुपयुक्त साधन सामग्रियों व भयानक चिन्हों से ऐंद्रजालिक वातावरण का निर्माण किया है, रहन-सहन में अनोखे रीति-रिवाजों को अपनाया है व स्वयं कुछ आदिम लोकों के समान व कुछ पौराणिक ढंग के कपड़े पहिनते हैं। एकबार लंदन में अतियथार्थवाद पर भाषण देने के लिये वे गोताखोर की पोशाक पहिन कर गये क्योंकि उनके विचार से अंतर्मन के गहरे सागर में गहराई तक पहुंचने के लिये ऐसी पोशाक का होना अनिवार्य था। 'न्यूयार्क टाइम्स' के वार्ताहर की भेंट के समय वे भेड़ की खाल पहिने हुए थे।

साल्वाडोर डाली

साल्वाडोर डाली का जन्म १९०४ में बार्सिलोना में हुआ। भविष्यवादियों के समयावच्छेद के सिद्धांत से वे प्रभावित हुए किंतु उसका प्रयोग उन्होंने गतित्व का परिणाम दिखाने में करने के बजाय एक साथ भिन्न काल्पनिक प्रतिमाओं व स्वप्नों को

चित्रित करने में, एवं स्वप्न को यथार्थ दृश्य अनुभूति के साथ चित्रित करने में किया।

१९२४ आत्मतत्ववाद के निर्जीव वस्तुओं को सचेत चित्रित करने की कल्पना से परिचित होने पर उनको अभिव्यक्तिसंबंधी एक नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। शुरू में वे मायरो के समान स्वयंचालित क्रियाओं द्वारा चित्रण करते थे किंतु उससे असंतुष्ट होकर वे अधिक परिणामकारक यथार्थ–अभिव्यंजनावादी प्रतिमाओं का काल्पनिक प्रयोग करने लगे। शिरिको से उन्होंने वाग्नर व नीत्शे के गूढवाद को समझा; किंतु फ्राइड के अध्ययन से ही स्वप्न की कल्पनातरंगों के कलात्मक महत्व को उन्होंने पहचाना और उनकी अभिव्यक्ति को आंतरिक तीव्रता प्राप्त हुई। यथार्थ के पीछे छिपी हुई घृणास्पद सत्य सृष्टि का उन्होंने खून, हत्या व सड़न को चित्रित करके भयानक दर्शन कराया; इस दर्शन के चित्रों में 'जलता हुआ जिराफ' (१९३५) 'गृहयुद्ध की पूर्वसूचना' (१९३६)'[34] विशेष प्रसिद्ध हैं। उनका चित्र 'दृष्टिसातत्य'[35] उनकी असाधारण कल्पनाशक्ति का परिचायक है; इस प्रसिद्ध चित्र में लचीली घड़ियां, कपड़ों के समान, पेड़ की टहनियों पर सूखने के लिये रखी हैं, उनके अंदर कीड़े-मकोड़े उनको खाते हुए चित्रित किये हैं एवं एक अजीब मूंछवाला जानवर पास में ही पड़ा है। डाली के चित्रों में उनके असाधारण चित्रणकौशल व मध्यमप्रभुत्व का प्रमाण मिलता है। अचूक रेखांकन, आकारों का ठोसपन व मनोहर रंगसंगति की दृष्टि से वे प्राचीन डच चित्रकारों के समान निपुण हैं जिसका उनका चित्र 'ईसा का आत्मसमर्पण'[36] उत्कृष्ट उदाहरण है। मायरो, मास्सों व तांग्वी की अतियथार्थ चित्रसृष्टि का उद्गम स्वयचालित क्रिया है जबकि डाली की कला के पीछे योजना व अभ्यास का सामर्थ्य भी है। उन्होंने वैद्यकीय मनोविज्ञान का अध्ययन करके निश्चित किया कि सभी कलाकार मानसिक विकृति[37] से पीड़ित रहते हैं; इस विकृति का निर्माण बाह्य प्रभावों में होता है और अंत में यह कलाकार का अपरिवर्तनीय स्वभाव बन जाती है। इस विकृति से संचालित सृजनक्रिया को वे मनोविकृतिजनित-समालोचक-क्रिया[38] कहते।

मावस एर्न्स्ट:

अतियथार्थवादी चित्रकारों में से मावस एर्न्स्ट ने बहुत ख्याति प्राप्त की एवं यथार्थ-अतियथार्थवाद का आरंभ उन्हीं से हुआ। १९२२ में वे पैरिस गये व वहां एल्वार के साथ उन्होंने काम किया। पुरानी किताबों से चित्रों को काटकर उन चित्रों के टुकड़ों को मनमाने चिपका कर उन्होंने अनोखे दृश्य-प्रभावों का निर्माण किया। मावस एर्न्स्ट का विश्वास था कि "दो प्रत्यक्ष रूप से असंबद्ध तत्वों को दोनों से अपरिचित पृष्ठभूमि पर लाने से सबसे काव्यात्मक प्रेरणा की ज्योति प्रज्वलित होती है"। इस विचार से उनको कोलाजपद्धति आदर्श प्रतीत हुई व उन्होंने उस पद्धति से कई

वार कलाकृतियां बनायीं। ५०-६० वर्ष पुरानी मासिक पत्रिकाओं से विक्टोरियन काष्ठ खुदाई की प्रकृतियों को काटते और उनके टुकड़ों को चिपका कर विचित्र राक्षसी आकृतियों को—जैसे कि जानवरों के शीर्षवाले पक्षी, चोंचवाले पुच्छधारी पशु वगैरह बनाते। इसमें 'यथार्थ का काल्पनिक से मिलाप'[39] करने के अतियथार्थवादी सिद्धांत का प्रयोग है। ब्रेतों, सुपोल आदि अतियथार्थवादी कवि व चित्रकारों की मासिक पत्रिका 'साहित्य' में उनके कलासंबंधी लेख प्रकाशित हुए।

लकड़ी की फर्श में दिखायी देने वाली विचित्र आकृतियों से प्रेरणा पाकर उन्होंने १९२५ में फ्रोत्ताज-पद्धति[40] का आविष्कार किया व उस पद्धति से चित्र बनाये। प्रथम उन्होंने लकड़ी की फर्श पर कागज रखके फ्रोत्ताजकृतियां बनायीं। चित्रों के अद्‌भुत प्रभावों से प्रोत्साहित होकर उन्होंने लकड़ी के स्थान पर अन्य पदार्थों का उपयोग शुरू किया। फ्रोत्ताज-पद्धति में लकड़ी, ईंट व पत्थर जैसे पदार्थों की खुरदरी सतह पर कागज रखके उस पर पेन्सिल, कोयला या क्रेयान से रगड़ा जाता जिससे कागज पर अनपेक्षित आकारों का निर्माण होता; पृष्ठभूमीय विशेषता के कारण जो विचित्र आकार कागज पर उतरते उनसे आरंभ होकर काव्यात्मक, दृश्य सृजन प्रेरणाएं सामने आतीं—जैसे कि वनस्पति, सागर, वर्षा—आदि जिनके बारे में एर्न्स्ट ने लिखा है "रूपांतर व सूचकता के बाह्य कारणों से इन चित्रों में मूल पदार्थों का निजी व्यक्तित्व लुप्त होकर उनमें अनपेक्षित प्रतिमाओं का प्रादुर्भाव होता"। १९२६ में माक्स एर्न्स्ट ने इन चित्रों की मालिका को निसर्ग का इतिहास' नाम से प्रकाशित किया। निसर्ग में दृष्टिगोचर काल्पनिक आकारों से प्रेरित होकर एर्न्स्ट ने अपनी कला का आगे विकास किया। फ्रोत्ताज के समान पद्धतियों द्वारा वे नैसर्गिक आकारों को कागज पर उतारते व उस पर पूरक रंगांकन या रेखांकन करके अपनी कल्पना को सपूर्ण रूप में चित्रिन करते। इस प्रकार उन्होंने काल्पनिक प्रागैतिहासिक कालीन जैसे, घने जंगलों व वनस्पति सृष्टि के चित्र बनाये जिनमें पौराणिक देवताओं, राक्षसों व प्राणियों का आभासरूप अस्तित्व प्रतीत होता है। जंगलों के इन पौराणिक दृश्यों में सृष्टि की आंतरिक शक्तियों के अस्तित्व व संचार का परिणामकारक दर्शन है। पेड़ों के तनों, पत्तों, घांस की पत्तियों को अनोखे आकारों में अंकित करके, उनके बीच काल्पनिक जानवरों को चित्रित किया है। उन्होंने लोहे की पुरानी, टूटी-फूटी जंग लगी हुई पत्तियों के ढेर को दृश्यचित्रण के विषय रूप में चुन कर निमर्नुष्य, आधुनिक शहर के रूप में चिश्रित किया।

१९४१ में वे अमेरिका गये व वहां प्रवाल, लावा, चट्टान आदि भूगर्भीय पदार्थों के ऋक्ष, वनस्पतिहीन प्राकृतिक दृश्यों को चित्रित करके उनमें उन पदार्थों के रंगरूप से मिलतीजुलती काल्पनिक प्राणियों, राक्षसों व देवताओं की आकृतियां अंकित कीं। निसर्ग के समरूप काल्पनिक सृष्टि का निर्माण माक्स एर्न्स्ट की कला की निजी विशेषता थी।

इवे तांग्वी (१६००–१६५५)

अतियथार्थवाद की प्रमुख दो अंकनपद्धतियां थीं; पहली से, छायाचित्रण के समान स्पष्ट व वास्तव सृष्टि के समरूप आकारों का अंकन किया जाता था व दूसरी से धुंधले, वास्तव सृष्टि से भिन्न व काल्पनिक आकारों का अंकन किया जाता था। पहली पद्धति के उदाहरण हैं डाली व तांग्वी के चित्र; उनमें चित्रित वस्तुएं काल्पनिक होते हुए ऐसी दिखायी देती हैं जैसे कि नैसर्गिक वस्तुओं को तोड़-मरोड़ कर बनायी गयी हों—उदाहरण के लिये डाली की लचीली घड़ियां, मकडी की टांगों वाले हाथी व तांग्वी की काल्पनिक वनस्पति सृष्टि। ऐसी वस्तुओं को वे नैसर्गिकतावादी ढंग से, छाया प्रकाश के प्रभाव साथ-ठोस रूप में अंकित करते। यह पद्धति अतियथार्थवाद के 'यथार्थ को काल्पनिक से संलग्न' करने के सिद्धांत के अनुकूल थी।

तांग्वी स्वयंशिक्षित कलाकार थे। शुरू में उन्होंने व्यापारी जहाज पर काम किया। शिरिको से प्रभावित हो कर उन्होंने स्वतंत्र रूप से चित्रण शुरू किया। उनको विशाल अवकाश में चैतन्य का दर्शन हुआ; उस सर्वव्यापी चैतन्य की छाया में बिखरी हुई वनस्पतिसम छोटी छोटी आकृतियां गूढ भावनाओं से उत्कंठित दिखायी दीं; मकड़ी के जालों के समान फैली हुई ज्यामितीय रेखाकृतियों में मंत्रसामर्थ्य का दर्शन हुआ; व इन सब को उन्होंने परिणामकारक ढंग से चित्रित किया। अवकाश की चिन्मयता का साक्षात्कार कराने के लिये ऐसी अनैसर्गिक वस्तुओं का अंत भी आवश्यक था, नैसर्गिक वस्तुओं से यह कार्य नहीं हो सकता था। इन वस्तुओं का जन्मस्थान था कलाकार का अंतर्मन। किंतु काल्पनिक रूप में चित्रित की गयीं ये वस्तुएं साहचर्यभाव से पूर्ण नैसर्गिक प्रतीत होती हैं। क्योंकि इनके निर्माण में वे ही नैसर्गिक आंतरिक प्रेरणाएं कार्यान्वित थीं जो प्रत्यक्ष निसर्ग में कार्य करती हैं। तांग्वी की कुकरमुत्ते के सदृश वनस्पतिसृष्टि काफ्का के परिभाषित 'स्वयं-आविष्कृत वस्तुसृष्टि'[42] का प्रतिबिंब है। तांग्वी के चित्र अतियथार्थवादी दर्शन के स्वप्निल भूचित्र हैं जिनके अनैसर्गिक अवकाश व सन्धि-प्रकाश में दिखायी देने वाली छायाओं के अनोखे प्रभाव से दर्शक को जादूनगरी का दर्शन होता है।

आंद्रे मास्सों : (ज. १८६६.)

अतियथार्थवाद के एक सिद्धांत के अनुसार "निष्काम विचारों के क्रीडन द्वारा सर्वशक्तिमान्–सर्वज्ञ–स्वप्न अपना परिचय कराता है"; और इसका प्रात्यक्षिक प्रयोग आंद्रे मास्सों के वस्तुनिरपेक्ष चित्रों में–जिनमें स्वयंचालित क्रिया सचेतन मन से मुक्त हो कर, प्रेरणा का कार्य करती है–एवं स्पैनिश चित्रकार जोन मायरो के चित्रों में स्पष्ट रूप से दिखायी देता है।

मास्सों ने ब्रुसेल्स तथा पैरिस के कलाविद्यालयों में अध्ययन किया। अति-

यथार्थवादियों की प्रथम प्रदर्शनी में उनके कुछ चित्र दिखाये गये और १९२८ तक उनका अतियथार्थवादी आंदोलनों से घनिष्ठ संपर्क रहा। उनके १९२४ में प्रदर्शित चित्रों पर घनवाद का प्रभाव स्पष्ट है किंतु चित्र केवल रचनात्मक नहीं है–इनमें जंगल, कब्रस्तान वगैरह स्थानों के दृश्यचित्र हैं—बल्कि गतिपूर्ण रेखाएं आंतरिक पीडन से व्याकुल हैं। ज्वांग्री से प्रभावित हो कर उन्होंने सुरचित समतलों में चित्रण शुरू किया किंतु उससे उनके चित्रों की अभिव्यंजना को कोई हानि नहीं पहुंची। १९३० के करीब उन्होंने अतियथार्थवादी स्वयंचालित क्रिया द्वारा निर्मित किंतु घनवाद के अभ्यास से प्रभावित चित्र बनाये जो उनकी विकसित शैली के उदाहरण हैं।

जोन मायरो (ज. १८९३) का आरंभिक शिक्षण बार्सिलोना के कलाविद्यालय में हुआ। वे प्रथम फाववाद व उसके बाद घनवाद की ओर आकृष्ट हुए थे। १९१९ में वे पैरिस व बार्सिलोना के बीच आतेजाते रहे। इन दिनों वे घनवाद को आत्मसात् कर रहे थे; उन्होंने अपने गांव के खेतों व आस-पास के दृश्यों के मनोहर चित्र बनाये जिनमें प्रत्येक वस्तु को–पौधा, फूल, बगीचा आदि—स्पष्ट आकार में चित्रित कर के अद्‌भुत वातावरण का निर्माण किया है व इन भूचित्रों को बाह्य रूप से भिन्न काव्यमय दर्शन प्राप्त हुआ। १९२३ में मायरो की काव्यमय दृष्टि ने नैसर्गिक सौंदर्य को अपर्याप्त महसूस किया व उन्होंने निसर्ग-रूप-सादृश्य का परित्याग कर के काल्पनिक दृश्य-चित्रण आरंभ किया; 'जोता हुआ खेत'[43] (१९२३) चित्र से उनकी नयी शैली का आरंभ होता है। इनमें फिर वही देहाती वातावरण का प्रभाव है किंतु निर्जीव वस्तुओं को भी जीवधारियों के सदृश चित्रित करके प्रत्येक वस्तु को अपनी कहानी सुनाने का मौका दिया है; यहां फूल को आंख है, पेड़ को कान है व स्थान-स्थान पर विचित्र आकारों के काल्पनिक प्राणियों से व गतिमान आकृतियों से चित्र सचेत है।

अतियथार्थवाद का ज्ञान होने से मायरो की कला के स्वाभाविक विकास में गति आ गयी। कान्डिन्स्की की कला से उनको वस्तुनिरपेक्ष आकारों के सूचकता के सामर्थ्य का ज्ञान हुआ। १९२४ में उन्होंने ज्यां आर्प के चित्रों को देख कर 'आकस्मिक लब्ध-वस्तु'[44] के काव्य को अनुभव किया। किंतु क्ली की कला के कल्पनाक्रीडन का मायरो पर सब से अधिक प्रभाव पड़ा व वे अपनी जादूनगरी सदृश चित्रसृष्टि के निर्माण में अविक निष्ठा से व्यस्त हुए। १९२४ में उनकी मास्सों से मित्रता हुई और उनके द्वारा अतियथार्थवादी चित्रकारों से परिचय हुआ किंतु यथार्थ-अतियथार्थवाद की ओर मायरो आकृष्ट नहीं हुए। अचेतन में सुप्त प्रतिमाओं को स्वयंचालित क्रियाओं द्वारा साकार करने की अतियथार्थवादी पद्धति को उन्होंने बहुत उपयुक्त माना व उसको घनवादी आकारसौंदर्य व रचनातत्वों से समन्वित कर के बहुरंगी कलानिर्मिति की जिसमें अतियथार्थवादी कल्पनासृष्टि के काव्य व घनवादी सौंदर्यदर्शन का मनोहर संगम है व जिसके बारे में वर्नर हाफ्टमन ने लिखा है "मायरो ने घनवादी लचीले

रचनासौंदर्य से आगे वढ़ कर दृश्य काव्य की अनुभूति प्राप्त की" ।

१६२६ व १६३१ के वीच के काल में मायरो के आकार अधिक वस्तुनिरपेक्ष वन गये; किंतु आकारों के सूचक सामर्थ्य व दृश्य काव्य को वे त्याग नहीं सकते थे। वे पूर्ण वस्तुनिरपेक्ष चित्रकार कभी नहीं वने किंतु वस्तुरिपेक्ष कला के आकारसौंदर्य, रंगसंगति के मनोहारित्व व रचनाकौशल के गुणों से उनकी कलाकृतियां ओतप्रोत हैं। मायरो ने काल्पनिक अवकाश में ऐसे आकारों को चित्रित किया जो अनैसर्गिक होते हुए सूर्य, चंद्र, सितारे, स्त्री, चिड़ियां आदि जैसे दिखायी देते हैं व दर्शक अद्भुत विश्वमंडलीय सृष्टि में प्रवेश पाता है–उदाहरण के लिये उनके प्रसिद्ध चित्र 'चांदनी रात में स्त्रियां व पक्षी' (१६४६)व 'सूर्य के सामने कुत्ता व आकृतियां' (१६४६)[45] देखिये। उन्होंने ऐसे काल्पनिक आकारों को भी चित्रित किया जो कीड़े, मकोड़े व विचित्र जानवरों के समान दिखायी देते हैं–इसके उदाहरण हैं 'भांड का महोत्सव' (१६२४), 'मातृत्व' (१६२४)[46]। मायरो के मानवों व जानवरों की आकृतियों के अंकन में पौराणिक कल्पनावाद के अनुसार रूपांतर किया है व नैसर्गिक शरीररचना के नियम उन पर लागू नहीं होते। जेरिकोल के विधान, "मैं स्त्री के चित्रण को आरंभ करता हूं व अंत में शेर वन जाता है" मायरो की कला को समुचित रूप से लागू होता है। अतियथार्थवादी चित्रकारों में से मायरो एक ऐसे चित्रकार हैं जिन्होंने अंतर्मन की खोज के पीछे रचनातत्वों व कला के सौंदर्यात्मक गुणों को खोने नहीं दिया। उनकी रंगसंगतियां वहुत ही आकर्पक होती हैं व आधुनिक चित्रकला के महान् रंगकारों में —मातिस, क्ली, लेजे–उनका स्थान है। उनकी कलाकृतियों को देख कर कहा जा सकता है कि "चित्रण केवल कला नहीं है वलिक वह एक संशोधनपद्धति भी है जो हमसे छिपी हुई सौंदर्य व कल्पना की दुनिया का आविष्कार करती है।

पियर रॉय ने आरंभ में वास्तुकला का अध्ययन किया व वाद में छायाचित्रण पद्धति से ऐसे अतियथार्थवादी चित्र वनाये जिनमें अंकित वस्तुओं का प्रत्यक्ष रूप से आपस में कोई संवंध नहीं है किंतु सव को एक साथ देखने पर दर्शक के मस्तिष्क में कुछ अवर्णनीय गूढ भावनाएं जन्म लेती हैं। उदाहरण के लिये उनके चित्र सूर्यप्रकाश की वचत'[47] में एक घड़ी को रिवन से लटका कर उसके साथ दो गेहूं की वालियां व रोविन पक्षी के अंडे वांध लिये हैं व इन सव के पीछे पृष्ठभूमि के रूप में हृदय स्पंदन-आलेख को चिपकाया है।

आर्थर डोव एक अमेरिकन कलाकार हैं जिनके चित्रों के प्रतीकात्मक प्रभाव उनकी असाधारण कल्पनाशक्ति के परिचायक हैं। पावेल त्शेलिश्शू एक अन्य ख्यातिप्राप्त अतियथार्थवादी चित्रकार हैं जिनके प्रसिद्ध चित्र 'आंखमिचोनी'[48] में वृक्ष के ठूंठ को नीचे पैर सदृश व ऊपर हाथ सदृश चित्रित किया है व निकट से देखने पर उसकी संपूर्ण आकृति में वच्चों की कई मुखाकृतियां दिखायी देती हैं। मैन रे ने

छाया चित्रण-छपाई में प्रयोग कर के प्रभावी अतियथार्थ कृतियां बनायीं व नयी छायाचित्रण पद्धति का आविष्कार किया जो 'रेयोग्राफी'[49] नाम से प्रसिद्ध है व जिसमें असंबद्ध वस्तुओं को एक ही छायाचित्र कागज पर छाप कर दृष्टिभ्रम सदृश परिणाम का निर्माण किया जाता है। दोमिग्वेज के आविष्कृत स्वयंचालित चित्रण पद्धति में जो 'देकाल्कोमेनिया'[50] नाम से प्रसिद्ध है-समतल पृष्ठभूमि पर रंगों को लगा कर उसको अन्य पृष्ठभूमि पर दबाया या रगडाया जाता है जिससे अकल्पित प्रभावों का निर्माण होता है। पालेन ने 'धुआं चित्रण'[51] का आविष्कार किया; वे कागज पर स्याही को रख कर, उसको घुमाते या हिलाते जिससे धुआंधार में से निकलती हुई आकृतियों के सदृश अद्‌भुत प्रभाव का निर्माण होता।

इस प्रकार अतियथार्थवादियों ने भिन्न अंकन पद्धतियों द्वारा अंतर्मन की गूढ शक्तियों को जागृत करके सूचक प्रतिमाओं का निर्माण किया। १९३८ मे हुई पैरिस की अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में आश्चर्यजनक प्रभावों को निर्माण करने की अनेक पद्धतियां दर्शकों के सामने आयीं। बेल्जियन चित्रकार ने माग्रिट व पौल डेल्वो ने फ्लेमिश नैसर्गिकतावादी पद्धति से असंबद्ध वस्तुओं को एक साथ अंकित कर के काम-पीडित अंतर्मन का चित्रण किया। माग्रिट ने सृजन क्रिया के बारे में लिखा है "यदि वस्तु के अस्तित्व के रहस्य को समझना है तो उसके भौतिक रूप से सृजनक्रिया को आरंभ करना अपरिहार्य है"।

श्रेष्ठ कला के रूप में अतियथार्थवाद का क्या स्थान है इस संबंध में मतभेद हैं किंतु इसमें कोई संदेह नहीं है कि अतियथार्थवाद से आधुनिक कलाकारों को सहजप्रवृत्ति व अंतर्मन की प्रेरणाओं पर निर्भर रह कर सृजन करने का जो संदेश मिला उसका वस्तुनिरपेक्ष कला के विकास पर भी प्रभाव पड़ा एवं कई नयी अंकन-पद्धतियों का आधुनिक कला को लाभ हुआ।

अतियथार्थवाद के जन्म से शताब्दी पहले भी कुछ चित्रकारों ने स्वप्निल प्रतिमाओं द्वारा चित्रण करके अद्‌भुत चित्रसृष्टि का निर्माण किया था। आर्सि-म्बोल्डो की द्विप्रतिम कला कृतियां, फ्युसेलि के भयानक स्वप्न, ब्लेक का ईश्वरीय साक्षात्कार, बॉश की मायानगरी, ग्र्यूनेवाल्ड की परिकथाएं व ब्र्यूगेल की नशाबाजों की दुनिया इसके उदाहरण हैं। फ्रेंच चित्रकार ओदिलों रेदों, रशियन चित्रकार मार्क शागाल व इटालियन चित्रकार शिरिकों निकटकालीन पूर्वगामी चित्रकार हैं जिनकी कलाकृतियों में अतियथार्थवाद के तत्वों का स्पष्ट दर्शन है। रेदों के एचिंग्ज, ग्राफिक्स् व रेखाचित्रों में गूढ सृष्टि का अंतर्भेदी चित्रण है। मार्क शागाल एक मौलिक प्रतिमा के चित्रकार थे और उन्होंने अपनी शैली का विकास समकालीन आंदोलनों से पृथक् रह कर किया यद्यपि उनकी कल्पनारम्य कलाकृतियों का प्रभाव

अतियथार्थ से मिलता जुलता है। पैरिस में ऐसे ही और कुछ कलाकार थे जिनकी कला को किसी भी वाद में समुचित रूप में नहीं बिठाया जा सकता था व जो 'शापित चित्रकार[52]' के रूप में प्रसिद्ध हुए थे।

कुछ शापित चित्रकार[1]

फ्रेंच कला के रचनासौंदर्य व प्रयोगवादी दृष्टिकोण से योरप के सभी देशों के कलाकार प्रभावित थे एवं पैरिस न केवल फ्रान्स का कलाकेन्द्र था बल्कि वहां सभी देशों के कलाकार व कला के विद्यार्थी कलाध्ययन करने को आते और फ्रेंच कलाकारों को भी उनसे नये दृष्टिकोणों व विचारों का लाभ होता। कुछ विदेशी कलाकारों ने पैरिस को ही अपना निवासस्थान बना लिया। स्पेन से आये हुए पिकासो, मायरो व डाली विश्वविख्यात चित्रकार बने; जर्मन कलाकार माक्स एर्न्स्ट व पौल क्ली को यहीं प्रेरणा मिली; डच चित्रकार मोंद्रियां, रशियन चित्रकार शागाल व सुटिन, इटालियन चित्रकार मोदिल्यानी ने पैरिस को कार्यक्षेत्र के रूप में चुना।

विदेश से आये हुए कलाकारों की कला में अक्सर अपने देश की लोक संस्कृति का प्रभाव प्रतीत होता जिसकी रक्षा कर के उन्होंने पैरिस के कलाक्षेत्र में विशेष मान्यता प्राप्त की थी। उनमें आपस में घनिष्ठ संपर्क रहता व उनकी कृतियों में कलात्मक प्रयोगों की अपेक्षा अपने देश के रीतिरिवाजों व विचारदर्शन का प्रभाव बलवत्तर होता; स्वदेशस्मृतिजन्य व्याकुलता, एकांतवास निर्मित असहाय-भाव व अज्ञात के प्रति जिज्ञासा व तड़प हुआ करतीं जो ज्यू संस्कृति की विशेषताएं थीं व जिनका काफ्का के साहित्य में प्रभावी वर्णन है। उनकी कला की विशेषताएं थीं स्वप्निल वातावरण नैसर्गिक आकारों का रूपान्तर व आंतरिक सत्य का दर्शन। उनकी सृजन प्रेरणाएं थीं भावना व काव्य।

विदेश से आये हुए कलाकारों में से कुछ कलाकारों का एक स्वतंत्र गुट सा था। उनमें कलासंबंधी विचारों की कोई समानता नहीं थी। उनमें एक ही समानता थी कि वे स्वच्छंद मनमाना जीवन पसंद करते व उनकी कला में स्वदेश संस्कृति की झलक प्रतीत होती। अतः उनकी कला को किसी वाद से सीमित नहीं रखा जा सकता।

ये विदेशी कलाकार पैरिस के कलाक्षेत्र में सबसे परिचित थे और जब १९२३ में मार्क शागल रशिया से पैरिस वापस आये तब उनका एक स्वतंत्र मंडल सा बन गया जिसमें शागाल के अतिरिक्त सुटिन, बुलगारियन चित्रकार ज्यूल पास्कँ,

पोलिश चित्रकार क्वास किस्लिंग व इटालियन चित्रकार मोदिल्यानी शामलि थे। जापानी चित्रकार फुजिटा भी उनसे मिलते रहते। ये सब पैरिस के 'काफे द्यु दोम'[2] में रात को मिलते व चर्चा विनोद करते यद्यपि उनमें कलाविषयक विचारों की कोई समानता नहीं थी। उनमें फ्रेंच चित्रकार उत्रियो जो स्वतंत्र रूप से चित्रण करना पसंद करते—शामिल थे।

मार्क शागाल का जन्म १८८९ में विटेव्स्क गांव की ज्यू बस्ती में हुआ। ज्यू लोकों के दुःखदारिद्र्यपूर्ण जीवन व रीतिरिवाजों का शागाल पर परिणाम होकर उन्होंने शुरू में उनके जीवन का रेखाचित्रण किया। १९०७ में सेंट पीट्स-बर्ग के किसी साधारण कलाविद्यालय में उन्होंने अध्ययन किया। उनके प्रारंभ-कालीन चित्रों में सहजसिद्ध कला के गुण हैं। इन चित्रों में गांव के काव्यमय दृश्य हैं जिनमें छतपर बैठे हुए वादक, शराबी सैनिक, मेहतर जैसे प्रातिनिधिक व्यक्तियों को स्थान स्थान पर अंकित किया है व लोक जीवन को दृश्य कहानी का रूप दिया है।

१९२० में एक उदार दाता ने उनको अधिक अध्ययन के लिये आर्थिक सहायता की व वे पैरिस जा कर उस बस्ती में रहने लगे जहां मोदिल्यानी, सुटिन व लेजे के कलाकार्यकक्ष थे। उनका ब्लेज सेन्द्रार, अपोलिनेर व माक्स याकोब से परिचय हुआ। उनकी मौलिक कल्पनाशक्ति की सब ने प्रशंसा की। पैरिस के कला आलोचकों के अनुसार उनकी कला फ्रेंच कला के समरूप थी ओदिलों रेदों के समान उनकी कला में कल्पना को प्रमुख स्थान था; आकारों के विभाजन व रंगों के चमकीलेपन पर घनवाद व सुरीलवाद का प्रभाव था; रंगांकनपद्धति प्रभाववाद से मिलती जुलती थी; व रुसो के समान वे वस्तुओं के मूल आकारों का स्पष्टीकरण करके चित्रण करते। किंतु ये सभी प्रभाव उनके लिये केवल साधन थे; उनकी कला पूर्णरूप से मौलिक थी व गृहवियोग[3] का आर्त दर्शन उसका लक्ष्य था।

देलोने के परिचय से उन पर सुरीलवाद का प्रभाव पड़ा। सुरीलवाद के चम-कीले रंगांकन व वस्तुनिरपेक्षता के गुण रशियन लोककला के सदृश थे व परिकथासम वातावरण के काल्पनिक दृश्यों को चित्रित करने के लिए बहुत उपयुक्त थे। सुरीलवाद से परस्परावृत समतलों[4] पर विभिन्न स्मृतियों को चित्रित करना सरल था व उसके समयावच्छेद के सिद्धान्त के अनुसार शागाल भिन्न घटनाओं को एक साथ चित्रित कर सकते थे।

शागाल के चित्र पारदर्शक समतलों की रचना हैं व उन समतलों पर उन्होंने अपनी विगत जीवन की स्मृतियों को चित्रित किया है जिनके बारे में उन्होंने कहा था "मेरे चित्र कथा-साहित्य नहीं हैं; वे मेरी आंतरिक प्रतिभाओं की....जिन्होंने मुझे अपना दास बनाया है—रंगीन रचनाएं हैं"। उन्होंने वास्तविक आकारों का विभाजन नहीं किया बल्कि भिन्न स्मृतिरूप आकारों को सम्मिलित किया। रशियन गांव के

मकान, गिरजाघर, ग्वालिन, किसान, ग्रामनिवासी वगैरह पुरानी स्मृतियों की माला बनाकर उन्होंने केलिडोस्कोपीय[5] बहुरंगी चित्ररचनाएं कीं। रचना की आवश्यकतानुसार उन्होंने कभी वस्तुओं व मानवों को उलटी स्थिति में भी चित्रित किया किंतु रचना से उन्होंने काव्यात्मक दर्शन पर अधिक ध्यान दिया। उनके बारे में वर्नर हाफ्टमन ने लिखा है "वे मुख्य रूप से यथार्थवादी हैं जो अंतस्फूर्त कथन के उत्साह के आवेग से कवि बन गये हैं"। कथनात्मक चित्रण को प्रभावी बनाने के हेतु उन्होंने अनोखे संयोजन का आविष्कार किया; कभी गाय व बछिया को छत के ऊपर चित्रित तो कभी ग्वालिन को देवता के समान, आसमान में उड़ते हुए चित्रित किया जिससे उनके यथार्थ चित्रण को स्वप्निल रूप प्राप्त हुआ। अभिव्यक्ति की दृष्टि से शागाल की कला में कुछ अभिव्यंजनावादी तत्व भी हैं। १९१७ में उन्होंने ल्युनाचार्स्की की सहायता से विटेब्स्क में कलासंस्था खोली। १९१९ में वे मास्को गये व वहां यिड्डीश नाटकगृह की साजसज्जा का काम किया। १९२२ में वे बर्लिन गये; यहां उन्होंने आत्मचरित्र लिख कर उसको एचिंग्स से चित्रित किया। १९२३ में वोलार ने उनको गोगोल की पुस्तक 'मृतात्माएं'[6] के कथाचित्रण का कार्य सौंपा। रशिया के निवास में उनकी कला से स्वप्निल कल्पना का प्रभाव कम होकर, उन्होंने अपने गांव के दृश्यों व पत्नी बेल्ला के साथ सुखी जीवन के चित्रण को अपनी कला का लक्ष्य बनाया। 'सैर'[7] नामक चित्र में वे अपनी पत्नी के साथ घूमने के लिए निकले हैं व उनकी प्रिय पत्नी, परी के समान, आसमान में सानंद उड़ती हुई चित्रित की है। 'प्रेमियों का निसर्ग'[8] चित्र में फूलदान में सजाये हुए फूलों में दोनों को आलिंगनावस्था में चित्रित किया है! अपने वैवाहिक जीवन का इतना अत्यानन्द व उत्साह से ओतप्रोत, कल्पनारम्य चित्रण अबतक किसी चित्रकार ने नहीं किया यद्यपि रेम्ब्रांट का, अपनी पत्नी को गोद में लेकर, हाथ में मद्यचषक उठाए हुए, बनाया आत्मचित्र इसी प्रेमभावना व आत्मसन्तोष का एक अपवादमात्र पूर्वगामी उदाहरण है। १९३९ तक उन्होंने 'मृतात्माएं', 'फांतेन की कहानियां'[9] व 'बायबल' इन तीनों का कथाचित्रण पूर्ण किया जिसके लिए उन्होंने सीरिया, पैलेस्टाइन, हालेंड व स्पेन की यात्राएं कीं। १९४१ में वे अमेरिका गये जहां १९४४ में उनकी प्रिय पत्नी की मृत्यु हुई व उनकी कला पर उदासीनता छा गयी।

पैरिस में कई साल तक रहने पर भी उनकी कला की आत्मा मुख्य रूप से कवि की ही रही व फ्रेंच कलाकारों के समान उन्होंने रचनासौंदर्य से संबंधित कोई नये प्रयोग नहीं किये। उनकी कलाकृतियां उनकी असाधारण कल्पनाशक्ति की परिचायक हैं किंतु उनको अतियथार्थवादी कलाकारों में सम्मिलित करना उचित नहीं है क्योंकि उनकी कल्पना का आधार विगत जीवन की स्मृतियां था जबकि अतियथार्थवादी कल्पना का आधार मतिभ्रम व स्वप्न थे।

आमेदिओ मोदिल्यानी (१८८४-१९२०):

दृश्य सौंदर्य का भावनापूर्ण, काव्यमय चित्रण मोदिल्यानी की कला का लक्ष्य था एवं उसके लिये उन्होंने विवस्त्र, कोमल स्त्रीशरीरों व व्यक्तियों को चित्र-विषय के रूप में चुना। कहानी, स्मृतिरूप प्रतिमाएं व कल्पना ये शागाल की कला के तत्व मोदिल्यानी की कला के परे थे।

मोदिल्यानी ज्यू थे व उसका उनको सच्चा अभिमान था। वे इटाली के निवासी थे और उन पर वहां के रहनसहन व विचारों का अमिट प्रभाव था। उनकी उदासीन, एकांतप्रिय किंतु काव्यमय वृत्ति दूसरों से सच्ची सहानुभूति की आशा रखती थी और उनके व्यक्तिचित्र उनकी इस मानसिक अवस्था के दर्पण हैं। इसी विफल मानसिक अवस्था की अनुभूति की तीव्रता से उनकी जीवनज्योति अकाल में बुझ गयी।

मोदिल्यानी परम संवेदनाशील व बुद्धिमान थे एवं उनमें आकर्षक शरीर-सौंदर्य था। अपनी अपार भावुकता को उन्होंने शराब से दबाना चाहा। आंतरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उन्होंने दूसरों से प्यार के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहा और इसी धुन में उन्होंने कलात्मक प्रयोगों की ओर ध्यान भी नहीं दिया। वे अपने परिचित व्यक्तियों व मॉडेल्स के लगातार चित्र बनाते रहते व उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं को अपनी भावना के दर्पण में रूपांतरित कर के प्रतिमिति करते। तुलुज लोत्रेक के समान, उन्होंने अविरत परिश्रम करके कलाकृतियां बनायीं। चित्रण द्वारा किये व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के पीछे उनका मुख्य उद्देश्य था अपनी विवशता व अकेलेपन का दर्शन।

वेनिस के कलाविद्यालय में अध्ययन करने के पश्चात् वे १९०६ में पेरिस गये जहां उनका पिकासो व उनके आसपास एकत्रित हुए कलाकारों व साहित्यिकों से परिचय हुआ। इसी काल में उनकी कला को विकसित रूप प्राप्त हुआ। मातिस व रोदँ से उनको रेखासौंदर्य का ज्ञान प्राप्त हुआ व तुलुज लोत्रेक से उनकी कला को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मिला। पिकासो की नीले व गुलाबी काल की कृतियों से उनको विश्वास हुआ कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के मानव-चित्रण से भी उदास किंतु काव्यात्मक अनुभूति प्राप्त की जा सकती है; पिकासो की इस काल की कृतियों ने मोदिल्यानी की कला की नींव मजबूत की। घनवाद के विश्लेषणात्मक प्रयोगों का उन पर कोई परिणाम नहीं हुआ यद्यपि नीग्रो कला के आदिम व सरल आकारों के सामर्थ्य से वे प्रभावित हुए थे। १९०९ में ब्रांकुसी के प्रोत्साहन से उन्होंने कई मूर्तियां बनायीं जो दर्शन में आदिम देवताओं की मूर्तियों के समान हैं।

१९०९ में उन्होंने सेजान की बर्नीमजोन में हुई प्रदर्शनी को देखा व तब से

वे सेजान के चित्र 'लाल जाकिट वाला लड़का'[10] को एक आदर्श मानते थे। इस चित्र से उनको ज्ञात हुआ कि कलात्मक गुणों के विकास के लिये या भावनाओं की अभिव्यक्ति के हेतु चित्रकार स्वतन्त्र विचार से आकारों को विकृत या ऐंठनदार बना सकता है। कुछ समय तक सेजान का अनुसरण करने के पश्चात् उनकी पूर्ण रूप से वैयक्तिक शैली विकसित हुई व उन्होंने उस शैली में १९१४ से १९२० तक कई व्यक्तिचित्र बनाये। इन चित्रों का रेखांकन बहुत ही नियंत्रण पूर्ण है व समतल आकारों का रंगांकन मनोहर है किंतु सब से प्रभावी है चित्रित व्यक्तियों के चेहरों पर अंकित काव्यमय भावदर्शन। चित्रित व्यक्तियों के आत्मिक भावसौंदर्य को उन्होंने गहरी सहृदयता से अनावृत किया हैं जीवन की विविध अनुभूतियों से निर्मित समर्पणवृत्ति का उनके व्यक्तिचित्रों में बहुत ही परिणामकारक दर्शन है।

उनके विवस्त्र स्त्रीशरीर के चित्र लयबद्ध रेखा सौंदर्य व कोमल स्त्रीशरीर के नैसर्गिक आकर्षण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं और प्रथम उन्हीं से ही वे प्रसिद्ध हुए। मोदिल्यानी ने आधुनिक कला को कोई नया विचार प्रदान नहीं किया किंतु उन्होंने यही सिद्ध किया कि यदि कलाकार किसी कलाविषय से सचमुच अनुरक्त है तो वह अपार दृश्य सौंदर्य व भावनाओं के काव्य की निर्मिति कर सकता है।

१९१४ में बीआट्रिस हेस्टिंग्ज नामक कवयित्री से उनका घनिष्ठ संपर्क हुआ व उसका उनकी कला पर काफी प्रभाव पड़ा। बीआट्रिस हेस्टिंग्ज ने उनको आत्म-परीक्षण की सलाह दी व उसी दिशा में भावनापूर्ण खोज में व्यस्त रहने से वे कभी उत्साह से कार्य करते तो कभी निराश होकर शरावपान करके बेहोश हो जाते। कुछ कलासमीक्षक उनकी कला पर बोतिचेली व मांटेना का प्रभाव देखते हैं। कैसे भी हो मानवशरीर का आंतरिक दर्शन उनकी कला का भावनात्मक ध्येय था। अविरत परि-श्रम, शराब व भावनाओं की तीव्र अनुभूति से उनका शरीर जल्द ही थक गया व १९२० में उनकी मृत्यु हुई। वे कहते भी थे कि "मुझे अल्प किंतु भावनोत्कट जीवन चाहिये" और उनका जीवन ऐसा ही रहा। अपने विचारों के अनुसार अल्प समय में ही जीवन को तीव्रता से अनुभूत करके उन्होंने इस संसार से विदा ली।

चाइम सुटिन (१८९४–१९४३)

१९२० के करीब मोदिल्यानी के एक मित्र चाइम सुटिन स्वच्छंद चित्रकार के रूप में पैरिस में प्रसिद्ध हुए। रशिया में लिथुआनिया प्रांत के स्मिलोविच गांव में एक निर्धन दर्जी के परिवार में उनका जन्म हुआ। १९१० से उन्होंने विल्ना की कलासंस्था में अध्ययन किया व १९१३ में वे पैरिस गये जहां शागाल, सेन्द्रार, मोदि-ल्यानी व लेजे से उनकी घनिष्ठ मित्रता हुई। उन्होने कोर्मो के चित्रकलाकक्ष में कला का अध्ययन किया जिस समय उनकी बड़ी विपन्नावस्था थी। वान गो, फाववाद व अभिव्यंजनावाद उनकी कला के विकास में सहायक रहे। प्राचीन कलाकारों में से

टिटोरेट्टो, एल्ग्रेको व रेम्ब्रांट उनके प्रिय कलाकार थे। बौद्धिक सिद्धांतों की उपेक्षा करके, उत्स्फूर्त सहजप्रवृत्तियों पर निर्भर रह कर, भावनोद्वेग के साथ वे चित्रण करते व अपनी दबी हुई भावनाओं को मुक्त करते। १९१९ से चार साल तक सेरे नामक गांव में रहकर उन्होंने ऐसे प्रकृतिचित्र बनाये जो कला के इतिहास में अपने ढंग के व अनोखे हैं। इन चित्रों में मकान ऊपर से नीचे गिरते हुए नजर आ रहे हैं, पौधे सांप की तरह मुड़ रहे हैं, वृक्ष वेग से चक्कर खा रहे हैं व पूरा दृश्य आँधीग्रस्त है; किंतु यह आंधी प्राकृतिक नहीं है बल्कि चित्रकार के भावनोद्वेग की निर्मिति है। ये चित्र सुटिन के अनोखे व्यक्तित्व के परिचायक हैं। सुटिन की कला का जन्म आंतरिक आवश्यकता की पूर्ति में हुआ और उसमें कहीं जरासा भी रचनात्मक प्रयोग या नयी अंकन-पद्धति के आविष्कार का प्रयत्न नहीं है। उन्होंने ऐसे भावनावेश से चित्रण किया है जैसे कि कोई कई दिनों का भूखा आदमी भोजन पर टूट पड़ता है। उनकी कला में दृश्य का प्रत्यक्ष दर्शन व उसके भावनोत्कंठित चित्रण में किसी विचार का अंतर नहीं है। नैसर्गिक रूप, दूरदृश्यलघुता या चित्रविषय संबंधी विचार को उनकी कला में स्थान नहीं है। चित्रविषय से प्रेरणा पाते ही वे चित्रण में तद्रूप हो जाते व जोशयुक्त वक्राकार तूलिकासंचालन व विशुद्ध रंगों की मोटी परतों में भावपूर्ण अंकन द्वारा विशुद्ध कलात्मक अनुभूति प्राप्त करते। उन्होंने आधुनिक कला में भावनापूर्ण, विशुद्ध चित्रण का महत्व प्रस्थापित किया व भविष्य के वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावादी कलाकारों को उससे काफी प्रेरणा मिली। रेम्ब्रांट उनके सबसे प्रिय कलाकार थे व रेम्ब्रांट की अंकनपद्धति की निर्भीकता का उनकी कला पर स्पष्ट प्रभाव था। रेम्ब्रांट के चित्रों का अनुकरण करके उन्होंने 'लाश' (१९२५), 'स्नानमग्ना' (१९२९)[11] ये चित्र बनाये।

सुटिन ने अपने चित्रों से—विशेषरूप से सेरे के दृश्यचित्रों से—गहराई को हटाया है जिससे समतलों पर किये गये आवेशपूर्ण तूलिकासंचालन को अधिक गतित्व प्राप्त होकर समतलों में पानी के अस्थिर पृष्ठभाग की चंचलता आ गयी है। चित्रक्षेत्र की चंचलता सुटिन की कला की विशेषता है व उसमें हमें उनकी व्याकुल अंतःस्थिति की प्रतिमा दिखायी देती है। इस विचार से उनको अभिव्यंजनावादी चित्रकारों में शामिल किया जाता है। आंतरिक व्याकुलता से किये गये तूलिकासंचालन के कारण उनका चित्रविषय के नैसर्गिक रूप से संपर्क टूट गया और उनकी मानसिक अवस्था से उसका रूपांतर किया गया जैसे कि पानी के अस्थिर पृष्ठभाग पर परावर्तन से किया जाता है। देलोने के 'एफेल मिनार' चित्र के बारे में अपोलिनेर ने कहा था "ये भूचालग्रस्त प्रकृति के चित्र हैं; यह विधान सुटिन के प्रकृतिदृश्यों को समुचित रूप से लागू होता है।

१९२३ में अमेरिकन चित्र-संग्राहक बार्नेस ने सुटिन की असाधारण प्रतिभा को पहचाना व उनको प्रोत्साहन देना शुरू किया। ख्याति प्राप्त होने पर वे पैरिस

रहने गये जहां से वे बीच-बीच कान्य जाकर प्रकृतिचित्रण करते। कान्य के प्रकृति-चित्रों में दृश्य के नैसर्गिक रूप का कुछ विचार है; वे सेरे के प्रकृतिचित्रों के समान, केवल भावनापूर्ण रंगांकन नहीं हैं बल्कि अभिव्यंजनावादी रूपांतर के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन चित्रों में भी दृश्य से प्रारंभिक प्रेरणा पाकर बाद में प्रबल आंतरिक संवेदनाओं से सृजन किया है।

सुटिन की कला का दोमीय व वान गो की कला का सामाजिक दृष्टिकोण नहीं था। उन्होंने गायक-लड़कों, उपाहारगृहों के सेवकों, रसोइयों व अपने परिचित व्यक्तियों को चित्रित किया किंतु उन चित्रों से चित्रित व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति या वैयक्तिक विशेषता के बारे में कोई कल्पना नहीं की जा सकती। चित्रण के लिये प्रेरणाप्रद विषय की वे खोज करते रहते व ऐसा विषय मिलते ही समय व स्थान को भूल कर, चित्रण में एकात्म होकर वे चित्र पूर्ण करते; उस समय चित्रविषय के दृश्य सौंदर्य या व्यक्तित्व का विचार उनके मन में नहीं आता व उनके चित्र आत्मिक अनुभूति की प्रतिमाएं बन जाते। उनके वस्तुचित्र भी ऐसे नहीं लगते कि उनमें कोई सोच समझ कर रचना की है; उनमें भी उसी व्याकुल आत्मिक अनुभूति का दर्दभरा दर्शन है जिस अनुभूति को संसार में दुःख के अतिरिक्त और कुछ नजर ही नहीं आया। यह एक ऐसा आदिम दर्द था जिसने निराशा व उत्कंठा की द्वंद्वात्मक आत्यंतिक अवस्था में, मुक्ति पाने हेतु. निर्भीक होकर वास्तवसृष्टि से मूलभूत प्रश्न उठाये। सुटिन चित्रविषय को दर्पण के रूप में देखते व उसमें उनको अपनी पीड़ित आत्मा की प्रतिमा दिखायी देती।

कलात्मक गुणों के विचार से सुटिन की कला फ्रेंच कलापरंपरा से भिन्न है। वे स्वयं रचनात्मक दृष्टिकोण के विरोधी थे व १९३८ में उन्होंने रने ग्रिम्पेल से कहा था "घनवाद केवल बौद्धिक है; उसमें भावनाओं का आनंद नहीं है। सेजान की कला में कठोर तर्कनिष्ठा है. अतिदुष्कर। सुटिन की कला का आधार था सहजप्रवृत्ति और वे उन चित्रकारों में से थे जिन्होंने फाववाद के विशुद्ध रंगांकन को भावनोद्वेग से दृष्टिभ्रम का सामर्थ्य प्रदान किया। वे नोल्ड, कोकोश्का ब्लामिक व डि पिसस की परंपरा के चित्रकार थे।

उनके वस्तुचित्रों में, तश्तरी में रखी हुई मछलियों, मारे हुए जानवरों के—चिड़ियां, मुर्गी, बैल, खरगोश आदि—खून से लथपथ, लटकाई हुई लाशों वगैरह असुंदर वस्तुओं का समावेश है। उनकी व्यथित मानसिक अवस्था को संसार में मनोहर, रमणीय सौंदर्य का दर्शन नहीं हुआ। आंतरिक पीडा से ही उनकी सौंदर्यानुभूति की संतृप्ति हो जाती।

ज्यूल पासॅ (१८८५-१९३०) एक ज्यू की संतान थे व उनका जन्म बुलगारिया में हुआ। उन्होंने विएन्ना में कला का अध्ययन किया एवं म्युनिक के कलाकारों में वे प्रसिद्ध हुए। १९०५ में पैरिस गये। उनका रेखांकन पर प्रभुत्व था। उनके प्रसिद्ध

चित्रों में लयवद्ध रेखाओं से अंकित व बहुत ही हलकी व मोतियों जैसी रंगबिरंगी रंगसंगति के विवस्त्र स्त्रियों के चित्र हैं; रंगसंगति व रेखांकन आकर्षक होते हुए वातावरण में एवं स्त्रियों के चेहरों पर उदासीनता छायी हुई है। अर्थार्जन के हेतु उनको विवशता से चित्रकारी को व्यावसायिक रूप देना पड़ा। १९३० में उन्होंने निराशावस्था में आत्महत्या की।

म्वास किस्लिग ज्यू थे व उनका जन्म क्राको में हुआ। १९१० में वे पैरिस गये जहां उनका मोदिल्यानी व शागाल से घनिष्ठ संपर्क रहा। उनकी कला में कठोर यथार्थवाद होते हुए उदास काव्य की अनुभूति है।

मोरिस उत्रियो (१८८३-१९५५)

१९२३ की वर्नीमजोन कलावीथिका में हुई प्रदर्शनी में उत्रियों अचानक चर्चा का विषय बन गये व १९२४ में वासलर ने उनको पैरिस के चित्रकारों में से सब से प्रसिद्ध चित्रकार जाहिर किया। वे पक्के शराबी थे और पैरिस के मोंमार्त्र उपनगर के स्वच्छंदजीवी कलाकारों से परिचित थे वे ऐसे कलाकारों में से हैं जिनकी कला-शैली समकालीन आंदोलनों से अप्रभावित व स्पष्ट रूप से पृथक् रही। उनकी कलाकृतियां शीघ्र ही लोकप्रिय हुईं और वे ख्यातनाम हुए।

उनकी माता सुजान वालादों ने उनको जो कलासंबंधी पाठ दिये उनको छोड़ कर वे पूर्ण रूप से स्वयंशिक्षित चित्रकार थे। जब वे १९ साल के थे तब मद्याति-सेवन की विकृति के इलाज के लिये उनको चिकित्सालय में भरती कराया था एवं उनकी माता ने मद्यसेवन से उनका ध्यान हटाने के हेतु उनको चित्रण करने को उद्यत किया। सुजान वालादों (१८६७-१९३८) ने मॉडेल के रूप में तुलुज लोत्रेक, प्युवि द शावान व देगा के कार्यकक्षों में कार्य किया था और वाद में स्वयं चित्रण शुरू किया। उन्होने प्रभाववाद से आरंभ कर के स्वतंत्र आलंकारिक शैली का विकास किया एवं कुछ समय में ही वे चित्रकर्त्री के रूप में प्रसिद्ध हुई। अतः उत्रियों की कला की प्रारंभिक कल्पना प्रभाववाद से सीमित थी किंतु उनकी कला में प्रकाश के प्रभाव के स्थान पर दृश्यांतर्गत वास्तविक आकारों की स्पष्टता को महत्व था व वह अधिक वस्तुनिष्ठ थी। उनको मोने की वातावरण व प्रकाश की चंचलता से पिसारो व सिसली की आकारों की स्पष्टता अधिक प्रिय थी और उनके आरंभ के चित्रों पर पिसारो का प्रभाव था। दृश्य के यथार्थ रूप के काव्यदर्शन के हेतु उत्रियों ने फाववाद के धुंधलेपन को अस्वीकारा। यथार्थ के प्रति असीम प्रेम उत्रियो की कला की आंतरिक प्रेरणा था एवं उसको वे 'यथार्थ की तीव्र प्यास' कहते। उस प्रेरणा का उनके मद्यपी जीवन से घनिष्ठ साहचर्य था; नशाग्रस्त अवस्था में दिखायी देनेवाले मोंमार्त्र के रास्तों के स्वप्नमय दृश्य को वे भूल नहीं सकते थे। मदिरागृह से वाहर निकलते ही दिखायी देनेवाला वर्फाच्छादित मार्ग, दुकानों की पारदर्शक खिड़कियां,

मकानों की पुरानी, क्षतिग्रस्त दीवारें–जिनका सहारा ले कर वे नशीली अवस्था में घर सुरक्षित लौटते थे वे कैसे भूल सकते थे ? वह उनके शराबी जीवन का काव्य था जिसको उन्होंने आत्मीयता से साकार किया ।

आस-पास के मोंमार्त्र के शहरी दृश्य का उन पर अमिट प्रभाव था और उसको उन्होंने स्मृति से चित्रित किया व उन स्मृतिरूप प्रतिमाओं को निरीक्षण से कमजोर नहीं होने दिया । कभी वे पोस्टकार्ड पर छपे हुए शहर के छायाचित्रों को देख कर चित्रण करते ।

१९१० से १९१४ तक के काल में–जो उनकी कला का 'श्वेत काल'[12] कहलाता है–उन्होंने दीवारों के सफेद रंग व निकटवर्ती हलके रंगों को प्रमुख स्थान दे कर शहरी दृश्य चित्रित किये; उनमें दीवारों की खुरदरी सतहों, निचले हिस्सों पर उगी हुई सेवारों, मकानों की खंडित अवस्थाओं व मार्गों की ऊबड़खावड़ स्थिति का यथार्थ प्रभाव अंकित किया है । उनके चित्रण की तुलना मकान-कारीगर से की जा सकती है जो प्रथम दीवार को उठाता है, उसमें खिड़कियां जड़ाता है व ऊपर से छत डाल देता है; उत्रियों ने यही कार्य रंगों में किया और उसमें रंगों का भी ऐसी मोटी परतों में प्रयोग किया जैसा कारीगर चूने का करता है ।

१९१४ के बाद उत्रियो के रंगों में अधिक चमकीलापन आ गया, किंतु बाद में उनकी कला से अनुभूति की तीव्रता कम हो कर चित्रों का सामर्थ्य भी घट गया । पैरिस के शहरी दृश्यों का यथार्थ दर्शन उत्रियो की कला का ध्येय था । उनकी कला-कृतियों में समकालीन पैरिस का अमर दर्शन है और आज भी उनकी कलाकृतियों द्वारा हम उसका यथार्थ परिचय कर सकते हैं ।

सहजसिद्ध चित्रकार[1]

कान्डिन्स्की ने कला के 'आत्मिक तत्व' की प्राप्ति के दो परस्परविरोधी मार्गों का उल्लेख किया था; पहला मार्ग था 'महत्तर वस्तुनिरपेक्षता'[2] का जो उन्होंने व देलोने ने अपनाया था व दूसरा था 'महत्तर यथार्थ'[3] का जिस मार्ग से रूसो जैसे नवआदिम कलाकार जा रहे थे; व कान्डिन्स्की के अनुसार उस मार्ग से भी कलाकार दृश्य यथार्थ के आगे निकल कर कठोर वास्तविकता के अंतर्गत अगम्य[4] का दर्शन कर सकते हैं। इस वर्गीकरण से आधुनिक कला के भिन्न प्रवाहों की आंतरिक एकात्मता पर प्रकाश डाला है। कला कितनी भी वस्तुनिरपेक्ष क्यों न हो, वास्तविकता के दृश्य सौंदर्य की अनुभूति से ही उसको मनोवैज्ञानिक बल प्राप्त होता है; वास्तविकता का संपर्क मस्तिष्क की गहराई में अज्ञेय परिणाम छोड़ता है व दृश्य रूप उसका केवल प्रतीक है। अतः इस प्रतीकात्मकता को ध्यान में रख कर उपयुक्ततावादी दृष्टिकोण को छोड़ कर, वस्तु का संपूर्ण प्रकृति से पृथक् रूप से चिंतन किया जाये तो वस्तु के आंतरिक जीवन का साक्षात्कार हो जाता है। नीग्रो कला, आदिम कला व बालचित्र-कला को इसी मूलभूत विचार से महत्व है; इनमें वस्तु के रहस्यमय अस्तित्व का सत्य रूप समझने के व्यक्तिगत प्रयत्न किये होते हैं। आत्मतत्ववादी चित्रकारों ने दृश्य वास्तव सौंदर्य द्वारा वस्तु की आत्मा के दर्शन के प्रयत्न किये।

सहजसिद्ध कलाकारों में भी वस्तु के दृश्य सौंदर्य के पीछे छिपे रहस्य को जिसके कारण वस्तु के प्रति अवर्णनीय आत्मीयता पैदा होती है—कला द्वारा अनुभव करने के प्रयत्न दिखायी देते हैं। अप्रशिक्षित होने के कारण कला में मूलभूत दृष्टि-कोण अपनाने में उनको कठिनाई नहीं होती। उनकी कला ऐतिहासिक या प्रचलित शैलियों के प्रभावों से मुक्त रहती, सामाजिक आवश्यकताओं का उस पर बोझ नहीं पड़ता व वस्तु के आत्मिक सामर्थ्य का परिचय करने को वे उत्कंठित रहते।

लोककला के समान, सहजसिद्ध कला का उद्गम सामाजिक रीतिरिवाज या संस्कृति में नहीं बल्कि कलाकार की स्वाभाविक व आदिम, संवेदनाशील कल्पनाशक्ति में होता है; अतः इन कलाकारों को समुचित रूप से नवआदिम कलाकार भी कहते हैं। इनकी कला बालचित्रकला के समान निष्कपट व सरल होती है किंतु इसके अतिरिक्त उसमें आत्मा से संपर्क रखने वाली वैयक्तिकता भी होती है। व्यक्तिविशिष्ट सौंदर्यानुभूति

को अभिव्यक्त करने की प्रेरणा उनमें इतनी तीव्र होती है कि उनका चित्रण पूर्ण स्वाभाविक ढंग से होता है। केवल प्रशिक्षण के अभाव से सहजसिद्ध कला का निर्माण नहीं होता; उसके लिये तीव्र आंतरिक प्रेरणा का होना अनिवार्य है।

आधुनिक कला में निम्न सहजसिद्ध कलाकार विशेष प्रसिद्ध हुए: आंरी रूसो–सेवानिवृत्त चुंगी कर्मचारी बांये–जो रास्ते पर आलू बेचते थे, सेराफिन द सांलि–नौकरानी, कामीय बॉम्ब्वा व आन्द्रे वोशां; ये सब फ्रेंच थे व इनके अतिरिक्त अमेरिकन कलाकार एडवर्ड हिक्स, जोसेफ पिकेट, जॉन केन व ग्रॅंड मा मोजेस ने काफी ख्याति प्राप्त की।

आंरी रूसो (१८४४–१९१०)

रूसो को न केवल सहजसिद्ध कलाकारों में श्रेष्ठ मानते हैं बल्कि उनका आधुनिक कला के महान् प्रणेताओं में स्थान है क्योंकि आधुनिक कला के विकास पर उनकी कला का वहुत प्रभाव पड़ा।

आंरी रूसो का जन्म लावाल में हुआ। पिता की विपन्नावस्था के कारण वे कला का अध्ययन नहीं कर सके। १८८५ में स्वयंप्रेरणा से प्रकृति को गुरु मान कर एवं परंपरागत शैली के कलाकार जेरोम व क्लेमाँ से कुछ सलाह ले कर उन्होंने चित्रण शुरू किया। इसके अतिरिक्त नियमित रूप से उन्होंने कला की शिक्षा प्राप्त नहीं की। १८७० में सैनिक-सेवा के पश्चात्, चुङ्गीघर के छोटे अधिकारी के रूप में उनकी नियुक्ति हुई।

१८८६ में वे सेवानिवृत्त हुए और उसी साल उन्होंने अपने दो चित्र सलों द अँदेपांदां में प्रदर्शित किये। अब वे अपना सारा समय चित्रकारी में लगा सकते थे। उनको जो दृश्य भाता उसको वे अपनी सहजस्फूर्त शैली में चित्रित करते; विवाह-समारोह, परिचित व्यक्ति, वस्तुसमूह व काल्पनिक निसर्ग–दृश्य उनके चित्रों के विषय थे। उन्होंने व्यक्तिओं व वस्तुओं को सरलीकृत ठोस आकारों में चित्रित कर के उनकी वैयक्तिक विशेषताओं को स्पष्ट रूप दिया है। प्रकृतिचित्रों को कहीं बारीकियों के साथ तो कहीं विस्तृत व विरोधी क्षेत्रों में चित्रित करके उन्होंने दृश्यांतर्गत वस्तुओं को उभार दिया है जिससे वे अवकाश से पृथक् शिल्पसदृश प्रभावी व स्वतंत्र व्यक्तित्व लिये हुए प्रतीत होती हैं उन्होंने वहुत ही अनुरागयुक्त संवेदनाओं व रचनात्मक कौशल के साथ पुष्प–चित्रण किया।

उष्णकटिबंधीय प्रदेशों के घने जंगलों के दृश्य–चित्रण में रूसो की प्रतिमा विशेष रूप से संपन्न थी। इन घने जंगलों के दृश्य–चित्रों में चमकीले, निर्मल हरे रंगों के पत्तों से झुकी हुई शाखाओं व पौधों के बीचबीच, बंदरों की चमकती आंखें व काले मुंह, शेरों व बाघों के शोधक चेहरे, व बिजली के प्रकाशमान लट्टुओं के समान शाखाओं से लटकते हुए पीले व नारंगी फल सतेज दिखायी देते हैं। ऐसी

वनश्री के लिये मेक्सिको के जंगल विशेष प्रसिद्ध हैं जहां पूर्ण विकसित हरेभरे वृक्ष लताओं के तेज रंगों व उनके बीचबीच बहते हुए ठंडी हवा के झौकों का प्रभाव बहुत ही प्रसन्न व उत्साहवर्धक होता है। १८६४–६७ के काल में रूसो सेना के साथ मेक्सिको गये थे और शायद उस काल की स्मृतियां उनकी कला द्वारा चित्ररूप होकर प्रकट हो गयी होंगी या उन्होंने कहीं वनस्पति-उद्यानों में या प्राणिसंग्रहालयों में ऐसे दृश्य देखे होंगे जिसके परिणामस्वरूप उनके दृश्यचित्रों को यह रूप प्राप्त हुआ होगा। रूसो स्वयं को सच्चे यथार्थवादी मानते एवं अपनी गणना महान् यथार्थवादी कलाकारों में करते।

रूसो का सबसे पहला महत्वपूर्ण चित्र था 'आनंदोत्सव की रात' (१८८६)[5]। चांदनी रात के इस दृश्यचित्र का वातावरण काल्पनिक, काव्यपूर्ण व स्वप्निल है; पेड़, बादल वगैरह सभी वस्तुओं का बारीकियों के साथ यथार्थ चित्रण किया है व स्वप्नमय, काल्पनिक सृष्टि में रूसो का यह प्रारंभिक चरण है। वास्तव प्रतिमाओं द्वारा पुर्ननिर्मित चित्रसृष्टि को रूसो ने अपनी काव्यात्मक प्रतिभा से स्वप्न का रूप दिया है। सुदूर के विदेशों के घने वनों के दृश्य रूसो की स्वप्न सृष्टि की परिणामकारक निर्मिति के लिये बड़े सहायक सिद्ध हुए एवं आंधीग्रस्त जंगलों (१८९२)[6] चित्र से आरंभ करके रूसो ने ऐसी पृष्ठभूमि पर कई प्रभावी चित्र बनाये जिनसे वे अमर हो गये। इन चित्रों में 'सपेरा' (१९०७) व 'याद्विगा का स्वप्न'[7]—उनका अंतिम चित्र—विशेष प्रसिद्ध हैं। 'याद्विगा का स्वप्न' में सुरम्य वृक्षवाटिका के मध्य में सुशोभित, आरामदायक, मृदु पलंग पर एक विवस्त्र स्त्री अर्ध लेटी हुई अवस्था में चित्रित की है; चारों ओर सुंदर, हलके नीले व जामुनी रंगों के पुष्प डालियों पर झूम रहे हैं; वृक्षों में से चिड़ियों, शेरों, फलों व सूंड उठाये हुए हाथी की आकृतियां चमक रही हैं; व एक काली मानवाकृति बांसुरी बजा रही है। पलंग पर लेटी हुई स्त्री याद्विगा उनके असफल प्रथम व अन्तिम प्रेम की नायिका थी व जब १९१० की अँदेपांदां की प्रदर्शनी में यह चित्र भेजा गया तब रूसो ने याद्विगा पर कविता लिख कर चित्र के साथ संलग्न की।

रूसो हर साल अपने चित्रों को 'सलों द अँदेपांदां' में प्रदर्शित करते यद्यपि शुरू में उनका अक्सर उपहास किया जाता। सर्वप्रथम पिसारो ने उनके चित्रों के काव्यमय प्रभाव को पहचाना व गोग्वँ ने भी उनकी मौलिक अंकनपद्धति को पसंद किया। १९०५ के करीब देरें, व्लामिंक, देलोने, पिकासो व कवि अपोलिनेर रूसो की कला की प्रशंसा करने लगे व अबतक उपेक्षित रूसो ने इस प्रशंसा को बच्चे के समान निष्कपट भाव से स्वीकारा। उनको अपनी कला की महानता के बारे में शुरू से ही आत्मविश्वास था और एक बार उन्होंने पिकासो को अभिनदन करते हुए कहा था कि जीवित कलाकारों में वे दोनों सर्वश्रेष्ठ हैं—पिकासो 'इजिप्शियन शैली' के कलाकार के रूप में व रूसो स्वयं 'आधुनिक शैली' के कलाकार के रूप में।

जैसे ही उनके चित्र विकने लगे उन्होंने मित्रों को भोजन संमेलनों में बुलाना शुरू किया जहां वे स्वयं वायोलिन वजाते या कभी अपनी काव्यरचनाएं सुनाते। १९०८ में पिकासो ने उनके सम्मान में भोजन का आयोजन किया था। १९०९ में किसी ठग आदमी के चंगुल में आकर उनको सजा सुनायी गयी किंतु उनकी निष्कपटता को देखकर सजा स्थगित की गयी। १९१० में विपन्नावस्था में निद्रानाश के विकार से उनकी मृत्यु हुई। उनके चित्रों में से 'सोया हुआ जिप्सी', 'युद्ध', वांसुरीवाला'[8] वगैरह चित्र विशेष प्रसिद्ध हैं। उनकी कला के स्वाभाविक सौंदर्य से मोहित होकर, सहज प्रवृत्ति से चित्रण करने की आकांक्षा ने कई आधुनिक कलाकारों को प्रेरित किया। रूसो की कला की महानता के परिचय के साथ ही आधुनिक कला में सहजसिद्ध या नवआदिम कलाकारों के प्रति दर्शकों, कलाकारों व कलाप्रेमियों का ध्यान आकृष्ट हुआ।

अज्ञात सहजसिद्ध कलाकारों पर प्रकाश डालकर उनको मान्यता दिलाने की दिशा में विलेल्म युइद ने महत्वपूर्ण कार्य किया। प्रथम विश्वयुद्ध से पहले जब वे सांलि में निर्वास कर रहे थे, अपने मित्र की नौकरानी सेराफिन लुइ के फुरसत में बनाये चित्र उनको देखने को मिले और वे उनसे वहुत प्रभावित हुए। सेराफिन ने उम्र के ४० वें साल में चित्रण शुरू किया। वे कभी भ्रमजन्य अवस्था में रहतीं व उनको पारलौकिक दृश्य दिखायी देते जिनको वे देवताओं की प्रेरणा से चित्ररूप देना चाहतीं। उन्होंने फूल, फल, पौधों के ऐसे चित्र वनाये जिनके आकारों व रंगरूपों से ऐसे प्रतीत होता है कि यह वनस्पति जगत की भेंट इहलोक की न होकर स्वर्गीय नंदनवन की होगी। युइद ने उनको रंगसामान की सहायता देकर प्रोत्साहित किया एवं उन्होंने अनैसर्गिक रंगरूप के फूलपौधों के अद्भुत प्रभाव के बड़े आकार के चित्र वनाये। १९२० से १९३० तक वनाये गये उनके चित्र वहुत लोकप्रिय हुए।

लुइ विवँ (१८६१-१९३६) डाकखाने के साधारण कर्मचारी थे। वचपन की स्मृतियां पुनर्जागृत होकर उन्होंने उम्र के ६० वें साल में चित्रण शुरू किया। वे प्रायः छायाचित्रों को देखकर शहर के विशाल भवनों व चौराहों के चित्र वनाते जिनमें मकान के हरेक पत्थर व ईंट को रेखांकित करके यथार्थ प्रभाव दिखाते। उनके चित्रों में एक अद्भुत नगरी का दर्शन है जो वास्तवता को देख कर वनायी जाने पर भी अनोखी प्रतीत होती है। एक वार सहजसिद्ध कला की विशेषताओं के प्रति कलाप्रेमियों का ध्यान आकर्षित होते ही कई सहजसिद्धि कलाकार प्रकाश में आ गये।

अमेरिका में 'जादूमय यथार्थवाद'[9] का प्रसार होते ही समान गुणविशेषताओं के कारण सहजसिद्ध कला के प्रति भी लोकों की अभिरुचि वढ़ गयी। १९३० में न्यूयार्क संग्रहालय ने अमेरिकन नवआदिम कलाकारों के चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित की जिसके कारण जोसेफ पिकेट नाम के सहजसिद्ध कलाकार प्रसिद्ध हुए। उनका

'मॅंचेस्टर घाटी'[10] शीर्षक का महत्वपूर्ण चित्र न्यूयार्क के म्यूजियम ऑफ मॉडर्न आर्ट संग्रहालय ने प्राप्त किया। पिकेट (१८४८-१९१९) अमेरिका के न्यू होप गांव में दुकानदार थे। उम्र के ६५ वें साल में उन्होंने उत्सुकता से चित्रण शुरू किया। आयु के अंतिम वर्षो में उन्होंने काव्यमय वातावरण के प्रकृतिचित्र बनाये जिनमें प्रत्येक वस्तु को स्पष्ट बाह्य रेखा से अंकित करके बारीकियों के साथ चित्रित किया है। १९२७ की कार्नेजी अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी[11] में जॉन केन ख्यातनाम हुए। उन्होंने खान-मजदूर, लुहार व खाती का काम किया था व अंत में मकानों की रंगपुताई का काम शुरू किया व फुरसत में चित्रण करने लगे। उन्होंने पिट्सवर्ग के शहरी दृश्यों को चित्रित किया; व कुछ गठीले व ठोस शरीर के मानवाकृतियों के चित्र बनाये जो फ्लोरेंटाइन शैली से मिलते-जुलते हैं। पैट्रिक सलिवान ने मानव जीवन को रूपक व दृष्टान्तों द्वारा चित्रित किया। अॅना मेरी रॉबर्टसन मोजेस (ज. १८६०)—जो ग्रॅंड मा मोजेस नाम से प्रसिद्ध हुईं—ने अपनी बचपन की स्मृतियों को उम्र के ६७वें साल में चित्रित करना शुरू किया; उन कलाकृतियों में १९ वीं शताब्दी के अमेरिकन कृपक जीवन का मनोहर व यथार्थ चित्रण है। आन्द्रे बोशां (ज. १८७३) व्यवसाय से माली थे व १९१७ में सेना में भरती होने के पश्चात् उनकी चित्रकला में रुचि पैदा हुई। उनकी कलाकृतियों का प्रभाव १४ वीं शताब्दी की इटालियन कला के सदृश है। मोरिश हर्शफिल्ड (१८७२–१९४६) ज्यू मोची थे; उन्होंने आयु के ६७ वें साल में चित्रण शुरू करके धार्मिक आदर्शवाद से प्रभावित चित्र बनाये। कामीय बॉम्ब्वा (ज. १८८३) आरंभ में व्यावसायिक पहलवान व कसरतबाज थे एवं शुरू से ही चित्रकला में रुचि रखते थे। १९२२ में आश्रयदाता मिलते ही उन्होंने चित्रकला को व्यवसाय के रूप में स्वीकारा। उनके चित्रों में शारीरिक सामर्थ्य का प्रदर्शन है और अंकनपद्धति सरल व स्पष्ट है। उन्होंने ठोस दर्शन के नदीकिनारों व फूलों के दृश्य भी चित्रित किये।

वस्तुनिरपेक्ष कला

जिस कला में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक वस्तु के रूप की ओर कोई संकेत नहीं होता ऐसी कला को इंग्लिश भाषा में 'एब्स्ट्रैक्ट' या 'नोनफिगरेटिव'[1] कला कहते हैं। एब्स्ट्रैक्ट शब्द का मूल अर्थ 'सारतत्व निकालना' होने के कारण कुछ विद्वान् एब्स्ट्रैक्ट शब्द के प्रयोग के विरुद्ध हैं क्योंकि उनके विचार से यह शब्द अपरोक्ष रूप से वास्तविकता की रूपजन्य अनुभूति की ओर निर्देश करता है; अतः उनके विचार से 'नोनफिगरेटिव' शब्द का प्रयोग अधिक उचित है। वस्तुनिरपेक्ष कला के आरंभिक काल में वास्तव सृष्टि के बाह्य रूप से प्रेरणा लेकर किंतु प्रत्यक्ष दर्शन से बाह्य रूप को हटाकर कलाकृतियां बनायी गयीं व उनको "एब्स्ट्रैक्ट' कला नाम से संबोधित किया गया; बाद में जब मोंद्रियां ने पूर्ण रूप से काल्पनिक ज्यामितीय आकारों में तत्सदृश कलाकृतियां बनायीं तब ऐसी कृतियों के संदर्भ में भी रूढ, 'एब्स्ट्रैक्ट' शब्द को प्रयोगान्वित किया गया यद्यपि मोंद्रियां की कृतियों को 'नोनफिगरेटिव' कहना अधिक उचित है। इस पुस्तक में दोनों के लिये 'वस्तुनिरपेक्ष' शब्द का प्रयोग किया है यद्यपि कुछ लेखक 'अमूर्त' शब्द का भी प्रयोग करते हैं।

वस्तुनिरपेक्ष आकारों के सौंदर्य की अनुभूति कोई नयी कल्पना नहीं है यद्यपि वस्तुनिरपेक्ष कला बीसवीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण देन मानी गयी है प्राचीन काल के कलाकारों ने भी यह अनुभव किया था कि कलाकृति को वस्तुनिरपेक्ष गुणों से ही सौंदर्य व सामर्थ्य प्राप्त होते हैं। कलाकृति किसी भी शैली की या किसी भी काल की हो उसकी परिणामकारकता अन्तर्गत वस्तुनिरपेक्ष गुणों पर निर्भर करती है। यदि हम प्राचीन से लेकर अब तक की श्रेष्ठ कलाकृतियों का परिशीलन करेंगे तो ज्ञात होगा कि केवल अन्तर्गत विचार या विषयवस्तु के महत्व से कलाकृति को श्रेष्ठ नहीं माना गया है। विचार या विषयवस्तु के परिणामकारक दर्शन के लिये भी कलाकृति में वस्तुनिरपेक्ष गुणों–यानी रंग, रेखा, सतह आदि मूलतत्वों के निजी चैतन्य–का विकास आवश्यक है। यह एक इतना मूलभूत सिद्धांत है कि इस पर किसी कलाकार ने स्वतंत्र विचार की आवश्यकता को अबतक महसूस नहीं किया; भोजन में मसाला होना जैसे गृहीत माना गया है उसी प्रकार चित्र के अभिप्राय से उसके वस्तुनिरपेक्ष गुणों को अविभाज्य माना गया। कलाकृति बनाते समय, कला-

कार उसके अन्तर्गत सौंदर्यजागृति को अनुभव किया करते थे और उससे संतोष मिलते ही उसको पूर्ण करके दूसरी कलाकृति के निर्माण में लग जाते थे। इससे अधिक अन्तर्गत सौंदर्यात्मक गुणों का विचार करने की आवश्यकता को उन्होंने महसूस नहीं किया।

प्राचीन धार्मिक चित्रों के सौंदर्यात्मक रसग्रहण के लिये धर्मज्ञान आवश्यक नहीं है; यथार्थवादी व्यक्तिचित्र का कलात्मक सौंदर्य व्यक्तिसादृश्य पर निर्भर नहीं करता; इन कलाकृतियों की सौंदर्यात्मक श्रेष्ठता का निकष है अन्तर्गत वस्तुनिरपेक्ष तत्वों का स्वाभाविक विकास। प्राचीन विजान्टाइन, जापानी, बौद्ध, पर्शियन व राजपूत कलाकारों ने हूबहू बनाने के उद्देश्य से वस्तुओं व प्राणियों का चित्रण नहीं किया; परिणामस्वरूप अपने चुने हुए माध्यम के रंग लकड़ी, रंगीन कांच, पत्थर, कपड़ा आदि–अन्तर्गत गुणों का वे चरमसीमा तक स्वाभाविक एवं कलात्मक विकास कर सके व विषय प्रतिपादन के अतिरिक्त वस्तुनिरपेक्ष गुणों के सौंदर्यदर्शन के विचार से भी उनकी कृतियां श्रेष्ठ बन गयीं। पुनर्जागरणकाल से यथार्थ–रूप–सादृश्य की ओर कलाकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ एवं उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना कर हूबहू चित्रण शुरू किया जो १९ वीं शताब्दी तक बहुत लोकप्रिय रहा और उसके साथ कलांतर्गत वस्तुनिरपेक्ष गुणों की उपेक्षा हुई।

इस प्रकार कला के इतिहास में कलाकार का सदैव द्विविध दृष्टिकोण रहा; एकतरफ विषय प्रतिपादन के उद्देश्य से वस्तुसादृश्य का विचार व दूसरी तरफ सौंदर्य व अभिव्यक्ति के सामर्थ्य को बढ़ाने के उद्देश्य से वस्तुनिरपेक्ष गुणों के विकास का विचार दोनों दृष्टिकोणों का कभी पृथक् होना अटल था व इसी पृथक्करण में वस्तुनिरपेक्ष कला का जन्म हुआ।

सर्वप्रथम प्लेटो ने वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य का विचार करके लिखा कि "वृत्त, आयत ऐसे आकार हैं जो किसी बाह्य कारण से या उपयुक्तता की वजह से सुंदर नहीं है बल्कि सौंदर्य उनकी प्रकृति है एवं उनसे ऐसी सौंदर्यानुभूति होती है जो निरिच्छ, निर्विकार है; इस प्रकार रंगों के विशुद्ध प्रयोग में भी यह सौंदर्य है"[2]।

बीसवीं शताब्दी में भौतिक–विज्ञान, रसायन-विज्ञान, उद्योग एवं सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों में विकास को अकल्पित गति प्राप्त हुई; दूरगामी वेगवान यातायात के साधनों का आविष्कार हुआ एवं देश-विदेशों के बीच का अन्तर नगण्य हो कर वैचारिक व सांस्कृतिक आदानप्रदान होने लगा। बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल कला को नया विश्वव्यापी रूप प्राप्त होना अपरिहार्य था; यह रूप था–वस्तुनिरपेक्ष कला। इस कला का प्रभाव, शहर-निर्माण, भवननिर्माण, औद्योगिक कला, हस्तकला साजसज्जा आदि मानव के सभी सृजनक्षेत्रों पर दिखायी देता है। बीसवीं शताब्दी के मानव का जीवनदर्शन, आदर्शवाद से विचलित होकर, अस्तित्ववादी[3] बन गया है क्षण में सीमित सौंदर्यानुभूति को ही आज का मानव सत्य मानता है–अतः वस्तुनिर-

पेक्षत्व आज की कला का आधारभूत तत्व बन गया है इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

किंतु यह सब अचानक नहीं हुआ। बोदेलेर व बाल्जाक के लेखों में समकालीन कला की भविष्य में वस्तुनिरपेक्षता में परिणति होने की घनिष्ठ संभावना को सूचित किया था। प्रभाववादी, उत्तरप्रभाववादी एवं फाववादी अंकनपद्धतियों में वस्तुनिरपेक्षता की ओर अविचारित प्रगति थी। प्रभाववादियों ने चित्र के पूरे प्रभाव को अपना लक्ष्य बना कर वस्तु के वैयक्तिक महत्व को घटा दिया एवं अपनी मुक्त अंकनशैली से रंगों के सौंदर्य व सतह की बुनावट की ओर कलाकारों व कलाप्रेमियों का ध्यान आकर्षित किया। फाव व अभिव्यंजनावादी चित्रकारों ने इसके आगे बढ़ कर चित्र में रंगों के स्वाभाविक सौंदर्य का विकास करने के उद्देश्य से वस्तु के नैसर्गिक वर्ण की पूर्ण उपेक्षा कर के रंगों का विस्तृत क्षेत्रों में व केवल रंगसंगति व प्रतीकात्मकता का विचार करके प्रयोग किया तथा रेखा के अभिव्यक्ति के स्वाभाविक सामर्थ्य को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से सरलीकृत एवं ऐंठनदार रेखांकन शुरू किया। घनवादी व भविष्यवादी कलाकारों ने ज्यामितीय आकारों का प्रयोग शुरू किया और वे वस्तुनिरपेक्षता के काफी निकट पहुंचे किंतु उनको वस्तुनिरपेक्षता के क्षेत्र में रिक्तता का भय था एवं वे अपनी कला को पूर्ण वस्तुनिरपेक्ष नहीं बना पाये; इसके अतिरिक्त वास्तविकता में ही उनको कुछ ऐसा भावात्मक सौंदर्य दिखायी दे रहा था जिसको उन्होंने सृजनात्मक अनुभूति के लिये पर्याप्त माना और उसको रचनात्मक रूप दिया। इस प्रकार भिन्न अवस्थाओं को पार करते हुए रंग, रेखा व आकारों ने वस्तुनिरपेक्ष कला के अन्तर्गत वस्तुसादृश्य के बाह्य लक्ष्य से मुक्त होकर, अपने सौंदर्याभिव्यक्ति के स्वाभाविक सामर्थ्य को प्राप्त किया।

प्राचीन काल में भी केवल समतल वस्तुनिरपेक्ष आकारों द्वारा चित्रण किया गया किंतु उसका प्रभाव मुख्य रूप से आलंकारिक रहा एवं मानवीय भावनाओं को व्याकुल करने का उसमें सामर्थ्य नहीं था जिसके उदाहरण हैं पर्शियन गलीचों व चीनी मिट्टी के बरतनों का अलंकरण। केवल सुंदर रंगों, रेखाओं व आकारों के संयोजन से वस्तुनिरपेक्ष कलाकृति का निर्माण नहीं होता जब तक उसमें भावनोद्दीपन का सामर्थ्य नहीं होता; विरोधाभास की भाषा में, ऐसी कलाकृति बाह्य रूप में वस्तुनिरपेक्ष होते हुए वास्तवसृष्टि के आंतरिक चैतन्य से ओतप्रोत होनी चाहिये—उसका दर्शक की आत्मा से वैसा ही निरपेक्ष संपर्क होना चाहिये जैसा वास्तवसृष्टि के आंतरिक चैतन्य का होता है।

आधुनिक कलाकारों द्वारा किये गये संगीत के अध्ययन से एवं कला की संगीत के साथ की गयी तुलना से कला वस्तुनिरपेक्षता की ओर अधिक तेजी से गतिमान हुई। शोपेनहोर ने लिखा है "सभी कलाएं संगीत की ओर प्रवर्तित हैं"[4]। इस विचार ने आधुनिक कलाकारों को संगीत-सदृश वस्तुनिरपेक्षता की दिशा में प्रयोग

करने को प्रोत्साहित किया।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में कलाकारों ने विशुद्धतावादी दृष्टिकोण अपना कर, कला के मूलतत्वों का वाह्य उद्देश्यों से पृथक् विचार शुरू किया एवं उनके स्वाभाविक विकास पर ध्यान केंद्रित किया; परिणामस्वरूप वस्तुसादृश्य विचारदर्शन, कथन, सदेश, प्रचार, प्रासंगिक महत्व वगैरह वाह्य उद्देशों का महत्व संकुचित होता गया और अंत में कला को पूर्ण रूप से वस्तुनिरपेक्ष रूप प्राप्त हुआ।

कान्डिन्स्की व मोंद्रियां को वस्तुनिपेक्ष कला के प्रणेताओं का स्थान दिया जाता है यद्यपि वस्तुनिरपेक्ष कला काफी समय तक कलाक्षेत्र में चलती हुई विचार-क्रांति की परिणति थी। कान्डिन्स्की ने अपना प्रथम वस्तुनिरपेक्ष चित्र १९१० में जलरंगों में चित्रित किया। उस समय वस्तुनिरपेक्षता के विचार से ऐसी जागृति पैदा हुई थी कि भिन्न कलाकारों ने स्वतंत्र रूप से वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियां बनायीं। १९११ में मास्को में लारियोनोव ने, १९१२ में देलोने व कुपका ने वस्तुनिरपेक्ष कृतियां बनायीं। १९१३ में बनाये लेजे के चित्र 'आकारों का विरोध'[5] व देलोने की सुरीलवादी कृतियों में वस्तुनिरपेक्षता का पर्याप्त विकास है यद्यपि दोनों की कला का उद्गम वास्तविकता के दृश्य सौंदर्य की अनुभूति था। कान्डिन्स्की से पहले भी कुछ चित्रकारों ने अपवादात्मक वस्तुनिरपेक्ष कृतियों का निर्माण किया था। १८९३ में डच चित्रकार हेन्री वान डि वेल्ड ने मासिकपत्रिका के लिये कुछ वस्तुनिरपेक्ष काष्ठ-खुदाई चित्रण किया। १८१६ में औग्युस्ट एंडेल ने म्युनिक के एक छायाचित्रकार की दूकान के अग्रिम भाग पर वस्तुनिरपेक्ष आकृतियां चित्रित कीं। १९०६ में होल्त्सेल ने वस्तुनिरपेक्ष-चित्रण का प्रयोग किया। १९०७ में माक ने अपने प्रयोग के बारे में लिखा "·····यथार्थ वस्तु का विचार किये बिना केवल रंगों द्वारा चित्रण कर के देखना चाहिये"। उन्होंने मार्क से किये पत्रव्यवहार में, संगीतरचना के समान, वस्तु-निरपेक्ष रंगसंगति के मनोवैज्ञानिक परिणाम व भावनोद्दीपन के सामर्थ्य की संभावना का उल्लेख किया। १९०६ में आस्ट्रियन चित्रकार आल्फ्रेड कुबिन ने मायक्रोस्कोप से देख कर निर्णय लिया की हम अपनी आंखों से जैसे देखते हैं उससे दृश्य जगत् की रचना भिन्न व जटिल है; उन्होंने स्फटिकों, सींपों व अन्य वस्तुओं से रचनाएं कर के अनोखा सृजनात्मक आनंद प्राप्त किया। १९०५ में संगीतकार स्युर्लिओनिस (१८७४-१९११) ने संगीत को दृश्य समरूप में साकार करने के उद्देश्य से चित्रण शुरू किया व 'सागर संगीत', 'सूर्य संगीत', 'सर्प संगीत'[6] जैसे शीर्षक दे कर चित्र बनाये। १९०८ में पिकाबिया ने अपना वस्तुनिरपेक्ष चित्र 'रबड़' बनाया व १९०९ में योसेफ लाकास ने कुछ वस्तुनिरपेक्ष जलरंगचित्रण किया।

वस्तुनिरपेक्ष ध्येय को १९०६ व १९१४ के बीच के काल में सुनिश्चित रूप प्राप्त हुआ। कान्डिन्स्की ने अपने कार्यकक्ष में उलटे रखे हुए निजी चित्र से वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य का साक्षात्कार किया; घूमने निकले क्युप्का को अचानक निसर्गदृश्य के अंत-

र्गत वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य का दर्शन हो कर, उन्होंने चित्रण में निसर्ग के बाह्य रूप की प्रतिकृति करने के लिये क्षमायाचना की व पुनश्च ऐसे न करने की प्रतिज्ञा की; १९०९ में मारिनेत्ति का 'भविष्यवाद का घोषणापत्र' 'ला फिगारो' में प्रकाशित हुआ; मोंद्रियां ने दैनंदिनी में लिखा "वस्तु के बाह्य रूप से सुख प्राप्त होता है तो आंतरिक चैतन्य से जीवन"[7]; देलोने ने 'समयावच्छेदी खिड़कियां' चित्रित कर के वस्तुनिरपेक्षता की ओर महत्वपूर्ण कदम उठाया: कान्डिन्स्की ने अंतिम निर्णय दिया" कला में हर बात का स्वातंत्र्य है"[8]।

आधुनिक कला के इतिहास में १९१२ यह वर्ष खलबलीपूर्ण रहा। घनवाद विकास के अंतिम बिंदु तक पहुंचा था एवं मोंद्रियां ने घनवाद का अध्ययन कर के नवलचीलवाद की दिशा में कदम उठाया; भविष्यवादी चित्रकारों की बर्नीमजोन कलावीथिका में प्रदर्शनी हुई; देलोने ने 'समयावच्छेदी खिड़कियों' को व मार्सेल द्यूशां ने 'जीने पर उतरती हुई विवस्त्र स्त्री' को प्रदर्शित किया; सेक्सिओं दोर प्रदर्शनी का आयोजन हुआ; ग्लेजे व मेंजिजे की पुस्तक 'घनवाद' प्रकाशित हुई; कान्डिन्स्की की पुस्तक 'कला में आत्मिकता' प्रकाशित हुई; सभी घटनाएं वस्तुनिरपेक्ष कला के विकास को पोषक रहीं।

सभी नवविचार के कलाकार घनवाद में परिवर्तन लाना चाहते थे। देलौने ने अपने चित्र 'वृत्तीय लय' एवं लेजे ने 'आकारों का विरोध' में घनवाद के काफी आगे बढ़ कर चमकीले रंगों के वस्तुनिरपेक्ष आकारों का प्रयोग किया। अपोलिनेर ने देलोने के चित्र 'वृत्तीय लय' के बारे में कहा "इन चित्रों द्वारा वस्तुनिरपेक्ष कला फ्रान्स में प्रकट हो गयी है"। भविष्यवाद के सिद्धांतों के अनुसार आधुनिक जीवन के गतित्व का दर्शन भविष्यवाद का ध्येय था किंतु बहुत से भविष्यवादी चित्र दर्शन में वस्तुनिरपेक्ष हैं एवं भविष्यवाद से वस्तुनिरपेक्षवादी कलाकारों को काफी प्रेरणा मिली; स्वयं मोंद्रियां भी भविष्यवाद से बहुत प्रभावित थे।

१९१२ में मोंद्रियां ने 'जिजरपॉट का वस्तुचित्र' 'पुष्पित वृक्ष'[9] चित्रित किये जिसके आगे विकास कर के उन्होंने १९१४ में 'अन्डाकार रचना'[10] यह पूर्ण वस्तु-निरपेक्ष चित्र बनाया। अन्डाकार का विरोधी आकार के रूप में प्रयोग कर उन्होंने इस चित्र में, खड़ी व आड़ी रेखाओं के मौलिक विसंवाद को सुरचित रूप दिया जिसके बारे में उन्होंने स्पष्टीकरण किया है "पौरुषेय व प्राकृतिक–उच्च व प्रसृत"[11]।

वस्तुनिरपेक्ष कला के इतिहास में मोंद्रियां व कान्डिन्स्की दोनों को समान महत्व का स्थान है। मोंद्रियां ने घनवाद के स्थायी रचनासौंदर्य को वस्तुनिरपेक्षता की ओर विकसित किया तो कान्डिन्स्की ने फाववाद व अभिव्यंजनावाद के भावना-पूर्ण गतित्व को वस्तुनिरपेक्षता की ओर मोड़ दिया।

कान्डिन्स्की की पुस्तक 'कला में आत्मिकता' कला को वस्तुसादृश्य के बंधन

से मुक्त करने में बहुत सहायक रही। कुप्का की वस्तुनिरपेक्ष कला के पीछे घनवाद, भविष्यवाद या फाववाद की प्रेरणा नहीं थी; उसका उदय पूर्णरूप से स्वयं प्रेरित था। देलोने के प्रभाव में आ कर दो अमेरिकी चित्रकार, मॉर्गन रसेल व स्टॅंटन मॅक्डोनल्ड राइट ने वस्तुनिरपेक्ष चित्रण शुरू किया व अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष कला का आरंभ उन्हीं से हुआ; वे स्वयं को 'सिन्क्रोमिस्टस्'[12] कहलाते। उनके चित्रों की प्रदर्शनियां १९१३ में प्रथम म्युनिक में व बाद में पॅरिस में हुईं। मॉर्गन रसेल ने अपने एक रेखाचित्र के नीचे लिखा था "इसमें जानबूझ कर किसी विषय को चित्रित नहीं किया है जिससे कि मन के अन्य केन्द्रों को प्रसन्न किया जा सके"[13]। इनके अतिरिक्त आरंभकालीन वस्तुनिरपेक्ष चित्रकारों में अमेरिकन चित्रकार पॅट्रिक हेन्री ब्रूस थे। १९१३ में अमेरिका में हुई 'आर्मरी शो' प्रदर्शनी में तीनों के वस्तुनिरपेक्ष चित्र प्रदर्शित हुए।

१९१३ में रशिया में लारियोनोव व गोन्चारोवा ने भविष्यवाद से प्रभावित किरणवाद को जन्म दिया। ध्येय में वस्तुनिरपेक्षता की ओर कोई निर्देश नहीं होते हुए किरणवादी कलाकृतियां दर्शन में वस्तुनिरपेक्ष हैं। त्रिभुज, वृत्त, आयत जैसे ज्यामितीय आकारों से बनायीं रशियन चित्रकार मालेविच की सर्वोच्चवादी कृतियां वस्तुनिरपेक्ष कला के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त टाटलिन, गाबो व पेवनर का रचनावाद व रोशेंको का निर्वस्तुवाद[14] वस्तुनिरपेक्ष ध्येय से प्रेरित थे।

वस्तुनिरपेक्ष कला को—विशेषतया आरंभकालीन दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है; पहले वर्ग में किसी प्रत्यक्ष दृश्य से प्रेरणा पाकर मूल आकारों द्वारा वस्तुनिरपेक्ष कृतियां बनायी जाती हैं व दूसरे वर्ग में कल्पना से वस्तुनिरपेक्ष आकारों की योजना करके कृतियां बनायी जाती हैं यद्यपि अंतिम दर्शन में दोनों वर्गों की कृतियों में कोई भिन्नता प्रतीत नहीं होती।

१९१५ में वान डोसबर्ग व मोंद्रियां की मुलाकात हुई, दो साल पश्चात् 'डि स्टाइल' पत्रिका द्वारा नये कलात्मक आंदोलन का वैचारिक प्रचार शुरू हुआ व वस्तु-निरपेक्ष नवलचीलवाद का जन्म हुआ। डोसबर्ग ने योरप में निकट काल में हुए व हो रहे कलात्मक प्रयोगों का अध्ययन किया था व मोंद्रियां के साथ पॅरिस में किये कलाध्ययन का उनको प्रात्यक्षिक अनुभव था; उन्होंने विशुद्ध आकारों व रेखाओं की भाषा के व्याकरण का अभ्यास द्वारा संशोधन शुरू किया। मोंद्रियां ने भिन्न रंगों के आयताकार समतलों व खड़ी-आड़ी रेखाओं की सहायता से, सुसंगतिपूर्ण, निर्दोष व गणित के समान नियमबद्ध रचनाओं का निर्माण शुरू किया। अपने कलात्मक प्रयोगों को उन्होंने लेखों द्वारा स्पष्ट किया व वस्तुनिरपेक्ष कला के दर्शनशास्त्र को जन्म दिया। भारतीय दर्शन से प्रभावित डच पंडित शोनमाकर्स से मोंद्रियां की घनिष्ठ मित्रता थी और उनके विचारों से मोंद्रियां को अपनी कला के विकास में काफी सहायता मिली।

जिस समय हालेंड में 'डि स्टाइल' आंदोलन जारी था, मालेविच, पेवनर, टाटलिन, कान्डिन्स्की आदि रशियन चित्रकार सर्वोच्चवाद, रचनावाद आदि वादों से कला को वस्तुनिरपेक्ष रूप दे रहे थे। १६२१ के पश्चात् राजकीय विरोध के कारण प्रमुख रशियन नवचित्रकार रशिया छोड़कर पैरिस, लंदन व बर्लिन चले गये व उन्होंने वहां अपनी कला का विकास किया जिससे वस्तुनिरपेक्ष कला का काफी प्रसार हुआ। १६१५-१६ के करीब स्विट्जर्लेंड में ज्यां आर्प व सोफी टोबर ने संयुक्त प्रयत्न करके लकड़ी व कागज को काट कर वस्तुनिरपेक्ष आकारों की कोलाज रचनाएं कीं जिससे दादावाद का वस्तुनिरपेक्ष कला के क्षेत्र में प्रवेश हुआ इसके अतिरिक्त दादा कलाकार पिकाबिया के यंत्रसदृश व्यक्तिचित्र[15] व श्विटर्स की कोलाजकृतियां दादावाद व वस्तुनिरपेक्षकला का समन्वित रूप थे।

१६१८ में ओजांफां व ज्यांनेरे (ल काव्र्युसिय) ने 'घनवाद के बाद'[16] नाम की पुस्तक प्रकाशित की व कार्यात्मक आकारों से घनवाद को विशुद्ध रूप देने के प्रयत्न किये जो कार्यक्रम दादावाद के आकस्मिक प्रभाव निर्माण के ठीक विपरीत था। उत्तरघनवादी काल में योरप के विभिन्न शहरों में, नवचित्रकारों के मंडल घनवाद से प्रेरणा पाकर, नवीन दिशाओं में प्रयोगशील थे जिससे योरपीय कला को पर्याप्त वस्तुनिरपेक्ष रूप प्राप्त हुआ। १६२० के करीब योरप में कलाविषयक लेखों के प्रकाशन के उद्देश्य से कई मासिकपत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ जिनके द्वारा भिन्न देशों के नवकलाकारों में विचारों का आदानप्रदान शुरू हुआ, वे एकदूसरे के निकट आ गये और एकदूसरे से प्रेरणा पाकर नवीन प्रयोगों में व्यस्त हुए। हालेंड में 'डि स्टाइल' बर्लिन में 'डेर स्टुर्म', वार्सा में 'ब्लोक', बेलग्राड में 'झेनिथ'[17] वगैरह मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। फ्रान्स में 'लेस्प्रित नुवो'[18]—जिसका कुछ साल तक ओजांफां व ल काव्र्युसिय ने संपादन किया—व 'कायेदार'[19] पत्रिकाओं ने आधुनिक कला के प्रसार में प्रशंसनीय कार्य किया यद्यपि लोकों की नवीन प्रयोगों के प्रति उदासीनता के कारण उनके संचालकों को बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ी। मोंद्रियां की एक भी वस्तुनिरपेक्ष कृति बिकती नहीं थी व अर्थार्जन के लिये उनको पुष्पचित्र बना कर बेचने पड़ते। वस्तुनिरपेक्ष कला की आरंभिक अवस्था में भी हमको वे ही द्विविध दृष्टिकोण प्रतीत होते हैं जो उसकी विकसित अवस्था में हम पोलाक व मोंद्रियां की कलाकृतियों में देखते हैं; एक तरफ कुछ चित्रकार उन्मुक्त रंगांकन से प्राप्त ऐंद्रिक आनंद में तद्रूप होकर विशुद्ध भावनाओं की अभिव्यक्ति में व्यस्त थे तो कुछ चित्रकार सहजज्ञान पर निर्भर रह कर रंगसंगति, आकार सौंदर्य व गणितीय रचना के गूढ सिद्धांतों द्वारा कलाकृतियों का निर्माण कर रहे थे।

जर्मनी के वैमार शहर में हुई बौहौस की प्रस्थापना आधुनिक कला के विकास में बहुत सहायक हुई। १६२२ में बौहौस में मोहोली नागी, कान्डिन्स्की व क्ली की नियुक्ति हुई। उस समय वान डोसबर्ग वहां रहते थे और उनके क्रांतिकारी विचारों

का विद्यार्थियों पर काफी प्रभाव पड़ता। मोंद्रियां व वान डोसवर्ग ने कुछ निवन्ध[20] प्रकाशित किये जिनमें निम्न विचार व्यक्त किये थे "नवलचीलवाद का उद्‌गम घनवाद है और हम उसको सत्यार्थ में वस्तुनिरपेक्ष चित्रण कह सकते हैं।........अवतक संपूर्ण चित्रकला का जो लक्ष्य था वही उसका लक्ष्य है किंतु उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम अप्रकट रूप है। स्थान व मिति, तथा रंगों व रंगीन समतलों को दिये गये महत्व से, लचीले माध्यम द्वारा, पारस्परिक संवंधों को व्यक्त किया है—यहां कोई आकार-निर्मिति नहीं है। इन पारस्परिक संवंधों को संतुलित रूप देकर नवलचीलवाद ने विश्वव्यापी सुसंवादित्व को व्यक्त किया है। कुछ समय तक कला के आविष्कार कलाक्षेत्र में ही सीमित रहेंगे। समूचे वातावरण को अभी विशुद्ध सुसंवादित्व से निर्मित सौंदर्यात्मक रूप नहीं दिया जा सकता।........आज कला उस उत्कर्ष विंदु पर है जो प्राचीन काल में धर्म ने प्राप्त किया था। सत्यार्थ में, धर्म निसर्ग का किसी विशेष स्तर पर किया गया अवस्थांतर मात्र है" —मोंद्रियां। "संभवतः कलात्मक अनुभूति व परमोच्च धार्मिक भावना में कोई अंतर नहीं है। कलाकृति में गहरी आंतरिकता होती हैं। किंतु यह ध्यान में रखना होगा कि सच्ची कलानुभूति की विशुद्ध अवस्था संदिग्ध या स्वप्निल नही होती........वह सचेत व यथार्थ अनुभूति होती है—"वान डोसवर्ग। वौहौस ने क्ली की पुस्तक 'अध्यापनशास्त्र की अभ्यासपुस्तिका' कान्डिन्स्की की 'बिंदु व रेखा से समतल' व मालेविच की 'निर्वस्तु जगत्'[21] प्रकाशित कीं। मोहोली नागी हमेशा सृजनकला के नये माध्यमों व पद्धतियों की खोज में रहते। 'डि स्टाइल' के प्रभाव से वेल्जियम कलाकार सर्वरांक, मास व वान डुरेन ज्यामितीय आकारों में वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियां बनाने लगे। पीटर्स ने अपनी मासिक पत्रिका 'एट ओवर्जिश्ट'[22] में प्रकाशित लेख में दर्शकों को सलाह दी "रचनात्मक कलाकृति के सामने यह मत कहना कि कुछ भी मेरी समझ में नहीं आ रहा है। यहां बुद्धि की नहीं वल्कि संवेदनाशीलत्व की आवश्यकता है। आप अनुभव करो या मत करो यह पूर्ण सत्य है"। यह मत पूछना कि इसका अर्थ क्या है ?"। "......चित्र बोल नहीं सकता"।

१९२१ में कान्डिन्स्की रशिया से वापस जर्मनी गये। अव उनके चित्रों में ज्यामितीय आकार दिखायी देने लगे व उनकी पूर्ण वस्तुनिरपेक्ष कृतियों को सितारों से जगमगाते विश्वमंडल का रूप प्राप्त हुआ। १९२० के वाद देलोने की कृतियां अधिक वस्तुनिरपेक्ष दिखायी देने लगीं किंतु १९३० के पश्चात् ही उनकी कृतियों को विशुद्ध वस्तुनिरपेक्ष रूप प्राप्त हुआ। १९२० से १९३० तक के कालखण्ड में जो कलाकार वस्तुनिरपेक्ष कृतियां वना रहे थे उनमें पोलेण्ड के चित्रकार ओटो फ्राइंडलिख, अमेरिकन चित्रकार मॅक्डोनल्ड राइट व मॉर्गन रसेल विशेष कार्यशील थे।

१९२५ में पोलिश चित्रकार पोज्नान्स्की ने पॅरिस में 'आर डो जुर्द्दि'[23]

नाम से प्रदर्शनी का आयोजन किया जिसमें ८७ कलाकारों ने—जिनमें अधिकतर वस्तुनिरपेक्षवादी कलाकार थे–भाग लिया जिनमें आर्प, वौमिस्टर, ब्रांकुसी, ब्र्यूस, मार्सेलकान, देलोने, वान डोसबर्ग, गोन्चारोवा, ग्री, क्ली, यांको, मायरो, लारियोनोव, लेजे, मार्कुसिस, मोंद्रियां, निकोलसन, ओजांफां, पिकासो, प्राम्पोलिनि, सर्वरांक, वान्टोन्जलू थे। प्रदर्शनी की विवरणपत्रिका से उसके उद्देश्यों पर प्रकाश पड़ता है "सादृश्यरहित लचीली कला की प्रगति का समालोचन जिसकी संभावना की ओर प्रथम घनवादी आंदोलन ने संकेत किया था···कला को यथार्थ के बोझ से मुक्त करना।··········दर्शक को चाहिये कि वह इन चित्रों को आंतरिक प्रशांति के साथ केवल आंखों से देखकर अनुभव करें–जिसके लिये चाहिये कि वह स्वयं को आलोचनारहित, ग्रहणशील अवस्था में प्रस्थापित करें······।

१९२०–३० के कालखण्ड में कथनात्मक चित्रण का प्रभाव फिर से बढ़ता जा रहा था; अतियथार्थवाद का भी काफी प्रसार हो गया था और कई चित्रकार इस शैली के चित्रों के निर्माण में लगे थे।

१९३० में निशेल सोफो व चित्रकार तोरे-गार्शिया ने 'वृत्त व वर्ग'[२४] नाम की पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया व उसकी ओर से पैरिस में प्रदर्शनी का आयोजन हुआ जिसमें निम्न प्रमुख वस्तुनिरपेक्षवादी कलाकारों की कृतियां प्रदर्शित हुईः आर्प वौमिस्टर, चार्कून, ज्यां गोर्रे, हुत्सार, कान्डिन्स्की, ल कार्ब्युसिय, लेजे, मोंद्रियां, पेव्नर, प्राम्पोलिनि, रूस्सोलो, वान्टोन्जलु, तोरे गार्शिआ, वर्कमन। प्रदर्शनी की विवरणपत्रिका की प्रस्तावना मोंद्रियां ने लिखी थी। पौर्वात्य धर्म-कल्पना के अनुसार वृत्त व वर्ग, आसमान व पृथ्वी के प्रतीक रूप माने गये हैं व जो दृश्य अभिव्यक्ति के सब से मूल व सरल आकार हैं। प्रदर्शनी काफी सफल हुई व उससे प्रेरणा पाकर वान्टोन्जलु व अर्वे ने 'वस्तुनिरपेक्षनिर्माण मंडल'[25] की प्रस्थापना की। 'वस्तु-निरपेक्ष–निर्माण'[26] वार्षिक–पत्रिका १९३२ से १९३६ तक प्रकाशित होकर वस्तु-निरपेक्षवाद का काफी प्रसार हुआ। 'वस्तुनिरपेक्षनिर्माण' मंडल अधिक उत्साही था व उसने अपने कुछ सदस्यों की कृतियों को कार्यालय–भवन में स्थायी रूप से प्रदर्शित किया; प्रदर्शनियों से पुराने कलाकारों के अतिरिक्त कुछ नवीन कलाकार वेन निकोल्सन, काल्डर, अर्वे, पालेन, मार्क्स विल व आल्फ्रेड रेथ आगे बढ़े।

१९३६ के करीब, जिस समय 'वस्तुनिरपेक्ष–निर्माण' वार्षिक पत्रिका का अन्तिम अंक प्रसिद्ध हुआ, योरप में आर्थिक दुरवस्था व फासिज्म के प्रसार से कई कलाकारों को देशत्याग करना पड़ा व द्वितीय विश्वयुद्ध की संकटग्रस्त परि-स्थिति में योरपीय कला का विकास रुक गया। किंतु यह वर्ष अमेरिकी आधुनिक कला के विचार से महत्वपूर्ण रहा; 'अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष कलाकार सभा'[27] की प्रस्थापना हुई; 'आधुनिक कला संग्रहालय'[28] न्यूयार्क की ओर से घनवादी व वस्तु-निरपेक्ष कलाकृतियों की प्रदर्शनी हुई; आल्फ्रेडबार की प्रसिद्ध पुस्तक 'घनवाद व

वस्तुनिरपेक्ष कला'[29] प्रकाशित हुई। वैसे इससे पहले ही वस्तुनिरपेक्ष कला का अमेरिका में प्रसार हो चुका था; गॅल्लाटिन के 'विद्यमान कला संग्रहालय' द्वारा, कॅथेरिन ड्रेएर के 'सोसिएते एनोनिम' द्वारा व हिला रिवे के 'निर्वस्तु चित्रकला संग्रहालय'[30] द्वारा अमेरिकी कलाप्रेमी वस्तुनिरपेक्ष कला से काफी परिचित हो चुके थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के काल में कई योरपीय कलाकार, साहित्यिक, विचारक व वैज्ञानिक योरप छोड़ कर अमेरिका चले गये व अमेरिकी कला व विचार क्षेत्र में नया जीवन पैदा हुआ।

१९३९ में पॅरिस छोड़ कर मोंद्रियां लंदन गये व १९४० में न्यूयार्क पहुंचे। वहां उन्होंने अपनी अन्तिम महत्वपूर्ण कलाकृतियां 'ब्राड्वे बुगिवुगि' व 'विक्टरी बुगिवुगि'[31] बनायीं। श्विटर्स को नार्वे से भाग कर इंग्लेंड जाना पड़ा जहां उन्होंने फिर से मर्त्सबौ[32] का निर्माण शुरू किया।

विश्वयुद्धजनित परिस्थिति से हुए योरपीय कलाकारों के आगमन से अमेरिकी कला के विकास को गति प्राप्त हुई; इसके अतिरिक्त वस्तुनिरपेक्ष कला के एक महत्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश पड़ा। सच्ची कला राष्ट्र व धर्म निरपेक्ष होती है व वस्तुनिरपेक्ष कला के संदर्भ में कलाकारों ने यही अनुभव किया। अन्य कला-शैलियों से वस्तुनिरपेक्ष कला का रसग्रहण परोक्ष व अधिक सरल है; उसके लिये पूर्वज्ञान व संदर्भ की आवश्यकता नहीं होती। वस्तुनिरपेक्ष कला द्वारा भिन्न देशों के कलाकार अपनी आंतरिक अनुभूतियों को किसी भी कठिनाई के बिना एकदूसरे के सम्मुख रख सकते हैं। कलाकार जहां जाता है अपने साथ अपनी सौंदर्यपिपासा व सृजनशक्ति को ले जाता है; उसके लिये मातृभूमि या विदेश ऐसी कोई स्थानीय मर्यादाएं नहीं होतीं जहां जाता है वहां उसका सम्मान होता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्, वस्तुनिरपेक्ष कला को भिन्न शाखाओं व उप-शाखाओं में विशाल वृक्ष का रूप प्राप्त हुआ व उसका मूल स्रोत स्मृति रूप में अवशिष्ट रहा।

आधुनिक कला—१९४५ के पश्चात्

प्रभाववाद के साथ कलाकारों में स्वतंत्र विचार से प्रयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी; उन्होंने दर्शन, मनोविश्लेषण, विज्ञान आदि विषयों का अध्ययन व विचारों का आदान-प्रदान करके नवीन दिशाओं में प्रयोग किये और द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त तक कलाक्षेत्र में इतनी प्रगति हुई कि कलाकारों को सृजन के सभी मूल सिद्धांतों एवं कला के आधारतत्वों के विशुद्ध विकास का बौद्धिक एवं प्रात्यक्षिक ज्ञान हो गया। कलात्मक सृजन पर अब कोई बाह्य बंधन नहीं रहा एवं बिना किसी द्विविधा व बाह्य प्रतिरोध के कलाकार मौलिक सृजन करने को उद्यत हुए। वस्तुसादृश्य का भय न रहने के कारण कुछ कलाकारों ने—उदाहरण के लिये डि कुनिंग व द्यु्ब्युफे—वास्तव रूप का वस्तुनिरपेक्ष कला के अंतर्गत समावेश आरंभ किया किंतु जिसको सृजनक्रियात्मक या कलाकृति की रचना के अविभाज्य अंग के अतिरक्त कोई यथार्थवादी महत्व नहीं है। सृजन के मूल सिद्धांतों का यथोचित ज्ञान होने से वस्तुनिरपेक्षत्व, यथार्थ, अतियथार्थ, रचनासौंदर्य वगैरह भिन्न तत्वों के बीच की कृत्रिम सीमाएं नष्ट हो गयीं और परिणामकारक कलाकृतियां निर्माण करने के विचार से कलाकारों ने भिन्न तत्वों का समन्वय करना शुरू किया। संक्षेप में द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्वकाल तक जो आधुनिक कला मुख्य रूप से प्रयोगात्मक थी वह उसके पश्चात् प्रात्यक्षिक, उपयुक्त व रचनात्मक हो गयी; अब तक के प्राप्त निष्कर्षों को कलाकारों के वैयक्तिक या सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति में कार्यान्वित किया गया; कला अधिक समाजोन्मुख हुई। पॉप काल में दादा निराशा व उपहास को भी सामाजिक व विधायक रूप दिया गया। कलाकारों में आत्मविश्वास का सामर्थ्य बढ़ते ही उनकी समाज के प्रति विद्रोह की विनाशक भावना कम हो गयी। यह मुख्य रूप से कलात्मक की अपेक्षा दार्शनिक दृष्टिकोण में हुए अंतर का परिणाम था जिसका संक्षिप्त विचार करना होगा।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात्, ईश्वर, धर्म, नीति वगैरह आत्मिक मूल्यों के नष्ट होने से मानव खोया हुआ सा था एवं उसको ऐसा कोई सहारा दिखायी नहीं दे रहा था जिससे मानवजाति को विनाश की खाई से बचाया जा सके; अतः उस काल के—जिस काल में आत्यंतिक निराशा से निर्मित विनाशवादी वृत्ति[1] ने दादावाद को जन्म

दिया था—साहित्य व कला मानवजीवन की विफलता के लिये रुदनमात्र थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् इतना मानवसंहार होने पर भी मानव निराशा की उस अवस्था तक नहीं पहुंचा। नीति, धर्म, ईश्वर वगैरह मानवनिर्मित निष्ठाएं पहले ही सामर्थ्यहीन हो गयी थीं; काल्पनिक भविष्य का विचार छोड़कर, अस्तित्ववादी मानव विद्यमान क्षण में उपलब्ध ऐंद्रिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुभूति के प्रति सचेत हो गया था। परमाणु युग का आरंभ होकर तकनीकी विज्ञान की कल्पनातीत प्रगति हुई। अब मानव के जीवनदर्शन में मुख्य रूप से निम्न विचारों को स्थान था; तकनीकी विज्ञान की प्रगति से उपलब्ध भौतिक सुख साधनों का लाभ; धार्मिक, पारमार्थिक व नैतिक के स्थान पर केवल भौतिक सुखों पर निर्भर व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक असंतोष; आर्थिक विषमता, वंशभेद, वर्णभेद, जनसंख्यावृद्धि, अविकसित देशों के नवराष्ट्रनिर्माण के प्रयत्न, यांत्रिक जीवन वगैरह समकालीन समस्याएं; संहारक शस्त्रों से जनित मानव-जाति के विनाश का भय। मानव-जीवन-दर्शन के साथ उसकी कला व साहित्य में निम्न परिवर्तन हुए; अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विचारों का आदान-प्रदान; तकनीकी विकास व अवकाशयुग के अनुरूप आकारों का निर्माण व रूपरचना; दोषग्रस्त वातावरण के व्यक्तित्व पर बढ़ते हुए दबाव से भावनाओं को मुक्त करने के हेतु आत्यंतिक हेत्वाभासपूर्ण कलाकृतियों एवं सार्वजनिक कलात्मक कार्यक्रमों का निर्माण; विनाश की संभावना का प्रचार। इस प्रकार, पूर्वकालीन कला पर आधारित होते हुए, द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् की कला भावनात्मक अनुभूति व प्रत्यक्ष रूप के विचारों से नवीन है।

वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद:[2]

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सर्वप्रथम जन्मे इस कलात्मक आंदोलन पर अति-यथार्थवाद का स्पष्ट प्रभाव था। युद्धकालीन परिस्थिति से जो शरणार्थी योरप से अमेरिका आये थे उनमें अतियथार्थवादी कलाकार माक्स एर्न्स्ट, मट्टा, डाली व आन्द्रे मास्सों थे व न्यूयार्क के अमेरिकी कलाकारों को उनकी कलाशैलियों ने आकृष्ट किया था। इनके अतिरिक्त योरपीय अग्रगामी कलाकार योसेफ आल्बेर्स व हान्स हापमन अमेरिका में अध्यापन कार्य करते हुए नवीन कलासंबंधी विचारों का प्रसार कर रहे थे।

आर्मेनियन कलाकार आर्शाइल गोर्की योरपीय अतियथार्थवाद व अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद के बीच की कड़ी थे। वे १९२० में आर्मेनिया छोड़ कर अमेरिका आये थे। वे मट्टा व आन्द्रे मास्सों से विशेष रूप से प्रभावित थे। आधुनिक कला की भिन्न प्रमुख शैलियों के अध्ययन से उन्होंने निजी कला का विकास किया व उनकी कलाकृतियों के अंतर्मन से निर्मित वस्तुनिरपेक्ष आकारों में आंतरिक अकेलेपन का भाव प्रतीत होने लगा। कला के अंतर्मन, सृजनक्रिया के संपूर्ण महत्व पर बल देते

हुए उन्होंने कहा था "सृजनक्रिया की समाप्ति के साथ ही कला का अन्त हो जाता है।........ मैं कभी चित्र को पूर्ण नहीं करता मैं केवल बीच ही में विश्राम करता हूं। हमेशा चित्रण को आरंभ करते रहना चाहिये व उसको कभी समाप्त नहीं करना चाहिये"[3]। दुर्भाग्यपूर्ण जीवनकाल के पश्चात् १९४८ में गोर्की ने आत्महत्या की। गोर्की का 'अखण्डित क्रियात्मकता'[4] का विचार वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद का विशेषतया पोलाक की कला का—मूलाधार तत्व था।

जॅक्सन पोलाक, डि कुनिंग व उनके साथी कलाकारों की कृतियों की आलोचना करते समय रॉबर्ट कोट्स ने 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद' शब्द का प्रयोग किया। इसी संदर्भ में हॅरोल्ड रोसेनबर्ग ने 'क्रियात्मक चित्रण'[5] शब्द का प्रयोग किया व समकालीन अमेरिकी नवकला 'न्यूयार्क शैली'[6] नाम से भी प्रसिद्ध हुई। वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद' से शैली की ओर नहीं बल्कि रूपांकन की क्रियात्मक दिशा की ओर संकेत किया गया है व शैली के विचार से उसमें सम्मिलित कलाकारों के दो मुख्य वर्ग किये जाते हैं;—प्रथम वर्ग में—पोलाक, डि कुनिंग क्लाइन व ट्टोर्को ये कलाकार हैं जो सत्यार्थ में 'क्रियात्मक चित्रकार'[7] हैं—जिनकी कला की विशेषता है अनियंत्रित, गतिपूर्ण क्रिया द्वारा चित्रण व चित्रक्षेत्र की बुनावट का स्वाभाविक निर्माण: दूसरे वर्ग में रोथ्को, न्यूमन, स्टिल, मदरवेल व गोट्लिएब ये कलाकार हैं जो विस्तृत क्षेत्रों व वस्तुनिरपेक्ष आकारों में चित्रण करते हैं। इसके अतिरिक्त फिलिप गस्टन व ब्रुक्स ये कलाकार भी उनके साथ थे जिनकी कला को 'वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववाद'[8] शब्द अधिक उचित है। इसमें से पोलाक व डि कुनिंग विशेष ख्यातनाम हुए व उनका आगामी कलाकारों पर काफी प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त कुछ आगामी कलाकार मार्क रोथ्कों, न्यूमन व स्टिल के अधिक विवेकशील वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद से प्रभावित हुए व 'उत्तर-चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्षत्व'[9] क्लेमेन्ट ग्रीनबर्ग से दिया गया नाम—का जन्म हुआ जो 'रंगक्षेत्रीय चित्रण'[10], 'रंगों का वस्तुनिरपेक्षत्व'[11] वगैरह नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

जॅक्सन पोलाक (१९१२-१९५६)

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्कालीन अमेरिकी कला के एक प्रणेता के रूप में पोलाक को सम्मानित किया गया है। उनका आरंभिक कलाध्ययन न्यूयार्क के आर्ट स्टुडन्ट्स लीग में टॉमस बेन्टन के मार्गदर्शन में हुआ। बेन्टन की कला का पोलाक के आरंभिक चित्रों पर स्पष्ट प्रभाव है; वक्रगति, गतिपूर्ण रेखाओं से अंकित वस्तुसदृश आकारों व विरोधी रंगों के क्षेत्रों से चित्रों को पर्याप्त वस्तुनिरपेक्ष किंतु व्याकुल रूप प्राप्त हुआ है। १९४४ के करीब बनाये उनके चित्रों की तुलना पिकासो व माक्स एर्न्स्ट के चित्रों से की जा सकती है। १९४७ से उन्होंने बड़े आकार के पट को जमीन पर बिछा कर ऊपर से रंगों को धाराओं में गिरा कर एवं धब्बों में लगा

कर चित्रण शुरू किया जिसको हॅरोल्ड रोसेनवर्ग ने 'क्रियात्मक चित्रण' नाम दिया। इस प्रकार के चित्रण में सहजज्ञान, अन्तर्मन से संचालित क्रिया एवं संयोग—जो वस्तु-निरपेक्ष अभिव्यंजनावाद के प्रमुख आधार तत्व हैं—महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। किंतु कलाकार की सृजनक्रिया, जिसमें वह शारीरिक रूप से भाग लेता है, पूर्णरूप से स्वयं-चालित या संयोगजनित नहीं हो सकती; उस पर अध्ययन व विचार का कुछ नियंत्रण रहता ही है व पोलाक के १९४७ से १९५१ तक बनाये चित्रों में उनके व्यक्तित्व का स्पष्ट दर्शन है उसका यही कारण है। अंतर्गत गुणों के अतिरिक्त, पोलाक की कला से व्यापक-प्रभाव-चित्रण[12] का महत्व बढ़ कर कलाकृति को वातवरणीय रूप प्राप्त हुआ; विशाल पट के सम्मुख, दर्शक स्वयं को अनोखे वातावरण से परिवेष्टित अनुभव करने लगा व कलाकृति को एक नया अर्थ प्राप्त हुआ। पोलाक का यह नया आगम आधुनिक कला को एक देन है जिसका आगामी कलाकारों ने काफी विकास किया।

पोलाक ने अपने चित्रण के बारे में लिखा है "जब मैं चित्रण के साथ एकरूप हो जाता हूं, मुझे पता नहीं चलता है कि मैं क्या कर रहा हुं। कुछ समय तक परिचय होने के बाद ही मैं समझ पाता हूं कि मैं क्या कर रहा था। चित्र में परिवर्तन करना निर्मित प्रतिमा को मिटा देना आदि विचारों का मुझे भय नहीं है क्योंकि चित्र का अपना स्वतंत्र जीवित्व होता है मैं उसको अपने आप बनने देता हूं। सृजनक्रिया से मेरा संपर्क जब टूटता है तब मुझे गड़बड़ होने का डर लगता है"[13]। पोलाक की इस सृजनाक्रिया को रोजेनवर्ग सारभूत धार्मिक क्रिया[14] मानते हैं। यह ऐसी धार्मिक क्रिया थी जो धर्माज्ञाओं के अनुपालन में नहीं की जाती थी बल्कि जिसका लक्ष्य था राजनैतिक, सौंदर्यशास्त्रीय, व नैतिक मूल्यों के बंधनों से मुक्ति।

हान्स हाफमन (१८८०-१९६६)

पोलाक की कला का अमेरिका में—व बाद में योरप में—शायद ही प्रभाव पड़ता यदि हाफमन द्वारा नवीन सृजन के लिये अनुकूल वातावरण का निर्माण नहीं किया होता। उनको न्यूयार्क शैली के जनक मानते हैं। बावारिया में जन्मे हाफमन १९०३ से १९२४ तक पॅरिस में रहे व नवप्रभाववाद से लेकर फाववाद, घनवाद, तक सभी नवीन कलांतर्गत आंदोलनों का उन्होंने परिशीलन किया। देलोने की रंगीन आकार-रचना की कल्पना से वे विशेष रूप से प्रभावित थे। १९२५ से म्युनिक में रहकर कलाध्यापक के रूप में उन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की। १९३२ में अमेरिका जाकर उन्होंने अध्यापनकार्य शुरू किया। अध्यापनकार्य के साथ वे चित्रण भी करते रहे। १९४० के करीब बनाये उनके चित्रों से आगामी वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद की पूर्वसूचना मिलती है।

न्यूयार्क शैली के कलाकारों में रॉबर्ट मदरवेल एक उत्साही कार्यकर्ता थे।

उनकी चित्रकला का आरंभ अतियथार्थवादी चित्रकारों के–विशेषतया चित्रकार मट्टा के–प्रभाव से हुआ। उन्होंने 'संभावनाएं[15]' नामक मासिक पत्रिका का संपादन किया व न्यूमन, रोथ्को व बाजिओट्स के सहकार्य से १९४८ में एक कलाविद्यालय प्रस्थापित किया। १९५२ में उन्होंने दादा कलाकारों व कवियों की कृतियों का संकलन प्रकाशित किया। इतने कार्यव्यस्त होने के बावजूद उन्होंने कई चित्रकृतियां बनायीं जिनमें से 'स्पेनिश गणतंत्र के शोकगीत'[16] चित्रमालिका विशेष प्रसिद्ध है। इस चित्रमालिका से उन्होंने स्पष्ट किया कि वस्तुनिरपेक्ष चित्रण द्वारा भी कलाकार अपनी विषयजनित भावनाओं को अपरोक्ष रूप से व्यक्त कर सकता है। मदरवेल के चित्रों की स्मृतिव्याकुलता का दर्शन हमें विश्वयुद्ध के उत्तरकालीन अमेरिकी काव्य में भी होता है।

वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद में विल्लेमडि कुनिग का महत्वपूर्ण स्थान है। कुनिग का जन्म १९०४ में हालेंड में हुआ। १९२६ में वे अमेरिका गये जहां गोर्की व भविष्य के कुछ न्यूयार्क शैली के कलाकारों से उनका परिचय हुआ। १९४० तक उन्होंने व्यक्तिचित्रण किया। उसके बाद उन्होंने जोशपूर्ण रंगांकन से कृतियां बनायीं जिनमें वस्तुनिरपेक्षत्व से अभिव्यंजना पर अधिक बल दिया जाने के कारण दर्शक को उनमें अकल्पित विकृत प्रतिमाएं दिखायी देती हैं। माध्यम के प्रक्षुब्ध संचालन से चित्रांतर्गत रंगों की धज्जियां सजीव किंतु पीड़ित प्रतीत होती हैं। १९५० के बाद अपनी अंकनपद्धति में परिवर्तन किये बिना उन्होंने चित्रण में स्त्री–आकृति का अंतर्भाव करना शुरू किया जिससे उनके चित्र लैङ्गिक भयानकता के प्रतीक बन गये।

मार्क रोथ्को (ज. १९०३) ने समतल चंचल पृष्ठभूमि पर विशाल, अस्पष्ट, आयताकार क्षेत्रों को चित्रित करके अवकाश की गहराई का प्रभाव चित्रित किया व उनको हम सत्यार्थ में रहस्यवादी मान सकते हैं। रोथ्को के समान बार्नेट न्यूमन ने पृष्ठभूमि में विशाल समतल रंगक्षेत्र की योजना की किंतु उसके ऊपर उन्होंने विशुद्ध रंगों की सीधी संकरी पट्टियों को अंकित करके विश्वमंडलीय अवकाश की प्रशांति का प्रभाव निर्माण किया उनके चित्र 'रंगक्षेत्रीय चित्रण' के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। रोथ्को व न्यूमन के समान गोट्लिएब के चित्रों में अवकाशीय प्रभाव है किंतु अवकाश के अन्तर्गत उन्होंने स्फोटक आकारों की योजना की है।

फ्रान्स क्लाइन (१९२०–१९६२) ने आरंभ में यथार्थवादी मानवचित्रण व दृश्यचित्रण किया। उनको काले रंग में रेखांकन करने का शौक था। १९४९ में जब उन्होंने प्रक्षेपक यंत्र की सहायता से अपने रेखांकन के छोटे हिस्सों को पर्दे पर बड़े पैमाने में देखा तब उन प्रतिमाओं के वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य से वे मोहित हुए व काले रंग के जल्द लगाये गये पट्टों में विशाल क्षेत्रों पर वे चित्रण करने लगे। क्लाइन की सृजनक्रिया में हावभाव की सांकेतिकता हैं व उनकी कलाकृतियों के दर्शन में

वास्तुसदृश विशालता है।

मार्क टोबी (ज. १८९०) ने चीन व जापान में रह कर झेन बौद्ध संप्रदाय व चीनी तूलिकाचित्रण का अध्ययन किया व उनके चित्रण में हस्ताक्षर के वस्तुनिरपेक्षत्व व व्यक्तित्वदर्शन के गुण दृष्टिगोचर हुए। शिकागो व न्यूयार्क में रहने से उनके चित्रण में शहरी वातावरण के प्रकाश की व्यापक चंचलता व जीवन के गतित्व ने प्रवेश किया। पोलाक के समान, टोबी की कलाकृति के समूचे क्षेत्र का प्रभाव दर्शक को घेर लेता है।

क्लिफोर्ड स्टिल (ज. १९०४) के वस्तुनिरपेक्ष चित्रों में रंगों का विस्तृत प्रवाहों में अन्कन किया है एवं बीच बीच किसी अन्य रंग को संकरी रेखा में प्रवाहित कर के, भिन्न प्रवाहों को पृथक् किया है। गतिमान् किंतु नियंत्रित तूलिका संचालन से फिलिप गस्टन (ज. १९१३) मध्यवर्ती वस्तुनिरपेक्ष आकार को वातावरण से परिवेष्टित किंतु पृथक् व संघर्षमय अवस्था में चित्रित करते हैं। चित्रांतर्गत आकारों के रचनासौंदर्य व योजनापूर्ण मनोहर रंगसंगति के कारण जेम्स ब्रुक्स (ज. १९०६) के चित्र वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद की अपेक्षा वस्तुनिरपेक्ष घनवाद से अधिक मिलते जुलते हैं।

ज्यां द्युब्युफे

विश्वयुद्ध के पश्चात् ख्यातनाम हुए फ्रेंच कलाकारों में ज्यां द्युब्युफे (ज.-१९०१) सर्वश्रेष्ठ हैं। १९१८ में अकादेमी ज्युलियां में कलाध्ययन करने के बाद वे कलाक्षेत्र से पचीस साल तक पृथक् रहे। घर पर वे कुछ चित्रण व रेखांकन करते किंतु उनका अधिकतर समय व्यावसायिक कार्यों में खर्च होता। हान्स प्रिन्जोर्न की पुस्तक[17] में पागल व्यक्तियों की कला के संबंध में विचार पढ़ने से उनको नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ और उन्होंने निर्णय लिया कि संग्रहालयीन कला या प्रयोगवादी आधुनिक कला से भी अभिव्यक्ति के विचार से पागलों की कला अधिक सामर्थ्यवान् है। अब उन्होंने पागलों की कला व बालकला को आदर्श मान कर फिर से स्वतंत्र रूप से चित्रण शुरू किया। आधुनिक कलाकारों में से पौल क्ली उनके सबसे प्रिय कलाकार थे। १९४४ से आरंभ कर के उन्होंने प्रचुर मात्रा में चित्रण किया। उनके आरंभिक चित्रों में पॅरिस के शहरी दृश्यों के चित्र हैं जिनमें मानवाकृतियों, मकानों, व अन्य वस्तुओं के अंकन में बच्चों की अप्रशिक्षित पद्धति को अपनाया है। उसके बाद दीवारों पर पाये जानेवाले—प्रायः अश्लील—सामान्य वयस्क आदमियों द्वारा खींचे गये चित्रों से प्रेरणा ले कर, पट की सतह को कृत्रिम उपायों से खुरदरी बना कर उस पर उन्होंने चित्रण शुरू किया। पट की सतह को खुरदरी बनाने के लिये वे लकड़ी का बुरादा, बालू, मिट्टी वगैरह पदार्थों का उपयोग करते। उनके चित्रित व्यक्ति, जानवर व दृश्य को नैसर्गिकतावादी महत्व नहीं हैं; वे चित्रण के लिये बहाना

मात्र थे और उनके चित्रों का प्रभाव मुख्य रूप से वस्तुनिरपेक्ष है।

ध्युफे के अतिरिक्त पैरिस में ज्यां फोत्रिय, एस्तेव, पिन्यों व बाजेन प्रमुख उदीयमान चित्रकार थे। बीसवीं शताब्दी के मध्य में उन्होंने नये प्रयोग कर के फ्रेंच आधुनिक कला को गतिमान रखा। फाववाद, घनवाद व अभिव्यंजनावाद के अंतर्गत तत्वों को ही समन्वित कर के उन्होंने नये दर्शन के रूपांकन के प्रयत्न किये। १९४५ में प्रदर्शित हुई फोत्रिए की 'ओस्ताज'[17] चित्रमालिका में निष्प्राण मानवशीर्ष सदृश आकारों को रंगों की मोटी परतों में अंकित किया है। चित्र को शिल्प के समान उभार देने के लिये फोत्रिय प्लास्टर, मिट्टी, गोंद वगैरह पदार्थों का उपयोग करते। द्युव्युफे व फोत्रिय के अतिरिक्त पैरिस के एक अन्य कलाकार फिलिप होसि आस्सोन ने भिन्न पदार्थों का उपयोग कर के उभारदार-चित्रण शुरू किया जो पदार्थ-चित्रण[19] नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

विश्वयुद्ध की समाप्ति के दस साल के भीतर ही पैरिस में वस्तुनिरपेक्ष कला की दो प्रमुख विचारधाराएं दृष्टिगोचर हुई। बाजेन, मानेसिय, सँजिय, ज्यां ल मोल, व शार्ल लापिक चित्र में वस्तुनिरपेक्ष दृश्यसौंदर्य का काव्यात्मक विकास करने के विचार से प्रेरित थे और वे सुसंगतिपूर्ण रंगों को चुन कर, नियंत्रित तूलिका संचालन से प्रसन्न, मनोहर कृतियों का निर्माण करते इनकी कला को वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववाद[20] कहा जा सकता है। उसी समय पैरिस में हान्स हार्टुंग, श्नाइडेर, सुलाज व मात्यु अनियंत्रित वस्तुनिरपेक्ष चित्रण में व्यस्त थे एवं उनकी कला को 'अनियंत्रित कला'[21] कहते हैं।

वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववादः—ज्यां बाजेन, मानेसिय, सँजिय, वगैरह वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववादी चित्रकारों में से अधिकतर चित्रकारों ने रोज बिसियर के मार्गदर्शन में कला का विकास किया। रोज बिसियर क्ली से प्रभावित थे और उन्होंने कई नवकलाकारों का मार्गदर्शन किया। स्वयं बिसियर प्रभाववादी अंकनपद्धति में भिन्न विशुद्ध रंगों के धब्बों का प्रयोग करके, वस्तुनिरपेक्ष किंतु रंग प्रभाव से मनोहर चित्रक्षेत्रों का निर्माण करते। बाजेन के वस्तुनिरपेक्ष चित्रण में उद्देश्यपूर्ण रंग-संगति व सुदिग्दर्शित तूलिकासंचालन द्वारा साहचर्यभाव के स्पष्ट प्रयत्न हैं और उनके चित्रक्षेत्रों का समूचा प्रभाव बादलों, नदी किनारों, कांटे के बाड़ों या दलदल भूमि के सदृश दिखायी देता है। सँजिय के चित्र में स्पष्ट रूप से सागरी दृश्य के अनंत विस्तार का प्रभाव गहरे नीले रंग में अंकित किया गया है एवं बीच-बीच से दूरी रंग के छोटे धब्बों से जहाजों की ओर संकेत किया है। मानेसिय के वस्तुनिरपेक्ष चित्रों का रूप प्रासंगिक है; उनके मानवाकृतिरहित चित्र उत्सव, त्योहार, मेला, क्रिस्तमस जैसे प्रसंगों का स्मरण दिलाते हैं।

उपरिनिर्दिष्ट चित्रकारों के अतिरिक्त, पैरिस के चित्रकार लान्स्कोय, पोलिआकोफ व निकोल द स्ताएल वस्तुनिरपेक्ष चित्रण कर रहे थे व समतल रंगों

के विस्तृत क्षेत्रों की योजना के कारण उनके चित्रों का प्रभाव फाव कला के अधिक निकटवर्ती है। लान्स्कोय के चमकीली रंगसंगतियों से युक्त चित्रों का प्रभाव प्रकृति-दृश्यों के समरूप है। पोलिग्रोकोफ के चित्रों में आकारों की भिन्न छटाओं में सुसंवादित्व का प्रस्थापन है। द स्ताएल ने वस्तुनिरपेक्षत्व से चित्रण को आरंभ किया किंतु संपूर्ण वस्तुनिरपेक्षत्व से असंतुष्ट होकर उन्होंने उसको वास्तव रूप से समन्वित करना शुरू किया जिससे उनके चित्रों के सम्मुख दर्शक वास्तव रूप के प्रति आत्मीयता व वस्तुनिरपेक्ष सौंदर्य दोनों को अनुभव कर लेता है। द स्ताएल विशुद्ध रंगों को विस्तृत क्षेत्रों में छटा में परिवर्तन किये बिना मक्खन के समान मोटी परतों में लगाते; और भिन्न क्षेत्रों के बीच कहीं कहीं पट के श्वेत वर्ण की लकीरों को छोड़ कर भिन्न क्षेत्रों के स्वाभाविक आकारों की रक्षा करते जिससे उनको ज्यामितीय कठोरता का भय नहीं रहता।

अनियंत्रित कला:—अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावादी कलाकारों के समान, पैरिस के कुछ नवकलाकार हार्टुंग, श्नाइडेर, सुलाज व मात्यु अनियंत्रित संचालन द्वारा वस्तुनिरपेक्ष चित्रण करने में व्यस्त थे। इनके अतिरिक्त वोल्स, आलेचिन्स्कि, आस्गर योर्न आदि कलाकार भिन्न मुक्त अंकनपद्धतियों में वस्तुनिरपेक्ष चित्रण कर रहे थे। इन सब की कला को 'अनियंत्रित कला' नाम से पहचानते हैं। यह नाम फ्रेंच कलासमीक्षक मिशेल तापिए द्वारा दिया गया व यह अमेरिकी 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद' के समानार्थी है। अनियंत्रित कला द्वारा योरपीय कलाकारों को घनवाद की नियमबद्धता से मुक्ति पाने का साधन प्राप्त हुआ। 'अनियंत्रित कला' सहजज्ञान, स्वाभाविकता व अनुशासनरहित की ओर संकेत करती है और वह आकार या विशिष्ट अंकनपद्धति की विरोधी नहीं है। इस कला को तापिए ने 'भिन्न कला' या 'मुक्ति–मार्गकला'[22] नाम से भी निर्दिष्ट किया। इसमें मुख्य रूप से तूलिका व रिक्त पट से चित्रण का आरंभ होता है व उसका अन्त कहीं भी हो सकता है। अतः 'अनियंत्रित कला' एक व्यापक अर्थ का शब्द है एवं उसमें धब्बावाद, पदार्थचित्रण, वस्तुनिरपेक्ष अक्षरकला, हावभावात्मक चित्रण[23] आदि का अन्तर्भाव हो सकता है।

हान्स हार्टुंग (ज. १९०४) जन्मतः जर्मन थे और १९३५ से वे पैरिस में रहने लगे। १९२२ में ही उन्होंने वस्तुनिरपेक्ष रेखांकन व जलरंगचित्रण में प्रयोग किये थे। शुरू में उन्होंने घनवादी व वस्तुनिरपेक्ष अतियथार्थवादी दर्शन की कृतियां बनायीं। हलके, पारदर्शक समतलों पर तीव्र लकीरों का गतिमान् अंकन उनको विशेष प्रिय था। १९५० तक उनकी निजी शैली पूर्ण विकसित हुई और उन्होंने अवकाश के समान गहराई से युक्त, चंचल, हलके व विशाल क्षेत्रों पर गहरे रंग की लकीरों का द्रुतगति पर अंकन करके भावपूर्ण वस्तुनिरपेक्ष कृतियां बनायीं। १९६० के करीब उन्होंने लकीरों का पृथक् अंकन छोड़ दिया और रेखात्मक रंगांकनपद्धति को अपनाकर

समूचे चित्रक्षेत्र पर छाया-प्रकाश के प्रभाव को चित्रित करना आरम्भ किया।

श्नाइडेर का जन्म १८६६ में स्विट्जर्लेंड में हुआ व वे १९१६ में पैरिस आये। आरम्भ में उन्होंने अभिव्यंजनावादी मुक्त शैली में यथार्थ चित्रण किया। १९५० से उन्होंने एकरंगी या काली पृष्ठभूमि पर चमकीले व आकर्षक रंगों की चौड़ी पट्टियों को घुमावदार ढंग से घसीट कर अनियंत्रित वस्तुनिरपेक्ष कृतियां बनायीं।

पियर सुलाज (ज. १९१९) गहरे रंग के चौड़े पट्टों को चित्रण चाकू या चौड़ी तूलिका से जल्द आड़े सीधे अंकित करते हैं; पट्टों के बीच-बीच अवशिष्ट हलकी पृष्ठभूमि का प्रभाव ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि अंधेरी गुफा के प्रवेश द्वार में से या गिरजाघर की खिड़की में से इतस्ततः अंदर बिखर रहीं प्रकाशशलाकाएं। वुल्फ्गान्ग शुल्त्स वोल्स (१९१३-१९५१) के वस्तुनिरपेक्ष चित्रों की तुलना फोत्रिए के चित्रों से की जा सकती है। उनके चित्रांतर्गत अनियंत्रित द्रुतक्रिया द्वारा बनाया गया मध्यवर्ती आकार वनस्पति या प्राणि शरीर का खण्ड चित्र जैसा दिखायी देता है। जार्ज मात्यु (ज. १९२१) गहरी पृष्ठभूमि पर रंगों को सीधे ट्यूब से निकालकर वक्राकार या सीधी लकीरों में भिन्न दिशाओं में अनियंत्रित द्रुतगति फैला देते हैं जिससे विस्फोट के प्रभाव का निर्माण होता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्, जर्मनी में जिन कलाकारों ने अनियंत्रित कला की दिशा में प्रयोग किये वे अधिकतर पुरानी पीढ़ी के थे क्योंकि नात्सी शासन काल में राज्यसत्ता के विरोध के कारण नवीन कलाकारों का उदय नहीं हो सका। इन कलाकारों में विली बौमिस्टर, टेओडोर वर्नर, एर्न्स्ट विलेल्म नाइ व फ्रित्स विंटर प्रमुख थे। बौमिस्टर आरंभ में घनवाद व विशुद्धवाद से प्रभावित थे और बालू व प्लास्टर का प्रयोग करके अपने चित्रों को शिल्पसदृश्य उभार देते थे। उनके यंत्रसदृश आकारों को १९३५ के पश्चात् अफ्रीकी आदिम कला व वन्य जातियों के रीतिरिवाजों के प्रभाव से जैविक व अतियथार्थवादी रूप प्राप्त हुआ। वर्नर चमकीले रंग की हलकी परत पर रेखांकित आकारों व जैविक रूपों को विरोधी या काले रंग में अंकित करते हैं। विलेल्म नाइ भिन्न चमकीले रंगों के गोलाकारों से संगीत रचना के समान विशुद्ध रंगरचना करते हैं। फ्रित्स विंटर हलकी पृष्ठभूमि पर आकर्षक रंगसंगति के, अस्पष्ट रूप से ज्यामितीय आकारों से काव्यमय रचना करते हैं। युल्युस विस्सीर एक अन्य ख्यातनाम जर्मन वस्तुनिरपेक्ष चित्रकार हैं जो छोटे आकार के कागज पर जल-रंगों में चित्रण करते हैं जिस पर चीनी स्याही शैली व अक्षरकला का स्पष्ट प्रभाव है।

इटालीयन नव चित्रकार:—१९४७ में इटाली में 'नव कला अग्रमंडल'[24] नाम से एक कलाकारों का संगठन हुआ जिसमें वस्तुनिरपेक्षवादी एवं यथार्थवादी कलाकार सम्मिलित थे। यह संगठन एक वर्ष से अधिक काल तक जीवित नहीं रहा व १९५२ में 'अष्ट इतालवी चित्रकार'[25] नाम से आठ वस्तुनिरपेक्षवादी इटालियन

चित्रकारों के मंडल की प्रस्थापना हुई जिनमें आफ्रो, मोरेनी, सांतोमासो, विरोली, कार्पोरा, मोर्लोत्ति, टुर्काटो व वेडोवा थे। उनकी कला को कलासमीक्षक लायोनेलो वेंटुरी ने 'वस्तुनिरपेक्ष-प्रत्यक्ष-कला'[26] नाम से संबोधित किया।

आफ्रो (ज. १९१२) हलकी बुनावट के चित्रक्षेत्र पर सौम्य किन्तु प्रसन्न रंगों के आकारों को अंकित कर उनको तार के समान वक्रगति अविचलित सजीव रेखाओं से संबद्ध करते हैं। विरोली (१९०६-१९५९) के विशुद्ध चमकीले रंगों से निर्मित चित्रों में केवल रंगों का आकर्षण नहीं है; उनके चित्रांतर्गत आकारों व रंग-संगति में प्रत्यक्ष दृश्य का जीवित्व है। वे अक्सर अग्निकांड जैसे प्रत्यक्ष दृश्यों से प्रेरणा लेकर चित्रण करते थे। सान्तामासो के चित्रों के सौम्य रंगांकन व बुनावट की झिलमिल में नैसर्गिक प्रकाश का तेज है व उनके वस्तुनिरपेक्ष आकारों में जैविक चैतन्य है। काल्पनिक होते हुए उनके चित्रों में निसर्ग-दृश्य की सजीवता व आकर्षण हैं।

उपरिनिर्दिष्ट इटालियन कलाकारों के अतिरिक्त ल्युसिओ फोन्टाना, ग्विसेप कापोग्रोसी व आल्बर्टो बुर्री विशेष ख्यातनाम हुए एवं उनका समकालीन कला पर काफी प्रभाव पड़ा। फोन्टाना का जन्म १८९९ में आर्जेन्टिना में हुआ। उन्होंने इटाली में कला की शिक्षा प्राप्त की। १९४७ में उन्होंने 'अवकाशवाद'[27] नाम से कलात्मक आंदोलन शुरू किया; उनके विचार से परम्परागत आकार-कल्पना को त्याग कर अवकाश व समय के एकरूपत्व पर आधारित कला का विकास करना चाहिये। पट पर छेद या दरार काटकर उन्होंने पट के अवकाशीय रूप को निराला अर्थ प्रदान किया। सच्छिद्र चित्रक्षेत्र पर लेई, रंगों की मोटी परत व गोंद लगाकर उस पर कांच के टुकड़ों, गोलियों व कपड़ों को चिपका कर उन्होंने कलाकृतियां बनायीं। कापोग्रोसी (ज. १९००) ने यथार्थवादी, अभिव्यंजनावादी, वस्तुनिरपेक्ष आदि भिन्न प्रयोग करके १९४९ के करीब वैयक्तिक शैली का विकास किया जिसमें गूढाक्षर-सदृश[28] सुस्पष्ट आकारों का प्रयोग व अवकाश का स्पष्ट विभाजन होता है; उनके चित्रों का दर्शन पुरातत्वीय उत्खनन के सदृश होता है। आल्बर्टो बुर्री (ज. १९१५) का व्यवसाय वैद्यकी था व युद्धबंदी होकर अमेरिका आने के बाद उन्होंने चित्रण शुरू किया। बोरियों के टुकड़ों को सीकर उन्होंने एक नयी अंकनपद्धति का आविष्कार किया; बीच-बीच लाल, नीले आदि चटकीले रंगों के कपड़े के छोटे टुकड़ों को सीकर वे घृणा या भय का भाव पैदा करते। प्लास्टिक लकड़ी या लोहे की चादर को बीच-बीच स्टोव से जला कर वे विकृति, सड़न व विनाश के भाव का निर्माण करते।

स्पेन के नवचित्रकार:—फ्रेंच 'अनियंत्रित कला' या अमेरिकी 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद' के समान योरप के अन्य विकसित देशों में भी विभिन्न नव आंदोलनों ने जन्म लिया। १९४९ में स्पेन के बार्सिलोना शहर में एक नव कलाकारों का मंडल[29] प्रस्थापित हुआ जिनमें आन्टोनी टापीज सबसे अधिक सृजनशील थे। उन्होंने तीन

साल तक पत्रिका का प्रकाशन किया और सर्वसाधारण रूप से मायरो व क्ली से प्रेरणा लेकर वस्तुनिरपेक्ष अतियथार्थवादी कृतियां वनायीं। उस मंडल में चित्रकार मोडेस्ट क्विजार्ट व कवि सार्लो शामिल थे। १९५७ में माड्रिड में 'चरण'[30] नाम से अन्य नवकलाकारों के मंडल की प्रस्थापना हुई जिसमें सोरा, फैंटो कानोगर व मिलारेज शामिल थे।

आन्टोनी टापीज (ज. १९२३) 'पदार्थ चित्रण' के प्रमुख अन्वेषकों में से हैं। वालू, प्लास्टर, मिट्टी, वार्निश वगैरह पदार्थों के प्रयोग से उन्होंने पुरानी दीवारों के मनोवैज्ञानिक प्रभावों का निर्माण किया। १९६० के वाद उन्होंने खुरदरी दीवार जैसी पृष्ठभूमि पर कंकर, लोहे की पत्ती, कील, कपड़ा आदि वस्तुओं को लगा कर ऊपर से रंगों को छिड़क कर रहस्य व भय के भावों का निर्माण किया। सौरा (ज. १९३०) के चित्रांतर्गत आकारों में अधिकतर अन्याय, निर्दयता व हत्या के भाव प्रतीत होते हैं; वे जल्द तूलिका-संचालन, रंगों के वहाव व घृणाजनक रंगसंगति का प्रयोग करते हैं। फैंटो (ज. १९२९) निस्तेज समतल क्षेत्र पर विशेष रूप से गहरे रंगों व वालू के प्रयोग से मध्यवर्ती आकारों को वनाते हैं जो निद्रित ज्वालामुखी के मुख के समान भयानक दिखायी देते हैं।

कोब्रा मंडल:—[31] १९४८ में हालैंड के आम्स्टरडाम शहर में कारेल आप्पेल, कोर्नेय व जॉर्ज कॉन्स्टन्ट ने प्रयोगवादी कलाकारों के मंडल को प्रस्थापित किया जो मोंद्रियां व डि स्टाइल के नियमवद्ध रचनाकारी के विरोध में मुक्त अंकनक्रिया द्वारा चित्रण करना चाहते। समान उद्देश्य से प्रेरित कलाकार-मंडल कोपेनहागेन व ब्रुसेल्स में कार्यशील थे। तीनों मंडलों को मिला कर 'कोब्रा' नाम से एक मध्यवर्ती मंडल प्रस्थापित हुआ जिसमें डॅनिश कलाकार आसगर योर्न व वेल्जियन कलाकार पियर आलेचिन्स्की शामिल थे। मंडल के अधिकतर कलाकार वालचित्र कला, लोककला, आदिम कला या प्रागैतिहासिक कला में प्राप्त सरलीकृत वास्तव आकृतियों का प्रयोग करते किंतु मुक्त तूलिका संचालन व अभिव्यक्तिपूर्ण आकार सव का समान साधन थे; इस विचार से उनकी कला फ्रेंच कलाकार दुवुफे व फोत्रिए की कला से समानता रखती है यद्यपि उनकी कला फ्रेंच कलाकारों की कला से अधिक प्रक्षोभकारी, गतिपूर्ण व चमकीली है। कोब्रा कलाकारों में भी आलेचिन्स्की व कोर्नेय की कला आप्पेल व योर्न की कला से अधिक संयमपूर्ण व रंगसंगति में सौम्य है। आप्पेल ने अपनी प्रक्षुब्ध रंगांकनशैली में कई व्यक्तिचित्र, दृश्यचित्र व मानवचित्र वनाये। अस्पष्ट मानवाकृतियों का अंतर्भाव होते हुए योर्न की कला में रंगांकन के अनियंत्रित गतित्व, व स्वयंचालित क्रिया पर एप्पेल से भी अधिक वल दिया गया है जिससे उनकी कलाकृतियों में अभिव्यंजनावादी तीव्रता के साथ वस्तुनिरपेक्षत्व की अधिक विकसित अवस्था दृष्टिगोचर होती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् वहुसंख्य कलाकार वस्तुनिरपेक्षत्व की दिशा में अग्रसर हुए किंतु कुछ ऐसे अल्पसंख्य नवकलाकार भी थे जिन्होंने यथार्थ रूप को नहीं

त्यागा वल्कि उसको वैयक्तिक अनुभूति के अनुसार रूपांतरित कर के जीवन का आंतरिक दर्शन कराया। इन कलाकारों में ब्रिटिश कलाकार फ्रान्सिस वेकन व फ्रेंच कलाकार वाल्त्यु विशेष प्रसिद्ध हुए। फ्रान्सिस वेकन (ज. १९१०) को संसार में सब जगह संहार, हत्या व सड़न का दर्शन हुआ और कहीं भी धार्मिक, पवित्र या महान् का चिन्ह नजर नहीं आया; पोप जैसे धर्मप्रमुखों को उन्होंने दीन असहाय अवस्था में देखा और एक क्रूर हत्याकांड की कहानी के रूप में वायवल की कुछ घटनाओं को उन्होंने चित्रित किया। वधस्थल की ओर ले जाये जानेवाले जानवरों व मानवों में उनको कोई अंतर दिखायी नहीं दिया। वेलास्के का अनुकरण कर के उन्होंने पोप के व्यक्तिचित्र बनाये व उनको लाशों से युक्त घृणित वातावरण के अंतर्गत पर्दों के पीछे आक्रोश करते हुए चित्रित किया। १९६० से उन्होंने मानवाकृतियों को खालहीन, सड़नग्रस्त अवस्था में विकृत रूप में चित्रित करना शुरू किया व उनके चित्रों में संसार को ऐसे भयानक कसाईखाने का रूप प्राप्त हुआ जिसमें मानव का निर्दयता से वध किया जाता है। वान गो के आत्मचित्रों की अपने ढंग से अनुकृतियां कर के उन्होंने वान गो को पूर्ण रूप से पागल अवस्था में चित्रित किया है। आंतरिक आतंक को व्यक्त करने के लिये वाल्त्यु (ज. १९०८) ने वेकन के समान मानव को भयानक वातावरण या अनैसर्गिक रूप में चित्रित नहीं किया। वे मानवों व वस्तुओं को नैसर्गिकतावादी ढंग से किंतु ठोस रूप व अनोखी मुद्राओं में अंकित कर के उनको अकल्पित अद्भुत जीवन से संचारित करते हैं। उनके द्वारा चित्रित आकृतियां इहलोक के मानव या वस्तु की अपेक्षा इधर-उधर यंत्रवत् कार्यव्यस्त, देहधारी अतृप्त आत्माएं जैसी प्रतीत होती हैं। उनके चित्रों के वातावरण में मंत्रित सृष्टि का आभास है।

प्रत्यक्ष कला :—[32] थिओ वान डोसबर्ग ने १९३० में मोंद्रियां, 'डि स्टाइल' व स्वयं की ज्यामितीय कला को अन्य वस्तुनिरपेक्ष कला से भिन्न निर्दिष्ट करते हुए 'प्रत्यक्ष कला' नाम से संवोधित किया। इस विचार ने १९४७ में 'सलों द रेआलिते नुवेल'[33] प्रदर्शनी से फिर जोर पकड़ा; पैरिस में १९४४ में प्रस्थापित 'देनी रने' कलावीथिका प्रत्यक्ष कला का अंतर्राष्ट्रीय महत्व का केन्द्र बन गयी। १९३३ में योसेफ आल्वेर्स फ्रान्स छोड़ कर अमेरिका जा बसे व वहां उनके प्रभाव से ज्यामितीय वस्तुनिरपेक्षवाद का प्रसार हुआ। वे 'अमेरिकी वस्तुनिरपेक्ष कलाकार'[34] मंडल एवं पैरिस के 'वस्तुनिरपेक्ष–निर्माण'[35] मंडल' की प्रदर्शनियों में नियमित रूप से भाग लेते। आल्वेर्स ने भिन्न अमेरिकी विद्यालयों व कलासंस्थाओं में अध्यापन कर के एवं व्याख्यान दे के वौहौस के कलासंवंधी विचारों से कलाकारों को परिचित कराया जिसका अमेरिकी कला, वास्तुशास्त्र व निर्माणकला पर काफी प्रभाव पड़ा। रंगीन कांचचित्र की निर्माणशाला में आरंभ में नौसिखिया के रूप में किये कार्य के फलस्वरूप आल्वेर्स में ज्यामितीय आकारों के अंतर्गत प्रकाश व रंग के होने वाले भिन्न परिणामों में रुचि पैदा हुई थी व उस दिशा में प्रयोग कर के उन्होने पुस्तक[36]

लिखी। १९५० के बाद उन्होंने 'वर्ग के प्रति श्रद्धांजलि'[37] शीर्षक मे चित्रमालिका बनायी जिसमें एक बड़े वर्ग के अन्दर दूसरे छोटे वर्ग को इस प्रकार अंकित कर भिन्न रंगीन वर्गों की सुसंवादी रचनाएं की हैं। उनके शब्दों में उनके सामने प्रमुख समस्या थी "द्विमितियुक्त क्षेत्रों पर निर्मित रेखाओं, समतल आकारों व रंगों द्वारा होने वाले त्रिमिति के आभासात्मक परिणाम के सत्य रूप का ज्ञान"।

आल्बेर्स के अतिरिक्त स्विस कलाकार माक्स बिल ने प्रत्यक्ष कला के प्रसार में व उसको निश्चित रूप देने में महत्वपूर्ण कार्य किया; वे अपनी कला को 'प्रत्यक्ष कला' नाम से संबोधित करते थे। 'एब्स्ट्रेक्ट' कला से 'प्रत्यक्ष' कला--कॉंक्रीट आर्ट--शब्द का प्रयोग ज्यामितीय रचना के संदर्भ में अधिक समुचित है क्योंकि--जैसे हम पहले देख चुके हैं--'एब्स्ट्रेक्ट' शब्द का अर्थ होता हैं सारतत्व निकालना व उससे अपरोक्ष रूप से वास्तवरूप की ओर संकेत होता हैं; अतः मोंद्रियां की कला व ज्यामितीय रचनावादी वस्तुनिरपेक्ष कला को 'प्रत्यक्ष कला' नाम से निर्दिष्ट किया जाता है। माक्स बिल ने 'प्रत्यक्ष कला' की निम्न परिभाषा की थी "प्रत्यक्ष चित्रकला में वास्तवरूप को पूर्णरूप से हटाया है व उसमें केवल चित्रकला के मूलतत्वों का विचार किया जाता है जो हैं चित्रित क्षेत्र के आकार व रंग। यह परिभाषा मोंद्रियां व वान डोसबर्ग की परिभाषाओं से मिलतीजुलती है और इस प्रकार विश्वयुद्ध के उत्तर-कालीन 'प्रत्यक्ष कला' उनके एवं आर्प, गाबो व पेवनर के कलासबंधी विचारों का अग्रसरण है। विश्वयुद्ध के उत्तरकालीन रचनावाद, रंगक्षेत्रीय चित्रण, क्रमबद्ध चित्रण व नेत्रीय कला के उद्गम 'द स्टाइल' व प्रत्यक्ष कला ही हैं।

माक्स बिल (ज. १९०८) का कलाध्ययन बौहौस में हुआ जब आल्बेर्स वहां अध्यापन करते थे; वे बौहौस के एक बुद्धिमान छात्र व उसके चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला व औद्योगिक कला संबंधी विचारों के प्रभावी प्रचारक व लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए। पैरिस के 'वस्तुनिरपेक्ष निर्माण' मंडल से उनका संपर्क था और उन्होंने स्विट्जर्लेंड में प्रत्यक्ष कला की प्रदर्शनियां आयोजित कीं। कलात्मक रचनाओं के गणितीय रूप की ओर वे विशेष आकृष्ट थे। आइन्स्टिन के सापेक्षता-सिद्धांत, पर-माणु-विज्ञान, तथा अध्यात्मविद्या व नीति के आधारों से वे कला को अंतिम सुनिर्णीत रूप देना चाहते। आल्बेर्स के समान माक्स बिल रंगों के पारस्परिक संबंधों का आविष्कार करना चाहते। उन्हीं गुणों से वे कला को शाश्वत रूप देना चाहते जो संपूर्ण सत्य के आवश्यक तत्व होते हैं व जो हैं—सरलता, स्पष्टता व सुसंवादित्व। माक्स बिल के समान स्विस कलाकार रिचर्ड पौल लोस (ज. १९०२) ने गणित को अपनी कला का आधार बनाया। वे छोटे वर्ग या आयत को इकाई के रूप में चुन कर पूरे चित्र-क्षेत्र को उस आकार के कई टुकडों या पट्टियों में विभाजित करते व उनको पांच तक भिन्न रंगों की अनुपाती छटाओं में चित्रित करते जिससे पूरा चित्रक्षेत्र रंगों की जगमगाहट से प्रदीप्त दिखायी देता। उनकी कला समकालीन क्रमबद्ध कला व नेत्रीय

कला का प्रारंभिक रूप है।

इटालियन कलाकारों में से आल्वर्टो मॅग्नेली (ज. १८८८) की कला प्रत्यक्ष कला के काफी समरूप है। १९३० तक उनकी कला में वस्तुसदृश आकारों का दर्शन होता है और १९३५ के पश्चात् ही उनकी कला को प्रत्यक्ष कला या वस्तुनिरपेक्ष कला का रूप प्राप्त हुआ। उनके ज्यामितीय आकारों को नियमित रूप नहीं होता एवं उनमें अक्सर पारस्परिक संवाद व तनाव प्रतीत होते हैं। रंगांकन के समतलत्व व रंगों की अनैसर्गिकता ने उनके चित्रों के वस्तुनिरपेक्षत्व को अधिक सामर्थ्यवान् बनाया किंतु भिन्न आकारों व रंगों के आपसी संघर्ष से कभी उनमें अवियथार्थवादी अभिव्यक्ति प्रकट हो जाती है।

पैरिस निवासी कलाकारों में से ज्यां देवान, स्वीडिश कलाकार वार्टलिग, व डॅनिश कलाकार रिशर्ड मोर्टेनसेन ने प्रत्यक्ष कला के क्षेत्र में सृजनकार्य किया व वे ख्यातनाम हुए। प्रसिद्ध कलाकार विक्टर वासारेली की प्रारंभिक कृतियां प्रत्यक्ष कला के उदाहरण हैं यद्यपि नेत्रीय कला में किये महत्वपूर्ण कार्य के कारण वे विशेष प्रसिद्ध हैं। मार्टेनसेन सरल स्पष्ट वाह्य रेखा से अंकित विशाल आकारों को सीधे-सादे समतल रंगों में चित्रित करते हैं एवं उनकी कला में कठोर-किनार चित्रण के पूर्वचिन्ह प्रतीत होते हैं। देवान ने प्रथम घनवादी चित्रण किया किंतु वाद में मोंद्रियां के समान वास्तव रूप को हटाकर चित्रण शुरू किया जिसमें वस्तुनिरपेक्ष आकारों की विविधता व चमकीली रंगसंगति उनकी वैयक्तिक विशेषताएं हैं। निर्मल त्रिकोणों को अक्सर काली वाह्य रेखा से वद्ध कर के वार्टलिग चित्रण करते हैं।

१९६० के करीव, जव कला वस्तुनिरपेक्ष रूप अपना कर वास्तवसृष्टि से पृथक् हो गयी थी, एक भिन्न मार्ग से वास्तवसृष्टि ने कला में प्रत्यक्ष प्रवेश किया व कलाक्षेत्र में संकलन, घटनाएं, पॉप कला व नवयथार्थवाद वगैरह कलाप्रकारों ने जन्म लिया जिनमें प्रत्यक्ष वस्तु का कलाकृति में प्रयोग किया जाने लगा।

संकलन[३८]:–१९६१ में न्यूयार्क के 'आधुनिक कला संग्रहालय' द्वारा 'संकलन कला' की प्रदर्शनी आयोजित की गयी। प्रदर्शनी में घनवादी कोलाज कृतियों व मोंताज कृतियों से लेकर दादावादी 'वनी वनायी' कृतियां व वातावरण निर्माण[३९] तक सब का अंतर्भाव था। संचालक विल्यम सिज ने 'संकलन कला' की परिभाषा की थी " यहां चित्रण या रेखांकन से संकलन को अधिक महत्व हैं व संकलन मुख्य रूप से ऐसी नैसर्गिक या मानवनिर्मित वस्तुओं का है जो कलाकृति के रूप में नहीं वनायी गयीं"।

संकलन कला का उद्गम घनवाद की कोलाज कृतियों में दृष्टिगोचर होता है और उसको मार्सेल द्युशां की वनीवनायी कला से विकास की निश्चित दिशा प्राप्त हुई। अमरीकी कलाकार जोसेफ कॉर्नेल (ज. १९०३) पेटियां संकलन कला के परिणामकारण उदाहरण हैं। साहित्य व यथार्थवाद के अध्ययन के वाद उन्होंने

१९३५ के करीब पेटियों का निर्माण शुरु किया। एक तरफ से खुली पेटी में वस्तुओं, छायाचित्रों व नकशों की उद्देश्यपूर्ण रचना करते व व्यक्तिगत स्वप्निल दुनियां का अनियथार्थवादी दर्शन कराते। उनके चित्रों में साहचर्यभाव से जागृत की गयीं बचपन, परिवार व साहित्य विषयक गतकाल की स्मृतियों की व्याकुलता है। लुइ नेवल्सन (ज. १९००) की कुछ कृतियां 'संकलन कला' के अन्तर्गत आती हैं। उन्होंने लकड़ी की दीवारों में असंख्य खाने बना के उनमें पुराने फर्नीचर के काटे हुए टुकड़ों या पुरानी वस्तुओं को रंग कर रख दिया व प्राचीन विनष्ट वैभव की स्मृतियों को जागृत किया। वास्तुकार फ्रेडरिक कीसलर के वातावरण निर्माण में संकलन कला का प्रयोग है। अपनी आयु के अंतिम काल में की गयी प्रदर्शनी में धार्मिक भवन के अन्तर्गत शिल्पाकृतियों, भित्तिचित्रों व फर्नीचर-सदृश वस्तुओं की रचना कर उन्होंने धर्म का अमंगल व निंद्य दर्शन कराया। संकलन कला को अधिक ठोस व विशाल रूप देकर आधुनिक मूर्तिकारों ने 'रद्दी मूर्तिकला'[40] की निर्मिति की। वैसे संकलन कला के जन्म के साथ ही चित्रकला व मूर्तिकला के बीच का अन्तर अस्पष्ट हो गया।

घटनाएं[41]:—विभिन्न कलाओं के बीच एवं कला व जीवन के बीच समन्वय साधने के उद्देश्य में पॉप कला, वातावरणनिर्माण व घटनानिर्माण का जन्म हुआ। वातावरण निर्माण व घटनानिर्माण के एक प्रमुख प्रवर्त्तक हैं ॲलेन काप्रो (ज. १९२७)। उनके प्रथम घटनानिर्माण की प्रदर्शनी १९५९ में रुबेन वीथिका में हुई। दादा सभासम्मेलनों में आयोजित कार्यक्रम घटनाओं का प्रारम्भिक रूप हो सकते हैं यद्यपि ये कार्यक्रम निरुद्देश्य हुआ करते थे एवं घटनाओं का संचालन किसी विशिष्ट अनुभूति के विचार से किया जाता है। घटनाओं को कोलाजकृतियों का क्रियात्मक रूप भी माना गया है। काप्रो ने घटना की निम्न परिभाषा की है "भिन्न स्थानों व समयों पर अभिनीत या ज्ञात प्रसंगों का संकलन। इसके वातावरण को प्रत्यक्ष से लिया जा सकता है या उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। नाटक के विपरीत, घटना कहीं भी करायी जा सकती है—बाजार में, रास्ते में या मित्र के रसोई-घर में। घटना योजना के अनुसार करायी जाती है किंतु उसका पूर्वाभ्यास नहीं होता। यह कला है जो जीवनसदृश प्रतीत होती है"। उन्होंने वातावरण की परिभाषा की है 'दृश्य जिसमें प्रवेश किया जाता है"[42]। 'घटनाओं' का समकालीन अमेरिकी लोकजीवन पर काफी प्रभाव पड़ा है। टेलिविजन, विज्ञापन, औद्योगिक कला व महिलाओं के फैशन में 'घटनाओं' का माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता है।

पॉप कला[43]:—पॉप कला का उदय इंग्लैंड में हुआ। १९५२ से लंदन की 'समकालीन कला संस्था[44]' में वास्तुकार ॲलिसन व स्मिथ्सन, मूर्तिकार पाओलोत्सि, चित्रकार हॅमिल्टन व अन्य कलाकारों के सम्मेलन आरंभ हुए; ये कलाकार

स्वयं को 'स्वतंत्र मंडल'[45] कहलाते। उनकी चर्चाएं यंत्र, विज्ञापन, चलचित्रपट, अवकाश संचार आदि अविष्कारों से परिवर्तित जनजीवन व संस्कृति एवं उसके स्वाभाविक परिणाम पर केन्द्रित हुआ करतीं। उनके सम्मेलनों में 'नव पशुत्ववाद[46]' शब्द का प्रयोग प्रचलित हो गया। इसी विषय पर हॅमिल्टन ने' आज के घर क्यों भिन्न हैं, क्यों आकर्षक हैं?"[47] शीर्षक की पॉप कोलाजकृति १९५६ में बनायी। १९५६ में व्हाइटचॅपेल कला वीथिका में 'कल की दुनियां'[48] शीर्षक से एक प्रदर्शनी आयोजित की गयी। हॅमिल्टन (ज. १९२२) मार्शेल द्यु्शां के शिष्य थे। मार्सेल द्यु्शां के कलासंबंधी विचारों का पॉप कला पर प्रभाव था। इसके अतिरिक्त कुर्ट श्विटर्स की अंकनपद्धतियों व विचारों का पॉप कला में काफी अनुसरण था।

हॅमिल्टन व अन्य पॉप कलाकारों का समकालीन संस्कृति व समूहमाध्यमों[49] के प्रति विरोधी या व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण नहीं था। वे कहना चाहते थे "आज का हमारा जीवन, देखो, ऐसा है"। जॉर्ज ग्रोत्स के समान, समाज व्यवस्था की निंदा करने के विचार से उन्होंने कलानिर्मिति नहीं की। उन्होंने नवयथार्थवादी दृष्टिकोण अपना कर समकालीन समाज का अन्तर्भेदी, परिणामकारक दर्शन कराया। यांत्रिक जीवन में बद्ध मानव के मन में सद्यः स्थिति का विचार करने व उसका सही अर्थ समझने की इच्छा शायद ही कभी होती होगी, न उसके लिये उसके पास कोई समय है: उसके लिये पॉप जैसी कलाकृतियों की निर्मिति व उनके सम्मुख दर्शक के रूप में अनुभूति आवश्यक हैं। इंग्लिश पॉप कलाकारों में से पीटर ब्लेक एक प्रसिद्ध कलाकार हैं; उनके चित्रण के विषय अक्सर बीटल्स व कपड़ों की दूकानों के मोडेल्स होते है व उनको वे गांभीर्य के साथ यथार्थ सम्मिलित कर के सहानुभूति-पूर्ण या खिन्नतादर्शक कृतियां बनाते। अन्य इंग्लिश पॉप कलाकारों में से पीटर फिलिप जोटिल्सन, व किटाज विशेष प्रसिद्ध है। पीटर फिलिप्स के विषय अधिकतर यंत्र-संबंधी होते हैं। अमेरिकी कलाकार आर. बी. किटाज ने इंग्लेंड को कार्यक्षेत्र के रूप में पंसद किया; वे अकसर दैनंदिन प्रसंग, आधुनिक ऐतिहासिक घटना या प्रसिद्ध व्यक्तियों को विषय के रूप में चुन कर, सरल समतल रंगांकन के साथ, साहचर्यभाव व कल्पना के द्वारा अद्भुत दर्शन की कृतियां बनाते हैं।

१९६० के बाद अमेरिका में पॉप कला ने जोर पकड़ा। उद्योग व वाणिज्य के सर्वव्यापी प्रभाव से दूषित वातावरण में रहने के कारण अमेरिकी कलाकार स्वाभाविकतया पॉप कला की ओर आकृष्ट हुए। चलचित्रपट, विज्ञापन, हास्यचित्र मालिका, फॅशन के अमर्याद प्रसार से प्रभावित वातावरण में अमेरिकी कलाकारों को पॉप कला को पोषक विषय सुलभता से प्राप्त होते जिसके कारण अमेरिकी पॉप कला योरपीय पॉप कला से अधिक स्वाभाविक व परिणामकारक प्रतीत होती है। अमेरिकी पॉप कला का आरंभ प्रचलित वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। मार्सेल द्यु्शां कई वर्षों से अमेरिका में रह रहे थे व

उनका लमेरिकी नवकलाकारों पर काफी प्रभाव था। लेजे द्वारा किया अमेरिकी जीवन का यांत्रिक घनवादी चित्रण उनके सामने आदर्श के रूप में था।

रिशर्ड लिन्ड्नर १९४१ में जर्मनी छोड़ कर अमेरिका आये। उनकी पॉप कलाकृतियां लेजे के यांत्रिक घनवाद व श्लेमर की कला के सदृश हैं व उनमें अक्सर फॅशनेवल महिलाओं को आत्मप्रदर्शन करते हुए चित्रित किया गया है। लॅरी रिवर्स एक प्रतिभासंपन्न पॉप कलाकार हैं व उनकी कला भिन्न प्रभावों से विकसित हुई है। उनकी आरंभिक कृतियों में विवस्त्र स्त्रियों का चित्रण है। १९५५ के बाद उनकी कला में घनवादी विभाजन व समयावच्छेद के तत्वों ने प्रवेश किया। उनकी कुछ कृतियों में प्राचीन महान चित्रकारों के चित्रों की प्रतिकृतियों का अंतर्भाव है तो कुछ कृतियों पर अमेरिका के इतिहास के अध्ययन का प्रभाव है। अमेरिकी पॉप कलाकारों में से रॉबर्ट रोशेनवर्ग (ज. १९२५) सब से अधिक प्रसिद्ध हैं व उन्होंने पॉप कला के विकास में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने प्रथम पॅरिस की अकादेमी ज्युलिआं में व बाद में नार्थ कॅरोलिना के ब्लॅक मौन्टन कालेज में योसेफ आल्वेर्स व जास्पर जान्स के साथ अध्ययन किया। आल्वेर्स का वे कुशल अध्यापक के रूप में आदर करते किंतु उनको संगीतकार जॉन केज ने सब से अधिक आकृष्ट किया। वैयक्तिक रूप से जान केज का पॉप कला, घटनाएं, वातावरण एवं संगीत, नृत्य, नाटक व मिश्र-माध्यम-निर्माण[50] के विकास पर काफी प्रभाव पड़ा। १९५५ में प्रदर्शित कृतियों में उन्होंने पट पर छायाचित्रों व समाचारपत्रों के टुकड़ों को चिपकाया था व एक कृति में उन्होंने रजाई व तकिये पर रंगों को छिड़का कर समाविष्ट किया था। १९५९ में वनायी उनकी कृति 'मोनोग्राम[51]' में उन्होंने बुरादे से भरे हुए बकरे को मोटर के टायर के बीच एक कोलाजकृति पर खड़ा कर के चमत्कृति दर्शक प्रभाव का निर्माण किया। रोशेनवर्ग के मिलेजुले चित्रण में प्रायः साहचर्यभाव व प्रतीकात्मकता द्वारा किसी समकालीन प्रकरण की ओर संकेत होता है। रोशेनवर्ग के समय में कार्य करके प्रसिद्ध होनेवाले पॉप कलाकारों में जास्पर जान्स (ज. १९३०) हैं। उनकी व्यक्तिगत प्रतिभाएं भिन्न दर्शन की किंतु आश्चर्यजनक व क्रांतिकारी होती हैं। शुरू की कलाकृतियों में उन्होंने अमेरिकी राष्ट्रध्वज, नकशा व लक्ष्यफलक की मिट्टी की रंगीन प्रतिकृतियां एवं चार्टस्, ग्राफ्स को समाविष्ट किया है। अन्य पॉप कलाकारों की अपेक्षा जेस्पर जॉन्स कृति के कलात्मक गुणों को विषय से अधिक महत्व देते हैं। अन्य अमेरिकी पॉप कलाकारों में से ॲन्डी वारहोल, रॉय लिश्टेनस्टैन, टॉम वेसेलमान, जेम्स रोसेन्क्विस्ट, क्लास ओल्डेनवुर्ग, रावर्ट इन्डियाना व जिम डाइन विशेप प्रसिद्ध हैं। जिम डाइन दैनंदिन जीवन की वस्तुओं को रंगीन पृष्ठभूमि पर रख के कभी उनकी छायाओं या प्रतिकृतियों को चित्रित करते हैं व उसके साथ अक्षरों में उनके नाम भी लिखते हैं जैसे कि वे आज के विमनस्क मानव को उसकी हर समय काम में ली जानेवाली, नित्योपयोग से अतिपरिचित—अतः उपेक्षित—वस्तुओं

के सौंदर्यात्मक अस्तित्व का स्मरण दिलाना चाहते हैं। कभी ऐसी ही वस्तुओं के संकलन से वे भयानकता का निर्माण भी करते हैं। रॉय लिश्टेनस्टैन, पॉप प्रभाव के निर्माण के लिये, हास्यचित्रमालिका[52] व विज्ञापन को अधिक पसंद करते हैं व उनको तैलरंगों या एक्रिलिक रंगों में समतल रंगांकन व कठोर बाह्य रेखा द्वारा चित्रित करके अमेरिकी नागरिक की वर्तमान अभिरुचियों व आदर्शों की ओर दर्शक का ध्यान आकृष्ट करके उसको सोचने को उद्यत करते हैं "क्या, सच, मैं ऐसा हूं? क्या, सच, हम ऐसे हैं?" इसमें न कोई निंदाभाव है, न कोई समर्थन। अपना रूप देखने के लिये भी तो दर्पण का सहारा लेना पड़ता है। 'संकलन कला' एवं 'रद्दी मूर्तिकला' में पुरानी, निरुपयुक्त परित्यक्त वस्तुओं को काम में लेकर कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है जबकि पॉप कला में नयी व प्रचलित वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। वेसेलमान प्रत्यक्ष घड़ियां, टेलीविजन, वातानुकूलक व छायाचित्रों का प्रयोग करते हैं। अमेरिकी लैंगिक जीवन की ओर संकेत करते हुए वे विवस्त्र स्त्री चित्रण से युक्त कृतियां भी बनाते हैं। विशाल विज्ञापनचित्र बनाने के प्रत्यक्ष अनुभव का रोसेन्क्विस्ट की कृतियों पर प्रभाव है व उनमें सुस्थापन व संयोजन के तत्वों का पूर्ण विचार करके समकालीन जीवन का द्वन्द्वात्मक—पारिवारिक जीवन की सुखमयता व विनाशक परमाणुयुद्ध का भय—दर्शन है। ॲन्डी :वारहोल ने भोजन वस्तुओं के डिब्बों व पेय पदार्थों की शीशियों जैसी सुपरिचित वस्तुओं से पॉप कृतियां बनायीं। उसके पश्चात्, १९६५ के करीब उन्होंने दुर्घटनाओं व मृत्यु से संबंधित विषयों को चुना व कुछ समय में ही कामुकतादर्शक चलच्चित्रपटों का—गुप्त चलच्चित्रपटों का—निर्माण शुरू किया। क्लास ओल्डेनबर्ग ने 'रेगन थिएटर[53]' नाम से नाटकगृह खोल के वहां पॉप दर्शन के वातावरणों का निर्माण शुरू किया। १९६१ में उन्होंने केक, सेंडविच जैसे खाने के पदार्थों की प्लास्टर की रंगीन प्रतिकृतियां बना के दूकान में रख दीं व उनपर अनापशनाप मूल्य लिख दिया। बाद में उन्होंने कपडों को सीकर टाइपराइटर, वॉशवेसिन, यंत्र व ढौलक जैसी ठोस व कठिन वस्तुओं की मुलायम व लचीली प्रतिकृतियां बना के उपहास का निर्माण किया। ओल्डेनबर्ग की कला पॉप कला से भी दादावाद से अधिक मिलती-जुलती है। रॉबर्ट इन्डियाना ईट, लव, डाय[54] जैसे शब्दों को शामिल कर के आधुनिक जीवन की प्रत्यक्ष रूप से आलोचना करते हैं। पॉप कला के लिये चित्रकला व मूर्तिकला में कोई विशेष अंतर नहीं है व जॉर्ज सेगल ने ऐसी त्रिमितियुक्त कृतियां बनायी हैं जो एडवर्ड हॉप्पर के चित्रों के समान, प्रभाव में रहस्यमय व अकेलापन लिये हुए हैं। पूर्णरूप से त्रिमितियुक्त कृतियां निर्माण करनेवालों में ल्यूकास समारस, अर्नेस्ट ट्रोवा व एडवर्ड कीनहोल्त्स प्रसिद्ध हैं।

नवयथार्थवाद[55]:—कलासमीक्षक पियर रेस्तानि व कलाकार इवे क्लेॲं ने १९६० में नवयथार्थवाद को प्रस्थापित किया। मिलन में नवयथार्थवाद का घोषणा-

पत्र प्रकाशित हुआ व पैरिस में रेस्तानि की कलावीथिका में उसकी प्रथम प्रदर्शनी हुई जिसके विज्ञापन में लिखा था 'दादा से ४० अंश ऊपर'[56] जिससे नवयथार्थवाद का दादावाद से संबंध स्पष्ट होता है। रेस्तानि ने विवरण में स्पष्ट किया था "सामाजिक सत्यता को प्रकाशित करना नवयथार्थवाद का उद्देश्य है व उसमें वाद-विवाद व चर्चा को स्थान नहीं है"। प्रदर्शनी में क्लेग्रँ, रेस्से, सेसार वाल्डाच्चिनी, ज्याँ तिन्वेलि, फ्रान्स्वाद्युफ्रें वगैरे कलाकारों ने भाग लिया था। नवयथार्थवादी कलाकारों में इव्हे क्लेग्रॅ (१९२८–१९६२) सब से उत्साही व क्रांतिकारी विचारों के कलाकार थे। १९५६ में उन्होंने हवा में तैरते हुए नीले गोलों का प्रदर्शन किया। १९५८ में उन्होंने लोकों को 'शून्यता के प्रदर्शन[57]' के नाम पर खाली दीवारों को देखने के लिये निमंत्रित किया व प्रवेशशुल्क शुद्ध सोने के रूप में देना अनिवार्य किया। १९६० में उन्होंने विवस्त्र स्त्री मोडेल्स के शरीरों पर रंग लगाया व उनको पट पर लुडका कर छापचित्र बनाये। अन्य नवयथार्थवादी कलाकार आर्मा ने प्लास्टिक से बनाये विवस्त्र स्त्रीशरीर की मूर्ति पर रंगों की ट्यूब्स् को चिपका कर रंगों को बहाया व चित्रकला व विवस्त्र स्त्रीशरीर के पुराने संबंध के प्रति तिरस्कार व्यक्त किया। कलाकार क्रिस्टो वाइसिकल स्त्री की आकृति या अन्य वस्तु को जरासा हिस्सा छोड के कपड़े में लपेट कर प्रदर्शित करते हैं जिससे गूढभाव का निर्माण होता है; उनकी कला को एम्पॅक्वेटाज[58] कहते हैं। फ्रान्स्वा द्युफ्रें, रेमॉन्ड हेन्स व जाक द वियग्ले ने देकोलाज[59] पद्धति का प्रयोग शुरू किया जिसमें एक के ऊपर दूसरा इसी तरह चिपकाए हुए इश्तिहार चित्रों को फाड़ कर अद्भुत प्रभाव का निर्माण किया जाता है व यह पद्धति कोलाजपद्धति के ठीक विपरीत है। इस पद्धति की कल्पना शायद उनको पैरिस के दीवारों से विज्ञापन चित्रों को अधूरे फाड़ कर उतारने के बाद दिखायी देनेवाले दीवार के दृश्य से मिली होगी। ओयविंड फाल्स्ट्रॉम ने वातावरण चित्रण द्वारा समकालीन सौंदर्यात्मक व राजनैतिक मूल्यों की निंदा की है। स्पेनिश कलाकार जेनोवेस ने छायाचित्रों की मालिका द्वारा युद्ध व सामूहिक संहार का भयानक चित्रण किया जिसमें भागते हुए, वध के लिये ले जाये जानेवाले, एवं बंदूकों के सामने खड़े किये हुए आदमियों के चित्र हैं।

इस प्रकार बिना किसी आलोचना के केवल सामाजिक स्थिति को प्रकाशित करने के उद्देश्य से जन्मे नवयथार्थवाद, पॉप कला, घटनाएं आदि नवीनतम कला प्रकारों की उत्तरावस्था में मतप्रतिपादन का दृष्टिकोण बढ़ कर कलाकृति को आशय प्राप्त हुआ। इन कलाप्रकारों में मूर्तिकला व चित्रकला ऐसा कोई अंतर नहीं किया जा सकता। इनके अतिरिक्त वस्तुनिरपेक्षत्व की दिशा में मूर्तिकला का काफी विकास हुआ व मिलिमल कला, चंचलकृतियां, प्रकाशित कला वगैरह कलाप्रकारों का विकास हुआ जिनका समुचित अध्ययन मूर्तिकला के इतिहास में ही किया जा सकता है।

नेत्रीयकला[60]:—प्रागैतिहासिक कला का जब गुफाओं में जन्म हुआ तभी से कलाकारों को नेत्रीय भ्रम[61] के बारे में ज्ञान था व प्राचीन कलाकृतियों के निर्माण में दर्शक को भुलाने के उद्देश्य से उसका उपयोग किया हुआ देखने को मिलता है। पॉम्पिआ के चित्रों एवं रोमन पच्चीकारी कला में रेखात्मक दूरदृश्य-लघुता का प्रयोग त्रिमितिदर्शन की अपेक्षा नेत्रीय, एवं आलंकारिक प्रभाव बढ़ाने के विचार से किया गया। पुनर्जागरण काल में जब दूरदृश्यलघुता का शास्त्रीय पद्धति से विकास हुआ तब उच्चेलो, फ्रान्सिस्का, क्रिवेलि व अन्य कलाकारों ने गहराई का आभास दिखाने के उद्देश्य से उसका उपयोग किया। प्रकाशविज्ञान व दृष्टिविज्ञान के नये आविष्कारों ने प्रभाववादी व नवप्रभाववादी कलाकारों को प्रकाश व रंग के नेत्रपट पर होनेवाले परिणाम का कलानिर्मिति में विचार करने को प्रोत्साहित किया, उन्होंने शेवरोल, हेमहोल्त्स व रुड के वैज्ञानिक सिद्धांतों का अध्ययन किया व नेत्रपटलीय परिणाम को कलासृजन के—विशेप रूप से रचनात्मक—मूलाधार तत्वों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। नेत्रीय भ्रम का परिणाम नहीं होते हुए भी मोंद्रियां, डोसबर्ग व डि स्टाइल के चित्रों में नेत्रपटलीय परिणाम को रचनातत्व के विचार से महत्व है। मोहोली नागी व आल्बेर्स ने बौहौस के पाठ्यक्रम में दृष्टिविज्ञान संबंधी प्रयोगों का अंतर्भाव किया। कलाकार आल्बेर्स की चित्रमालिका 'वर्ग के प्रति श्रद्धांजलि' में भिन्न रंगों के नेत्रपटलीय परिणाम के अनुपात का विचार महत्वपूर्ण है। आल्बेर्स की यह चित्रमालिका 'नेत्रीय कला' के प्रवर्त्तकों को काफी प्रेरणादायक रही।

नेत्रीय कला का आरम्भ विक्टर वासारेली (ज. १९०८) में हुआ। उनके शुरू के चित्र 'प्रत्यक्ष कला' के अंतर्गत आ सकते हैं। १९४० के बाद उन्होंने दृष्टिज्ञान का अध्ययन करके 'नेत्रीय कला' के सृजन को आरंभ किया। मोंद्रियां व कान्डिन्स्की के सिद्धांतों व कलाकृतियों के अध्ययन के साथ उन्होंने रंगविज्ञान, नेत्रपटलीय परिणाम व नेत्रीय भ्रम का गहरा अध्ययन किया। वासारेली कला से कलाकार के व्यक्तित्व को हटा कर उसको गणितीय रूप देना चाहते। उनके विचार से 'चित्रकला' व 'मूर्तिकला' ये शब्द सत्यतादर्शक नहीं हैं अतः उनके स्थान पर द्विमिति, त्रिमिति या बहुमिति युक्त लचीली कला शब्द का प्रयोग होना चाहिये। आधुनिक तकनीकी समाज में कला को सामाजिक की अपेक्षा अन्य कोई महत्व नहीं है। ज्यामितीय वस्तु-निरपेक्ष आकारों को गणितीय आधार से रचनात्मक रूप देने का कार्य कलाकार की कल्पना से होता है जिसके प्रत्यक्षीकरण में सुनिर्णीत रंगों का समतल प्रयोग किया जाता है व जिसका भित्तिचित्र, पुस्तक, कपड़ा, कांच, टेलीविजन, फिल्म या अन्य सामाजिक महत्व के कार्य में उपयोग हो सकता है। वे कलाकृति को सामूहिक दर्शन के महत्व की निर्मिति मानते हैं।

ज्यामितीय आकार के छोटे-छोटे टुकड़ों को पच्चीकारी के समान पूरे चित्रक्षेत्र पर अंकित करके वे कुछ केन्द्रों पर उन टुकड़ो के आकारों में ऐसे ज्यामितीय परिव-

र्तन करते कि हिलावट पैदा होकर दर्शक की नजर वहां टिकना मुश्किल हो जाता। कागज पर ज्यामितीय डिजाइन बनाकर उसकी उलटी प्रकृति—काले रंग की जगह सफेद व सफेद की जगह काला रंग लगाके—वे प्लास्टिक के पारदर्शक कागज पर उतारते; प्लास्टिक का कागज पहले कागज पर चलाने से आंखों के सामने झिलमिलाहट पैदा होती। इस प्रकार वासारेली व नेत्रीय कलाकार नेत्रदीपक प्रभावों का निर्माण करने के हेतु नवनवीन तरीके अपनाते। काले व सफेद रंग का विरोध नेत्रीय कला के निर्माण में बहुत ही परिणामकारक रहता अतः वासारेली की अधिकतर कृतियां इन दोनों रंगों में बनायी गयी हैं व इस रंगयुग्म को वे बी एन[62] कहते। उन्होंने दो या अधिक पारदर्शक कांचों या शीशों का उपयोग करके भी नेत्रीय कला का निर्माण किया। १९६० के बाद उन्होंने अन्य रंगों का प्रयोग करके कुछ नेत्रीय कलाकृतियां बनायीं। इंग्लिश कलाकार ब्रिजेट रायली ने वक्रगति पट्टियों जैसे आकारों से चित्रण किया जिससे उनके चित्रों में देदीप्यमान ऊर्ध्वगति ज्वालाओं के प्रभाव का निर्माण हुआ। अमेरिकन कलाकार रिशर्ड आनुस्कीवित्स दूरदृश्यलघुता व मिलती हुई सरल रेखाओं के प्रयोग से, प्रकाश केन्द्रों से चारों ओर बिखरती हुई प्रकाश-किरणों के सदृश प्रभाव का निर्माण करते हैं। कलाकार आगाम अपनी कलाकृति को लहरों के समान शिल्पकृतीय उभार देकर बनाते हैं जिससे उसके सामने चलने वाले दर्शक को हिलते हुए आकार नजर आते हैं। कुछ कलाकार उसी डिजाइन को दुबारा कागज पर छाप के हिलावट का निर्माण करते हैं।

रंग–क्षेत्रीय चित्रण[63]:—१९५९ से समकालीन अमरीकी कला की कई प्रदर्शनियां हुईं जिनसे स्पष्ट हुआ कि वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद के अतिरिक्त अन्य दिशाओं में भी अमेरिकी कलाकार प्रयोगशील थे। १९५९ व १९६० में फ्रेंच एण्ड कंपनी कलावीथिका ने समकालीन कला की प्रदर्शनियों के हेतु समीक्षक क्लेमेंट ग्रीनबर्ग के संचालन में बार्नेट न्यूमन, डेविड स्मिथ, मोरिस लुई, केनेथ नोलेंड, ज्यूल्स ओलित्स्की व ज्यूवास फ्रीडेल की एकल प्रदर्शनियां कीं। १९६१ में गुगेनहीम संग्रहालय ने 'अमेरिकन वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावादी कलाकार व प्रतिमाकार'[64] नाम से न्यूयार्क शैली के कलाकारों की प्रदर्शनी की। इस प्रदर्शनी में पोलाक, डि कूनिंग, हाफमन, ब्रुक्स वगैरह आवेशपूर्ण रंगांकन पर निर्भर कलाकारों के अतिरिक्त जिन कलाकारों के वस्तुनिरपेक्ष चित्रण में नियंत्रण व आकारनिर्मिति का विचार था ऐसे कलाकारों को 'वस्तुनिरपेक्ष प्रतिमाकार'[65] नाम दिया गया। इन कलाकारों में न्यूमन, रोश्को, मदरवेल, गोटलिएब व स्टिल थे। इनके अतिरिक्त योसेफ आल्बेर्स केवल वर्गाकारों से चित्रण करते; एल्स्वर्थ केली व लिओं पोलक स्मिथ स्पष्ट रेखांकित ज्यामितीय चित्रण करते। इनमें भी आपस में भिन्नताएं थीं; कुछ कलाकार कठोर रेखा से आकारों को ज्यामितीय रूप देते, कुछ कलाकार आकारों को स्पष्ट किंतु अभिव्यंजनावादी या अतियथार्थवादी रूप देते तो कुछ कलाकार पॉप कला या नेत्रीय कला की दिशा में

अग्रसर थे। अतः इन भिन्न दिशाओं में गतिमान कलाप्रवाहों को नाम दिया गया 'वस्तुनिरपेक्ष प्रतिमावाद' जिसको 'उत्तर चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्ष' या 'रंगक्षेत्रीय चित्रण' भी कहा गया है व उसके अंतर्गत प्रवाहों को 'क्रमवद्ध चित्रण' 'मिनिमल चित्रण'[66] वगैरह नाम दिये गये हैं।

१९६१ में गुगेनहीम संग्रहालय में हुई प्रदर्शनी में नवीन कलाकारों में ज्यूबास फ्रीडेल, हेलेन फ्रेन्केनथेलर, आल हेल्ड, नेस्सोस डेनिस, राल्फ हम्फ्रे, मोरिस लुई, केनेथ नोलेंड, लिओं पोल्क स्मिथ, फ्रांक स्टेल्ला, थिओडोर स्टॅमोस व जॅक यंगरमन थे। ये सब भिन्न दृष्टिकोणों के कलाकार थे। इनमें से स्टेल्ला, नोलेंड, आल हेल्ड व कुछ अन्य कलाकारों ने चित्रक्षेत्र को सरल स्पष्ट रेखा से विभाजित करके भिन्न हिस्सों को भिन्न रंगों में चित्रित किया था व उनके चित्रों में आकार व अवकाश या अग्रभूमि व पृष्ठभूमि ऐसे पृथक हिस्से दिखायी देने के बजाय संपूर्ण चित्रक्षेत्र दर्शक को एक साथ व समान रूप से आकर्षित करता था। इन कलाकारों को समीक्षक लॅन्गस्नर ज्यूल्स ने नाम दिया 'कठोर-किनार चित्रकार'[67]। ज्यामितीय रचनात्मक चित्रण व 'कठोर-किनार चित्रण'[68] में मुख्य दृश्य अंतर यह है कि ज्यामितीय रचनात्मक चित्रण में ज्यामितीय आकारों को अवकाश से पृथक् रूप दिया जाता है जबकि 'कठोर-किनार चित्रण' में अवकाश व आकार का पृथक् रूप से विचार करने के बजाय संपूर्ण चित्र-क्षेत्र का इकाई के रूप में विचार किया जाता है। १९६४ में क्लेमेंट ग्रीनबर्ग ने उत्तर-चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्षत्व' की चलप्रदर्शनी आयोजित की जो लास एंजेलिस, मिनोओपोलिस व टोरोंटो में दिखायी गयी। पोलाक, डि कुनिंग, हाफमन व क्लाइन की कला को ग्रीनबर्ग 'चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्षत्व'[69] मानते थे। १९६६ में लॉरेन्स ॲलोवे के दिग्दर्शन में न्यूयार्क के गुगेनहीम संग्रहालय ने 'क्रमवद्ध चित्रण' नाम से प्रदर्शनी आयोजित की जिसमें एलसवर्थ केली, केनेथ नोलेंड, लॅरी पुन्स, नेल विल्यम्स, पोल फीली वगैरह कलाकारों ने भाग लिया था। ॲलोवे ने उनमें से अधिकतर कला-कारों की उसी आकार या प्रतिमा को लेकर बार-बार चित्रण करते रहने की सम-कालीन प्रवृत्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया व इस प्रकार उसी प्रतिमा को भिन्न चित्रों में क्रमशः विकसित करने की पद्धति को 'क्रमवद्ध चित्रण'[70] नाम दिया। 'क्रमबद्ध चित्रण' पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार, लक्ष्य को निश्चित करके किया जाता है। इस प्रकार विचारपूर्वक किये गये वस्तुनिरपेक्ष चित्रण को आर्यविंग सॅंडलर ने 'ठंडी कला'[71] नाम दिया है।

सॅम फ्रान्सिस (ज. १९२३) रंगों को छिड़का कर एवं बहा कर चित्रण करते हैं अतः उनको समुचित रूप से 'वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावादी' चित्रकार मान सकते हैं किंतु उनकी समान-रूप आकारनिर्मिति के सातत्य को देख कर उनको 'उत्तर-चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्ष' चित्रकारों में सम्मिलित किया जाता है। सॅम फ्रान्सिस के समान हेलेन फ्रेन्केन्थेलर (ज. १९२८) की कला वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद व

रंग-क्षेत्रीय चित्रण के बीच की संक्रमणावस्था है। चार डंडों के बीच पट को झूले की तरह लटका कर वे उस पर पतले रंगों को झुलाती हैं जिससे मध्यवर्ती पारदर्शक आकार का पट पर निर्माण हो जाता है जो फैले हुए रंग के दाग समान दिखायी देता है। इसी प्रकार फैलाव–पद्धति[72] से चित्रण करनेवालों में कलाकार पौल जेन्किन्स (ज. १९२३) भी हैं। वे बड़े पट पर पतले रंगों को इतस्ततः फैलाते हैं व हलकी से लेकर गहरी छटाओं तक सबके प्रयोग से आकार को घनत्वरूप देते हैं। कलाकार मोरिस लुई (१९१२-१९६२) भी रंगांकन में तूलिका या किसी अन्य साधन का उपयोग नहीं करते; बिना ताने हुऐ पट पर वे बिलकुल द्रवरूप रंगों को अनेक परतों में बहाते हैं जिससे जाली के पर्दों के समान, सौम्य रंगों के आकर्षक पारदर्शक आवरणों का बहुरंगी परिणाम दृष्टिगोचर होता है। सॅम फ्रान्सिस, फ्रेंकेन्थेलर, जेन्किन्स व मोरिस लुई के रंगक्षेत्रीय चित्रण में कुछ समानताएं हैं—ज्यामितीयता का अभाव, कोमल आकार व रंगांकन में रंगों को बहाने या फैलाने की क्रिया का प्रयोग। एलसवर्थ केली, केनेथ नोलेंड व आल हेल्ड ऐसे रंगक्षेत्रीय चित्रकार हैं जो कठोर ज्यामितीय आकारों का प्रयोग करते हैं।

आकारित पट[73]:....१९५५ के पश्चात् भिन्न माध्यमों व कलाओं का संयुक्त प्रयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी; पॉप कला व नवयथार्थवाद में चित्रकला व मूर्ति-कला के बीच कोई अंतर नहीं रहा; घटनाओं व वातावरणों में हम चित्रकला, मूर्ति-कला, नृत्य, संगीत व नाटक को एक साथ कार्यान्वित देख पाते हैं। १९६० के बाद विकसित 'आकारित पट' कला प्रकार में हम चित्रकला व मूर्तिकला के समन्वित रूप के एक पहलू को देखते हैं।

ऐतिहासिक कलापरंपरा के अनुसार अक्सर आयताकार समतल पट का चित्रभूमि के रूप में प्रयोग किया जाता है यद्यपि वर्ग, अर्धवृत्त, वृत्त, त्रिभुज आदि जैसे आकार का प्रयोग भी कहीं—विशेषतया भित्तिचित्रों व वेदिकाचित्रों में देखने को मिलता है। बरोक व रॉकोको शैलियों के बाद चित्रक्षेत्र के आकार में परिवर्तन करने के प्रयोग में चित्रकारों ने रुचि नहीं ली।

आकारित पट पर चित्रण करनेवाले कलाकारों में से फ्रान्क स्टेल्ला (ज.-१९३६) प्रसिद्ध हैं। १९६४ में उन्होंने पट पर खांचे काट कर 'क्वापलेम्वा'[74] शीर्षक से समतल रंगों पर सरल सफेद रेखाओं से वस्तुनिरपेक्ष चित्रण किया। उसके पश्चात् U या L जैसे भिन्न आकारों के पट पर उन्होंने कठोर-किनार चित्रण किया। आकारित पट पर चित्रण करनेवालों में नेल विलयम्स, चार्लस हिन्मन, ल्युकिन व रिचर्ड स्मिथ ये कलाकार हैं। इंग्लिश कलाकार रिचर्ड स्मिथ ने पट को जगह जगह डिब्बों के समान उभार देकर त्रिमितियुक्त चित्रण किया, व मूर्तिकला व चित्रकला का मिलाप किया। अमेरिकन कलाकार चार्लस हिन्मन ने पट पर रंगीन पट्टों को अंकित कर के उसको मूर्ति के समान जमीन पर बिछा दिया व उसको शीर्षक दिया 'घटना'[74]।

गुगेनहीम संग्रहालय के क्युरेटर लॉरेन्स ॲलोवे ने इस प्रकार त्रिमितियुक्त पटों पर चित्रित कृतियों की प्रदर्शनी कर के उनका नामकरण किया 'आकारित पट'। जिस प्रकार उपरिनिर्दिष्ट चित्रकारों ने चित्रकला को मूर्तिकला के समान ठोस रूप दिया, ठीक उसके विपरीत, कुछ मूर्तिकारों ने मूर्तिकला में रंगीन वस्तुओं का प्रयोग शुरू किया एवं 'बहुरंगी मूर्तिकला'[76] का जन्म हुआ। बहुरंगी मूर्तिकारों में फिलिप किंग व विल्यम टकर प्रमुख हैं।

मनोवर्धक कला :—[77] मेस्केलिन, सिलोसिबिन व एलेस्डी[78] ऐसी औषधियां हैं जिनके सेवन से व्यक्ति सामान्य सचेतन अवस्था से उठ कर हर्षोत्फुल्ल मानसिक अवस्था को प्राप्त कर लेता है व उसके सामने ऐसी ऐंद्रिक अनुभूतियां खड़ी होती हैं जो स्वप्निल या नशीली अवस्था में प्राप्य अनुभूतियों से भिन्न व अलौकिक होती हैं। ऐसी औषधियों का सेवन कर के प्राप्त अवस्था में या ऐसी अवस्था की स्मृतियों से बनायी गयी कला को मनोवर्धक कला कहते हैं।

स्वप्निल या नशीली अवस्था में साहित्य या कलानिर्मिति करना कोई नयी बात नहीं है। ऐसी अवस्थाओं में रंगबिरंगी वातावरण, अद्भुत प्रकाश व अनोखे आकार दिखायी देते हैं, जड़ वस्तुओं को नया संकेत रूप प्राप्त होता है व एक नयी कल्पनासृष्टि जन्म लेकर मौलिक सृजन को सहायक होती है। इसी के समरूप दर्शन की कलाकृतियों की निर्मिति कभी मनोविकृतिजनित या भ्रमजनित अवस्था या बच्चे की अस्वस्थ मानसिक अवस्था में की गयी दिखायी देती है।

मनोवर्धक कला के विद्यमान प्रसार के प्रमुख कारण हैं मनोवर्धक औषधियों की सुलभता, हिप्पी जीवन के प्रति नवयुवकयुवतियों का बढ़ता आकर्षण, बढ़ती हुई अनुशासनहीनता, आत्मिक मूल्यों पर अश्रद्धा तथा सामूहिक मिश्र-माध्यम कार्यक्रमों के प्रति बढती हुई अभिरुचि। मनोवर्धक कलाकारों ने आर्नुवो शैली तथा क्ली, रेदों, बिअर्डस्ले व मोरो जैसे पूर्वगामी कलाकारों से प्रेरणा ली यद्यपि धार्मिक जीवन व आत्मिक आनंद पर अपार श्रद्धा इन पूर्वगामी कलाकारों की प्रमुख कलात्मक प्रेरणा थी। चमकीले नेत्रदीपक रंगों का प्रयोग, प्रखर कृत्रिम प्रकाश का स्थानीकरण, आलंकारिकता, विरोधी रंगों का प्रयोग, वक्राकार गतिपूर्ण रेखाएं व अवकाश की संदेहपूर्ण भ्रामक स्थिति मनोवर्धक कला की विशेषताएं हैं।

मनोवर्धक चित्रकला से भी मनोवर्धक सामूहिक मिश्र-माध्यम कार्यक्रम अधिक लोकप्रिय हुए हैं जिनमें रंगबिरंगी विद्युत-प्रकाश, प्रक्षेपक यंत्र, संगीत वगैरे भिन्न माध्यमों द्वारा निर्मित अलौकिक अद्भुत सृष्टि में प्रवेश पाकर दर्शक स्वयं मनोवर्धक कलासृजन के आनंद को अनुभव कर लेता है।

उपरिनिर्दिष्ट समकालीन कलाप्रकारों के अतिरिक्त अक्षरवाद, वस्तुनिरपेक्ष अक्षरकला, वस्तुनिरपेक्ष चित्रलिपिकला, टाइपराइटर चित्रण[79] वगैरह कलाप्रकारों में केवल अक्षरों के प्रयोग से वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियों का निर्माण होने लगा

जिनमें शाब्दिक अर्थ को कोई महत्व नहीं है। वैसे रचना के अंग के रूप में अक्षरों का कलाकृति में समावेश ब्राक, पिकासो, श्विटर्स, क्ली वगैरह चित्रकार पहले ही कर चुके थे। अब कॉम्प्युटर कला में यंत्र द्वारा कलाकृतियों का निर्माण शुरू करके कलाकारों ने मानव व यंत्र के अन्तर को ही समाप्त कर दिया है।

भारत व आधुनिक कला

अजंता, जैन व राजपूत शैलियों में दृष्टिगोचर भारतीय चित्रकला के मौलिक रूप में मुगलकाल से विदेशी तत्वों का प्रवेश आरंभ हुआ और कुछ सयम तक मुगल शैली के अंतर्गत पर्शियन व राजपूत शैलियों के समन्वित रूप में विकसित होने के वाद उसके पतन के चिन्ह स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगे। जहांगीर के शासनकाल में मुगलकला का काफी प्रसार हुआ किंतु उसके राजपूत शैली से प्राप्त भारतीय रूप--यानी गतिपूर्ण लयवद्ध रेखा, रूढ़िवद्ध आकारों का आलंकारिक सौंदर्य, चमकीली रंगसंगति आदि सौंदर्यतत्वों का दर्शन--एवं पर्शियन शैली से प्राप्त आलंकारित्व व कल्पनासौंदर्य के गुणों का ह्रास हो रहा था। इसके प्रमुख कारण थे राजा व दरवारी लोकों की व्यक्तिचित्रण के प्रति वढ़ती हुई अभिरुचि व दरवार में योरपीय व्यापारियों, यात्रियां व वकीलों का आगमन। योरपीय लोक मुगल बादशाहों की कलाभिरुचि को देख कर उनको अपने देश की कलाकृतियां भेंट करते। जहांगीर विदेशी वकीलों, धर्मप्रचारकों, व्यापारियों व यात्रियों से विदेशी कलाकृतियां प्राप्त करके उनके साथ कलासंवंधी चर्चा भी करते एवं अपने दरवारी कलाकारों से विदेशी कृतियों की प्रतिकृतियां वनवाते। परिणाम स्वरूप योरपीय कला के नैसर्गिकतावादी रूप का भारतीय कला पर प्रभाव पड़ा व उसका मूल सौंदर्य नष्ट होकर उसको भ्रष्ट रूप प्राप्त हुआ। औरंगजेव के शासनकाल में भ्रष्टता के अतिरिक्त कला के स्तर में भी गिरावट आ गयी जिसका कारण थे शासकीय विरोध व उपेक्षा। राजाश्रय के अभाव से कलाकार भिन्न स्थानों पर जा वसे व किसी तरह अपना उदरनिर्वाह करने लगे। एक दूसरे से विशेष संपर्क न रहने से भिन्न स्थानों के कलाकारों की शैलियों में स्पष्ट रूप से अंतर पड़ा व स्थान के अनुसार उन शैलियों को दिल्ली कलम, लखनौ कलम, पटना कलम, दक्षिणी कलम वगैरह नाम प्राप्त हुए। ये शैलियां अविकसित भ्रष्ट रूप में उन्नीसवीं शताव्दी के मध्य तक कार्य करती रहीं। इन भ्रष्ट शैलियों में मुगल शैली के जो कुछ सौंदर्यतत्व शेष थे उनका भी वाद में कलाकारों के अपवाद मात्र परिवारों में चलती हुई कलापरंपरा को छोड़ कहीं नाम नहीं रहा और व्रिटिश शासनकाल में भारतीय कला मृतप्राय हुई।

१८वीं शताव्दी के मध्य के करीव भारत में आये हुए विदेशी लोक--जिनमें

अधिकतर ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी, कर्मचारी व व्यापारी हुआ करते—कुशल भारतीय चित्रकारों से पाश्चात्य नैसर्गिकतावादी शैली के व्यक्तिचित्र, निजी परिवार के सामूहिक व्यक्तिचित्र व स्थानीय दृश्यचित्र बनवाने लगे जिससे भारतीय कलाकारों को कुछ आश्रय मिला एवं उसके साथ ही उनकी कला पर १८वीं शताब्दी की इंग्लिश कलाविद्यालयीन शैली के नैसर्गिकतावादी तत्वों का प्रभुत्व बढ़ता गया।

१८३४ में मेकाले ने भारतीय लोकों को आंग्ल शिक्षा प्रणाली के अनुसार प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से अपने शिक्षासंबंधी विचारों को घोषित किया जिसका भारतीय शिक्षा व सामाजिक विचारधारा पर काफी प्रभाव पड़ा और भारतीय लोक कला, संस्कृति तथा सामाजिक व वैयक्तिक आचरण में ब्रिटिशों का अंधानुकरण करने लगे। विदेशी प्रणाली में शिक्षित लोक भारतीय विचारधारा, संस्कृति, रीतिरिवाजों आदि जीवन के सभी अंगोपांगों की निंदा करना प्रतिष्ठा का लक्षण मानने लगे। कला के क्षेत्र में विक्टोरियन नैसर्गिकतावादी कलाकृतियों को श्रेष्ठ माना गया व प्राचीन भारतीय कला की निंदा होने लगी। रस्किन व स्टोक्वेलर जैसे विदेशी कला समीक्षकों ने भारतीय कला का उपहास किया व यहां के शिष्ट समाज ने अंधानुकरण करके उसको दोहराया।

१९वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय विद्यार्थियों को योरपीय कला में प्रशिक्षित करने के विचार से मद्रास (१८५०), कलकत्ता (१८५४), बंबई (१८५७) व लाहौर (१८५७) में कलाविद्यालय खोले गये व वहां नैसर्गिकतावादी पद्धति से चित्रण करनेवाले इंग्लिश कलाकारों की निर्देशक के रूप में नियुक्ति की गयी। इन विद्यालयों में दी जानेवाली शिक्षा एवं वहां के वातावरण, सामग्री व पद्धति सब कुछ इंग्लिश कलाविद्यालयों पर आधारित था। प्रथम ग्रीक मूर्तियों से व बाद में आदमियों को सामने बिठा कर हूबहू चित्रण करने का अभ्यास कराया जाता था। इसके अतिरिक्त वहां हस्तकला व ग्रामीण उद्योगकला का अभ्यास कराया जाता था जिनमें बनी हुई वस्तुओं की विदेशों में काफी मांग थी।

ऐसे वातावरण में त्रावणकोर के प्रतिभासंपन्न चित्रकार राजा रविवर्मा ने थिओडोर जेन्सन नाम के इंग्लिश चित्रकार से तैलरंगचित्रणपद्धति की शिक्षा प्राप्त करके भारतीय जनजीवन, व्यक्तियों व पौराणिक विषयों के चित्र बनाये। ये चित्र नैसर्गिकतावादी-शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। राजा रविवर्मा के पौराणिक विषयों के चित्र अत्यंत लोकप्रिय हुए और अक्सर प्रत्येक सुशिक्षित व्यक्ति के घर की दीवारों को उनकी प्रतिकृतियों से सजाया गया। विदेशी चित्रण पद्धति पर सफल प्रभुत्व प्राप्त करनेवाले राजा रविवर्मा सर्वप्रथम भारतीय चित्रकार थे। किंतु यह पाश्चात्य चित्रणपद्धति भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति व जीवनदर्शन के अनुकूल नहीं थी अतः राजा रविवर्मा के चित्र अभिव्यक्ति के विचार से अविशुद्ध प्रतीत होते हैं।

पुनरुत्थान शैली :

१९ वीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय कलाक्षेत्र में विशेष चेतना या प्रगति के चिन्ह नहीं दिखायी दिये। १८९६ में ई. बी. हेवेल मद्रास कलाविद्यालय से बदल कर कलकत्ता कलाविद्यालय के निर्देशक के रूप में नियुक्त किये गये। उन्होंने अवनीन्द्रनाथ टैगोर के सहयोग से एक नवीन विचारधारा को भारतीय कलाक्षेत्र में जन्म दिया। उन दोनों के विचारों से भारतीय कलाविद्यार्थियों को चाहिये कि वे पाश्चात्य कला का अंधानुकरण करने के बजाय अपनी परंपरागत प्राचीन शैलियों—अजंता, राजपूत, मुगल——को आदर्श मानकर उनका अध्ययन करके समकालीन विषयों का चित्रण करें जिससे उनकी कला में स्वाभाविकता के साथ भारतीय जीवनदर्शन की सत्य अनुभूति प्रकट हो सकती है। इस कार्य के लिये विदेशी कलापद्धति अनुरूप नहीं हो सकती। उनकी विचारधारा के प्रसार में लेखक पर्सी ब्राउन व कुमारस्वामी ने पुस्तकों और लेखों द्वारा भारतीय कला के प्राचीन आदर्शों के पुनरुज्जीवन की आवश्यकता पर बल देकर सहायता की।

हेवेल ने स्पष्ट किया कि भारतीय कला ने सदैव सर्वव्यापी व शाश्वत तत्वों को अपने सम्मुख आदर्श के रूप में रखा जबकि पाश्चात्य योरपीय कला का रूप भौतिक एवं नश्वर सौंदर्य से प्रभावित है। भारतीय कला में कलाकार को दार्शनिक एवं कवि का स्थान दिया है। इस विचार से भारतीय कला मध्ययुगीन गोथिक कला के निकटवर्ती है यद्यपि भारतीय कला की आत्मिकता व कल्पना सौंदर्य उसमें नहीं हैं एवं वह अधिक भावनाप्रेरित है। अपने विचारों को प्रत्यक्षित करने के उद्देश्य से हेवेल ने कलकत्ता कलाविद्यालय की अध्यापनपद्धति में परिवर्तन किया; प्राचीन ग्रीक एवं योरपीय कलाकारों की मूर्तियों की नकल करना बंद करवा दिया। 'भारतीय मूर्तिकला व चित्रकला'[1] नाम की पुस्तक द्वारा उन्होंने अपने विचारों को प्रकाशित किया।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर का आरंभिक कलाध्ययन हेवेल के आगमन से पहले कलकत्ता कलाविद्यालय में योरपीय पद्धति के अनुसार हुआ था और उससे वे असंतुष्ट थे। हेवेल के विचारों से प्रेरणा पाकर उन्होंने मुगल शैली का अनुसरण शुरू किया। छायाप्रकाश के स्थान पर उन्होंने बारीक बाह्यरेखा से अंकित आकारों को समतल रंगों में चित्रित किया। किन्तु प्राचीन भारतीय कलाशैलियों के पुनरुत्थान के विचार से प्रेरित उनकी शैली उन प्राचीन शैलियों के सौंदर्यात्मिक गुणों को प्राप्त नहीं कर सकी जिसके कई कारण थे। अवनीन्द्रनाथ की आरंभिक कलाविद्यालयीन शिक्षा प्राचीन रूढिबद्ध कलानिर्मिति के अनुकूल नहीं थी। इसके लिये परम्परागत नियमों का गहरा अध्ययन, प्रत्यक्ष पालन तथा सुदीर्घ साधना आवश्यक थे जिनके अभाव से उनकी रेखा में न वह सामर्थ्य था न उनके रंगों में वह मोहक सौंदर्य जो

प्राचीन भारतीय शैलियों की प्रमुख विशेषताएं थीं। किन्तु सबसे प्रमुख कारण था भावनात्मक तादात्म्य का अभाव। प्रत्येक महान् कलाशैली अपने समय के अनुरूप होती है; उस समय उसको कार्यात्मक अस्तित्व प्राप्त होता है जिसको किसी भिन्न वातावरण में या भिन्न समय में पुनरुज्जीवित करना असंभव है। अतः प्राचीन कला-शैली का यथार्थ पुनरुत्थान एक असफल प्रयत्न मात्र हो जाता है। यद्यपि कला के विकास में प्राचीन कलाशैली का प्रेरणास्रोत के रूप में निर्विवाद स्थान होता है। ब्रिटिश शासनकाल में विदेशी विचारधाराओं से प्रभावित सामाजिक वातावरण में किसी की भारतीय इतिहास व धर्म के प्रति वह श्रद्धा नहीं रही थी न कलाकारों में वह साधनावृत्ति थी। अतः अवनीन्द्रनाथ की कला परंपरावादी कर्मकाण्ड मात्र हो गयी इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। समकालीन परिस्थिति के प्रति सचेत रह कर ही सजीव कलानिर्मिति के लिये आवश्यक भावनात्मक तादात्म्य प्राप्त किया जा सकता है। १९०२ में जापानी कलाकार हिसिदा व ताइकान कलकत्ता आये थे जिसके परि-णामस्वरूप अवनीन्द्रनाथ ने जापानी ढंग की कोमल रंगसंगति को अपनाया व आकारों को सूचक रूप में अस्पष्ट अंकित करना शुरू किया जिससे भारतीय व जापानी शैलियों से संमिश्रित शैली विकसित हुई जो 'बंगाल शैली' या 'पुनरुत्थान शैली' नाम से प्रसिद्ध हुई।

१९०५ में हेवेल के स्थान पर अवनीन्द्रनाथ की कलकत्ता कलाविद्यालय के आचार्य पद पर नियुक्ति हुई और वहां के विद्यार्थी उनकी शैली का अनुसरण करने लगे। बाद में उनके शिष्यों में से नंदलाल बोस, देवीप्रसादराय चौधरी, समरेन्द्रनाथ गुप्त व असित कुमार हालदर क्रमशः शान्तिनिकेतन, मद्रास, लाहौर व लखनऊ के कलाविद्यालयों के आचार्यपद पर नियुक्त हुए एवं 'पुनरुत्थान शैली' का काफी प्रसार हुआ।

आधुनिक कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण कलात्मक गुण—आकारों का सरली-करण, रंगों के स्वाभाविक निर्मल सौंदर्य की रक्षा, प्रतीकात्मकता, प्रभावपूर्ण संयोजन इत्यादि—प्राचीन भारतीय कलाशैलियों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं किंतु इन गुणों का 'पुनरुत्थान शैली' में अभाव था। अतः उसको हम एक संक्रमणावस्था मात्र मान सकते हैं। डॉ. कुमारस्वामी ने 'पुनरुत्थान शैली' की बलहीन रेखा व निस्तेज रंगों पर असंतोष व्यक्त किया; ओ. सी. गांगुली ने निष्कर्ष निकाला कि पुनरुत्थान शैली का जन्म बौद्धिक विचार व स्वदेशप्रेम में हुआ एवं उसमें स्वाभाविकता व सहजज्ञान नहीं है। किंतु पुनरुत्थान शैली के प्रणेताओं ने आधुनिक भारतीय कला के विकास के मार्गदर्शन में जो एक मूलगामी विचार प्रस्तुत किया उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अपने देश के विचारदर्शन व संस्कृति से पृथक् रहकर कलाकार सच्ची कलानिर्मिति नहीं कर सकता।

समाज के आधुनिकीकरण के साथ कला के रूप में तदनुकूल परिवर्तन होना

अपरिहार्य है। आधुनिक गतिशील कार्यव्यस्त मानव जीवन में दृश्य कलाओं को प्रभावी बनाने के लिये सरलीकृत बड़े आकारों, स्पष्ट रेखाओं व चमकीले रंगों का प्रयोग आवश्यक है एवं मानव के विचारों व कार्यक्षेत्र के विश्वव्यापी रूप को देखते हुए सृजन के मूलतत्वों पर आधारित सर्वगामी कलानिर्मिति के प्रयत्न स्वाभाविक हैं। किंतु हम यह भूल नहीं सकते कि विदेशी प्रभावों—जो केवल कला के बाह्य रूप से सीमित रहते हैं—के बावजूद कला को अभिव्यक्ति का सामर्थ्य उसकी परंपरा से प्राप्त होता है। हरेक देश की अपनी कलापरंपरा होती है जो उस देश के निवासियों के जीवनदर्शन व आशा-आकांक्षाओं का दर्पण होती है; जिसमें देख कर कलाकार अपने अमर रूप से परिचित होता है और उसकी कला को सृजनात्मक दिशा प्राप्त होती है। इस विचार से बीसवीं शताब्दी के भारतीय कलाकारों को आवश्यक था कि वे प्राचीन भारतीय कलापरंपरा का अध्ययन करके अपने आंतरिक जीवन को रूपांकनपद्धति के नये आयामों द्वारा साकार करें। हेवेल व अवनींद्रनाथ ने भारतीय कलापरंपरा के अध्ययन पर बल देकर उचित दिशा में कदम उठाया किन्तु भारतीय जीवनदर्शन को प्रभावी रूप में साकार करने का श्रेय रवीन्द्रनाथ टैगोर को है और उनको हम सर्वप्रथम भारतीय आधुनिक कलाकार मान सकते हैं। १९२३ व १९२८ के बीच के काल में अवनीन्द्रनाथ के बंधु गगनेन्द्रनाथ ने घनवाद का अनुसरण करके कुछ कृतियां बनायीं किन्तु उनमें आकारों के घनवादी विभाजन के स्थान पर परीकथाओं के समान काल्पनिक दृश्यों को विषय प्रतिपादन की दृष्टि से परिणामकारक बनाने के हेतु मुख्य आकारों को यथार्थ रूप में चित्रित करके पोषक ज्यामितीय आकारों से परिवेष्टित किया है; अतः उनकी कला को 'घनवादी' की अपेक्षा रोमांचक यथार्थवादी कहना उचित है। गगनेन्द्रनाथ की कला भी इस विचार का समर्थन करती है कि रूपांकन के नये प्रयोग करने से पहले देश के सामाजिक जीवनदर्शन के प्रति एकनिष्ठ होकर निश्चित करना होगा कि उसकी अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त रूपांकनपद्धति क्या हो सकती है। किन्तु इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये केवल बुद्धिवादी आगम अपर्याप्त है। परंपरा के अध्ययन व आचरण से ही आवश्यक सृजनशील संवेदनाक्षमता व सौंदर्यदृष्टि प्राप्त की जा सकती हैं। संक्षेप में, भारतीय कलाकार को आवश्यक है कि वे परंपरा के अटूट अंग रह कर आधुनिक बनें व यह सब विकास के स्वाभाविक सिद्धांतों के अनुसार हो।

रवीन्द्रनाथ टैगोर (१८६१–१९४१) ने विद्यार्थी दशा में कोई कला की शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। असाधारण काव्यमय वृत्ति व सूक्ष्मग्राहक संवेदनाक्षमता उनकी कला के साधन थे। वे अज्ञात, आंतरिक सृजनशक्ति का विश्वास करते व उसको सैद्धांतिक चर्चा का विषय बनाने के विरोधी थे। उनका मत था कि कला का कार्यात्मकता की दृष्टि से विचार नहीं करना चाहिये; कला पूर्ण रूप से सहजज्ञान व अंतर्मन की क्रियाओं पर निर्भर है। लय कला की आत्मा है एवं उसकी

सहजसिद्ध अनुभूति कलानिर्मिति की प्राथमिक आवश्यकता है।

आयु के ६७ वें साल तक रवींद्रनाथ ने चित्रकला की दिशा में कोई विशेष प्रयत्न नहीं किये। वे विश्वविख्यात कवि बन चुके थे और उनकी प्रतिभा काव्य-निर्मिति में व्यस्त थी। कविता लिखते समय शब्दों या पंक्तियों को रेखाओं से मिटाने पर जो अकल्पित आकारनिर्मिति होती उसकी ओर ध्यान आकृष्ट होकर वे कुछ दृश्य कल्पना में मग्न होते। १९२८ में इन स्वयंसिद्ध आकारों से वे इतने मोहित हुए कि जिस कविता को लिखते समय वे आकार प्रकट हुए थे उसका अस्तित्व ही वे भूल गये एवं आकारों के विकास पर उन्होंने ध्यान केन्द्रित किया और रवींद्रनाथ की अतियथार्थवादी कला का आरंभ हुआ। भारतीय कला के इतिहास में यह अभूतपूर्व प्रयोग था। आरंभ में उन्होंने केवल फौंटन-पेन से रेखांकन करके कलानिर्मिति की जिसमें काल्पनिक पक्षी या जानवर जैसे आकार प्रचुर मात्रा में हैं। १९२९ के करीब उन्होंने कपड़े के टुकडे या उंगलियों को स्याही में डुबो कर दो या तीन छटाओं में चित्रण शुरू किया एवं उसके पश्चात् सीमित रंगों का उपयोग भी शुरू किया।

आरंभ में रवींद्रनाथ ने अपने चित्रण को फुरसत में किया खेलक्रीडन मात्र समझा किंतु शीघ्र ही वे अनुभव करने लगे कि पाण्डुलिपि में किये रेखांकन से निर्मित आकारों में गूढ आत्माएं निवास करती हैं जो पापी लोकों के समान मुक्ति पाने के लिये आक्रोश कर रही हैं और उनको अन्तिम लयबद्ध रूप देकर मुक्त करने को वे स्वयं तड़प रहे हैं। इस प्रकार रवींद्रनाथ ने आंतरिक जीवन की प्रेरणाओं को तीव्रता से अनुभव किया व तन्मय होकर कलानिर्मिति शुरू की।

१९३० में रवींद्रनाथ के चित्रों की प्रदर्शनी पैरिस के गालेरी पिगाल[२] में हुई जिसकी योरपीय कलाकारों व समीक्षकों ने बहुत प्रशंसा की व भारत में लोगों को आश्चर्य हुआ कि रवींद्रनाथ न केवल महाकवि हैं बलिक एक श्रेष्ठ चित्रकार भी हैं। उसी साल उनके कुछ चित्र लंदन, बर्लिन व न्यूयार्क में प्रदर्शित किये गये। १९३२ में उनके चित्रों की प्रदर्शनी कलकत्ता में हुई व दूसरे साल बंबई में हुई। १९४६ में यूनेस्को द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक कलाप्रदर्शनी में उनके चार चित्र सम्मिलित किये गये।

रवींद्रनाथ के अधिकतर चित्र ऐसे दिखायी देते हैं कि वे तत्क्षणिक सृजन-प्रेरणा द्वारा बिना पूर्वविचार के बनाये गये हों; उनमें परिवर्तन या उद्देश्यपूर्ण प्रतिपादन के प्रयत्न नहीं हैं। चित्रण को आरंभ करते ही वे बिना विश्राम या चिन्तन के तद्रूप हो कर उसको शीघ्रता से पूर्ण करते। उन्होंने सर्व प्रकार के रंगों, पेस्टल, ड्राय पाइंट व एचिंग का प्रयोग किया किंतु वे द्रवमिश्रित रंगों को पसंद करते और सुलभता से प्राप्त स्याही का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग करते। रंग नहीं मिलने पर वे कभी फूलों की पंखुडियों को दबा कर रंगों के स्थान पर काम में लेते। उन्होंने

तूलिका का शायद ही कभी उपयोग किया होगा एवं ऐसे समय भी उनकी अपनी घर पर बनायी तूलिका थी। तूलिका से वे कपड़े के टुकड़े या उंगलियों से रंगाकन करना पसंद करते। इन सब बातों से स्पष्ट है कि वे रंगांकनपद्धति, सामग्री या कलाध्ययन से आंतरिक प्रेरणा को अधिक महत्व देते। उन्होंने युवावस्था में घर पर रेखांकन का निर्हेतुक अल्पकालीन प्रयत्न किया था किंतु कलाविद्यालयीन नियमित अध्ययन के दुष्प्रभाव से वे बच गये थे अतः अपने आंतरिक व्यक्तित्व को सफलता से व्यक्त करने में उन्होंने किसी बाह्य प्रभाव की रुकावट को अनुभव नहीं किया। कलासृजन के बारे में जे. कृष्णमूर्ति ने व्यक्त किये विचार रवीन्द्रनाथ की कला को समुचित रूप से लागू होते हैं; "अंकनपद्धति पर प्रभुत्व उदरनिर्वाह का साधन बन सकता है किन्तु उससे हम सृजनशील नहीं बनते; यदि हम में कोई आंतरिक ज्योति प्रज्वलित है—कोई आनंद है—तो उसको व्यक्त करने का मार्ग अपने आप दिखायी देगा, अभिव्यक्ति के तरीकों का अध्ययन आवश्यक नहीं हैं।"

अपनी विदेशयात्राओं में रवीन्द्रनाथ विश्वविख्यात कलाकारों के संपर्क में आये। पाश्चात्य एवं पौर्वात्य कलाकृतियों का प्रत्यक्ष परिशीलन करने के अवसर उनको प्राप्त हुए। जब वे जापान की यात्रा पर थे तब किसी के निजी कलासंग्रह के अध्ययन के हेतु वे सप्ताह भर योकोहामा जाकर रहे। जापानी व चीनी चित्रणपद्धतियों के अध्ययन के लिये वे जापान में तीन महीनों तक रहे। घनिष्ठ कलाप्रेम से प्रेरित होकर उन्होंने शान्तिनिकेतन में कलाभवन की प्रस्थापना की।

उनके कलासृजन संबंधी विचार चित्रकार क्ली के विचारों से बहुत मिलते जुलते हैं एवं उनकी सहजस्फूर्त अंकनपद्धति क्ली के निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करती है। हो सकता है कि वे कभी क्ली के प्रभाव में आ गये हों किन्तु इससे उनकी कला के श्रेष्ठत्व को कोई हानि नहीं पहुंचती। उनकी कला पूर्ण रूप से उनके प्रतिभासंपन्न आंतरिक जीवन की प्रतिमा है व उसके दर्शन में नैष्ठिक भारतीयत्व है। उनकी कलानिर्मिति के पीछे मौलिक कल्पनाशक्ति व विशुद्ध सौंदर्यदृष्टि प्रेरणाभूत थीं। जब उनसे उनकी चित्रकला के बारे में पूछा गया तब उन्होंने उत्तर दिया "मेरे जीवन का प्रभात गीतोंभरा था अब शाम रंगभरी हो जाये"।

रवीन्द्रनाथ की कला में भिन्न प्रकार की अनुभूतियों को साकार किया है। 'थके हुए यात्री', 'मां व बच्चा', 'सफेद धागे'[4] जैसे चित्रों में मानव-जीवन का व्यापक दार्शनिक विचार है तो अंडाकृति मानव शीर्षों में—अधिकतर स्त्रियों के—जीवन की गहरी अनुभूतियों से निर्मित अंतर्मुखवृत्ति का दर्शन है। 'प्राचीन कानाफूसी'[5] जैसे चित्र स्मृतिव्याकुल हैं तो कई दृश्यचित्र प्रकृति की रमणीयता से ओतप्रोत हैं। सहजस्फूर्त रेखाओं द्वारा निर्मित काल्पनिक प्राणियों में आंतरिक जीवन का अद्भुत संचार व अमानवीय भावनाओं का दर्शन हैं। कुमारस्वामी ने रवीन्द्रनाथ की कला के बारे में लिखा है, "उनकी मौलिक, सहजसिद्ध अभिव्यक्ति असामान्य नित्ययुवती प्रतिभा की

साक्ष्य है"।

अमृता शेरगिल (१९१३–१९३७):—भारतीय कला को आधुनिकता की ओर मोड़ देने में अमृता शेरगिल ने आरंभिक मार्गदर्शन का महत्वपूर्ण कार्य किया, अतः उनको आधुनिक भारतीय कला के प्रणेताओं में स्थान दिया जाता है। रवीन्द्रनाथ की कला में भारतीय वैचारिक जीवन की आध्यात्मिकता की प्रचीति है तो अमृता शेरगिल की कला में भारतीय सामान्य जनजीवन की निष्काम समर्पितवृत्ति का दर्शन है।

अमृता शेरगिल का जन्म १९१३ में हुआ। उनके पिता सिक्ख थे व उनकी माता हंगेरियन महिला थीं। बाल्यावस्था के प्रथम आठ वर्ष उन्होंने योरप में बिताए और १९२१ में ही उन्होंने पहली बार भारत का दर्शन किया। अंतर्राष्ट्रीय मिश्र विवाह का उनकी कला के विकास में अपरिमित लाभ हुआ। उनको अपने भारतीयत्व का उचित अभिमान था। माता के कारण उनका योरपीय संस्कृति व कला से घनिष्ट संपर्क रहा और वे आधुनिक कला का सत्यार्थ ज्ञात करने में सफल हुईं। अमृता की चित्रकला में अभिरुचि को देख कर माता ने उनको १९२९ में पैरिस के एकोल द बोजार में प्रविष्ट कराया। वहां के पांच साल के कलाध्ययन से उन्होंने पाश्चात्य अंकनपद्धतियों पर प्रभुत्व प्राप्त किया। तीन साल तक उन्होंने लगातार एकोल द बोजार के प्रथम पुरस्कार प्राप्त किये। १९३२ में उनके चित्र ग्राद सलों में प्रदर्शित हुए व एक साल पश्चात् वे उसकी सदस्या चुनी गयीं। केवल कलाविद्यालयीन अध्ययन से वे संतुष्ट नहीं थीं। १९३३ व १९३४ में उन्होंने पैरिस के संग्रहालयों, कलावीथिकाओं व प्रदर्शनियों में प्राचीन प्रसिद्ध कलाकृतियों एवं आधुनिक कलाकृतियों का परिशीलन किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंची कि प्राचीन हों या आधुनिक हों श्रेष्ठ कलाकृतियां उन्हीं मूलाधार तत्वों पर आधारित होती हैं। उन्होंने अपने कलासंबंधी विचारों को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है "श्रेष्ठ कला में चित्रक्षेत्रीय एवं रचनात्मक सौंदर्य पर बल देकर, केवल रूप के आवश्यक तत्वों का विचार करके सरलीकरण किया जाता है; उसमें विषय के आकर्षण का विचार नहीं होता। बाह्य रूप का अनुकरण नहीं किया जाता; उसको आत्मिक बनाया जाता है। अजंता, एलोरा, इजिप्त, चीन, जापान, मध्ययुगीन योरपीय प्रभाववादी व उत्तरप्रभाववादी कलाओं का चैतन्यपूर्ण व सार्थ आत्मिकीकरण उनको बहुत पसंद था। रवीन्द्रनाथ के काव्य से उनकी चित्रकला अमृता को अधिक हृदयस्पर्शी प्रतीत हुई। प्राचीन शैलियों के अंधानुकरण के लिये उन्होंने 'पुनरुत्थान शैली' के कलाकारों की कटु निंदा की।

१९३३ के करीब सेजान के अध्ययन से उन्होंने आकारों को सरलीकृत करना शुरू किया जिससे उनकी मानवाकृतियों को स्मारकीय स्वतंत्र व उदात्त रूप प्राप्त हुआ। सेजान से आरंभिक प्रेरणा प्राप्त की जाने पर भी गोग्वँ की कला के प्रति अमृता ने अधिक आत्मीयता अनुभव की। गोग्वँ स्वयं पाश्चात्य यथार्थवादी कला से

पौर्वात्य आलंकारिक प्रतीकवादी शैलियों को पसंद करते थे और उनका संश्लेषणवाद भारतीय कलादर्शन से घनिष्ठ समानता रखता था। किंतु इससे भी जिस गुण के कारण अमृता गोग्वँ की कला से प्रभावित हुई थी वह था प्राचीन प्रतीकवाद का गोग्वँ द्वारा परिवर्तित नया स्वाभाविक रूप। अमृता ने अनुभव किया कि प्राचीन कांगड़ा व बसौली शैलियों का गोग्वँ के निर्दिष्ट मार्ग से आधुनिकीकरण किया जा सकता है। किन्तु केवल वैचारिक मार्गदर्शन से कार्यसिद्धि होने वाली नहीं थी। गोग्वँ की कला को प्रेरणा के अतिरिक्त अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। गोग्वँ के उदाहरण से उनको पक्का विश्वास हुआ कि सजीव कलानिर्मिति के लिये कलाकार का जीवन से संपूर्ण तादात्म्य अनिवार्य है एवं वे भारत आने के लिये तड़पने लगीं।

भारत आते ही अमृता ने भारतीय जीवन का—जो मुख्यतया श्रमजीवी ग्रामीण जीवन था—निकट से आत्मीयतापूर्ण अध्ययन किया। भारतीय साधारण जन-जीवन के उनके चित्रों में 'पहाड़ी स्त्रियां', 'भारतीय मां', 'कहानी कथन', 'बालवधू'[6] बहुत ही प्रभावपूर्ण व प्रसिद्ध हैं। दक्षिण भारत की यात्रा करके उन्होंने वहां के साधारण लोकों के जीवन को चित्रित किया; इस समय के उनके चित्र 'ब्रह्मचारी', 'वधू का शृंगार', 'फल बेचनेवाले'[7] विशेष प्रसिद्ध हैं। दक्षिण भारत की यात्रा में अमृता ने अजंता को पहली बार देखा व उससे वे बहुत प्रभावित हुईं। अजंता, मुगल व बसौली शैलियों के अध्ययन से अमृता ने अपनी शैली के विकास में काफी लाभ उठाया किंतु केवल भारतीय होने के कारण उनका अंधानुकरण करने का वे कड़ा विरोध करतीं। उन्होंने लिखा था "कमसे कम एक कारण से मुझे प्रसन्नता है कि मैंने कला की शिक्षा योरप में पाई। इसने ही मुझे अवसर दिया कि मैं अजंता, मुगल व राजपूत चित्रकारी को समझ सकूं व उन्हें पसंद कर सकूं....। होता यह है कि उनके समझने का अधिकांश भारतीय चित्रकार ढोंग तो करते हैं, लेकिन वास्तव में वह गलत ढंग से समझी जाती हैं"।

अमृता की कला में न केवल भारतीय सामान्य जनों के सरल, निरिच्छ जीवन का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण है बल्कि उसमें कला के मूल तत्वों का आधुनिक कलादर्शन के अनुसार विकास करके समकालीन भारतीय कलाकारों को मार्गदर्शन किया है। किन्तु उनके अन्त तक उनकी कला को भारत में कोई समझ नहीं पाये। १९४१ में उनकी निराशावस्था में मृत्यु हुई, जिस समय उनकी आयु केवल २८ साल की थी।

रवीन्द्रनाथ टैगोर व अमृता शेरगिल ने आधुनिक कलापद्धतियों से आरंभ कर के अपनी कला को भारतीय रूप प्रदान किया। यामिनी राय एक ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने बंगाल की ग्रामीण कलाओं से प्रेरणा लेकर उनको आधुनिक रूप देने के प्रयत्न किये। बंगाली ग्रामों में अक्सर ग्रामीण चित्रकार या पटुआ हुआ करते जो मिट्टी के बरतनों, तश्तरियों या कपड़ों पर चित्रण करते या त्यौहारों पर रंगीन मूर्तियां बनाते; कपड़े पर धार्मिक कथाओं का चित्रण करते जो 'पट' नाम से प्रसिद्ध था।

इसके अतिरिक्त कलकत्ता में कालीघाट-बाजार-चित्रण नाम से एक ग्रामीण शैली प्रचलित थी जिसमें देवताओं, पक्षियों, जानवरों व दैनंदिन जीवन को चित्रित किया जाता था। इन शैलियों की विशेपता थी चमकीले समतल रंगों का प्रयोग, स्पष्ट मोटी वाह्य रेखा से प्रतीकात्मक, सरल आकारों का प्रयोग व अलंकरण।

यामिनी राय का जन्म १८८३ में पश्चिम बंगाल के वांकुरा जिले में हुआ। इस जिले में संथाल लोकों की वस्तियां थीं और 'पट चित्रण' भी काफी प्रचलित था; दोनों वातों का यामिनी राय की भविष्य की कला पर काफी प्रभाव पड़ा। १९०३ में यामिनी राय ने कलकत्ता कलाविद्यालय में अध्ययन शुरू किया। इस समय वहां नैसर्गिकतावादी एवं पुनरुत्थान शैलियों का द्विविध प्रभाव था। आरंभ में उन्होंने व्यक्तिचित्रण करके अर्थार्जन शुरू किया किंतु उससे वे असंतुष्ट थे। १९२५ से उन्होंने कालिघाट शैली के अनुसार स्पष्ट रेखा व चमकीले रंगों में चित्रण शुरू किया जिसका उनका चित्र 'संथाल लड़की' (१९२५) आरंभिक उदाहरण है। धीरे-धीरे उनकी रेखा अधिक निर्भीक, लयवद्ध व सामर्थ्यवान् तथा रंगसंगति अधिक सतेज व आकर्षक वन गयीं। यामिनी राय के इन प्रयोगों की तुलना पिकासो के नीग्रो काल में किये प्रयोगों से की जा सकती हैं। यद्यपि वाद में गतिरोध पैदा होकर यामिनी राय की कला में कृत्रिमता आ गयी। अव निजी विकसित शैली में यामिनी राय ने संथाल जातियों के जीवन को चित्रित किया। १९३७ में उन्होंने ईसा के जीवन को चित्रित करना शुरू किया व 'ईसा व शिष्य', 'ईसा का शीर्ष' आदि चित्र वनाये। उनके चित्रों में पौराणिक विपयों के एवं जानवरों के चित्र भी हैं। १९४० से उनके चित्रों की विदेशों में मांग वढ़ती गयी व उसके साथ ही उनके चित्रण में यांत्रिक कृत्रिमता आ गयी। अत्यधिक आलंकारिकता के कारण यामिनी राय की कला सृजनशील की अपेक्षा चित्ताकर्षक तथा अभिव्यक्ति में कमजोर वन गयी है।

उपरिनिर्दिष्ट इनेगिने प्रयत्नों के अतिरिक्त भारत में दोनों विश्वयुद्धों के वीच के काल में आधुनिक कला की दिशा में कोई सृजनात्मक प्रयत्न नहीं हुए। वम्बई कलाविद्यालय के निर्देशक ग्लैडस्टन सालोमन ने हेवेल का अनुकरण करके विद्यार्थियों को अजंता शैली का अनुसरण करने को प्रोत्साहित किया किंतु उस प्रयत्न को सफलता नहीं मिली। उनके पश्चात् आये हुए निर्देशक जेरार्ड ने विद्यार्थियों को प्रभाववादी अंकनपद्धतियों से परिचित कराया व उस दिशा में मार्गदर्शन किया। आधुनिक कलाकारों के चित्रों की प्रतिकृतियां देखकर एवं पुस्तकों के अध्ययन से कला के विद्यार्थी आधुनिक कला के प्रयोगों से वैयक्तिक रूप से परिचित हो रहे थे किंतु उसका विशेप परिणाम नहीं हुआ। विश्वयुद्ध के भय से योरप से जो शरणार्थी विदेशों में चलेगये उनमें से एक चित्रकार लँगहेमर वम्बई आये; उनके विशुद्ध रंगों के मोटी परतों में निर्भीक तूलिकासंचालन के साथ या चित्रण–चाक से किये यथार्थ विपयों के चित्रण का वहां के युवा कलाकारों पर काफी प्रभाव पड़ा।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के करीब आधुनिक कला की दिशा में प्रगति करने के विचार से भारत के बड़े शहरों के नवकलाकार प्रयत्नशील हुए। बम्बई में रजा, आरा, सौजा, हुसेन वगैरह कलाकारों ने सम्मिलित होकर प्रगतिशील कलाकारों के मंडल की स्थापना की; कलकत्ता में सुभो टैगोर, गोपाल घोष, परितोष सेन आदि कलाकारों के प्रयत्नों से नवीन कलाकारों ने पुनरुत्थान शैली के विरोध में आधुनिक कलापद्धतियों को अपनाने का निश्चय कर के एक कलाकार मंडल बनाया जिसमें बाद में रामकिंकर, अवनि सेन, सुनील माधव सेन शामिल हुए। सभी कलाकारों का विश्वास था कि परंपरा से एकनिष्ठ रहने में कूपमंडूक वृत्ति है जिससे कला का विकास नहीं हो पाता; कला को राष्ट्रीय बंधनों को तोड़ कर विश्वव्यापी रूप दिया जाना चाहिये। दोनों मंडलों की प्रदर्शनियां हुई तथा दोनों ने एकदूसरे से संपर्क प्रस्थापित किया। कुछ वर्षों के अन्दर ही दिल्ली में 'दिल्ली शिल्पि चक्र', मद्रास में 'मद्रास प्रगतिशील कलाकार मंडल' व काश्मीर में 'प्रगतिशील कलाकार मंडल' प्रस्थापित हुए। किंतु इन मंडलों का आरम्भिक जोश जल्द ही समाप्त हुआ। मंडलों के उत्साही सदस्यों में से कुछ सदस्य अधिक अध्ययन के लिये विदेशों में चले गये, कुछ सदस्य वैयक्तिक शैली का विकास कर के स्वतंत्र रूप से व्यवसाय करने लगे तो कुछ सदस्य भिन्न स्थानों पर नौकरी या व्यवसाय के हेतु जा बसे। किंतु इन मंडलों ने कलाकारों, कलाप्रेमियों तथा कला के विद्यार्थियों का आधुनिक कला की ओर ध्यान आकृष्ट करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इसके अतिरिक्त मार्ग, रूपलेखा व इलस्ट्रेटेड वीकली इन नियतकालिकों ने लेखों व प्रतिकृतियों द्वारा आधुनिक कला के प्रसार में काफी सहायता की। दिल्ली में ललित कला अकादमी की प्रस्थापना होकर वार्षिक प्रदर्शनियां की जाने लगीं व आधुनिक कला में भारतीय कलाकारों द्वारा किया गया कार्य लोकों के सम्मुख आया। ललित कला अकादेमी ने 'ललित कला' व 'ललित कला कन्टेम्प्ररी' का नियतकालित प्रकाशन शुरू किया एवं समकालीन कलाकारों पर व्यक्ति व कला की परिचायक पुस्तकें प्रकाशित कीं। ललित कला अकादेमी के अतिरिक्त बंबई की 'बॉम्बे आर्ट सोसायटी', 'आर्ट सोसायटी ऑफ इंडिया' तथा दिल्ली की 'ऑल इन्डिया फाइन आर्टस् एण्ड क्राफ्टस् सोसायटी' ने आधुनिक कला का प्रदर्शनियों द्वारा काफी प्रसार किया। इस संस्था ने समकालीन कला की कुछ अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियां आयोजित कीं व १९६८ से ललित कला अकादेमी ने 'अंतर्राष्ट्रीय त्रिवार्षिक' [8] प्रदर्शनियों का आयोजन शुरू किया। इन प्रदर्शनियों के अतिरिक्त कला के अधिक अध्ययन के हेतु भारतीय विद्यार्थियों का विदेशगमन, विदेशी कलाकारों की कृतियों का भारतीय शहरों में प्रदर्शन, विचारगोष्ठी, विदेशी वकालातों द्वारा आयोजित सांस्कृतिक तथा कलात्मक कार्यक्रम वगैरह आदानप्रदान ने भारतीय कलाक्षेत्र में आधुनिक कला ने प्रभुत्व जमाया। बड़े शहरों में कई कलावीथिकाएं खुल गयीं व कलाकारों की एकल प्रदर्शनियां शुरू हुई। केन्द्रीय सरकार का अनुसरण

करके राज्यस्तरीय प्रयत्न शुरू हुए व जगह–जगह कला को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से कलासंस्थाएं खोली गयीं। इतने प्रयत्नों व प्रसार के बावजूद हम यह नहीं कह सकते कि भारत में सत्यार्थ में आधुनिक कला ने जड़ पकड़ी।

आधुनिक कला मुख्य रूप से सृजनशील व नित्यनूतन होती है किंतु समकालीन भारतीय कला विदेश में किये गये प्रयोगों का अनुकरण मात्र प्रतीत होती है जिसके कई कारण हैं।

स्वतंत्र होते ही आशा की जा रही थी कि अब भारत प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करेगा व कलाक्षेत्र इसके लिये अपवाद नहीं था; किंतु इस आशा की पूर्ति नहीं हुई। सृजनशील कलानिर्मिति के लिये अनिवार्य है कि कलाकार के सम्मुख कोई सुनिश्चित कलात्मक या सामाजिक ध्येय हो किंतु स्वातंत्र्यप्राप्ति के बाद अधिकतर कलाकारों ने ख्यातिप्राप्ति या व्यावसायिक यश के अतिरिक्त किसी अन्य ध्येय का विचार नहीं किया। अपने संकुचित ध्येय की पूर्ति के लिये भारतीय कलाकार का विदेशों में मान्यता प्राप्त करना एकमेव आवश्यक साधन हुआ। परिणामस्वरूप अमेरिकी या योरपीय आधुनिक समकालीन कला का भ्रष्ट अनुकरण भारतीय समकालीन कला की योग्यता का मापदण्ड बन गया। भारतीय आधुनिक कलाकारों की कृतियां अधिकतर विदेशी लोक व वकालातें खरीदते हैं व इसका भी भारतीय समकालीन कला के विकास पर अनिष्ट परिणाम हुआ है। इस परिस्थिति के बावजूद भारतीय कलाकारों ने पाश्चात्य आधुनिक अंकनपद्धतियों पर जो प्रभुत्व प्राप्त किया है वह सराहनीय है व आशा की जा सकती है कि भविष्य में इस प्रभुत्व को योग्य मार्गदर्शन मिलकर भारतीय कला फिर मौलिक सृजन की दिशा में सक्रिय होगी।

समकालीन भारतीय कला में प्राचीन भारतीय शैलियों से लेकर पाश्चात्य आधुनिक अनियंत्रित कला तक सबका संमिश्र अवस्था में विविधतापूर्ण दर्शन है। कुछ प्रमुख भारतीय समकालीन कलाकारों की कला के संदर्भ में निम्न विचार व्यक्त किये जा सकते हैं।

रसिक रावल पतले, पारदर्शक रंगों के बहाव से पार्श्वभूमि को वस्तुनिरपेक्ष रूप देकर उस पर कठोर बारीक रेखा से लंबी अत्यल्पवसना मानवाकृतियों एवं जानवरों की आकृतियों को विशुद्ध समतल रंगों में अंकित करते हैं; रेखांकन पर भारतीय लघुचित्रण शैली का प्रभाव होते हुए छटाओं के कठोर विरोध, अलंकरण व प्रतीकात्मकता के अभाव, आकारों के सुदीर्घीकरण व विशुद्ध समतल रंगांकन के कारण रावल की कला पाश्चात्य अभिव्यंजनावाद से प्रभावित प्रतीत होती है। आलंकारित्व, समतल रंगांकन, आकारों के सरलीकरण व विषयचयन के विचारों से श्रीनिवासुलु की कला लोककला से प्रेरित है किंतु उसको उन्होंने लयबद्ध रेखा से विकसित, वैयक्तिक रूप प्रदान किया है। हुसेन व बद्रीनारायण की कला का प्रमुख प्रेरणास्रोत लोककला ही है। हुसेन मुख्य आकृतियों को पिकासो की नीग्रोकालीन ऐंठन देकर, रंगों की मोटी

परतों में व स्पष्ट वाह्य रेखा से चित्रित करते हैं एवं आरंभिक संश्लेषणात्मक घनवाद का इतना सीमित प्रयोग करते हैं कि उससे उनके चित्रों के विषय प्रतिपादन को हानि नहीं पहुंचती। वद्रीनारायण मोटी व स्पष्ट वाह्य रेखा का प्रयोग करते हैं एवं उनकी कला पर विजांटाइन पच्चीकारी का स्पष्ट प्रभाव है। के. एस. कुलकर्णी की कला में घनवादी विभाजन, राजपूत शैली की लयवद्धता, लोककला के सरलीकरण आदि भिन्न प्रभावों के अस्थायी विलीनीकरण होने के कारण उनकी वैयक्तिक शैली को कोई निश्चित रूप प्राप्त नहीं हो पाया।

शैलोज मुखर्जी, हेब्बार, चावड़ा, वी. प्रभा व वेन्द्रे की कला में भारतीय परंपरागत शैली की लयवद्ध रेखा, यथार्थवाद व पाश्चात्य आधुनिक अंकनपद्धतियों का समन्वित रूप हैं। चावड़ा की रेखा में नर्तन की द्रुतगति है, तो शैलोज मुखर्जी की रेखा अधिक सरलीकृत व लयवद्ध है; शैलोज मुखर्जी की कला में रंगसंगति के आकर्षण पर ध्यान दिया है तथा छायाप्रकाश का सीमित प्रयोग है।

वेन्द्रे नैसर्गिक रूप सौंदर्य की अभिवृद्धि का विशेष ख्याल करते हैं; रेखा से भी छटाओं के विरोध पर वल देते हैं व छायाप्रकाश के स्थान पर हलके गहरे क्षेत्रों का काल्पनिक प्रयोग करते हैं। वेन्द्रे ने कुछ समय तक वस्तुनिरपेक्ष चित्रण के भी प्रयोग किये। हेब्बार की कला स्पष्ट रूप से विषयनिष्ठ व यथार्थवादी है और उसको आधुनिक रूप देने के उद्देश्य से स्पष्ट वाह्यरेखा, हलके गहरे क्षेत्रों की काल्पनिक योजना व रंगांकन पद्धति में सतह की बुनावट के विकास पर ध्यान दिया है। वी. प्रभा मोदिल्यानी के समान—किंतु मोटी वाह्यरेखा से—मानवाकृतियों को सुदीर्घ चित्रित करती है किन्तु उनमें मोदिल्यानी की भावनाओं की आंतरिकता व काव्य का अभाव है यद्यपि सुंदर रंगसंगति व प्रभावपूर्ण, सरल संयोजन से उनके चित्र वड़े आकर्षक होते हैं।

कीटस्, सवावाला व सुब्रह्मण्यम् की कला स्पष्ट रूप से घनवादी है। कीटस् पर पिकासो का प्रभाव है किन्तु रेखा में आदिम ऐंठन या सरलीकरण के स्थान पर भारतीय परम्परा की लय का प्रयोग होने से उनकी कला पाश्चात्य व पौर्वात्य कलाओं का समन्वित रूप प्रतीत होती है। सवावाला का घनवाद विल्लों के समान नियमबद्ध व आलंकारिक है। सुब्रह्मण्यम् का आकारविभाजन ब्राक के समरूप है किन्तु उसमें ब्राक के आलंकारित्व, विरोधी क्षेत्रों का स्पष्ट प्रयोग व काव्यमयता के गुण नहीं हैं।

चित्रकार आरा के वस्तुचित्रण में इटालियन आत्मतत्वीय चित्रकार मोरांदी के चित्रों की स्मृतिव्याकुलता है किन्तु उनकी अंकनपद्धति पूर्णरूप से भिन्न है; पारदर्शक पतले रंगों की हलकी परतों पर वे गहरे या काले रंगों से, जापानी स्याही शैली में—मोटी रेखा एवं फैलाव के प्रयोग से—चित्रण करते हैं। राजपूत रागरागनियों से प्रेरित लक्ष्मण पै के चित्रों में प्रतीकात्मकता व आलंकारित्व के साथ वारीक वृत्तगति रेखाओं व आदिम आकारों का प्रयोग है एवं सतह की अनुकूल बुनावट का विशेष

ख्याल हैं। संप्रति अमेरिका में निवास कर रहे फ्रान्सिस न्यूटन सौजा नवनवीन प्रयोगों में विशेष रुचि रखते हैं किन्तु वस्तुनिरपेक्ष कला का वे कड़ा विरोध करते हैं; उनके चित्रों के विषय अधिकतर धार्मिक होते हैं और उन्होंने विजान्टाइन कला एवं राजपूत कला को आधुनिक रूप देने के प्रयत्न किये हैं। पैरिसनिवासी भारतीय चित्रकार रजा फ्रेंच चित्रकार निकोल द स्ताएल के समान विस्तृत क्षेत्रों पर चित्रणचाकू से चमकीले रंगों के मोटी परतों में एवं चौड़ी धज्जियों में दृश्यचित्र बनाते हैं। सतीश गुजराल ने आरंभ में मेक्सिकन चित्रकार ओरोज्को का अनुसरण करके सामाजिक अभिव्यंजनावादी कृतियां बना कर प्रसिद्धि प्राप्त की; अब वे पृष्ठभूमि को खुरदरी बनाकर उस पर मोटी रेखा से गूढ भाव निर्देशक मानवसदृश आकृतियों को अंकित करते हैं। लंदन निवासी अविनाशचंद्र, ग्रॅहॅम सदरलेंड के सदृश, काल्पनिक किन्तु विश्वमंडलीय प्रतिमाओं से प्रेरणा लेकर, वस्तुनिरपेक्ष अतियथार्थवादी चित्रण करते हैं; विश्वमंडलीय आकारों के अनुकूल वे अत्युष्ण रंगसंगति को पसंद करते हैं।

नवीन पीढ़ी के भारतीय कलाकारों में मोहन सामंत, गायतोंडे, शांति दवे, संतोष, ज्योति भट्ट, बीरेन डे व स्वामिनाथन् अनियंत्रित कला व पदार्थ चित्रण से प्रभावित प्रसिद्ध कलाकार हैं। रेड्डप्पा नायडू स्वाभाविक आदिम रेखाओं, हलके रंगों व प्रतीकों के प्रयोग से गिरजाघर के दृश्यों व धार्मिक विषयों को चित्रित करते हैं। रामचंद्रन् की कला भयानक अतियथार्थ से पीड़ित है।

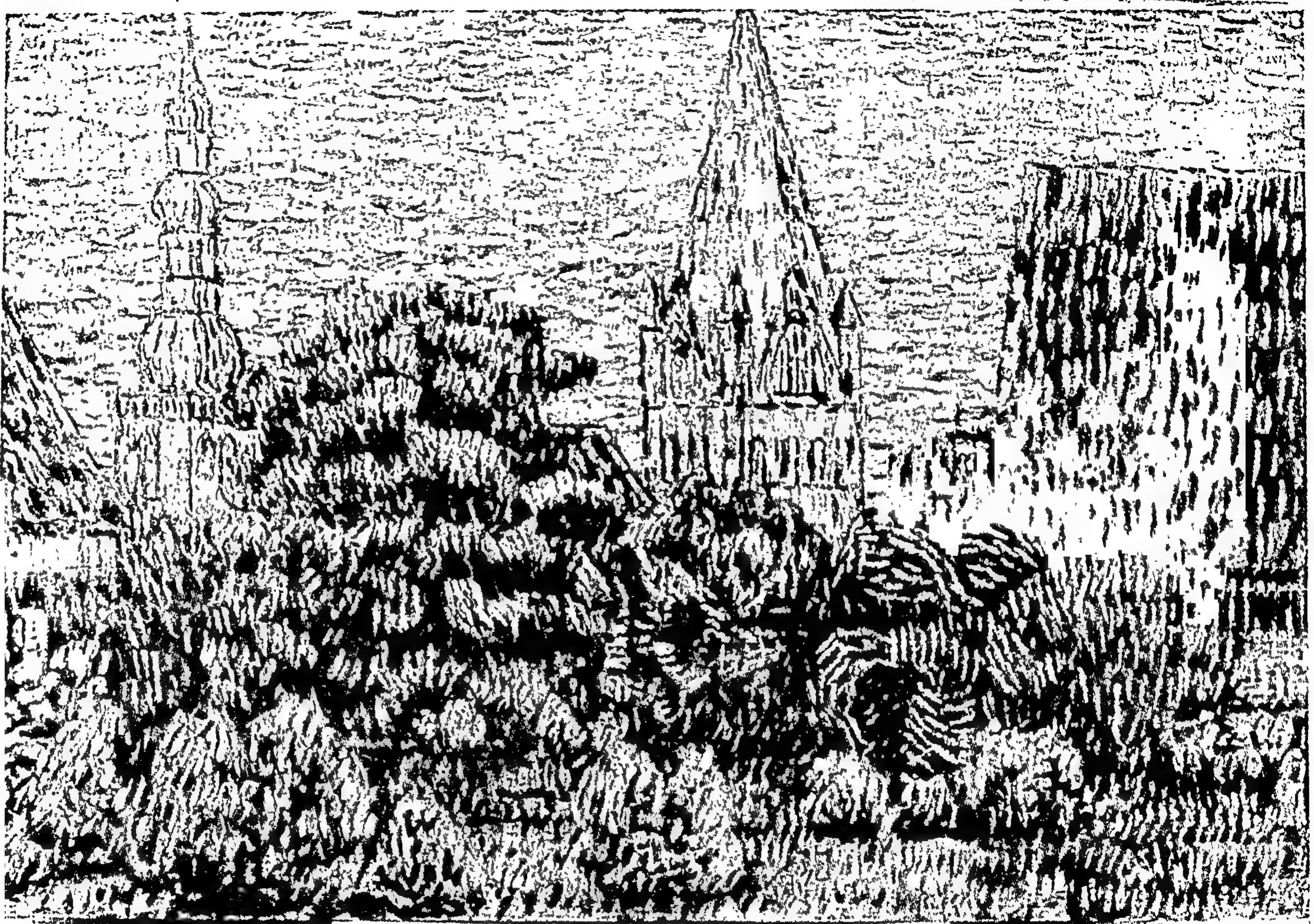
समकालीन अमेरिकी व योरपीय आधुनिक कला वहां के समकालीन जीवन-दर्शन को—जीवन से एकरूप होकर—प्रतिमित करती है। समकालीन भारतीय आधुनिक कला की सफलता का मूल्यांकन भी इसी मापदण्ड से समुचित रूप से किया जाना चाहिये।

चित्र-सूची



कलाकार सम्मेलन के चित्र=पुल

(कोलोन के राजकीय संग्रहालय
के सौजन्य से)



सेंट पीट्रोक्लस

(राजकीय संग्रहालय, कोलोन के सौजन्य से)



हरे कोट में महिला

(कोलोन के राजकीय संग्रहालय
के सौजन्य से)



मुखौटे

(कोलोन के राजकीय संग्रहालय
के सौजन्य से)



साक्रेकोर के साथ मॉमार्त्रं

(राजकीय संग्रहालय, कोलोन
के सौजन्य से)

essentials'—Corot (49) 'I paint a woman's breast exactly as would paint a bottle of milk'—Corot (50) 'The House and Factory of M. Henry', 'View of the Farnese gardens', 'Village church, Rosny' (52) 'Souvenir de Mortefontaine' (1864) (52) 'Interrupted Reading' (53) 'Lady with a Fan (1905) (54) 'Woman with the Pearl' (55) 'Mona Lisa'

प्रभाववाद

(1) 'Salon des Refuses' (2) 'Le Dejeuner Sur l'Herbe' (1863) (3) 'Olympia' (1863) (4) 'Concert Champetre' (5) 'The Judgement of Paris' (1520) (6) Venus of Urbino' (1538) (7) 'Absinthe Drinker' (8) Lola de Valence' (1862) (9) 'The Fifer' (1866) (10) 'Emil Zola' (1868) (11) 'Le Bon Bock' (12) 'The Boating' (13) 'A Bar at the Folies Bergere' (1882) (14) 'Societe anonyme des artistes peintres, sculpteurs, graveurs' (15) Impression-Sunrise' (16) 'Peintres Impressionistes' (17) Madame Charpentier and Her Danght rs' (18) 'In any painting, the most important person is light'—Manet (19) 'My brush has no right to see better than I'—Goya (20) 'School of Eyes' (21) 'Flochetage' (22) 'Treating a subject in terms of the tone and not of the subject' (23) Rainbow Palette (24) Visible brush stroke (25) 'Plein-air painting, Plein-airism, (26) 'Femmes Au Jardin' (27) 'Rouen Cathedral' (1894) (28) Water-lilies (1910) (29) 'Cross of the Legion of Honour' (30) 'The Poplars' (1890) (31) Optical Mixture (32) 'If I were government I would have a detachment of gendarmes keep an eye on people who paint landscapes from nature'—Degas (33) 'There was more to art than surrendering oneself to nature; One built a work of art mentally—through patient observation and style one carried it out'—Degas (34) 'Woman on Horse back', 'Singers at the Bar' (35) Snap-shot photograph (36) 'High or unusual angle of vision' (37) 'La Voiture Aux Courses' (1870) (38) 'No art was less spontaneous than mine. What I do is the result of reflection and study of the great masters; of inspiration, spontaneity and temperament I know nothing'—Degas (39) 'Diego Martelli' (40) 'The Belleli Family' (1860) (41) 'Estelle Muson' (42)' He is the first sculptor'—Renoir on Degas (43) 'Say'—'He greatly loved drawing so do I'—Degas 'last instruction to Forain' (44) Diana's Bath' (45) 'Bather with a Griffon'(1870) (46) 'La Balan coire' (1876) (47) 'Le Moulin De La Galette' (1876) (48) 'Cafe Boulevard Montmartre' (1877) (49) 'Danse a Bougival' (1883) (50)

'Les Grandes Baigneuses' (51) 'These days they try to explain everything, but if a picture could be explained it would not be art'—Renoir (52) '........ The passion of the painter carries everything before it',—Renoir, (53) 'Girls at the Piano' (54) 'One does paint with one's hands'—Renoir (55) 'This I have seen'—Goya (56) 'Cirque Fernando' (1888) (57) 'Salon des Arts Incoherents' (58) Jane Avril at the Jardin de Paris (1893) (59) 'Lautrec took possession of the street' (60) 'Au Moulin Rouge' (1892) (61) To draw and to draw truthfully, that is Lautrec—Francis Jourdain (62) 'Every where and always ugliness has its beautiful aspects; it is thrilling to discover them where nobody has discovered them'—Lautrec to Yvette Gilbert (63) 'Little White Girl' (1864) (64) 'Nocturnes' (65) 'Camden Town Group'

नवप्रभाववाद

(1) 'La Une Baingnade (1883) (2) Salon des Independants (3) 'Societe des Independants' स्वतंत्र कलाकार परिषद् (4) 'D' Eugene Delacroix au Neo-Impression-isme', 'Circle of Primary and Secondary Colours' (5) 'Law of Simultaneous Contrast' (6) 'Optical Mixture (7) 'Little green chemist' (8) Rippi-point (9) 'Sunday Afternoon on the Island of La Grande Jatte' (10) 'Strip his figures of the coloured fleas that cover them ; underneath you will find nothing, no thought, no soul'—Huymans on Seurat's painting 'La Grande Jatte' (11) 'Painting is the art of hollowing a surface'—Seurat (12) 'La Cirque', 'La Poudreuse', 'Le Chahut', 'Les Poseuses'

उत्तरप्रभाववादी चित्रकार

(1) Plastic form (2) The Father of Modern Art (3) 'Portrait of Achille Emperaire' and 'Black clock' (4) 'Mont Sainte Victoire' (5) 'For me colour is form'—Cezanne (6) 'Represent nature by means of the cylinder, the sphere and the cone'—Cezanne (7) A picture first of all represents nothing but colour ; stories, psychology...all that is implicit in the picture'—Cezanne (8) 'I do not want to reproduce nature ; I want to recreate it'—Cezanne (9) 'Art is theory developed and applied in the presence of nature'—Cezanne (10) Pictorial Epuivalent (11) 'The Bather,' 'The Card-players' (12) 'I wish to redo nature after Poussin but in the presence of nature'—Cezanne (13) 'Uncle Dominic as a Monk' (1866) (14) Pistol-painter

(15) 'The House of the Hanged Mank' (16) 'His thinking was exclusively pictorial'—Werner Haftmann on Cezanne (17) View of Gardenne' (18) 'Women Bathers' (19) 'Demoiselle d' Avignon' (20) 'Colour is perspective'—Cezanne (21) 'I am the Primitive of a new art'—Cezanne (22) 'Art is harmony parallel to nature'—Cezanne (23) "His story is not that of an eye, a palette a brush but the tale of a lonely heart which beat within the walls of a dark prison longing and suffering and knowing not why'—Uhde on Van gogh (24) 'Christ was the greatest artist'—Van Gogh (25) 'The Supreme Artist' (26) 'Sorrow' (27) 'The Potato Eaters' (1885) (28) 'All truths......are highly beautiful......when men begin to see beauty in truth, true art arises,......All true art is the expression of the soul'—Mahatma Gandhi (29) 'When you want to grow you must plunge deep into the earth'—Van Gogh (30) 'Van Gogh's tragic attitude'—Klee (31) Existential (32) 'The Night Cafe' (1888) (33) 'The Bedroom' (1888) (34) The Portrait of Eugene Boch' (35) The Raising of Lazarus' (36) 'Road with Cypresses' (1890) (37) 'Eugene Boch', 'The Actor', 'Armond Roulin' (38) The House of friends' (39) The Ravine', 'Starry Night' (40) 'The m series of man will never end'—Van Gogh (41) 'Jacob Wrestling with the Angel, (42) 'They look for what is near the eye and not at the mysterious centers of thought ... They are the official painters of tomorrow—Ganguin on Impressionism (43) 'To Clothe idea in perceptible form' (44) 'The Talisman' (45) 'An acre of green is greener than a spot of green'—Ganguin (46) 'Art is an abanstraction'—Ganguin (47) Correspondences (48) 'Yellow Christ' (1889) (49) 'It's barbaric but it's art"—Guaguin (50) 'Whence Do we come? What Are we? Where Do We Go?' (1897) (51) 'I am a primitive in the true sense'—Ganguin' (52) 'We Greet Thee Mary' (Ia orana Maria) (1891) (53) 'Spirit of the Dead Watching' (Manao Tupapao) (1892) 'The Moon and the Earth' (1893) (54) 'From the people and for the people'

प्रतीकवाद व नावि चित्रकार

(1) To cloth an idea in a perceptible form (2) The World... as representation and creation of the 'I'—Fichte (3) 'The world is my representation'—Schopenhaur (4) 'No more representation of surface appearances... materialisation of what is the loftiest and divinest in the world—The Idea'—Albert Aurier (5) 'In nature each

thing is but a signified idea'—Aurier (6) 'To bring improbable things to life in a probable form'—Redon (7) 'Everything takes form when we lay open to the uprush of the unconscious'—Redon (8) 'April', 'Muse, (9) 'Studios of sacred art' (10) 'France Champagne' (11) 'I have never been anything but a spectator'—Vuillard (12) 'The New Painting' (13) 'I don't do portraits, I paint people at home'—Viullard.

फावबाद

(1) 'Societe du Salon d'Automne' वसंत-प्रदर्शनी परिषद् (2) 'Donatello au milieu des Fauves'— Vauxcelles (3) ...pictorial aberrations, chromatic madness and the fantasies of men who...... J B. Hall on Fauves (4) 'Contemporary painting promises to become more subtle, more musical and less like sculpture ; in short it promises colour—Van Gogh (5) Intimate enemy (6) 'The Three Bathers' (7) 'Slave' (8) 'Luxe, Calme et Volupte' (1907) (9) 'Green Stripe' (1905) (10) 'La Joie de Vivre' (11) 'Le Grande Revue' 'Notes d'un Peintre' (12) 'There is inherent truth which must be disengaged from the outward appearance, This is the only truth that matters'—Matisse (13) 'Bathers with a Turtle' (14) 'Red Studio' (1911), 'Piano Lesson' (1916), 'Interior with a Piano' (1918), 'White Plumes' (1919) (15) 'Odalisque' (16) Pittsburg International (17) 'What I dream of is an art of balance, of purity and serenity......something like a good armchair to rest'—Matisse (18) 'The work of art is not immediate, it is a work of my mind, it must have enduring character and content, a character of Serenity, and this is arrived at by long contemplation of the problem of expression'—Matisse (19) I paint in order to clarify my thoughts......painting is no more than anarchy, love-making, dreaming...... It's an accident of nature—Vlaminck (20) 'I went to the museums as I went to brothels; I never went upstairs'—Vlaminck (21) 'It is like blaming Wagner for always Composing Wagnerian music or Beethoven for being recognizably Beethoven—Vlaminck (22) 'Too much knowledge is harmful to art'—Derain (23) 'The Last Supper' (24) 'Rabelais' Pantagruel (25) 'Blue Mozart'; 'Red Orchestra' (26) 'Ecole des Arts Decoratif' (27) 'The Sirens' (28) 'The Tragic clown', 'Crucifixion' (29) 'Blue Period' (30) 'Le Miserere and War'

घनवाद

(1) 'Joie de Vivre' (2) 'Les Demoiselles d'Avignon' (3) Iberian Sculpture (4) 'La Rue des Bois' (5) Bizarreries Cubiques' (6) Analytical Cubism (7) Pictorial Space (8) Time-Space-Continuum (9) Neo-Primitivism (10) Fire-bird ; Rites of Spring (11) 'Wasteland' (12) Front View सम्मुख मुखाकृति, Profile पक्षीय मुखाकृति (13) Double-Image figures (14) Hermetic Cubism (15) 'The Bridge', 'Nudes in the Forest' (16) Tubist instead of Cubist (17) Collage, Papier Colle (18) Tromp l'oeil (19) Synthetic Cubism (20) Section d'or (21) Simultaneity (22) Non-Euclidean Geometry (23) 'Cubism...... an art dealing primarily with forms and when a form is realised, it is there to live its own life—Picasso (24) 'Mathematics...... psychoanalysis, music and what not have been related to cubism to give it an easier explaination. All this has been pure literature blinding people with theories'—Picasso (25) Epic Cubism (26) 'Man from Touraine' (1918) (27) 'Three Musicians' (28) 'Three Dancers' (29) 'Du Cubisme' by Gleizes and Metzinger (30) 'Les Peintres Cubists' by Apollinaire (31) 'L' Evolution Creatrice' by Henri Bergson (32) 'Meditations Cartesiennes' by Husserl (33) 'The most Cubist of the Cubists' (34) "Cezanne goes towards architecture, I set out from it ; out of a cylinder I make a bottle'—Juan Gris (35) '...humanising mathematics, the abstract aspect of painting'—Juan Gris (36) It is wonderful to see the work of a painter who knew what he is doing'—Picasso on Juan Gris (37) 'Contrasts of Forms (38) Superimposed (39) 'Ballet Mechanique' (40) Academie Humbert (41) 'The Musician' (42) Canephorus (43) Chariot of the Sun' (44) 'Still-life on Gueridon (45) 'Chimney-piece (46) 'Vanitas' (47) 'Atelier' (48) 'Le Duo' (49) 'Patience' (50) 'Grand Prix of Venice Biennale' (51) 'In the spiritual marriage which they entered into one (Braque) contributed a great sensibility and the other (Picasso) a great plastic awareness'—Uhde on Braque and Picasso. (52) 'I like the rule which corrects emotion'—Braque (53) Les Quartre Chats (54) Arte Joven (55) Blue Period (56) 'Destitute', 'Old Jew', 'Couple', 'Woman Ironing' (57) Bateau Lavoir-Floating Laundry (58) Rose period (59) 'The Family of the Saltimbanques', 'The Acrobat and the Ball', 'Harlequin's Family' (60) Primitivism (61) 'Negro period' (62) 'Violin', 'Woman in an Armchair,' 'Guitar, skull and Newspaper' (63) Ballet 'Parade' by Jean

Cocteau (64) 'Classical Period' (65) 'Mother and child', 'Woman in White', 'Three Women at the Fountain' (66) 'Three Musicians' (67) Grotesque figures and Double-Image figures (68) Convulsive beauty (69) 'Three Dancers' (70) Dance of Death (71) Dream (72) Guernica (73) 'Bullfight', 'Sculptor's Studio', 'Minotaurmachia' (74) 'War', 'Peace' (75) 'Women of Algiers' (76) 'La Meninas' (77) 'Jester', 'Cock', 'Metal Construction', 'Cat', 'Man with the sheep' 'Goat' (78) Painter without style (79) 'This continual readiness to receive emotion from the world and from the mankind is the secret of Picasso's vitality and the reason behind every one of his changes'—Mario de Micheli on Picasso (80) 'He was too taken up with 'things' to be concerned with 'spirit'—Gertrude stein on Picasso (81) '... he has super human hatred of the soul'—Mauriac on Picasso (82) 'I can hardly understand the importance of search in connection with modern painting. In my opinion, to search means nothing in painting. To find is the thing' Picasso (83) 'In the last analysis there is nothing but love whatever form it takes. They really should put out the eyes of the painters, just as they do to goldfinches to make them sing more sweetly-Picasso.

अभिव्यंजनावाद

(1) Authoritarianism (2) 'Creative Evolution' (3) 'One creates when one acts freely'—Bergson (4) 'Abstraction and Empathy'—Wilhelm Worringer (5) 'Procession of Wrestlers' (6) 'Weary of Life', 'Disillusioned Souls', 'Wilhelm Tell' (7) Mercure de France (8) 'Frieze of Life' (9) Ibsen's drama 'Ghost' (10) 'Puberty' (11) 'Cry' (12) 'Sick Girl', 'Death chamber', 'Death bed', 'Dead Mother, 'Death' (13) The Sacred (14) 'Spring Evening' (15) 'Dark Lady' (16) 'Indignant Masks' (17) 'Demons Tormenting Me' (18) Adoration of the Shepherds', 'Entry into Jerusalem', 'Crucifixion', 'Ascension' (19) Entry of Christ into Brussels (20) 'Decor versus Illustration' (21) 'Plein-air-Painting' (22) 'Die Neue Sachlichkeit' (23) 'Neue Secession+' (24) 'Neue Kunstler-Vereinigung'⁰ (25) 'Blaue Reiter' नीला घुड़सवार (26) 'Spiritual in Art' (27) Expressionism (28) 'Inner Necessity' (29) Cave Woman', 'Sloth', 'Mask of Energy' (30) 'Last Supper', 'Pentecost' (31) 'Demon of the lower region' (32) 'A butterfly hovering in the star-studded cosmos' (33) The pioneer of a national German art (34) The most Germanic variety of European Fauvism (35) 'Resurrec-

tion', 'Soldier with His wife', 'Nine Altarpieces on the Life of christ', 'Santa Maria Egyptiaca' Triptych, (36) 'Degenerate Art' (37) 'To attract all revolutionary and fermenting elements; that is the purpose implied in the name 'Brücke' (38) 'Chronik der Brücke' (39) 'Neue Kunstler Vereinigung' (40) 'The art of the future would move between two opposite poles; The greater abstraction and the greater reality—Kandisky (41) Animalisation on of art (42) Inner mystical construction (43) 'Tower of the Blue Horses; 'Animal Destinies', Deer in the Woods (44) 'Yearning for the indivisible being, liberation from the sensory illusion of our ephemeral life: This is the state of mind at the bottom of all art'—Franz Marc (45) 'Die Blauen Vier'—The Four Blue (46) The Real Reality (47) 'The more horrifying the world becomes the more art becomes abstract; while a world at peace produces realistic art'—Paul Klee (48) 'Pedagogical Sketch book' (49) 'Creative Credo' (50) 'On Modern Art (51) 'Star-bound', 'Head Hewn with an Axe', 'Uncomposed objects in Space' (52) 'Landscape with Yellow Birds', 'Sinbad the Sailor', 'Villa R', (53) 'Field Produce', 'Plan For a Garden', 'The Meadow (54) 'Comedian' 'Dance-play of the Red Skirts' (55) 'Lost in Thought' (56) 'Mechanics of a part of a Town', 'Family outing', 'Place of Discovery' (57) 'Der Sturm' (58) 'School of Applied Arts' (59) 'Dreaming Boys' (60) Painting is not based on just three dimensions but on four. The fourth dimension is the projection of my self'—Kokoschka, (61) 'Drawing of Yvette Gilbert' (62) 'Double Portrait—The Artist and Alma Mahler' (63) 'Tempest' (64) 'Woman in Blue' (65) 'The Power of Music' (66) 'Harmony of colours and forms can be based on purposive contact with the human soul'—Kandinsky (67) 'Composition' (68) 'Abstract Expression' (69) Impression (70) Improvisation (71) Composition (72) 'Point and Line to Plane (73) 'Modern art can be born only when signs become symbols'—Kandinsky (74) 'Neue Sachlichkeit' (75) 'Post-Experessionism' (76) 'Magical Realism' (77) Verism (78) 'Funeral of Poet Panizza', 'Germany, a Winter's Tale' (79) 'City Night' (80) 'Circus Caravan', 'Trapeze' (81) 'Avignon Pieta' (82) 'Departure', 'Perseus Triptych', Odysseus and Calypso', 'Argonauts' (83) 'Bauhaus'—'Weimar Academy of Arts (84) de Stijl (85) 'Man—Dionysian in origin, Apollinian in spirit, symbol of a unity of nature and spirit'—Schlemmer (86) 'Inner mystical construction in nature' (87) 'Degenerate Art'

कुछ अप्रमुखवाद

(1) Venice Biemale (2) Poesia (3) La Figaro (4) Manifesto of Futurist Painting (5) Technical Manifesto of Futurist Painting (6) Simultaneous states of mind (7) Simultaneity (8) States of mind (9) 'Farewells', 'Those who Stay', 'Those who Leave' (10) Futurist manifesto of the art of noises (11) 'Dynamic Volumes', 'Lines of Force of a Thunderbolt' (12) 'Dynamic Hieroglyphic of Bal Tabarin' (13) Camden Town Group (14) Vorticism (15) 'Blast' (16) 'Section d'or'=Golden Section (17) 'Architecture is frozen music'—Madame de Stael (18) 'Procession in Seville' (19) 'Simultaneous Windows' (20) 'True pleasures arise from the colours we call beautiful and from shapes..... for the purpose of my argument I mean straight lines, circles etc. which are beautiful in themselves and not for any other reason'—Plato on Absolute beauty (21) Chevreul's 'Law of Simultaneous Contrast' (22) 'Colour is both subject and form'—Delaunay (23) 'So long as art does not free itself from object it is mere descriptive literature' Delaunay (24) Delaunay the simultaneous (25) 'Orphism' (26) Circular Rhythms', 'Simultaneous Discs' (27) 'Lines of force' (28) 'Morning in the Country After Rain', 'Nudes in the Forest' (29) 'Sensation of Flight—Outline of an airplane 'Sensation of Mystic will —a cross' (30) Supreme aim of art (31) 'Black on Black' (32) 'White no White' (33) De Styl (34) Mobiles (35) Harmony is the balance of Contrasts'—Mondrian (36) 'Plastic mathematics' (37) 'Landscape with Cottage', 'Horizontal Tree' (38) 'Composition No. 10 Plus and Minus', 'Rhythm of Straight Lines' (39) 'Broadway Boogie Woogie' (40) Metaphysical Painting—Pittura Metaphysica (41) Greater Reality (42) Nostalgia (43) 'The Melancholy and Mystery of a Street' (1914) (44) The Uncertainty of the Poet (19 3) (45) 'The Seer' (1915)

दादावाद व अतियथार्थवाद

(1) Nihilism (2) Anti-art (3) 'Cabaret Voltaise' (4) 'Dada= 'Rocking horse' (5) 'Coffee-mill' (1911) (6) 'Nude Descending a Staircase' (1912) (7) 'Readymades' (8) 'The Fountain' (9) 'The Bride Stripped By Her Bachelors, Even' (1913) (10) 'The Law of chance' and 'Automatism' (11) 'Rotary Glass-plates', 'Rotoreliefs' (12) Mobiles (13) Rayogram (14) Typography (15) Montage—Fragmentation of objects and their rearrangement (16) Merz,

Kommerz (17) Merzban (18) Merzbild=Rubbish pictures (19) 'Litterature' (20) LHOOQ (21) 'Amorous Display' (1917) (22) Sigmund Freud's Psychoanalysis (23) 'I belive that in future the two apparently contradictory states—the dream and the reality—will merge into a reality absolute, a surreality'—Andre Breton (24) मति भ्रम=Hallucination, स्वयंचालित लेखन=Automatic Writing, भयानक स्वप्न=Nightmare. वायुप्रकोप=Delirium, निद्रा भ्रमण =Somnambulism, सम्मोहन=Hypnotism (25) 'Le Revolution Surrealiste' (26) 'Le Surrealisme et La Peinture' (27) Animism (28) Found object-objet Trouve 'Aide' (29) Objet Surrealiste (30) Verist Surrealism (31) Abstract Surrealism (32) 'Garden of Worldly Delights' (33) 'Saturn Devouring His Sons', 'Witches' Sabbath' (34) 'Burning Giraffe', 'Premonition of Civil War', (35) 'Persistence of Vision' (36) 'Crucifixion' (37) Paranoia (38) Paranoic-Critical-activity (39) Marrying of the real with the unreal' (40) Frattage (41) Natural History (42) Self-invented objects—odradeks (43) 'Tilled Field' (44) Accidental finds (45) 'Women and Birds in Moon light', 'Figures and Dog before he Sun' (46) 'Harlequin Carnival', 'Maternity' (47) 'Daylight Saving' (48) 'Hide and Seek' (49) Rayography (50) Decalcomania (51) Fumages—Smoke pictures (52) Peintres Mandits

कुछ शापित चित्रकार

(1) Peintres Mandits (2) Cafe du Dome (3) Home Sickness (4) Overlapping planes (5) Kaleidoscopic (6) 'Dead Souls' by Gogol (7) 'The Walk' (1918) (8) 'Lovers' Idyll' (1928) (9) 'La Fontaine's Fables' (10) 'Boy in the Red Waistcoat' (11) 'Carcass of Beef' (1925), 'Woman Bathing' (1929) (12) 'White period

सहजसिद्ध चित्रकार

(1) Naive artists, Neoprimitives (2) Greater Abstraction (3) Greater Reality (4) The Fantastic in the hardest matter (5) 'Carnival Night' (6) 'Storm in the Jungle' (7) 'Snake-Charmer', 'Yadwiga's Dream' (8) 'Sleeping Gypsy' 'Warm', 'Flute Player' (9) Magical Realism (10) 'Manchester Valley' (11) Carnegie International Exhibition

वस्तुनिरपेक्ष कला

(1) Abstract or Non-figurative (2) 'I mean straight lines and

curves and the shapes made from them...... These are beautiful not for any particular reason or purpose...... but are always by their very nature beautiful and give pleasure of their own, quite free from the itch of desire and colours of this kind are beautiful too and give similar pleasure'—Plato (3) Existential (4) 'All arts tend towards music'—Schopenhaur (5) 'Contrast of Forms' (6) 'Ocean Sonata', 'Sun Sonata', 'Snake Sonata' (7) 'The surface of things gives pleasure, their interiority gives life'—Mondrian (8) 'Everything is permitted'—Kandinsky (9) 'Still-life with ginger-pot', 'Tree in Bloom' (10) 'Composition in Oval' (11) 'Masculine and feminine'—'vertical and horizontal' (12) Symchromists (13) 'There is purposely no subject, it's to exalt other regions of the mind'—Morgan Russell (14) Non-objectivism (15) Mechanical Portraits (16) 'After Cubism' —Apres le Cubisme' (17) de stijl, Der Sturm, Blok, Zenith (18) L'Esprit Nouveau (19) Cahier d'Art (20) Neue Gestaltung by Mondrian, Grundbegriffe der neuen Gestaltenden Kunst by Van Doesberg (21) Pedagogical Sketch-book by Paul Klee, Point and Line to Plane by Kandinsky, Non-objective World by Malevich (22) Het Overzicht (23) Art d' Aujourd'hui (24) Cercle et Carre सर्क्ले कारे (25) Abstraction-Creation Group (26) Abstraction-Creation (27) 'Association of American Abstract Artists' (28) Museum of modern Art, New Yark (29) Cubism and Abstract Art' by Alfred H. Barr (30) Museum of Living art of A. E. Gallatin, Societe Anonyme of Katherine Dreier, Museum of Non-objective Painting of Hilla Rebay (31) 'Broadway Boogie Woogie', 'Victory Boogie Woogie' (32) Merzban

आधुनिक कला—१६४५ के पश्चात्

(1) Nihilism (2) Abstract Expressionism (3) 'When something is finished, that means it's dead. ...I never finish a painting—I just stop working on it for a while. ....The thing to do is always to keep starting to paint, never finishing a painting'—Arshile Gorky (4) 'Continuous dynamic' (5) 'Action Painting' (6) New York School (7) Action Painters (8) Abstract Impressionism (9) Post-painterly Abstraction (10) Colour field Painting (11) Chromatic Abstraction (12) Over-all Painting (13) 'When I am in the painting I am not aware of what I am doing. It is only after a sort of 'get acquainted' period that I see what I have been about. I have no fears about making changes, destroying the images etc. because the painting has

a life of its own. It is only when I lose contact with the painting that the result is a mess'—Jackson Pollock (14) Essentially a religious movement (15) Possibilities (16) Elegies to the Spanish Republic (17) 'Bildnerei der Geisteskranken' by Hans Prinzhorn—on the art of the insane (18) Hostages (19) Matter Painting (20) Abstract Impression (21) l'art informel or tachisme (22) Un art autre —another art or way-out art (23) धब्बावाद—Tachisme, पदार्थचित्रण—Matter Painting, वस्तुनिरपेक्ष अक्षरकला—Abstract Typography, हाव भावात्मक चित्रण—Gesture Painting (24) Fronte Nuovo delle Arti—New Art Front नवकला अग्रमंडल (25) Otto Pittori Italiani—Eight Italian Painters (26) Abstract-Concrete (27) Spatialism (28) Hieroglyphic (29) Dau al cet—Seven on the Die (30) El Paso—the Step (31) Cobra—derived from the names Copenhagen, Brussels and Amsterdam (32) Concrete Art (33) 'Salon des Realites Nouvelles (34) American Abstract Artists' Group (35) Abstraction-Creation (36) Despite Straight Lines by Josef Albers (37) Homage to the Square (38) Assemblage (39) Environmets (40) Junk Sculpture (41) Happenings (42) 'Surrounding to be entered in to' (43) Pop Art (44) Institute of Contemporary Art, London (45) Independent Group (46) New Brutalism (47) 'Just What Is It That Makes Today's Homes os Different ? So Appealing ? (48) 'This Is Tomorrow' (49) Mass Media(50) Mixed-media production (51) Monogram (52) Comic Strip (53) Ray Gun Theatre (54) Eat, Love, Die (55) Le nouveau realisme-New Realism (56) '40 degrees above Dada' (57) Exhibition of Nothingness (58) Empaquetage (59) Decollage (60) Optical Art or op Art (61) Optical illusion (62) BN—blanche noir ;Black white (63) Colour-field Painting (64) American Abstract Expressionists and Imagists (65) Abstract Imgists (66) Systemism, Minimal Painting etc. (67) Hard Edge Painters (68) Hard-edge Painting (69) Painterly Abstraction (70) Systemic Painting (71) Cool Art (72) Staining (73) Shaped Canvas (74) Quathlamba (75) Occurence (76) Polychrome Sculpture (77) Psychedelic Art (78) Mescaline, Psylocybin and LSD (79) अक्षरवाद—Lettrisme, वस्तुनिरपेक्ष अक्षरकला—Abstract Calligraphy, वस्तुनिरपेक्ष चित्रलिपिकला—Abstract Pictography, टाइपराइटर चित्रण Typewriter Art

भारत व आधुनिक कला

(1) Indian Sculpture and Painting by E. B. Havell (2) Galerie Pigalle (3) 'Learning a technique may provide us with a job but it

will not make us creative ; whereas if there is joy, if there is the creative fire, it will find a way to express itself'—J. Krishnamurti (4) Exhausted Pilgrims', 'Mother and Child' 'White Threads' (5) 'Ancient Whispers' (6) 'Hill Women', 'Mother India', 'Story-teller', 'Child-wife' (7) 'Brahmacharis', 'Bride's Toilet'. 'Fruit Vendors' (8) Triemale of Contemporary Art.

पारिभाषिक शब्दावली

अग्रगामी—Avant Garde
अग्रभूमि—Foreground
अचेतन—Subconscious
अतियथार्थ—Surreality
अतियथार्थवाद—Surrealism
अनियंत्रित कला—l'art informel
अनुकृति—Imitation
अनुपात—Proportion
अभिव्यंजना—Self-expression
अभिव्यंजनावाद—Expressionism
अवकाश—Space
अवकाशवाद—Spatialism
अस्तित्ववाद—Existentialism
अक्षरकला—Typography
अक्षरवाद—Lettrisme
अंकनपद्धति—Technique
अंतर्मन—Inner mind, Subconscious
अंतिम सत्य—Ultimate Reality
आकारित पट—Shaped Canvas, आकस्मिकता—Casualness
आगम—Approach
आत्मचित्र—Self-portrait
आत्मतत्वीय चित्रण—Metaphysical Painting
आत्मिक अभिव्यक्ति—Self-expression
आदर्शवाद—Idealism
आदिम—Primitive
आदिम कला—Primitive Art

आदिमवाद—Primitivism
आर्नुवो—Art nouveau
आलेखन कला—Graphics
आलंकारिक—Ornamental, Decorative
आलंकारिकता, आलंकारित्व—Decoration
आवेष्टनचित्र—Book Cover, Book Jacket
आंतरिक—Inner
आंतरिक रहस्य—Inner mystery
आंतरिक सत्य—Inner Truth
उत्तर-अभिव्यंजनावाद—Post-Expressionism
उत्तर-घनवाद- Post-Cubism
उत्तर-चित्रणात्मक वस्तुनिरपेक्षत्व—Post-painterly Abstraction
उत्तर-प्रभाववाद—Post-impressionism
उपयुक्त कला—Applied art
उपयुक्ततावाद—Utilitarianism
उष्ण रंग—Warm Colour
एकल प्रदर्शनी—One-man show
एक्वाटिंट—Aquatint
ऐंठन—Distortion
ऐंठनदार—Distorted
ऐंद्रिक—Sensuous
कथनात्मक—Communicative
कथाचित्रण—Story-illustration
कठोर-किनार चित्रण—Hard-edge painting
कलाकक्ष—Studio
कलाविद्यालय—Art-school
कलावीथिका—Art-gallery
कल्पनावाद—Ideisme
कार्यकक्ष—Studio
कार्यात्मक Functional
कार्यात्मकता—Functionality, कालव्यापी घनवाद--Epic Cubism
काष्ठखुदाई—Wood-Carving
किरणवाद—Rayonism
कुंजीछिद्र दृश्य—Key-hole vision

कौशल—Skill

क्रमवद्ध चित्रण—Systemic painting

क्रमवद्ध दृष्टि—Consecutive vision

क्रियात्मक चित्रण—Action painting

क्रियात्मक चित्रकार—Action painters

क्लाइसोनिज़म—Cloisonnism

गूढाक्षर—Hieroglyphics

घटनाएं—Happenings

घन—Cube

घनत्व—Effect of solidity or third dimension

घनत्वांकन—Chioroscuro

घनवाद—Cubism

चतुर्थी मिति—Fourth dimension

चित्रकला कक्ष—Painter's studio

चित्रण चाकू—Painting knife

चित्रलिपि—Pictograph

चित्रलिपिकला—Pictography

चित्रक्षेत्र—Picture-surface, Pictorial space

छटा—Tone

छापचित्र—Prints

छायाचित्रण—Photography

छाया-प्रकाश—Shade and light

जडवाद—Materialism

जनतंत्रवादी कला—Democratic Art

जादूमय यथार्थवाद—Magical Realism

जापानवाद—Japonisme

जैविक—Organic

ज्यामितीय—Geometric

ठंडे रंग · Cool Colours

ठंडी कला—Cool Art

तर्कशुद्ध—Logical

तिपायी-चित्र—Easel-painting

तूलिका—Brush

तूलिका संचालन—Brushing

त्रिमितियुक्त—Three dimensional
त्रिपट—Triptych
दीवार-कागज—Wall-paper
दीवार-चित्र—Wall-painting
दीवार पर्दा—Tapestry
दूर दृश्यलघुता—Perspective, दृश्य—Visual
दृष्टिजन्य मिश्रण—Optical mixture
दृष्टिकोण—Angle of vision (केवल पारिभाषिक प्रयोग में)
द्विमितियुक्त—Two dimensional
द्विपट—Diptych
द्विप्रतिम—Double-image
धब्बावाद—Tachisme
नव आदिमवाद—Neo-primitivism
नव यथार्थवाद—New Realism
नव लचीलवाद—Neo-plasticism
नव शास्त्रीयतावाद—Neo-classicism
नाबि—Nabis
नाबिवाद—Nabism
निजी रंग—Local Colour
नियंत्रण—Control
नियंत्रित तूलिका-संचालन—Controlled brushing
निर्माण कला—Creative art
निर्वस्तुवाद—Non-objectivism
निसर्गवाद—Naturism
निसर्ग-रूप-सादृश—Representation, trompe l'oeil
नुवो कला—Art nouveau
नेत्रपटलीय—Retinal
नेत्रीय कला—Optical art, Op art
नैसर्गिक—Natural
नैसर्गिकतावाद—Naturalism
पट—Canvas
पदार्थ चित्रण—Matter-painting
परस्परारोपित—Superimposed
परिचयवाद—Intimism

परिसीमित घनवाद—Epic Cubism
परोक्ष—Direct
पलायनवाद—Escapism
पवित्र अनुपात—Holy proportion
पर्श्वाय मुखाकृति=Profile
पॉप कला—Pop art
पुनर्जागरण—Renaissance
पुरातत्वीय—Archaeological
पूरक रंग—Complementary Colours
पूर्वकल्पना—Design
प्रकृति-चित्रण—Nature painting
प्रचलन—Fashion
प्रतिमा—Image, Icon
प्रतिमा-चित्रण—Icon-painting
प्रतिमावाद—Imagism
प्रतिकृति—Imitation
प्रतिरूप—Representation
प्रतीक—Symbol प्रतीकवाद—Symbolism
प्रतीकात्मक—Symbolic
प्रत्यक्ष कला—Concrete art
प्रदर्शन-खिड़की—Display Window
प्रभाववाद—Impressionism
प्रक्षेपक—Projector
प्रिराफेलाइटस—Pre.Raphaelites
पृथक्करण—Analysis, Abstraction
पृष्ठभूमि—Background
फलक चित्र—Wood-panel
फाववाद—Fauvism
फैलाव-पद्धति—Staining technique
वनीवनायी—Readymades
वलरेखा—Accent, or line of force
वहुमितियुक्त—Multi-dimensional, वालचित्रकला—Child art
वाह्यरेखा—Outline

बिंदुवाद—Pointillism
बुनावट—Texture
बुद्धिवाद—Intellectualism
भविष्यवाद—Futurism
भंवरवाद—Vorticism
भित्तिचित्रण—Mural Painting
भूचित्र—Landscape
भूरे रंग—Gray Colours
भौतिकवाद—Materialism
भ्रष्ट कला—Degenerate art
मनोवर्धक कला—Psychedelic art
मध्ययुगीन—Mediaval
महत्तर यथार्थ—Greater Reality
मानव शरीर चित्रण—Painting of Human figure
मिति—Dimension
मिश्रणफलक—Palette
मिश्र-माध्यम-निर्माण—Mixed-Media-Production
मोटी परत—Impasto
यथार्थ—Reality
यथार्थ अतियथार्थवाद—Verist Surrealism
यथार्थ अभिव्यंजनावाद—Verism
यथार्थवाद—Realism
रचनावाद—Constructivism
रहस्यवाद—Mysticism
रद्दी-मूर्तिकला—Junk Sculpture
रंगकार—Painter
रंगांकन—Painting
रंगांकन पद्धति—Painting Technique
रंग संगति—Colour Scheme
रंग क्षेत्रीय चित्रण—Colour-field painting
रंगीन कांचचित्र—Stained glass
रूपांतर—Metamorphosis, Transformation
रूपांतर्गत तत्त्व—Formal Elements
रेखाकार—Draughtsman

रेखात्मक—Linear
रेखात्मक दूर दृश्यलघुता—Linear perspective
रेखांकन—Drawing
रॉकेय—Rocaille
रॉकॉको—Rococo
रोमां—Romans
रोमांचवाद या रोमांसवाद—Romanticism
रोमानेस्क—Romanesque, लघुचित्रण शैली—Miniature Painting
लचीला आकार—Plastic form
लचीली कला—Plastic art
लचीलापन—Plasticity
लय—Rhythm
लयबद्ध—Rhythmic
लोक कला—Folk art
वर्णक्रम—Spectrum
वस्तुनिरपेक्ष—Abstract
वस्तुनिरपेक्षत्व—Abstraction
वस्तुनिरपेक्ष अतियथार्थवाद—Abstract Surrealism
वस्तुनिरपेक्ष अभिव्यंजनावाद—Abstract Expressionism
वस्तुनिरपेक्ष प्रभाववाद—Abstract Impressionism
वस्तुसादृश्य—Representation, Trompe l'oeil
वातावरण—Environment
वातावरणीय दूरदृश्यलघुता—Aerial prespective
वास्तुकला—Architecture
वास्तुकार—Architect
वास्तु सदृश, वास्तु तुल्य—Architectural
विकृति—Distortion
विनाशवाद—Nihilism
विभाजनवाद—Divisionism
विरोध—Contrast
विरोधाभास—Paradox
विवस्त्र—Nude विशुद्धवाद—Purism
विश्लेषणवाद—Synthetism
विश्लेषणात्मक—Synthetic

विश्लेषणात्मक घनवाद—Synthetic Cubism
विज्ञापन-कला—Advertising
विज्ञापन-चित्र—Poster
वीथिका—Gallery
वेनिस द्विवार्षिक—Venice Biennale
व्यक्ति चित्रण—Portrait painting
व्यक्तिवाद—Individualism
व्यापक-प्रभाव-चित्रण—Over-all painting
व्यापारिक कला—Commercial art
शास्त्रीयतावाद—Classicism
शास्त्रशुद्ध—Classical
शिल्पीसंघ—Artists' guild
शंकु—Cone
श्रव्य—Audible
समकोण—Right angle
समतल—Plane
समतल रंगांकन—Flat Colouring
समपात दृष्टि—Total vision
समयावच्छेद—Simultaneity
समरूप—Epuivalent form
समीपीकरण—Juxtaposition
समीपवर्ती—Juxtaposed, सम्मिति—Symmetry
सरलीकरण—Simplification
सरलीकृत—Simplified
सर्वोच्चवाद—Suprematism
सहज प्रवृत्ति—Instinct
सहजसिद्ध कला—Naive Art
सहजस्फूर्त—Spontaneous
सहजज्ञान—Intuition
संकलन (कला)—Assemblage
संतुलन—Balance
संयोग—Accident
संयोगजनित—Accidental
संयोजन—Composition

संश्लेषणवाद—Synthetism
संश्लेषणात्मक घनवाद—Synthetic Cubism
समाजवादी यथार्थवाद—Socialist Realism
सामाजिक यथार्थवाद—Social Realism
साहचर्यभाव—Association
सुरीलवाद—Orphism
सुवर्ण अवच्छेद—Golden Section, Section d'or
सुसंगति—Harmony
सुसंवादित्व—Concord
सुस्थापन—Proper placing or Organisation
सृजन क्रिया—Creativity
सृजनात्मक प्रक्रिया—Creative process
सृजन प्रवृत्ति—Creative instinct
स्थानीकरण—Localisation, स्थानांतर—Displacement
स्पर्शीय—Tactile
स्मारकीय—Monumental
स्मृति व्याकुलता—Nostalgia
स्याही शैली—Ink painting, स्वच्छंद शैली—Free manner
स्वयंचालन—Automatism
स्वयंचालित क्रिया—Automatic action
स्वयंस्फूर्त—Spontaneous
हस्तकला—Handicrafts
हास्य-चित्र-मालिका—Comic Strip
हृदय-स्पंदन-आलेख—Cardiogram
क्षणिक दृष्टि, क्षणिक दृष्टिपात—Instanstaneous vision

विशेष नामावली

अकादेमी ज्यूलिआं Academie Julian
अकादेमी युम्बेर Academie Humbert
अकादेमी रान्सों Academie Ranson
अकादेमी स्विस Academie Suisse
अपोलिनेर ग्वियोम Apollinaire Guillaume
अर्बें ओग्युस्त Herbin Auguste
अँग्र ज्यां ओग्युस्त दोमिनिक Ingres Jean Auguste Dominique
ॲलोवे लॉरेन्स Alloway Lawrence
आइवरी कोस्ट Ivory Coast
आगाम (याकोव गिप्स्टैन) Agam (Yaacov Gipstein)
आजेरो Agero
आस्बे आंटोन Azbe Anton
आनुस्कीवित्स रिशर्ड Anuskiewitz Richard
आंक्वेतँ लुई Anquetin Louis
आंटवर्प Antwerp
आंदल केल Andler Keller
आप्पेल कारेल Appel Karel
आफ्रो बासाल्डेला Afro Basaldella
आमर्सफुर्ट Amersfoort
आमिएट क्युनो Amiet Cuno
आम्स्टरडाम Amsterdam
आरागोन Aragon
आरागों लुई Aragon Louis
आर्चिपेन्को आलेक्सांडर Archipenko Alexander
आर्जांतां Argentan
आर्जांत्विल Argentuil

आर्नुवो Art-nouveau
आर्प ज्यां (हान्स) Arp Jean (Hans)
आर्मरी प्रदर्शनी Armory Show
आर्मान (ओगस्टिन फर्नांडिज) Arman (Augustin Fernandez)
आर्ल Arles
आर्सिम्बोल्डो ग्विसेप Arcimbold Ginseppe
आल हेल्ड Al Held
आलेचिन्स्की पियर Alechinsky Pierre
आल्बेर्स योसेफ Albers Josef
आवरिल जान Avril Jane
आस्त्रुक जाखारी Astruc Zachari
आस्सी गिरजाघर Assy Church
इन्डियाना रॉबर्ट Indiana Robert
इन्नेस जेम्स Innes James
इबेरियन Iberian
इब्सेन हेन्रिक Ibsen Henrik
इस्राएल्स योसेफ Israels Joseph
उच्चेलो पाओलो Uccello Paolo
उत्रियो मोरिस Utrillo Maurice
उर्सुला Ursula
ए (एक स्थान) Aix
एकोल द आर देकोरातिफ Ecole des Arts Decoratifs
एकोल द बोजार Ecole des Beaux Arts
एग्गेलिंग वाइकिंग Eggeling Viking
एजां प्रोवान्स Aix-en-Provence
एट्टेन Etten
एन्डेल औगुस्ट Endell August
एन्सोर जेम्स Ensor James
एफेल मिनार Eiffel Tower
एर्न्स्ट माक्स Ernst Max
एर्ब्स्लो आडोल्फ Erbsloh Adlof
एलियट जॉर्ज Eliot George
एलियट टी. एस्. Eliot T. S.
एल्ग्रेको (डोमेनिकोस थिओटोकोपुलोस) El Greco(Domenicos Theotocopoulos)

एल्वार पौल Eluard Paul
एस्तेव मोरिस Esteve Maurice
ओजांफां आमेदी Ozenfant Amedee
ओदालिस्क Odalisque
ओरिय आल्बेर Aurier Albert
ओर्ता द एब्रा Horta de Ebra
ओर्तांस Hortense
ओर्नां Ornans
ओर्पेन विल्यम Orpen Willam
ओलिस्की ज्यूल्स Olitski Jules
ओल्गा Olga
ओल्डेनबुर्ग क्लास Oldenburg Claes
ओवर Auvers
ओस्टेंड Ostend
ओस्टौस एर्न्स्ट Osthaus Ernst
ओस्लो Oslo
कॅनडे जॉन Canaday John
कॅम्डेन टाउन मंडल Camden Town Group
कॅसाट मेरी Casatt Mary
काजालि Cazalis
कादाके Cadaques
कान मार्सेल Cahn Marcelle
कानवैलर डी. एच. Kahnweiler D. H.
कानोगर राफाएल Canogar Rafael
कानोल्ट आलेक्सांडर Kanoldt Alexander
कान्ट एमान्युएल Kant Emanuel
कान्डिन्स्की वासिली Kandinsky Wassily
कान्य Cagnes
कापोग्रोसी ग्विसेप Capogrossi Giuseppe
काप्रो अॅलॅन Kaprow Allan
काफे आंद्ल केल Cafe Andler Keller
काफे ग्वेर्वा Cafe Guerbois
काफे द्यु दोम Cafe du Dome
काफे बुल्वार Cafe Boulevard

काफे ब्रासरी द मार्ति Cafe Brasserie des Martyr
काफ्का फ्रान्त्स Kafka Franz
काबानेल आलेक्सांद्र Cabanel Alexandre
काबारे वोल्तेर Cabaret Voltaire
कामीय Camille
काम्पेन्डोंक हैन्रिख Campendonck Heinrich
काम्यु आल्बेर Camus Albert
काम्वां शार्ल Camoin Charles
कारा कार्लो डी. Carra Carlo D.
कारावाज्यो माइकेल एंजेलो मेरिसि डा Caravaggio Michel Angelo Merisi d
कारिकात्युर Caricature
कारियर ओजेन Carriere Eugene
कार्नेजी पुरस्कार Carnegie Award
कार्पोरा आंटोनिओ Corpora Antonio
कालाब्रिया Calabria
काल्डर अलेक्सांडर Calder Alexander
कासिरेर पौल Cassirer Paul
कास्तान्यारी ज्यूल आंत्वान Castagnary Jules Antoine
कास्सु ज्यां Cassu Jean
कॉक्तो ज्यां Cocteau Jean
कॉन्स्टेबल जॉन Constable John
कॉन्स्टंट जॉर्ज Constant George
कॉर्नेल जोसेफ Cornell Joseph
किटाज आर. बी. Kitaj R. B.
किंग फिलिप King Phillip
किर्शनर एर्न्स्ट लुडविक Kirchner Ernst Ludwig
किस्लिंग म्वास Kisling Moise
कीनहोल्त्स एडवर्ड Kienholz Edward
कीर्कगार्ड सोरेन Kierkegard Soren
कीस्लर फ्रेडेरिक Kiesler Frederick
कुत्युर तोमा Couture Thomas
कुपका फ्रान्टिसेक Kupka Frantisek
कुबिन आल्फ्रेड Kubin Alfred
कुर्बे गुस्ताव Courbet Gustave

क्लैअँ इव Klein Yves
क्लेमां फेलि ओग्युस्त Clement Felix Auguste
गस्टन फिलिप Guston Phillip
गाबो नोम Gabo Naum
गालेन-कालेला आक्सेलि Galen Kallela Akseli
गाशे डॉ. पौल Gachet Dr. Paul
गास्के डॉ. जोआशिम Gasquet Dr. Joachim
गिद आन्द्रे Gide Andre
गिन्नर चार्लस Ginner Charles
गिम्पेल रने Gimpel Rene
गिल्मन हॅरोल्ड Gilman Harold
गिवर्नी Giverny
गुगेनहीम Guggenheim
गुपिल Goupil
गुर्लिट कलावीथिका Gurlitt Gallery
गोअर स्पेन्सर Gore Spencer
गोगोल निकोलाय Gogol Nikolaj
गोगँ पौल Gauguin Paul
गोटलिएब अॅडोल्फ Gottlieb Adolph
गोतिय तेओफिल Gautier Theophile
गोथिक Gothic
गोन्चारोवा नाटालिया Goncharova Natalia
गोया फ्रान्सिस्को Goya Francisco
गोरँ ज्यां आल्बेर Gorin Jean Albert
गोर्की आर्शाइल Gorky Arshile
गोसे डॉ. Gose Dr.
ग्री ज्वां (जोसे विक्टोरियानो गोंजालेज) Juan Gris(Jose Victoriano Gonzalez)
ग्रीनबर्ग क्लेमेंट Greenberg Clement
ग्रुट-ज्युंडर्ट Groot-Zundert
ग्रोज ज्यां बाप्तिस्त Greuze Jean Baptiste
ग्रो ज्यां आन्त्वान Gros Jean Antoine
ग्रोस्स जॉर्ज Grosz George
ग्रोपियस वाल्टर Gropius Walter
ग्र्यूनेवाल्ड मातियास Grunewald Matthias

टर्क सोनिया Terk Sonia
टर्नर जोसेफ मैलार्ड विल्यम Turner Joseph Mallord William
टाटलिन व्लाडिमीर Tatlin Vladimir
टानौसेर कलावीथिका Thannhauser Gellery
टापीज आंटोनी Tapies Antoni
टाहिटि Tahiti
टिन्टोरेटो Tintoretto
टिलसन जो Tilson Joe
टिशिआं Titian
टुर्काटो गिलिओ Turcato Giulio
टोबी मार्क Tobey Mark
टोलेडो Toledo
टौबर-आर्प सोफी Tauber-Arp Sophie
ट्यु निशिया Tunisia
ट्यु निस Tunis
ट्यु रा कोसिमो Tura Cosimo
ट्यु रिन Turin
ट्रोवा अर्नेस्ट Trova Ernest
ट्वोकोंव जॅक Twokov Jack
डाइन जिम Dine Jim
डाखौ Dachau
डाली साल्वाडोर Dali Salvador
डिआघिलेव सर्ज Diaghilev Serge
डि कुनिंग विल्लेम De Kooning Willem
डिक्विन्सी De Quincy
डिक्स ओटो Dix Otto
डि स्टाइल De Stijl
डि स्मेट गुस्टाव De Smet Gustave
डी नाय जाक्लिश्काइट Die Neue Sachlichkeit
डी ब्यूके Die Brucke
डेनिस नेस्सोस Daphnis Nassos
डेर ब्लौ राइटेर Der Blaue Reiter
डेर स्टुर्म Der Sturm
डेसौ Dessau

देल्वो पौल Delvaux Paul
देवान ज्यां Dewasne Jean
देवालियर जॉर्ज Desvallieres Georges
दोबिन्यी शार्ल Daubigny Charles
दोमिग्वेज ऑस्कर Dominguez Oskar
दोमीय ओनोरे Daumier Honore
दोरा मा Dora Maar
दोर्जेले रोलां Dorgeles Roland
द्यु प्र ज्यूल Dupres Jules
द्यु फि रौल Dufy Raoul
द्यु फ्रें फ्रान्स्वा Dufresne Francois
द्यु ब्युफे ज्यां Dubuffet Jean
द्यु मों पियर Dumond Pierre
द्यु रांति एद्मों Duranty Edmond
द्यु रां रुएल Durand Ruel
द्यु रे तेओदोर Duret Theodore
द्यु शां मार्सेल Duchamp Marcel
नाइ एर्न्स्ट विलेल्म Nay Ernst Wilhelm
नातांसों तादे Natanson Thadee
नादा Nadar
नाबि Nabis
नाय कुन्स्ट्लर वेरैनिगुंग Neue Kunstler Vereinigung
नाय जेचेसिओन Neue Secession
नार्थ कॅरोलिना North Carolina
नॉब्लॉश मादलेन Knobloch Madeleine
नॉर्मंदी Normandie
निकोल्सन बेन Nicholson Ben
नीत्शे फ्रीडरिख Nietzsche Friedrich
नेपल्स Naples
नेवल्सन लुई Nevelson Louisse
नेविन्सन सी. आर. डब्ल्यू Nevinson C. R. W.
नोत्रदाम Notredame
नोलॅंड केनेथ Noland Kenneth
नोल्ड एमिल Nolde Emil

पों आवां Pont Aven
पोलाक जेक्सन Pollock Jackson
पोलिआकोफ सर्ज Poliakoff Serge
पौंड एज्रा Pound Ezra
प्रँस्तो रने Princeteau Rene
प्राम्पोलिनी एन्रिको Prampolini Enrico
प्रिराफेलाइट्स PreRaphaelites
प्री द रोम Prix de Rome
प्रुदां पियर जोसेफ Proudhon Pierre Joseph
प्रेंडरगास्ट मोरिस Prendergast Maurice
प्रोवान्स Provence
प्लेटो Plato
प्युय ज्यां Puy Jean
फादर जांविय Father Janvier
फांतें-लातुर आंरी Fantin-Latour Henri
फांतेना आन्द्र Fontaina Andre
फांतेन ज्यां द ला Fontaine Jean de La
फांतेनब्लो Fontainebleau
फायरबाख आन्सेल्म Feuerbach Anselm
फाल्स्ट्रॉम ओयविंड Fahlstrom Oyvind
फॉन स्टुक फ्रान्त्स Von stuck Franz
फिलिजे शार्ल Filiger
फिलिप शार्ल लुई Phillipe Charles Louis
फिलिप्स पीटर Phillips Peter
फिश्ट Fichte
फीली पौल Feeley Paul
फुजिटा त्सुगुहारु Foujita Tsugouharu
फेनेओ फेलि Feneo Felix
फेरारा Ferrara
फेटो लुई Feito Luis
फेनिंगर लायोनेल Feininger Lyonel
फोत्रिय ज्यां Fautrier Jean
फोन्टाना ल्युसिओ Fontana Lucio
फोरें ज्यां-लुई Forain Jean-Louis

फ्युसेलि योहान हैन्रिख Fuseli Johann Heinrich
फ्राइड सिग्मुंट Freud Sigmund
फ्राइंड्लिख ओटो Freundlich Otto
फ्रागोनार ज्यां ओनोरे Fragonard Jean Honore
फ्रान्सिस सॅम Francis Sam
फ्रान्सेस्का पायरो डेला Francesca Piero Della
फ्राय रोजर Fry Roger
फ्रिज ओतों Friesz Othon
फ्रीड्रिख कास्पर डाविड Friedrich Caspar David
फ्रीड्रिश्टाट क्वार्टर Friedrichstadt Quarter
फ्रेन्केनथेलर हेलेन Frankenthaler Helen
फ्रेस्नाय रोज द ला Fresnaye Roger de La
फ्लान्द्रँ Flandrin
फ्लोवर गुस्ताव Flobert Gustave
फ्लोरेन्स Florence
फ्लोशेताज Flochetage
फ्वेन्डेटोस Fuendetos
बरोक Baroque
बर्गसां आंरी Bergson Henri
बर्न Bern
बर्नार एमिल Bernard Emile
बर्नार त्रिस्तां Bernard Tristan
बर्नैमजोन कलावीथिका Bernheim-Jeune Galerie
बर्लिन Berlin
बर्लिन जेचेसिओन Berlin Secession
बल्ला ज्याकोमो Balla Giacomo
बाख जे. एस्. Bach J. S.
बाजिओटस् विल्यम Baziotes William
बाजीय ज्यां फ्रेदेरिक Bazille Jean-Frederic
बाजेन ज्यां Bazaine Jean
बातो लाव्वा Bateau Lavoir
बार्गेल्ट जे. टी. Baargeld J. T.
बार्टलिंग ओल Baertling olle
बार्नेस आल्बर्ट सी. Barnes Albert C.

बार्बिजां Barbizon
बार्लाख एर्न्स्ट Barlach Ernst
बार्सिलोना Barcelona
बाल्जाक ओनोरे द Balzac Honore de
बाल्थु Balthus
बावारिया Bavaria
बासलर आडोल्फ Basler Adolphe
बॉकलिन आर्नोल्ड Bocklin Arnold
बॉम्बा कामीय Bombois Camille
बॉये एमिल Boyer Emile
बॉल ह्यूगो Ball Hugo
बॉश हीरोनिमस Bosch Hieronymus
बिअर्डस्ले ऑब्रे Beardsley Aubrey
बिजांटाइन Byzantine
बिरोली रेनाटो Birolli Renato
बिल माक्स Bill Max
बिसियर रोज Bissiere Roger
बिस्सीर युल्युस Bissier Julius
बीटल्स् Beatles
बीरबौम ओटो युल्युस Bierbaum Otto Julius
बुक्शाइम लोतार ग्युंतर Buccheim Lothar Gunther
बुगिवाल Bougival
बुग्वेरो आदोल्फ व्याम Bouguereau Adolphe William
बुदें ओजेन Boudin Eugene
बुर्री आल्बर्टो Burri Alberto
बुर्ल्युक डाविड Burljuk David
बुर्ल्युक व्लाडिमीर Burljuk Vladimir
बुल्गारिया Bulgaria
बुशे फ्रान्स्वा Boucher Francois
बेकन फ्रॉन्सिस Bacon Francis
बेकमन माक्स Beckmann Max
बेंटन टॉमस Benton Thomas
बेल क्लाइव्ह Bell Clive
बेलोस जॉर्ज Bellows George

ब्लेयल फ्रित्स Bleyl Fritz
ब्लौ राइटेर Blaue Reiter
मट्टा एशोरें सेबास्टियन अंन्टोनिओ Matta Echaurren Sebastian Antonio
मदरवेल रॉबर्ट Motherwell Robert
मर्क्युर द फ्रान्स Mercure de France
मर्त्स Merz
मर्त्सबिल्ट Merzbild
मर्त्सबौ Merzbau
मलागा Malaga
मॅक्डोनल्ड-राइट स्टॅन्टन Macdonald-wright Stanton
मॅग्नेलि आल्बर्टो Magnelli Alberto
मॅन रे Man Ray
मॅरिन जॉन Marin John
माइकेल एंजेलो ब्युनार्रोटि Michel Angelo Buanarroti
माके औगुस्ट Macke August
माकेन्सेन Mackensen
माक्सवेल Maxwell
माग्रिट रने Magritte Rene
मातिस आंरी Matisse Henri
मात्यु जॉर्ज Matthieu Georges
माने एद्वार Manet Edouard
मानेसिय आल्फ्रे Manessier Alfred
मानैम कलावीथिका (कुंस्ताल) Manheim Kunsthalle
मांग्वँ आंरी-शार्ल Manguin Henry-charles
मांटेना आंद्रिया Mantegna Andrea
मांत्स पौल Mantz Paul
मायरो जोन Miro Joan
मारा Marat
मारिनेत्ति फ़िलिप्पो टोम्मासो Marinetti Filippo Tomasso
मारी तेरेस Marie Therese
मारीस हान्स फॉन Marees Hans Von
मार्क फ्रान्त्स Marc Franz
मार्कुसिस लुई Marcoussis Louis
मार्क्वे आल्बेर Marquet Albert

मार्क्वेसास Marquessas
मार्क्स रोजर Marx Roger
मार्खाम एड्विन Markham Edwin
मार्टिनिक Martinique
मार्तिने कलावीथिका (गालेरी) Martinet Galerie
मार्लि Marly
मार्शां आन्द्रे Marchand Andre
मार्सेय Marseilles
मार्सेल Marcelle
मालर आमा Mahler Alma
मालार्मे स्तेफान Mallarme Stephane
मालेविच कासिमीर Malevich Kasimir
मास Maes
मासाच्चिओ Masaccio
मास्सों आन्द्रे Masson Andre
मॉव आंटोन Mauve Anton
मिनोतोर Minotaure
मिलारेज मान्युएल Millares Manuel
मिले ज्यां फ्रान्स्वा Millet Jean Francois
मिशेलि मारिओ डि Micheli Mario de
मिशेले ज्यूल Michelet Jules
मिशो आंरी (हेन्री-वेल्जियन) Michaux Henri
मुंख एडवार्ड Munch Edvard
मुलँ Moulins
मुलँ रुज Moulin Rouge
मेजिंजे ज्यां Metzinger Jean
मेन्त्सेल Menzel
मेन्से Mense
मेयर-आम्डेन ओटो Meyer-Amden Otto
मेरिंक गुस्टाव Meyrink Gustav
मेलेनेशियन Melanesian
मैटनर लुडविक Meidner Ludwig
मैर ग्राफे युल्युस Meiere-Graefe Julius
मोक्ले कामीय Mauclair Camille

मोजेस ग्रेंड मा (अॅना मेरी रॉबर्टसन) Moses Grandma (Anna Mary Robertson)
मोडरसोन-बेकर पौला Modersohn-Becker Paula
मोदिल्यानी आमेदिओ Modigliani Amedeo
मोने क्लोद Monet Claude
मोंतिचेलि Monticelli
मोंद्रियां पियट (मोंद्रियान-डच) Mondrian Piet
मोंपार्नास Montparnasse
मोंफ्री जॉर्ज दानियल द Monfried Georges Daniel de
मोंमार्त्र Montmartre
मों सेंत विक्त्वार Mont Sainte Victoire
मोपासां ग्युय द Maupassant Guy de
मोरांदी ज्योर्जिओ Morandi Giorgio
मोरियाक Mauriac
मोरिसो बर्त Morisot Berthe
मोरेआ ज्यां Moreas Jean
मोरेनी मात्तिआ Moreni Mattia
मोरो गुस्ताव Moreau Gustave
मोर्टेनसेन रिशर्ड Mortensen Richard
मोहोली-नागी लास्लो Moholy-Nagi Laszlo
म्युनिक (ख) Munich
म्युनिक जेचेसिओन Munich Secession
म्युंटर गाब्रियल Munter Gabriel
म्युलर ओटो Muller Otto
यंगरमन जॅक Youngerman Jack
याकोव माक्स Jacob Max
यांको मार्सेल Janco Marcel
यालेन्स्की आलेक्सेय वॉन Jawlensky Alexej Von
यिड्डीश नाटकगृह Yiddish Theatre
युइद विलेल्म (उडे-जर्मन) Uhde Wilhelm
युइमां योरिस कार्ल (हुयमान्स-जर्मन) Huymans Joris Karl
युगेंट Jugend
युगेंटस्टिल Jugendstil
योंकिंड योहान बार्टोल्ड Jangkind Johann Bartold

रेदों ओदिलों Redon Odilon
रेनाल मोरिस Raynal Maurice
रेन्यान्त आंरी Regnault Henri
रेन्वा ओग्युस्त Renoir Auguste
रेम्ब्रांट Rembrandt
रे रॉबर्ट Ray Robert
रेवर्दी पियर Reverdy Pierre
रेस्तानि पियर Restany Pierre
रैनार्ट माक्स Reinhardt Max
रैनोल्ट Reinholdt
रोचेंको आलेक्सांडर Rodchenko Alexander
रोथ्को मार्क Rothko Mark
रोदें ओग्युस्त Rodin Auguste
रोमानेस्क Romanesque
रोल्फ्स ख्रिस्टियन Rohlfs Christian
रोसेनबर्ग हॅरोल्ड Rosenberg Harold
रोसेन्क्विस्ट जेम्स Rosenquist James
रोह फ्रान्त्स Roh Franz
रौशेनबर्ग रॉबर्ट Rauschenberg Robert
ल आव्र Le Havre
ल कार्ब्युसिय (ज्यांनेरे) Le Corbusier (Jeanneret)
ल ग्रांद रिव्यु Le Grande Revue
ल नें लुई Le Nain Louis
ल पुल्दु Le Pouldou
ल फिगारो Le Figaro
ल फोकोनिय आंरी Le Fauconnier Henri
ल ब्र्युं विजो Le Brun Vigee
ल मोल ज्यां Le Moal Jean
ल वँ Le Vingt
ल शारिवारि Le Charivari
ल शातो Le Cateau
लँगहेमर Langhammer
लँगस्नर ज्यूल्स Langsner Jules
लाकास योसेफ Lacasse Joseph

ला कारिकात्युर La Caricature
ला तुर जॉर्ज द La Tour Georges de
लांस्कोय आन्द्रे Lanskoy Andre
लाप्राद पियर Laprade Pierre
ला बोएति कलावीथिका (गालेरी) La Boetie Galerie
लामोत लुई Lamothe Louis
लारियोनोव नाटालिया Larinov Natalia
लारियोनोव मिखाईल Larinov Mikhail
लावाल शार्ल Laval Charles
ला स्योता La Ciotat
लिओनार्डो डा विंचि Leonardo Da Vinci
लिंडनर रिशार्ड Lindner Richard
लिपशित्स जाक Lipchitz Jacques
लिमोज Limoges
लिश्टेनस्टैन रॉय Lichtenstein Roy
लिसित्स्की एल Lissitzky El
लीबरमन माक्स Liebermann Max
लुई मोरिस Louis Morris
लुलिय शार्ल Lhullier Charles
लुवेसिएन Louveciennes
लुव्र Louvre
लुस आडोल्फ Loos Adolf
लेजे फर्नां Leger Fernand
लेरॉय लुई Leroy Louis
लेविस विंडहॅम Lewis Windham
लेस्ताक L'Estaque
लैब्ल विलेल्म Leibl Wilhelm
लोत्रेयमों काँत द Lautreamont Comte de
लोरांसँ मारी Laurencin Marie
लोरें क्लोद Lorrain Claude
लोला द वालान्स Lola de Valence
लोस रिशार्ड पौल Lohse Richard Paul
ल्युकिन स्वेन Lukin Sven
ल्युक्सेम्बुर Luxembourg

शावान प्युवि द पियर Chavannes Puvis de Pierre
शिफ्लर कार्ल Schiffler Karl
शिरिको ज्योर्जिओ डि Chirico Giorgio de
शीरबार्ट पौल Scheerbart Paul
शुकिन सर्जेय Shchukin
शुफानेक एमिल Schuffenecker Emile
शेरबुर Cherbourg
शेलि Chailly
शेवरोल मिशेल ओजेन Chevreul Michel Eugene
शोनबर्ग आर्नोल्ड Schonberg Arnold
शोनमाकर्स एम. जे. एच्. Schoenmaekers M. J. H.
शोपेनऔर आर्तुर Schopenhaur Arthur
श्नाइडेर जेरार्ड Schneider Gerard
श्मिट गेओर्ग Schmidt Georg
श्मिट-रोटलुफ कार्ल Schmidt-Rottluff Karl
श्रिंफ गेओर्ग Schrimpf Georg
श्लेमर ओस्कर Schlemmer Oskar
श्लेस्विग-होल्स्टैन Schleswig-Holstein
श्विटर्स कुर्ट Schwitters Kurt
श्विंड Schwind
सटर डेविड Sutter David
सदरलैंड ग्रैहम Sutherland Graham
समारस ल्युकास Samaras Lucas
सर्क्ल-ए-कारे Cercle-et-Carre
सर्वरांक विक्टोर Servranckx Victor
सलिवान पॅट्रिक Sullivan Patrick
सलों द आर अँकोएरां Salon de Art Incoherents
सलों द अँदेपांदां Salon des Independants
सलों दातोम Salon d'Automne
सॅक्स पौल Sachs Paul
सँजिय गुस्ताव Singier Gustave
सॅंडलर आयर्विंग Sandler Irving
सांतोमासो ग्विसेप Santomaso Giuseppe
सामों आन्द्रे Salmon Andre

सोरा जॉर्ज Seurat George
सोर्बोन Sorbonne
सोसिएते नासनाल द बोजार Societe Nationale de Beaux Arts
सौरा आंटोनिओ Saura Antonio
स्टॅमोस थिओडोर Stamos Theodore
स्टाइल Stijl
स्टिअर फिलिप विल्सन Steer Phillip Wilson
स्टिल क्लिफोर्ड Still Clyfford
स्टीगलित्स आल्फ्रेड Stieglitz Alfred
स्टुटगार्ट Stuttgart
स्टुडिओ स्विस Studio Suisse
स्टेन गर्ट्रूड Stein Gertrude
स्टेन लिओ Stein Leo
स्टेनर Steiner
स्टेल्ला फ्रॅन्क Stella Frank
स्टोल्बाख Stolbach
स्टोवे Stowe
स्ट्राविंस्की इगोर Strawinsky Igor
स्ट्रिझोस्की योसेफ Strwyowski Josef
स्ट्रिंडबर्ग ओगुस्ट Strindberg August
स्ताएल निकोल द (स्टाएल निकोलस-रशियन) Stael Nicholas de
स्पित्सवेग Spitzweg
स्पेन्सर स्टॅन्ले Spencer Stanley
स्मिथ डेविड Smith David
स्मिथ रिचर्ड Smith Richard
स्मिथ लिओं पोल्क Smith Leon Polk
स्मिथसन रॉबर्ट Smithson Robert
स्मिलोविचि Smilovitchi
स्युर्लिओनिस मायकोलास Ciurlionis Mykolas
स्लुइटर्स यान Sluyters Jan
स्लेवोट माक्स Slevogt Max
हर्शफिल्ड मोरिस Hirshfield Maurice
हॅमिल्टन रिचर्ड Hamilton Richard
हानोवर Hanover

अभ्यसनीय ग्रंथ

(1) Archer W. G. 'India and Modern Art' London 1959
(2) Arnason H. H. 'History of Modern Art' London 1969
(3) Apollinaire G. 'The Cubist Painters' N. Y. 1949
(4) Ballo G. 'Modern Italian Painters from Futurism to the Present Day' London 1958
(5) Barnes A. 'The Art in Painting' N. Y. 1937
(6) Barr A. H. 'Masters of Modern Art' N. Y. 1954
(7) Barr A. H. 'Cubism and Abstract Art' N. Y. 1936
(8) Baudelaire C. 'The Mirror of Art' London 1955
(9) Brion M. and others 'Art since 1945' London 1958
(10) Canaday J. 'Mainstreams of Modern Art' London 1959
(11) Cassou J. ; Langui E. and Pevsner M ; 'Sources of Modern Art' London 1962
(12) Collingwood R. G. 'Principles of Art' London 1963
(13) Crespelle J. P. 'The Fauves' London 1962
(14) Dorival B. 'Twentieth Century Painters' (2 Vols) N. Y. 1958
(15) Focillon H. 'The Life of Forms in Art' N. Y. 1958
(16) Friedenthal R. (Ed.) 'Letters of the Great Artists (2 vols.), London 1964
(17) Fry E. 'Cubism' London 1966
(18) Fry Roger 'Vision and Design' London 1937
(19) Gauguin P. 'Intimate Journals' N. Y. 1936
(20) Goldwater and Treves M. Artists on Art' London 1947
(21) Goodrich L. and Baur J. I. H. 'American Art of the Twentieth Century' London 1962
(22) Grohmann W. (Ed.) 'Art of our Time' London 1966
(23) Grohmann W. 'Painters of the Bauhaus' London 1962
(24) Haftmann 'Painting in the Twentieth Century (2 Vols.) London 1965
(25) Herbert R. L. 'Neo-Impressionism' N. Y. 1968
(26) Herbert R. L. 'Modern Artists on Art' New Jersey 1964
(27) Kandinsky W. 'Concerning the Spiritual in Art' London 1959
(28) Kaprow A. 'Assemblage, Environments and Happenings N. Y. 1966

(29) Klee P. 'On Modern Art' London 1948
(30) Klee P. 'The Thinking Eye' 1964
(31) Lippard L. R. 'Pop Art' London 1966
(32) Lucie-Smith E. 'Movements in Art Since 1945' London 1969
(33) Malevich K. 'The Non-Objective world' Chicago 1959
(34) Mondrian P. 'Plastic Art and Pure Plastic Art and other Essays' N. Y. 1947
(35) Muller J. E. 'Fauvism' London 1967
(36) Myers B. S. 'Expressionism' London 1963
(37) Pellegrini A. 'New Tendencies in Art' N. Y. 1966
(38) Ponente N. 'Modern Painting : Contemporary Trends' N. Y. 1960
(39) Raynal M. and others 'History of Modern Painting' (3 Vols.) Geneva 1949-50
(40) Raynal M. 'Modern Painting' N. Y. 1960
(41) Read H. 'Concise History of Modern Painting' London 1959
(42) Rewald J. 'The History of Impressionism' N. Y. 1961
(43) Rewald J. 'Post-Impressionism from Van Gogh to Gauguin' N. Y. 1962
(44) Richter H. 'Dada : Art and Anti-art' London 1965
(45) Ritchie A. C. 'German Art of the 20 Century' London 1969
(46) Roh. F. 'German Art in the Twentieth Century' London 1969
(47) Rosenblum R. 'Cubism and Twentieth Century' London 1968
(48) Rothenstein J. 'Modern English Painters' (2 Vols.) London 1956
(49) Seuphor M. 'Abstract Painting' N. Y. 1961
(50) Tapie M. and Haga T 'Avant-Garde Art in Japan' N. Y. 1962
(51) Taylor J. C. 'Futurism' N. Y. 1961
(52) Van Gogh 'Complete Letters of Vincent Van Gogh' (3 Vols.) London 1958
(53) Waldburg P. 'Surrealism' London 1966
(54) Wilenski R. H. 'Modern French Painters' London 1954
(55) Worringer W. 'Abstraction and Empathy' London 1953

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	३०	कलाशैलियां	कलाशैलियों
८	१३	व्युं	व्यु
८	२७	नवशास्त्रवाद	नवशास्त्रीयतावाद
६	१५	विजय'	विजय'[1]
१०	७	राज्यचित्रकार	राजचित्रकार
११	१४	रूसो (१७२२-	रूसो (१७१२
१२	३	१७६२	१७६१
१३	१०	अयथार्थवाद	यथार्थवाद
१३	२६	१८५१	१८६३
१३	२८	रोमांचवादी	रोमांसवादी
१४	७	रोमांचवादी	रोमांसवादी
१८	२८	प्रतिमाओं	प्रतिमाओं
२०	२६	राज्यपरिवार	राजपरिवार
२०	३२	देगम के दो व्यक्ति	वेगम के दो व्यक्तिचित्र
२२	२८	भिओटो कोत्युलोस	थिओटोकोपुलोस
२२	३०	प्रतिभाचित्रण	प्रतिमाचित्रण
२३	२	किंतु	किंतु उनकी
२८	१३	वोदेलोर	वोदेलेर
३२	३४	नारीचित्र	नारीचित्रों में
३७	६	दैनिक-चित्र	दैनिका-चित्र
३७	३१	ओडियस	ओडिपस
४८	१८	ने प्रसिद्ध	ने राफेल के प्रसिद्ध
४६	१३	कास्तान्येरी	कास्तान्यारी
५२	११	माने	माने व
५२	३०	वाजिया	वाजीय
५४	३१	१८८२	१८८३
५६	३०,३१	प्रतिमा	प्रतिमा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६०	३	नेत्रशैत्री	नेत्रशैली
६२	२७	कास्तान्येरी	कास्तान्यारी
६४	२१	भायो	आयों
६६	३४	में सौंदर्य के	के सौंदर्य के वे
८१	२७	चित्रकार	चित्रकारी
८२	१०	वोल्ना	वोन्ना
८७	७	१६८०	१८६०
९०	१७	दोजने	दोजेन
९२	१	अपराहण	अपराह्ण
९२	४	उइमां	युइमां
९२	२०	मोंदियां	मोंद्रियां
१०२	२२	पट का	पट के
१०३	२	सेजान से	सेजान ने
१११	११	स्टोव	स्टोवे
१११	१८	मिश्र फलक	मिश्रण-फलक
११५	२३	प्रतिमाओं	प्रतिमाओं
११७	१	अतियथार्शवाद	अतियथार्थवाद
११७	१०,१२	से रेमी	सें रेमी
११९	७	२७	१७
१२१	३१	एमिल, वर्नार	एमिल वर्नार
१२२	२५	होलडर	होडलर
१२४	१४	जिसमें से 'पीला ईसा'	जिनमें से 'पीला ईसा'[48]
१२६	१६	टाहिटी	टाहिटी के
१२७	२०	प्युनि	प्युवि
१२८	१३ १४	गलती है । पार्थेनोन	गलती है ।…पार्थेनोन
१३२	१	देलरोश	देलारोश
१३२	८	वग्नर	वाग्नर
१३२	१०	वर्लेन	वर्लेन
१३२	३३	वोन्नोर	वोन्नार
१३४	१०	वॉश	वॉश
१३८	१२	वोजार्स	वोजार
१४२	२	गिल व्ला	जिल व्ला

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४२	२२	वोलार	वोलार
१४२	३०	बुग्वेरों	बुग्वेरो
१४४	४	प्रतिमा	प्रतिमा
१४७	२१	किनारे"	किनारे
१५३	१६	पिटस्ववर्ग	पिटस्वर्ग
१५५	२१	व्लामिक से	व्लामिक ने
१५५	२२	चित्र	चित्रों
१५६	१५	जला	जलाना
१५७	२५	वॅग्नर	वाग्नर
१५७	२७	१९५६	१९५४
१५७	३०	कारिय	कारियर
१५८	१६	लेज	लेजे
१६०	११	ओकस	ओकर्स
१६०	१५	में	के
१६१	८	वस्तु को	वस्तु के
१६१	१९	सुवारते	सुवारने
१६२	१४	उइमां	युइमां
१६२	२६	मानव व	मानव के
१६३	२२	उनको	उनके
१६३	३१	सर्पण	समर्पण
१६८	२९	प्रस्थापना	प्रस्थापन
१६९	२९	थे वे कहते	थे। कहते
१६९	३०	गिय व्ला	जिल व्ला
१७०	२४	अब तक	अब
१७०	३२	समय-अवकाश-सातत्य	समय-अवकाश-सातत्य[४]
१७२	१६	लेजे वे	लेजे ने
१७२	२१	पिकाविया	पिकाविया
१७२	२४	द्यु्शांप	द्यु्शां
१७९	८	जेनेरे व ओजां फां	ज्यांनेरे व ओजांफां
१७९	१९	१८८२	१८८१
१८१	१५	के यवोत	केयवोत
१८६	१२	में	व
१८६	२०	नाम से	नाम के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८७	२५	तक का	का
१९१	१५	सके"।	सके"४४
१९२	८	आवारकौशल	आवार कौशल
१९३	२८	फार्डिनांड	फर्डिनांड
१९३	३१	जीवन के	जीवन को
१९९	२	विलेल्म युईद	फ्रित्स युईद (उडें-जर्मन)
२०४	९	वर्लिन	वर्लिन में
२०४	२३	नैसर्ग	निसर्ग
२०५	८	होल्सेल	होल्ल्सेल
२०६	२९	साता	सांता
२०७	१	रिव्रस्टियन	ख्रिस्टियन
२०७	१६	खोली हुई	खाली हुई
२०७	२३	व्रोन्नार	वोन्नार
२०८	१७	ओटोम्युर	ओटो म्युलर
२०८	२४	रंगसंगति	रंगसंगति में
२०८	२९	किर्शनर ने	किर्शनर ने किया।
२१२	३३	मेके	माक
२१४	१३	ओग्युस्ट	औगुस्ट
२१४	१४	फ्रान्ज	फ्रान्त्स
२२०	३१	क्ली कला	क्ली की कला
२२२	१४	प्रकटीकरुण	प्रकटीकरण
२२३	३१	साल से	साल में
२२४	१९	पहुंचाती	पहुंचती
२२६	७	ग्रोल्स	ग्रोत्स
२२९	१८	लिसित्स्की	लिसित्स्की
२२९	३२	होल्त्से	होल्त्सेल
२३०	११	आयातकारों	आयताकारों
२३०	१९,२०	मानवप्रतिमा	मानव प्रतिमा
२३४	१०	सारे	आरे
२३४	३२	१८८५	१८८२
२३७	७	चित्रकारों	चित्रकारों का
२३७	१५	स्तेल	स्ताएल
२३७	१६	विल्लों	विल्लों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३७	३१	सोविल	सेविल
२३८	२२	१८८१	१८८५
२३९	३	वगैरह ।	वगैरह
२३९	१०	पभरूप	समरूप
२४०	१८	आवश्यक	अनावश्यक
२४३	१६	व्लारियोनोव	लारियोनोव
२४५	६	आमर्स्टफुर्ट	आमर्सफुर्ट
२४६	६	आकास दृश्य	आकार सादृश्य
२४६	२३	फ्रान्सेन्स्का	फ्रान्सेस्का
२४७	२५	कुविन	कुविन
२४८	१६	मूलाधार है।	मूलाधार है" ।
२४९	७	गर्तिविधया	गतिविधियां
२५०	२६	रखते	रखे
२५४	३	सेमोथ्रू स	सामोथ्रू स
२५४	२१	के	से
५६	७	विवेकहीत	विवेकहीन
२५७	१३	मर्जविल्ट	मर्त्सविल्ट
२५९	१७	यथार्थवादी	अतियथार्थवादी
२६०	१	एल्वार्द	एल्वार
२६१	२४	लोत्रेयमौ	लोत्रेयसों
२६३	१६	मध्यम प्रमुत्व	माध्यम प्रभुत्व
२६४	२	प्रकृतियों	आकृतियों
२६५	९	प्रभाव साथ	प्रभाव के साथ
२६५	१७	अंत भी	अंतर्भाव
२६८	१३	ने माग्रिट	रने माग्रिट
२६८	२३	शताब्दी	शताब्दियों
२७१	१	क्वास	म्वास
२७१	६	१८८९	१८८७
२७१	३२	प्रतिमाओ्रों	प्रतिमाओं
२७२	२	केलिडोण्कोपीय	केलिडोस्कोपीय
२७२	७	चित्रित	चित्रित किया
२७२	१६	वेल्ला के साथ	वेल्ला के साथ बिताये
२७२	२२	आत्मचित्र	यथार्थवादी आत्मचित्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७३	१७	प्रतिमिति	प्रतिमित
२७४	१	आदर्श	आदर्श चित्र
२७६	२१	ग्रिम्पेल	गिम्पेल
२७६	२५	पिसस	पिसिस
२७६	२७	के	की
२७६	३२	पासॅ	पासँ
२७७	२८	फाववाद	प्रभाववाद
२८०	५	कर्मचारी, वांये	कर्मचारी, वॉये
२८०	१५	क्लेमॉ	क्लेमाँ
२८०	२६	प्रतिमा	प्रतिभा
२८१	१५	जंगलों	जंगल
२८३	१७	मोरिश	मोरिस
२८५	१०	माध्यम के रंग	माध्यम के–रंग,
२८६	३३	शोपेनहोर	शोपेनऔर
२८७	१८	औग्युस्ट	औगुस्ट
२८७	३४	क्युपका	कुपका
२९१	३४	'आर डो जुद्वि'	'आर दोजुद्वि'
२९२	३	मार्सेलकान	मार्सेल कान
२९२	४	मा।कुंसिस	मार्कुसिस
२९२	५,१८,२२	वान्टोन्जलूं	वान्टोन्जलुं
२९२	१४	निशेल	मिशेल
२९२	१७	चाकूंन	चार्कुंन
२९२	१७	काव्युंसिय	कार्व्युंसिय
२९२	२५	भथन	भवन
२९२	३४	आल्फ्रे डवार	आल्फ्रेड वार
२९४	१८	काल	कला
२९५	२३	अंतर्मन	अंतर्गत
२९६	१३	द्वोर्को	ट्वोर्कोत्र
२९६	१६	मदरवेल	मदरवेल
२९८	११	विल्ले मडि	विल्लेम डि
२९८	२९	१९२०	१९१०
३००	६	ओस्ताज[17]	ओस्ताज[18]
३००	९	होसि आस्सोन	होसिआस्सोन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३००	३०	से दूरी	संदूरी
३०१	३३	द्रुतगति पर	द्रुतगति
३०२	२१	शिलपसदृश्य	शिलपसदृश
३०२	२६	फ़िल्स	फ़िल्स
३०४	६	प्रसुख	प्रमुख
३०४	२५	दुवुफे	द्यु व्युफे
३०४	३१	एप्पेल	आप्पेल
३०७	३३	पेटियां	की पेटियां
३०६	११	विरोवी था	विरोवी था
३०६	२२	जोटिल्सन	जो टिल्सन
३१०	२५	प्रतिमाएं	प्रतिमाएं
३१०	२८	जेस्पर	जास्पर
३११	३४	मिलन	मिलान
३१२	६	फ्रान्स्वाद्यु भ्फें	फ्रान्स्वा द्यु फ्रें
३१२	१५	वाइस्किल स्त्री	वाइसिकल, स्त्री
३१३	७	फ्रान्सिस्का	फ्रान्सेस्का
३१३	६	नेत्रपट	नेत्रपटल
३१४	२	प्रकृति	आकृति
३१६	२७	क्वापलेम्वा	क्लाथलेम्वा
३१६	३४	घटना[74]	घटना[75]
३२५	१२	हैं"।	हैं।[3]
३२६	२	१६३७	१६४१
३२६	६	हुगेरियन	हंगेरियन
३२६	२३	कन्टेम्प्ररी	कन्टेम्परी

शुद्धिपत्र (परिशिष्ट)

परिशिष्ट पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	Sobines	Sabines
१	२७	Hoc	Hoe
२	१५	Danghters	Daughters
३	४	does	does not
३	१५	Baingnade	Baignade
४	१	Mank	Man
४	१९	Miserics	Miseries
४	२२,२५	Ganguin	Gauguin
५	७	Viullard	Vuillard
९	२	Biemale	Biennale
९	२३	Styl	Stijl
९	३२	Voltaise	Voltaire
१०	१	Merzban	Merzbau
१०	१५	Frattage	Frottage
१०	२१,२३	Mandits	Maudits
१०	३२	Warm	War
११	११	Symchromists	Synchromists
११	२२	Yark	York
११	२६	Merzban	Merzbau
१२	२१	os	so
१३	६	Triemale	Triennale